

'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक सत की बानी।
सम्पूर्ण विश्व मे घर-घर है पहुँचानी॥'

प्रथम सस्करण १९७८-७९ ई०

पृष्ठसंख्या १८×२२–८=४०८

मूल्य ३०·०० रुपया

मुद्रक

वाणी प्रेस

'प्रभाकर निलयम्', ५०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ–२२६००३

समर्पण

सिंध की त्रिवेणी देवनागरी



लिपि में सामी शाह सचल

स्व० श्रीमती मोदीबाई ठाकुरदास आसवाणी

माँ,

हम सबका लालन-पालन करते हुए आपने हमारे मन को सुसंस्कृत तथा सदभिरुचि-सम्पन्न बनाने के लिए आजीवन अथक् परिश्रम किये। मुझमे जो अल्प-सी साहित्य सम्बन्धी रुचि है, वह आप ही के प्रोत्साहन का फल है। इस अनुवाद-कार्य का श्रीगणेश आपकी उपस्थिति मे हो गया; आपके आशीर्वाद से यह अब पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहा है।

हमारा दुर्भाग्य है, आप इसे इस रूप मे देखने के लिए हम लोगो के बीच आज उपस्थित नही हैं।

आपकी पावन स्मृति को यह अल्प-सी अनुवादित कृति श्रद्धा-पूर्वक समर्पित है।

नागरी मे लिप्यन्तरित मूल सिंधी छन्द, जिनके द्वारा विरचित हैं, वे उन्ही महान् सन्तो को समर्पित हैं। (कु० पुष्पा टी० आसवाणी)

'ईश कृपा' प्लाट न० ६१७, १४वां रास्ता, खार, बबई-५२

विषय-सूची

विषय | पृष्ठसंख्या

प्रकाशकीय परिशिष्ट

आजादी के बाद 'जलावतनी' सिन्धी को मिला इनाम ।
धाम-धाम मे सजी भारती-भाषाओं ने किया प्रणाम ॥

उठी कसक, जब मिला न निज [illegible] कहीं मुकाम ।
पहन नागरी-पट, संन्यासिन ने चुन लिया विश्व को धाम ॥

भारतीय भाषाओ मे सिन्धी ही एक ऐसी भाषा है, जिसका स्वतन्त्रता-प्राप्ति और भारत-विभाजन के वाद, देश मे अपना कोई निजी क्षेत्र नही है। इसके बरअक्स, सिन्धी समुदाय, अपनी मातृभूमि (सिन्धु-प्रदेश) से निर्वासित होने के बाद, सारे देश मे तितर-बितर हुआ अपनी रोजी की समस्या मे लगा। राष्ट्रभाषा हिन्दी के चक्रवर्तित्व के उन्माद मे ग्रस्त चाहे वे हिन्दीभाषी हो, अथवा वाजिब और ग़ैरवाजिब भावनाओ से त्रस्त विभिन्न अञ्चलीय भाषाओ के हामी; सबको सिन्धीभाषी बन्धुओ के धैर्य और भाषा के सदर्भ मे उनकी राष्ट्रीय उदात्त भावना से नसीहत लेना चाहिये।

सन् १९४७ ई० से, मैं नागरी लिपि के माध्यम से भाषाई सेतुकरण के काम मे सलग्न हूँ। सभी लिपियाँ और भाषाएँ अपने निजी रूप मे अपने अञ्चलो मे फूलती-फलती रहे, साथ ही उनका सत्साहित्य नागरी कलेवर मे समस्त देश को उपलब्ध हो जाय, वह समस्त मानव जगत्, और कम से कम भारतीय जगत् की सम्पत्ति बन जाय; यह उद्देश्य हमारे कार्यक्षेत्र का स्रोत है। इसी सदर्भ मे, मैंने सिन्धु समाज से भी यत्र-तत्र सम्पर्क स्थापित किया। लखनऊ, अजमेर, राजस्थान और दिल्ली मे सिन्धी विद्वानो से मिलने का सौभाग्य हुआ। महाराज दाहिर और महाराज चच के पराभूत होने के बाद से सिन्धु प्रदेश प्रायः आक्रान्त ही रहा। कदाचित् यही कारण है कि वहाँ के साहित्य मे वेदान्त और सूफी विचारधारा का प्राधान्य है। सकटमय जीवन मे आत्मज्ञान ही से शान्ति की उपलब्धि सम्भव है।

पृष्ठ १३-१६ पर उद्धृत एक प्राचीन लेख से प्रकट है कि अरबी लिपि से हजारो वर्षो से परचित और अभ्यस्त होने के बावजूद सिन्धी भाषा की लिपि सदैव नागरी-परक रही है। अरबी लिपि तो, ताजी बात है, अग्रेजो के शासनकाल मे लादी गई। फिर भी, जनता की विस्मृति सहज लक्षण है, मैंने देखा कि अधिकांश सिन्धी भाई और विद्वानो को अरबी जामे की सिन्धी लिपि से अधिक मोह था। उनका सारा साहित्य उसी लिपि मे था। उसके विनष्ट होने से वे आशकित थे। उन्होने सिन्धी लिपि मे अपना साहित्य नवीन भारत मे फिर से छापना-सवाँरना आरम्भ किया।

किन्तु इस बुद्धिजीवी समाज के अच्छे खासे वर्ग ने नागरी लिपि की महत्ता और मौजूदा परिवेश मे उसको अपनाने की आवश्यकता को समझा। उस वर्ग ने तेजी से अपना नया-पुराना साहित्य नागरी लिपि मे प्रकाशित

करना आरम्भ किया। और मैं समझता हूँ कि सिन्धी भाषा का देवनागरी लिप्यन्तरण जितना हुआ है, उतना अन्य किसी भारतीय भाषा का नही।

सिन्धी भाषा और उसके संत-काव्य के सदर्भ मे एक सस्मरण उल्लेखनीय है। ४०-४५ वर्ष पूर्व मुझको कराची जाने के कई अवसर प्राप्त हुए। कराची मे 'वगीचे वाले हकीम' नाम से प्रख्यात एक प्रसिद्ध और सम्पन्न हकीम थे। उनके वहुत वड़े मतव मे अनगिनत मरीज़ मुफ्त तक इलाज पाते थे। उनके छोटे भाई हकीम परमानन्द जी (मेरे सुपरिचित) सन्त काव्य के वड़े प्रेमी थे। सिन्ध के अवतारी पुरुष स्वामी प्राणनाथ जी रचित 'क़ुल्ज़ुम शरीफ' की हस्तलिखित पाण्डुलिपि की उनको खोज थी। वे किसी भी मूल्य पर उसकी प्रतिलिपि करवाना चाहते थे। उनकी जिज्ञासा और अनुरोध पर लखनऊ, पटना आदि नगरो के पुराने नवावी काल के पुस्तकालयो मे मैंने खोज की, किन्तु वह प्राप्त न हो सकी। हकीम परमानन्द जी से अन्तिम साक्षात्, देश-विभाजन के वाद जव उनका सव उजड़ चुका था, कल्याण शरणार्थी शिविर मे अति दयनीय दशा मे हुआ; शायद वे अव दिवंगत हो चुके हैं।

कुछ साल हुए, नई दिल्ली मे सुश्री श्रीमती विमला मेहता से भेंट हुई। इन विदुषी महिला ने भगीरथ श्रम करके सिन्धी के इस पवित्र ग्रन्थ कुल्ज़ुम शरीफ को कही से उपलव्ध कर उसका नागरी लिप्यन्तरण अनेक ऐतिहासिक टिप्पणियो सहित प्रकाशित किया है। लगभग १६०० वृहत् पृष्ठो का यह ग्रन्थ 'कुल्ज़म स्वरूप' के नाम से श्री प्राणनाथ प्रकाशन, १० ए/१२ शक्ति नगर, नई दिल्ली से उपलव्ध है। वहाँ से सिन्धी का और भी साहित्य नागरी लिपि मे प्रकाशित हुआ है।

सामी, शाह लतीफ़, सचल सरमस्त तीन सन्तो का वृत्त विदुषी अनुवादिका ने उनके कलाम आरम्भ होने से पूर्व दिया है। वेदान्त की इस्लामी धारा को ही तसव्वुफ कहते हैं। संसार के त्रिविध तापो से विकल होकर मानव, माया के वन्धन से छुटकारा पाने के लिए छटपटाता है; और तव अध्यात्मवाद मे उसको शरण मिलती है। इस विचारधारा से संसार का कोई धर्म वचा नही है। इस्लाम मे 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस कथन की गुन्जाइश नही है। ब्रह्म मे किसी भी हस्ती का साझा, समन्वय अग्राह्य है। ब्रह्मवाद मे समाहित सूफी सन्तों को भी प्रेम अथवा भक्ति के द्वारा अल्लाह से सान्निध्य, सामीप्य ही मानकर अपनी आध्यात्मिक पिपासा को शान्त रखना पड़ा है। यह वेदान्त का द्वैतवाद (शुहूदी मार्ग) है। पूर्ण अद्वैत (वुजूदी मार्ग) पर चलने का दु साहस करनेवाले मस्त दरवेशो को प्राण तक की जोखिमे उठानी पड़ी हैं। फलस्वरूप मुस्लिम सन्तो के पूर्ण अद्वैत मे लीन होते हुए भी उनकी वाणी मे भक्त-भजनीय अथवा प्रेमी-

प्रियतम का ही भाव आत्मा और परमात्मा मे व्यक्त होता है। 'वुजूदी' एकमात्र ब्रह्म का वजूद (अस्तित्व)। शेष, प्रकृति और जीव, सब उसी से उत्पन्न, उसी मे समा जानेवाले, और अज्ञान की सृष्टि हैं। 'शुहूदी' परब्रह्म से अपनी पृथक् सत्ता मानकर शाहिद (साक्षी) रूप में ब्रह्म को साक्ष्य मानकर अपने को उसमे तल्लीन करता है।

प्रस्तुत पुस्तक मे शाह लतीफ द्वैतमार्गी और सचल सरमस्त पूर्ण अद्वैत के सूफी सन्त प्रतीत होते हैं। सामी अपने सलोको मे माया के छली बन्धनो को काटकर, सद्गुरु की सहायता से, ब्रह्म मे तल्लीनता की ओर रुजू करते हैं। उनकी वाणियो मे स्पष्ट श्री गुरुग्रन्थ साहिब का प्रभाव है। हमने 'सामी जा सलोक' रूपी गगा का आवाहन किया था। सौभाग्य से सामी, शाह, सचल सिन्ध की त्रिवेणी उपलब्ध हुई।

पुस्तक मे पृष्ठ ४ से २२ तक प्रस्तुत सामग्री अवलोकनीय है। उसमे सिन्धी भाषा का इतिहास, पुस्तक-विषय, विदुषी अनुवादिका का परिचय, सिन्धी-नागरी वर्णमाला आदि सामग्री 'सिन्ध की त्रिवेणी' पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त है। ट्रस्ट की विद्वत्परिषद् के वरिष्ठ सदस्य और न्यासी डॉ० गजानन साठे ने इस कार्य का सयोग बनाया था, उनको पूर्ण श्रेय है। ट्रस्ट की विद्वत्परिषद् के सिन्धी सलाहकार श्री एन० के० केवलरामानी जी से भी हम समय-समय पर प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं। इस सत्कार्य के सानुवाद लिप्यन्तरण को वाञ्छनीय ढग पर सम्पन्न करने का श्रेय कुमारी पुष्पा टी० आसवाणी जी को ही है। उन्हे साधुवाद और उनके मगल की हम कामना करते हैं।

आभार प्रदर्शन— ट्रस्ट को, उदार सदाशयो, विद्वानो, एव उत्तर-प्रदेश शासन से प्राप्त सहायता से बडा सहारा मिलता रहा है। अन्य भाषाई ग्रन्थो के साथ, सिन्धी भाषा की 'सामी, शाह, सचल की त्रिवेणी' भी अपनी सहज गति से प्रकाशित होती रहती। सौभाग्य से केन्द्रीय राज्यशिक्षामन्त्री माननीया श्रीमती रेणुकादेवी बरकटकी, भारत सरकार के राजभाषा सलाहकार बहुभाषामर्मज्ञ श्री रमाप्रसन्न नायक और शिक्षा एव समाज कल्याण मंत्रालय के भाषानिदेशक श्री के० के० सेठी जी की अनुकम्पा हुई। इसके परिणाम-स्वरूप, यह पुस्तक १९७८-७९ ई० मे परिपूर्णता को प्राप्त हुई। हम उनके अतिशय अनुग्रहीत हैं। हम विश्वास के साथ निवेदन करते है कि भुवन वाणी ट्रस्ट की भाषाई सेतुकरण की विशाल और अद्वितीय योजना उत्तरोत्तर फलवती होकर शासन और जनता को सतुष्ट करती रहेगी।

नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ—३

भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा प्रयुक्त
सिन्धी वर्णमाला का देवनागरी रूपान्तर

प्रस्तुत सिन्धी-देवनागरी वर्णमाला चार्ट के सम्बन्ध मे कुछ बाते समझना जरूरी हैं। सिन्धी वर्णमाला मे समस्त भारतीय भाषाओ की अपेक्षा अधिक अक्षर है। देवनागरी लिपि के तथा अरबी लिपि के सब अक्षर और पाँच सिन्धी भाषा के निजी अत स्फुट (Implosive) अक्षर—इनको मिलाकर सिन्धी लिपि पूर्ण होती है।

अन्त स्फुट ग॒ ज॒ ड॒ ब॒ अक्षरो को अन्तस् की ओर खीच कर उच्चारण करना पडता है। अरबी लिपि मे स्वाद, सीन, से तथा ज़े, ज़ाल, ज़ो, ज़ाद आदि के उच्चारणो मे अन्तर है और उनसे शब्दो के अर्थ मे अन्तर पडता है, जैसे ज़िल्लत, ज़िल्लत और ज़िल्लत के अर्थ क्रमश भूल-चूक, अपमान और भटक जाना है। इसलिए अरबी से आये शब्दो को सिन्धी लिपि मे—जो अब अरबी लिपि मे ही लिखी जाती है अरबी के अनुसार ही लिखा जाता है। किन्तु बोलने मे इन अक्षरो के उच्चारण मे अन्तर मिट गया है, ज़ाल, ज़े, ज़ो, ज़ आदि का उच्चारण, सिन्धी मे अब समान है।

☞ इसलिए सिन्धी भाषा के देवनागरी-लिप्यन्तरण मे ज़े, ज़ाल, ज़ो, ज़ाद के लिए 'ज़', सीन से, स्वाद के लिए 'स', ते, तो के लिए त, छोटी-बडी हे और हे के लिए 'ह', ऐन और अलिफ के लिए 'अ', फे के लिए फ, गैन के लिए 'ग', काफ के लिए 'क', खे के लिए ख का प्रयोग किया गया है। किन्तु सिन्धी-देवनागरी लिपि के चार्ट मे ज़ाद, ज़ाल, ज़े, ज़ो, सीन से, स्वाद, ते, तो, हे, हे, ऐन, अलिफ या हम्ज़ा आदि के लिए पृथक् प्रतिनिधि अक्षरो को कायम कर दिया गया है। किसी धार्मिक अथवा साहित्यिक ग्रथ-विशेष के देवनागरी लिप्यन्तरण मे इनका प्रयोग करके अर्थ के अनर्थ अथवा विपरीत अर्थ से बचा जा सकता है। नित्य के व्यवहार में इनको पृथक् लिखने की जरूरत नहीं। चीनी-जैसी चित्र-लिपियो के अलावा, सिंधी की वर्णाक्षरी कदाचित् विश्व मे सब से बडी हो।

नन्दकुमार अवस्थी

सिन्धी (देवनागरी वर्णमाला)

भ ڀ	प پ	ब॒ ٻ	ब ب	अ ا
थ ٿ	स़ ث	ट ٽ	ठ ٺ	त ت
घ گھ	ङ ڱ	ग॒ ڳ	ग گ	ख ک
ड़ ڙ	ज़ ز	र ر	फ ڦ	फ़ ف
ड ڊ	ड॒ ڏ	ध ڌ	ज़ ذ	द د
ल ل	व و	श ش	स س	ढ ڍ
ण ڻ	न ن	क़ ق	क ڪ	म م
च چ	ञ ڃ	ज॒ ڄ	ज ج	ह़ ح
स़ ص	झ جھ	ह ه	ख़ خ	छ ڇ
ज़ ظ	त़ ط	ग़ غ	अ़ ع	ज़ ض
		य ي		

अनुवादकीय परिशिष्ट

सिन्ध के तीन अनमोल कविसन्तो शाह, सचल, सामी की रचनाओ के कुछ चुने रत्नो का यह हिन्दी गद्यानुवाद आप के समक्ष पुस्तकाकार प्रस्तुत करते हुए मुझे शब्दातीत प्रसन्नता हो रही है। १९७१ ई० के आरम्भ मे मैंने यह अनुवाद-कार्य, भुवनवाणी ट्रस्ट की त्रैमासिक पत्रिका 'वाणी सरोवर' के लिए आरम्भ किया था। उस समय मैंने यह कल्पना तक नही की थी कि मेरा यह अनुवाद किसी दिन पुस्तक का आकार ग्रहण करेगा। वास्तव मे इस कार्य-सम्पन्नता का श्रेय भुवन वाणी ट्रस्ट के मुख्यन्यासी श्री नन्दकुमार जी अवस्थी तथा आर० ए० पोद्दार वाणिज्य महाविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष श्री डॉ० गजानन साठे को है। ये दो महानुभाव ही मुझे समय-समय पर कार्य करने के लिए प्रेरित करते रहे तथा आनेवाली कठिनाइयो को दूर करने मे सहायता देते रहे।





कु० पुष्पा टी० आसवाणी

मान्यता है कि प्रत्येक जाति अथवा कौम की सभ्यता एव सस्कृति की जानकारी उस जाति व कौम के साहित्य से ही प्राप्त की जा सकती है। जाति की प्रगति भी, उस जाति के लोगो की साहित्यिक सूझ-बूझ, अनुभूति तथा पहचान पर आधारित है। जो जाति अपने साहित्य को उन्नत बनाने के लिए तथा उसकी सुरक्षा के लिए प्रयत्न नही करती, वह शीघ्रातिशीघ्र अवनति के अतल गर्त मे डूब जाती है।

खेद की बात है कि भारत के विभाजन के फलस्वरूप, अपने वतन से बिछुडने के बाद, सिन्धी जाति, अपनी साहित्यिक महत्ता और गरिमा से दिन प्रति दिन बेखबर होती रही। इस बेखबरी और गफलत के लिए जिम्मेदार सिन्धी जाति नही बल्कि परिस्थितियाँ मानी जाएँगी। यह तो निर्विवाद सत्य है कि किसी भी जाति का साहित्य तब पनपता एव विकसित होता है, जब जाति के लोग सम्पन्न, चिन्तारहित तथा समृद्ध होते हैं। सिन्धी जाति के लोग न केवल अपनी मातृभूमि, बल्कि धन-सम्पत्ति

खोकर तथा अपना सर्वस्व गवाँकर आज के भारत मे नए ढग से बसने के लिए आए, तब वे पूर्णरूप से टूटे हुए थे। वास्तव मे यह उनका परीक्षाकाल था। जीवन की नयी परिस्थितियो के साथ समझौता करना तथा नए रहन-सहन के अनुरूप उन्हे अपने को बदलना था। ऐसे समय मे अपने साहित्य की रक्षा तथा उसे उन्नत बनाने का विचार ही कैसे आ सकता है ?

सिन्धी का साहित्य प्राय: अरबी लिपि मे लिखा हुआ था। भारत मे सिन्धी जाति को अपनी भाषा और अपनी लिपि को जैसा का तैसा बनाए रखना कठिन-सा था, परिणामस्वरूप नयी पीढी के लोग अपने साहित्य के प्रति अपनी आस्था खो बैठे। जब जाति के लोग अपनी भाषा और अपनी लिपि से ही अनजान बनते गए, तब साहित्य के प्रति लगाव ही कैसे सभव है ? इन परिस्थितियो मे नये साहित्य-सृजन की बात भी कल्पनातीत-सी थी।

कुछ विद्वानो को अपने साहित्य के प्रति यह अवहेलना और उदासीनता सहन न हो सकी, अत: उन्होने देवनागरी लिपि को अपनाना उचित समझा। उनकी धारणा थी कि देवनागरी लिपि अपनाने से सिन्धी साहित्य न केवल सिन्धी जाति के लिए उपयोगी होगा, बल्कि सारे राष्ट्र और नागरी-जगत् को उससे लाभ प्राप्त होगा। अत. अरबी लिपि मे लिखे साहित्य को देवनागरी लिपि मे लिखने के प्रयास किए गए, परन्तु यह कार्य भी सरल न था। जो लोग अरबी जानते थे उन्हे देवनागरी लिपि का कुछ ज्ञान नही था, और जो देवनागरी जानते थे, वे अरबी लिपि से अनजान थे। यदि कुछ लोग दोनो लिपियाँ जानते भी थे, तो फिर अरबी लिपि मे मौलिक पुस्तको का मिलना कठिन था। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य व्यवहारिक कठिनाइयो के कारण किसी के मन मे सिन्धी-साहित्य-निधि का देवनागरी लिप्यन्तरण का साहस ही नही होता था। सयोग से डॉ० साठे जी ने मुझे भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ द्वारा भाषाई सेतुकरण के प्रयास से अवगत कराया तथा सिन्धी की किसी शाश्वत रचना का अनुवाद तथा लिप्यन्तरण करने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप मैंने सामी जी के श्लोको का लिप्यन्तरण एव गद्यानुवाद आरम्भ किया। वाणी सरोवर के सम्पादक श्री नन्दकुमार जी अवस्थी, तथा विनयकुमार जी अवस्थी के, हिन्दीतर विविध भाषाओ के मूलग्रन्थ नागरी लिपि मे हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करने के साहसपूर्ण अद्वितीय कार्य से, केवल सिन्धी भाषा जाननेवाले ही नही, वल्कि अन्य भाषा-भाषी भी नागरी लिपि के माध्यम से इन प्रयासो से लाभ उठा सकते हैं।

काल-क्रम की दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक "सिन्ध की त्रिवेणी" मे

पहले शाह, बाद मे सचल और अन्त मे सामी जी की रचनाएं रखी जानी चाहिए थी। किन्तु तथ्य यह है कि आरम्भ मे यह योजना केवल सामी के सलोको के सग्रह-प्रकाशन की थी। बाद मे, श्रीवर अवस्थी जी ने परामर्श दिया कि सिन्धी भाषा के प्रथम नागरी-लिप्यन्तरण मे, सामी, शाह, तथा सचल—तीनो सन्तो के पद देकर नागरी-जगत् को उत्प्लावित किया जाय। यह बात श्री डॉ० गजानन साठे और मुझको भी पसन्द आई। फलतः प्रस्तुत पुस्तक 'सिन्ध की त्रिवेणी' मे काल-क्रम के विपरीत, सामी, शाह और सचल—इस क्रम मे कलाम सकलित किये गये हैं।

हिन्दी साहित्य मे जो स्थान सूर, तुलसी तथा कबीर का है, सिन्धी साहित्य मे वही स्थान शाह, सचल और सामी का है। ये सिन्धी साहित्य के वे जगमगाते सितारे हैं, जिन्होने अपनी आभा और गरिमा से सिन्धी साहित्य को जगमगाया है। एक ओर जहाँ शाह साहब ने सूफियाने प्रेम (सान्निध्य भक्ति) की वर्षा की है, तो दूसरी ओर सचल जी ने तसव्वुफ (वेदान्त) के द्वारा मानव को खुदी नष्ट कर खुदा से तद्रूप हो जाने की युक्ति बताई है। शुद्ध वेदान्तवादी सामी जी ने जगत, जीवन तथा माया सम्बन्धी विचारो को प्रस्तुत कर मानव को सही रास्ता दिखाया है।

चाहे सिन्ध के सूफी कवि हो, चाहे वेदान्ती सत हो, सबने एक ही ब्रह्म अथवा हक (सत्य) के अस्तित्व की मान्यता मे अपने अस्तित्व को मिटाया है। अन्तर केवल इतना ही है कि सूफी कवियो ने लौकिकता से अलौकिकता की उडान मारी है और निराकार ब्रह्म अथवा हक को एक सुन्दर रूप देकर, उसके नाज़, नखरो, सुन्दरता एव शृगार का जादू-भरा वर्णन किया है। एक ही प्रकार के परिवेश मे रहने के कारण न तो शाह और सचल अपने को वेदान्ती विचारो से दूर रख सके हैं और न सामी अपने को सूफियाने प्रेम से अलग रख पाये है। तीनो कवियो मे हमे सूफियाने प्रेम, तसव्वुफ और वेदान्त का मिलन दिखाई देता है।

वास्तव मे तसव्वुफ और वेदान्त मे कोई मौलिक अन्तर नही है। जिसे भारतीय आत्मविद्या कहते हैं उसे सूफी तसव्वुफ कहते है। वेदान्ती 'ब्रह्म' कहते हैं, उसे ही सूफी 'मुतूलक हस्ती' कहते है। जिसे वेदान्ती 'सत्' कहते हैं, सूफी 'हक' कहते हैं। वेदान्ती 'माया' कहते हैं, सूफी 'तिलिस्म' कहते हैं। वेदान्ती की तरह सूफी भी परमात्मा को पाने के लिए चार मज़िलो का वर्णन करते है। जिसे वेदान्ती 'अह ब्रह्म अस्मि' कहते है उसे ही सूफी अनअलहक 'मैं खुद हक हूँ' कहते हैं। अत स्पष्ट है कि शाह, सचल और सामी ने सिन्धी काव्य मे, तसव्वुफ और वेदान्त को मूर्तिमान कर दिया है।

सिन्ध की त्रिवेणी, सिन्धु प्रदेश के सन्त-त्रय —सामी, शाह और सचल

के पारिवारिक, सामाजिक और दार्शनिक जीवन की झाँकी, प्रस्तुत पुस्तक मे क्रमश पृष्ठ २०, २४५ और ३४९ पर उनके कलामो के शुरू मे उपलब्ध है।

अनुवाद करते समय कठिनाइयो का आना स्वाभाविक था, पर कार्य-सम्पन्नता के पश्चात् उनका वर्णन करना उचित न समझकर, मैं विनम्रता-पूर्वक इतना ही कहना पर्याप्त समझूंगी कि मैंने रचनाकारो की विशिष्ट शैली का यथासम्भव अनुसरण करने का प्रयास किया है। इसके कारण आपको कही-कही पर अटपटापन का आभास होना अस्वाभाविक नही; परन्तु मूल को यथार्थ रूप देने का पूरा-पूरा यत्न किया गया है। समय-समय पर अन्तर्निहित अर्थ को कोष्ठक मे देने का प्रयास भी किया गया है।

अनुवाद-कार्य मे, तथा सदर्भ-ग्रन्थ एव कवियो के चित्र आदि उपलब्ध करने मे जिन महानुभाव ने मुझे हर तरह की सहायता दी है, वे हैं बम्बई के प्रसिद्ध जयहिन्द कालेज के अवकाश-प्राप्त श्री कल्याण बी० आडवाणी जी। आपने सिन्धी भाषा के अलावा, अग्रेजी और फारसी भाषा का भी अध्यापन किया है। मान्यवर आडवाणी जी को अपनी मातृभाषा सिन्धी के प्रति विशेष लगाव है और वे सदैव उसे समुन्नत करने के प्रयत्न मे लगे रहते हैं। आपके प्रयास से ही सिन्धी-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ 'शाह जो रसालो' तैयार हो पाया। इस ग्रन्थ पर आपको १९६८ का साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया था। प्रस्तुत पुस्तक मे शाह साहब की जो गाथाएँ दी गई हैं, वे इन्ही की पुस्तक से ली गई है। ऐसे उदारहृदयी व्यक्ति के प्रति मात्र शब्दो द्वारा आभार प्रकट कर मैं अपने कर्तव्य की इति नही समझती हूँ।

इस अनुवाद को पूर्ण कराते मे जो दूसरे महानुभाव हैं उनका उल्लेख भी आवश्यक समझती हूं और वे है श्री गजानन साठे। वास्तव मे जब-जब भी मैंने अनुवाद-कार्य के प्रति कठिनाइयो के कारण, उपेक्षा दिखाई, तब-तब उन्होने मुझे ऐसी प्रेरणा दी जिसके सामने मैं निरुत्तर हो जाती और कार्य करना स्वीकार कर लेती।

भुवन वाणी ट्रस्ट, उसके प्रतिष्ठाता श्री नन्दकुमार अवस्थी, और ट्रस्ट के सभी सहयोगी एव कार्यकर्ता, अखिल भाषाई सेतुबन्धन के पुनीत कार्य मे जिस मनोयोग से लगे हुए है, उसमे अपना भी यह योगदान देखकर मैं अपने को कृतकृत्य मान रही हूँ।

(कु०) पुष्पा ठाकुरदास आसवाणी
अध्यक्ष-हिन्दी विभाग,
ला० लाजपतराय कालेज आफ कामर्स, बम्बई

सिन्धी लिपि पर एक दृष्टि ✽

सिन्धी का उद्‌गम संस्कृत से हुआ है। सौभाग्य से यह अब भी विदेशी शब्द-जाल से सुरक्षित है। प्राकृत के मर्मज्ञ वैयाकरण आज भी अपभ्रंश के स्फुट एवं निखरे हुए स्वरूप का दर्शन वर्तमान सिन्धी बोली में बिना हिचकिचाहट के कर सकते हैं। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से एवं भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से सिन्धी में—हिन्दी, मराठी और बंगला से बढ़कर संस्कृत और प्राकृत से घनिष्टता दृष्टिगोचर होती है। ठेठ प्राकृत धातुओं एवं शब्दों के विद्यमान प्रचुर प्रयोग इसकी अत्यन्त सन्निकटता व्यक्त करते हैं। सुतरां, सिन्धी अपनी संस्कृतपरायणता के कारण अन्य बहनों की स्पर्धा की पात्री बनी हुई है। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह अपनी परम्परागत शैली का समुचित सम्मान कर, तथा प्रचलित ढीली-ढाली और सीधीसाधी नवीन बनावट को अपना कर, तदर्थ व्याकरण के नियमों को भी अनुकूल बना, परिष्कृत एवं परिमार्जित शब्दों के गठन में अपनी एकतारिता (इण्टर्नल हारमोनी), मधुरता, रुचिरता एवं सुन्दरता में यह अन्य भाषाओं से अधिक समुन्नत है।

प्राकृत के मर्मज्ञ वैयाकरण क्रमादीश्वर ने जो-जो नियम अपभ्रंश के सम्बन्ध में निर्धारित किये हैं, उन सब नियमों का पालन सिंधी-भाषा में ठीक-ठीक हो रहा है। अतएव एक उद्‌गम होने पर भी सिंधी एक स्वतन्त्र भाषा बन गयी है, जो स्वरूप में दूसरों से सर्वथा भिन्न है।

सिन्धी सिन्ध में बोली जाती है, जो तीन भागों में विभाजित है। व्याकरण की दृष्टि से विशेष अन्तर न रखते हुए भी तीनों का उच्चारण प्राय भिन्न-भिन्न है। 'लारी' पश्चिमी सिन्ध (Lower-Sind) में, 'सिराइकी' हैदराबाद के पश्चिमोत्तर प्रदेश (Upper-Sind) में, और 'थरेली' थरपारकर प्रदेश (Thar) में बोली जाती है।

'लारी' अधिकांशतया गद्य में प्रयुक्त होने पर भी सर्वथा शुद्ध नहीं है, जिसमें स्वरों को खूब तोड़मरोड कर व्यंजनों को भी उसके अनुरूप बनाने के लिए कोमल बना दिया है। 'सिराइकी' बोली ने 'लारी' से अत्यधिक शुद्ध होने के बावजूद भी अपने उच्चारण को बिलकुल बिगडने नहीं दिया है। 'सिराइकी' की सरसता एवं शुद्धता के फलस्वरूप सिन्धी में एक कहावत प्रचलित है—"लारजो पढ्यो, सिरेजो ढगो"। इसका तात्पर्य यह है कि 'लारी' का पंडित भी 'सिराइकी' का बैल ही है। 'थरेली' भाषा जोशीली और इन दोनों से निराली ही है। वह प्राय मारवाडी में मिल गई है जिसको शिकारी एवं जरायम पेशा लोग बोलते हैं। 'थरेली' का अपना विशिष्ट साहित्य नहीं है। ये उपर्युक्त वाक्य डा० ई० ट्रम्प के "सिन्धी-भाषा के व्याकरण का अन्य भारतीय भाषाओं से सम्बन्ध" नामक पुस्तक में लिये गये हैं, जिसको १८७२ में भारत-सरकार की आज्ञा से लिफ्जिग (Liefzig) (जर्मनी) में छपवाकर ट्रबनर एण्ड कंपनी ने प्रकाशित किया था। संस्कृत की प्राकृत अवस्था से ही अपभ्रंश का आविर्भाव

✽ लखनऊ की 'माधुरी' पत्रिका के अप्रैल, १९४६ के अंक में प्रकाशित। वाणी सरोवर अंक जनवरी १९७० में उद्धृत। श्री डी० बी० मोरचंदानी के अंग्रेजी-लेख का श्री रघुनन्दन विद्यार्थी द्वारा अनुवाद। तदर्थ धन्यवाद।

हुआ है। अपभ्रंश दो भागों में विभक्त है—नागरी और विराचद (व्राचड)। यह 'विराचद' अपभ्रंश ही घिस-घिसाकर सिन्धी-भाषा में परिणत हुई है। प्राकृत के वैयाकरण मार्कण्डेय ने भी इसको स्पष्ट किया है कि जो अपभ्रंश सिन्धु देश में प्रचलित है, उसे 'विराचद' कहते हैं। दुर्भाग्य से सिन्ध के बाहर बहुत ही थोडा शिक्षित-समाज सिन्धी के इस इतिवृत्त को जानता है। अधिकतर लोग इसका प्रादुर्भाव अरबी तथा फ़ारसी से मानते हैं। इस भ्रान्त धारणा का मूलस्रोत इसकी अरबी-सिन्धी-लिपि है। अत यह बतलाना नितान्त आवश्यक है कि सिन्धी-भाषा अरबी-लिपि में कैसे लिखी जाने लगी और इसी को प्रमाणित करने के लिए आपका ध्यान हम भारत के प्राचीन इतिहास की ओर आकृष्ट करते हैं।

सिन्ध में ७१२ ए० डी० तक आर्यों का शासन था। बौद्धधर्म के प्रभाव से भी यह अछूता नहीं रहा था। बौद्धकाल के भग्नावशेष, जो भिन्न-भिन्न स्थानों में पाये जाते हैं, इसके ज्वलत प्रमाण हैं। भारत का सीमान्तप्रदेश यह बृहस्पतिक्षेत्र सर्वप्रथम ७१२ ए० डी० में अरबों के शिकजों में ग्रसित हो रौंदा जाने लगा। हिन्दू मुसलमान बनाये जाने लगे। परिणामत बहुत थोडे काल में सिन्ध की अधिकांश जनता अरबी संस्कृति एव सभ्यता का स्वागत कर मुसलमानी रीति-रिवाजों को अंगीकृत करने लगी। लगभग ग्यारह सौ वर्ष तक सिन्ध की यही दशा रही, बल्कि उत्तरोत्तर बिगडती ही गई। तथापि हिन्दू, रूढिवादी एव सनातनी होने के कारण, बचे हुए अति अल्पसंख्यक भी अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने में समर्थ हुए। सन् १८४३ में जब अंग्रेजों ने सिन्ध को जीता, उस समय हिन्दू-संस्कृति अपने जीर्णशीर्ण स्वरूप में विद्यमान थी।

सिन्ध की लिपि उस समय वणिकी देवनागरी थी, जो बहीखातों आदि में लिखी जाती थी। संस्कृत भी पाठशालाओं में पढाई जाती थी, जिनकी संख्या बहुत थोडी थी। मीरों के शासनकाल में शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था। मुल्ला और मौलवी क़ुरान शरीफ को पढाया करते थे। ऐसे मदरसों की संख्या अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भ में छ सौ थी। अंग्रेजों ने जब शिक्षाप्रसार की ओर ध्यान दिया तो उन्हे खूब कठिनाइयों का सामना करना पडा। हिन्दू और मुसलमानों की एक भाषा होने पर भी लिपि एक न थी। राजभाषा फारसी थी। हिन्दू अपना हिसाब-किताब 'मोडी वणिकी' (मुडिया) में रखते थे, जिसमें मात्राओं का अभाव होने से पढने में कठिनता पडती थी।

अंग्रेजों ने फ़ारसी के स्थान पर सिन्धी को राज-भाषा बनाना चाहा, किन्तु उनकी दृष्टि में कोई स्वतन्त्र सिन्धी-लिपि न थी। सिन्धी की वास्तविक और ठीक लिपि देवनागरी ही थी, परन्तु सर रिचर्ड बर्टन ने अरबी-लिपि को, जो सिन्धी के विशिष्ट उच्चारण में समन्वय नहीं रखती थी, नये-नये लात और नुक्तों का आविष्कार करके भी अपनाने का आग्रह किया। कैप्टेन स्टेक (Stack) जो सिन्धी के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे तथा जिन्होंने सिन्धी-अंग्रेजी-कोष 1854, अंग्रेजी-सिन्धी-कोष 1847 और सिन्धी-व्याकरण 1849 नामक तीनों पुस्तकों का देवनागरी में ही निर्माण किया था, नागरी को ही सिन्धी की अधिकारिणी बतलाते हुए प्रान्त में चलती 'वणिकी' को आवश्यक सुधार के साथ स्वीकृत करने की प्रार्थना की। पर उस समय के सिन्ध के कमिश्नर सर बार्टल फ्रेअर ने इस पर अपनी विवशता प्रकट की। उनका मत था कि न हिन्दू अरबी-लिपि को जानने को तैयार होंगे और न मुसलमान नागरी को ही स्वीकार करेंगे।

एक भाषा के बिना कारोबार चलना कठिन था, अत. सन् १८५३ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने अरबी-लिपि को प्रयोग में लाने का निश्चय

किया, तदर्थ दस सहस्र रुपयों का प्रचार-व्यय भी सैंकशन कर दिया। उस वर्ष मि० इलियस (Ellias) के नेतृत्व में सिन्धी के कतिपय विद्वानों की एक समिति ने अरबी के उनतीस अक्षरों को सिन्धी बोली की विशिष्ट कण्ठ्य, तालव्यादि ध्वनियों का प्रतिपादन करने में असमर्थ जान, बावन वर्णों की एक लिपि अरबी-सिन्धी निर्धारित की। तत्पश्चात् उसी लिपि में फारसी, मराठी, अरबी और गुजराती ग्रन्थों के अनुवाद होने लगे। वही अरबी-सिन्धी १८६६ में पुन दुहराई गई। इसी तरह सुरभारती से उद्भूत सिन्धी का राज्य-कारणों से अनावश्यक लिपि-परिवर्तन मोटी भूल ही नहीं, सिन्धी का अध पतन था। ठीक डाक्टर ट्रम्प ने घोषणा की—

"No alphabet suits the Sindhi letters, than the Sanskrit alphbaets, the Sindhi being the genuine daughter of Sanskrit"

सिवा देवनागरी के सिन्धी बोली को कोई भी लिपि अनुकूल नहीं हो सकती। सिन्धी-व्याकरण (1872) के २६ वें पृष्ठ पर फिर उसी बात को दुहराते हुए डाक्टर साहब ने लिखा है कि भारतीय भाषाओं को अरबी अथवा अन्य विदेशी लिपि में लिखना उनकी हत्या करना है।

सिन्धी के विदेशी लिपि में लिखी जाने का मुख्य दुष्परिणाम यह हुआ है कि इतरप्रांतीय इसका आविर्भाव अरबी तथा फारसी से मानने लगे। यहाँ तक कि भाषाशास्त्रज्ञ भी सिन्धी की इस वंशपरम्परा को नहीं जानते। दूसरे, हम सिन्धी हिन्दुओं का भारत के अन्य हिन्दुओं में सांस्कृतिक सम्बन्धविच्छेद हो गया। हम धार्मिक ग्रंथों के परिशीलन से सर्वथा वंचित रहते, जो केवल संस्कृत और हिन्दी में ही पाये जाते हैं। यही तो कारण है कि सिन्ध के हिन्दू नये-नये मत-मतान्तरों को अपनाते हैं, पाश्चात्य सभ्यता के उपासक बन आमोद-प्रमोद में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

सिन्ध में हिन्दुओं की अल्प संख्या होने के कारण देवनागरी को ठुकराना इष्ट नहीं था, जब कि संस्कृत से आविर्भूत अन्य भारतीय भाषाएँ देवनागरी में ही लिखी जाती हैं। साम्प्रदायिकता का कारण केवल बहाना-मात्र था, क्योंकि बंगाल में बंगला, महाराष्ट्र में मराठी और गुजरात में गुजराती को तत्-तत्प्रांतीय ईसाइयों, मुसलमानों और यहूदियों ने प्रेम से अपनी-अपनी मातृभाषाओं के रूप में अपनाया है। सिन्ध में भी सिन्धी मुसलमान इसे प्रेम से अपनाते, यदि यह स्वीकार की जाती। सुतरां इसके दोषी अंग्रेज ही हैं।

यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है कि सिन्धी केवल सिन्ध में ही नहीं बोली जाती। सिन्ध के निकटवर्ती कच्छ और काठियावाड के उत्तरी प्रदेश में बोली जाने-वाली 'कच्छी' भी सिन्धी ही है। ठीक इसी तरह उत्तर में बहावलपुर से मुलतान तक बोली जानेवाली 'लहदा' भी सिन्धी से घना सम्बन्ध रखती है। १८६२ ई० में सिन्धी-भाषा के नवीन व्याकरणकार श्री झमटमल नारूमल ने अपनी पुस्तक के उपोद्घात में बतलाया है कि यद्यपि सिन्धी शुद्ध संस्कृतभाषा है, तथापि आठवीं शताब्दी से अरबी के साथ सम्पर्क होने के कारण सिन्धी में फारसी तथा अरबी-शब्दों का सम्मिश्रण हो गया है। उनके मतानुसार सिन्धी की शब्दसंख्या बीस हजार है, जो इस तरह में विभाजित है —

संस्कृत १२०००, देशी (संस्कृत के तद्भव शब्द) ३५००, फारसी २०००, अरबी २५००

इस सम्बन्ध में हमें यह बतलाते हुए प्रसन्नता होती है कि सिन्धी की समस्त क्रियाएँ, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय, प्राकृतिक और भौगोलिक नाम, पशु और पक्षियों की बोलियाँ, उद्योग-धन्धों के नाम तथा अन्यान्य आवश्यक शब्द, जो भाषा के मुख्य अंग हैं, केवल संस्कृत के ही शब्द हैं। फारसी और अरबी के केवल राजनीय, शिकार, युद्ध, सेना और औषधियों के नाम ही सिन्धी में स्थान पा सके हैं।

अतः यह निर्विवाद सत्य है कि प्रचलित अरबी-सिन्धी-लिपि अप्राकृतिक (unnatural) और अयोग्य होने के साथ-साथ अग्राह्य भी थी। किन्तु यह लगभग अस्सी वर्षों से प्रयोग में आ रही है। प्रान्त की बहुसंख्यक मुसलिम जाति भी इसी के पक्ष में है। इस वक्त लिपि-परिवर्तन के प्रश्न को हल करना अतीव दुष्कर ही नहीं, असाध्य भी है।

अतः भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए पाश्चात्य सभ्यता को श्रेयस्कर माननेवाले, पतन के कगारे पर खड़े हुए भी विनाशकारिणी तन्द्रा में झूमते हुए आर्य-सन्तानों को बचाना हमारा पुनीत कर्तव्य है। इसके लिए हम अधोलिखित कार्यक्रम को यथाशक्य अपनाना चाहते हैं—(१) सिन्धी-भाषा में लिखी जानेवाली समस्त धार्मिक, सामाजिक और शिक्षाप्रद (moral) पुस्तकें देवनागरी में लिखी जायँ। (२) समस्त घरेलू पत्रव्यवहार नागरी में हो। (३) सम्पूर्ण कन्याशालाओं में सिन्धी, देवनागरी-लिपि में लिखाई-पढ़ाई जाय। (४) इतरप्रान्तीय बन्धु, जैसे कि गुजराती, पंजाबी दक्षिणी, संयुक्तप्रान्तीय और मारवाड़ी आदि, जो सिन्ध के निवासी बन चुके हैं, अनिवार्य रूप से सिन्धी को देवनागरी में पढ़ें। *

इन सब बातों की ओर ध्यान देकर ही आज सिन्ध ने अपने प्रांगण में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का आवाहन किया है। अतएव हम भारतीय हिन्दी के कर्मनिष्ठ अनन्य उपासकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं कि इस शुभ अवसर पर समस्त आपदाओं को झेलते हुए भी आप सिन्ध में पधारें और भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्र-भाषा हिन्दी को समुन्नत एवं पल्लवित बनाने के लिए मन्तव्य पथनिर्देश करें।

* सिन्धु समाज के अनेक विद्वानों से भेंट करने पर विदित हुआ कि उनमें का एक समुदाय, यह जानते हुए, कि मौजूदा सिन्धी लिपि सवा सौ वर्ष पूर्व उनके पूर्वजों के विरोध के बावजूद अंग्रेजी शासन द्वारा जबरन लादी गई थी, आज देवनागरी लिपि को अपनाने में, अपनी आर्थिक क्षति समझ रहा है। इस लेख से प्रेरणा लेकर उन्हें समझना चाहिए कि देवनागरी लिपि के अपनाने-मात्र से लेखकों-प्रकाशकों का साहित्य नष्ट न होकर सारे राष्ट्र में फैल जायगा। सिन्धी लिपि को त्यागने की जरूरत नहीं है। उसको कायम रखते हुए, सिन्धी-साहित्य को देवनागरी लिपि में सारे राष्ट्र में प्रसारित करना राष्ट्रीय-एकीकरण एवं भाषाई सेतुकरण के लिए नितांत आवश्यक है। उपर्युक्त लेख को आज से ४०-५० वर्ष पूर्व के परिवेश में देखा जाय।

—सम्पादक

सामीअ जा सलोक

अनुवादिका प्रा० कु० पुष्पा आसवाणी,

एम. ए., साहित्यरत्न

प्रकाशकीय

'भुवन वाणी ट्रस्ट' के विशाल भाषाई कार्यक्रम मे 'सिन्धी' का समावेश अब तक नही हुआ यह बात पाठको को खटक रही थी। किन्तु सिन्धी तथा देवनागरी लिपि और सिन्धी तथा हिन्दी भाषा दोनो पर समान अधिकार-प्राप्त विद्वान् का सहयोग अब तक सुलभ न होने के कारण, उत्कट इच्छा होने के बावजूद, 'वाणीसरोवर' मे इस आवश्यक स्तभ का शुभारभ न हो सका था।

हर्ष की बात है कि 'श्री चिनाई कॉलेज ऑफ कामर्स एण्ड एकॉनामिक्स', बबई की प्राध्यापिका सुश्री कुमारी पुष्पा टी आसवाणी ने इस कार्य-भार को अपने ऊपर लेकर ट्रस्ट के इस अभाव की पूर्ति कर दी। कु० आसवाणी हिन्दी तथा सोशिआलाजी की एम ए, साहित्य-रत्न, लगभग एक दशक से अध्यापन-कार्य मे ख्याति-प्राप्त और परम निष्णात है। यही नही, भारतीय दर्शन मे उनका उल्लेखनीय अनुराग है, और यही सुयोग है जिसके फलस्वरूप अपरिमित वेदान्त-साहित्य की सगर्भा सिन्धी भाषा के 'सामीअ जा सलोक' जैसे जनप्रिय काव्य-सग्रह के सानुवाद लिप्यन्तरण का पुण्योदय हो रहा है। इस अनुपम सिन्धी वेदान्त-रत्न का विशद परिचय अनुवादिका के वक्तव्य मे प्राप्त कीजिए।

सिन्धी भाषा की वर्णमाला मे, अन्य सभी भारतीय भाषाओ की अपेक्षा, अधिक वर्ण हैं। इसमे हिन्दी के सब अक्षरो के अलावा, अरबी की समग्र वर्णमाला तथा सिन्धी भाषा के निजी चार अक्षर-विशेष भी सन्निविष्ट हैं। इनका विवरण अन्यत्र 'सिन्धी-देवनागरी' टेबुल मे दिया

जा रहा है। लिपि के अतिरिक्त, एक ओर अरबी उच्चारणों की शैली का समावेश, तो दूसरी ओर हिन्दी प्राकृत, ब्रजभाषा, यहाँ तक कि अवधी तक के प्रयोग प्राचीन सिन्धी काव्य में प्रचुर मात्रा में मौजूद है। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि प्राचीन सिन्धी काव्य में ब्रजभाषा और अवधी के शब्दों का बाहुल्य है, जिनके देवनागरी लिपि में प्रस्तुत होने पर, सिन्धी-भाषी की अपेक्षा हिन्दी-भाषी उनको अधिक शुद्धता से पढ और समझ सकते हैं। यही बात गुरमुखी के प्राचीन काव्यों की भाषा के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

लगभग डेढ सौ वर्ष पूर्व सिन्धी भाषा को अरबी लिपि में लिखने की शुरूआत हुई। फलस्वरूप एक ओर तो अरबी के अनुकरण पर सिन्धी में भी मात्राओं, हलन्त और संयुक्ताक्षरों को चिह्नित न करने की पद्धति चल पडी, और दूसरी ओर सिन्ध-निवासी, तत्कालीन साहित्य के उद्गम-स्थान उत्तर भारत से दूर पड़ जाने के कारण, उपर्युक्त लिपि और भाषा की उथल-पुथल का सामना न कर सके और अवधी तथा ब्रजभाषा के शब्दों से धीरे-धीरे अपरिचित होने लगे। अरबी शब्दों का प्रयोग बढने लगा। फलत. प्राचीन सिन्धी साहित्य में, और घरों में परस्पर बोली जाने वाली सिन्धी भाषा में, आज भी यद्यपि उन अवधी और ब्रजभाषा के शब्दों की भरमार है, किन्तु उन शब्दों के मूल रूप अथवा शुद्ध रूप में विकृति आ गई है।

'श्रीलाल उडेरो (दरयासाहब)' नामक लोकप्रिय पुस्तक के गद्यांश और पद्यांश की भाषा में अन्तर है। शुद्ध उच्चारण में प्रस्तुत किये जाने पर वह पद्यांश सिन्धी-भाषी की अपेक्षा हिन्दी-भाषी के लिए आज अधिक बोधगम्य है।

अस्तु, इन जटिलताओं के कारण शुद्ध उच्चारण और समुचित भाव-व्यञ्जना की दृष्टि से 'सामीअ जा सलोक' का हिन्दी-अनुवाद तथा देवनागरी-लिप्यन्तरण सामान्य कार्य न था। कु आसवाणी जैसी व्युत्पन्न विदुषी के सहयोग के बल पर ही इस महान् कार्य को हाथ में लेने का हम साहस कर सके है। ट्रस्ट उनका अनुग्रहीत है।

नन्दकुमार अवस्थी
मुख्यन्यासी, सभापति भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ—३

सानुवाद लिप्यन्तरणकार का वक्तव्य

सिन्धी भाषा

सिन्ध प्रान्त मे बोली जानेवाली सिन्धी भाषा आधुनिक आर्य भाषाओ मे से एक है। यह व्राचड (विराचद) अपभ्रश से निकली है।§ इसके उल्लेखनीय कवि अब्दुलकरीम, शाह लतीफ, सचल और सामी आदि है। मूल सिन्धी भाषा की छ: उपभाषाएँ हैं सिरैकी, विचोली, लारी, थरी, लासी और कच्छी।

सिन्धी की अपनी लिपि लण्डा (लहन्दा) है। पर अरबी के एक सशोधित एव परिवर्द्धित रूप तथा गुरुमुखी लिपि का भी प्रयोग होता है। कहा जाता है कि गुरु अगदसिंह ने नागरी लिपि की सहायता से लण्डा को सुधारा और उसी का गुरुमुखी नाम रखा। सामीजी ने अपने श्लोक गुरुमुखी लिपि मे ही लिखे थे, जब कि शाह लतीफ, सचल आदि मुसलमान कवियो का साहित्य अरबी-सिन्धी लिपि मे मिलता है। परिस्थिति बदल गई है। सिन्धी-भाषी सारे देश मे फैले हुए है। सिन्धी भाषा अब सिन्ध-प्रदेश तक ही सीमित नही है। इस लिए देश मात्र की सम्पर्क-लिपि देवनागरी लिपि के माध्यम से सिन्धी-साहित्य और पठन-पाठन मे अभिरुचि तेजी मे बढ रही है।

सिन्धी साहित्य मे सामीजी का स्थान

शाह, सचल तथा सामी—सिन्धी साहित्य के अमूल्य रत्न माने जाते हैं। इन्हे सिन्धी साहित्य की त्रिमूर्ति तथा 'त्रिवेणी' कहा जाता है। सिन्धी-साहित्य-शिरोमणि शाह लतीफ अपनी रचनाओ मे लौकिकता से अलौकिकता की ओर प्रवृत्त दिखाई देते हैं। लोक-कथाओ को काव्य का रूप देकर, उन्होने न केवल लोगो का मन बहलाया है, बल्कि साथ ही साथ उन्हे आध्यात्मिक प्रेम की ओर उन्मुख किया है। सचल अद्वैतवादी थे। वे आत्मा तथा परमात्मा मे किसी प्रकार का अन्तर नही मानते थे, तभी तो उन्होने कहा है—

"अल्हा, अल्हा छो चवी,
पाणई अल्हा जाण।"

§ 'मानसरोवर' के जनवरी १९७० के अक के पृष्ठ १३ पर 'सिन्धी भाषा बनाम सिन्धी लिपि' शीर्षक लेख इस विषय मे पठनीय है। सम्पादक

अर्थात् मनुष्य तू 'अल्लाह ! अल्लाह !!' क्यो पुकार रहा है ? तू अपने आप को ही अल्हा (अल्लाह-परमात्मा) समझ। सचल जी जाति-पाँति के कट्टर विरोधी थे और वे नमाज़ तथा रोज़े के पाबन्द न थे। वे तो प्रियतम के प्रेम रूपी सरोवर मे सदैव डूबे रहते थे। शाह तथा सचल ने सिन्ध को कुर्आन शरीफ तथा मौलाना रूम की मस्नवी आदि मे परिचित कराया। सामीजी एक दार्शनिक तथा भक्त थे। उन्होंने वेदो, शास्त्रो तथा पुराणो के सार को सिन्धी भाषा मे लिखकर लोगो का मार्गदर्शन किया। इसके अतिरिक्त उनके श्लोको मे हमे गीता, भागवत, भक्त-गाथाओ, लोकदर्शन एव उपनिषदो का तत्व मिलता है। फलत हम कह सकते हैं कि शाह, सचल और सामी, सिन्धी साहित्य मे त्रिवेणी के समान हैं, जिनके काव्य की बदौलत इस्लाम, सूफी मत एव वेदान्त का सलिलामृत, तीन धाराओ मे सम्यक् प्रवाहित हो रहा है।

सामी का परिचय

सामीजी सिन्धी-साहित्य-गगन के सूर्य माने जाते है। उन्होंने अज्ञान तथा अविद्या के अन्धकार मे भटकती हुई सिन्धी जनता को अपने ज्ञान के प्रकाश से सत्य का मार्ग दिखाया, तथा वेदो के गूढ एव गहन रहस्यो को सरल सिन्धी भाषा मे प्रस्तुत किया। यही कारण है कि वे जनता के कवि माने जाते हैं।

सामीजी सिन्ध प्रान्त के शिकारपुर शहर के निवासी थे। उनका पूरा नाम चैनराइ बचूमल दातारामाणी लुण्ड था। उनका जन्म सवत् १७८७ (सन् १७४३) में तथा मृत्यु सवत् १९०७ (सन् १८५०) मे हुई। बचपन से ही सामीजी के हृदय मे परमात्मा के प्रति प्रेम तथा साधु-महात्माओ के प्रति अटूट श्रद्धा थी। सामीजी के पिता श्री बचूमल एक प्रतिष्ठित और धनी व्यापारी थे, फिर भी सामीजी सदैव सादा और सरल जीवन ही व्यतीत करते थे। कहा जाता है कि सामीजी कागज़ के छोटे-छोटे टुकडो पर अपने श्लोक लिखकर मिट्टी के एक घडे मे डाल दिया करते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके सुपुत्र श्री घनश्यामदासजी ने सर्वप्रथम कागज़ के उन टुकडो को घडे से निकाल, लाहौर के एक प्रेस मे छपाया। बाद मे वे ही श्लोक अरबी-सिन्धी लिपि मे प्रकाशित होकर 'सामी जा सलोक' के रूप मे प्रख्यात हुए।

श्री मेघराज, सामीजी के गुरु थे। वे बहावलपुर प्रदेश के अहमदपुर शहर के निवासी और एक पहुँचे हुए सत थे। उन्हे 'सामी', 'भगतराम', ब्राँभण (ब्राह्मण) आदि नामो से भी पुकारा जाता था। चैनराइ के हृदय मे अपने गुरु के प्रति अपार प्रेम एव श्रद्धा थी। अत अपने श्लोको के अन्त मे उन्होंने अपना नाम न लिखकर अपने गुरु 'सामी' का ही नाम लिखा है। 'सामी' उनका स्वत का उपनाम नही है।

सामीजी के दार्शनिक विचार

वेदान्त के अनुसार मनुष्य, ब्रह्म और ब्रह्माण्ड मे किसी भी प्रकार का भेद नही है। एक परम शक्ति से ही यह सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है; वही शक्ति ससार की प्रत्येक वस्तु मे व्याप्त है। उस शक्ति का न आदि है और न अन्त। सामीजी ने भी अपने श्लोको मे हमे बताया है कि परमात्मा निराकार है, उसका न आदि है, न अन्त। उस निराकार परमात्मा ने ही नाना प्रकार के रूप धारण कर लिये हैं, अत सामी जी को संसार की सभी वस्तुओ मे उस का ही रूप दिखाई देता है। उस रूप को देखकर वह अपनी सुध-बुध तक खो बैठते हैं।

सामीजी तथा कबीर के आत्मा और माया सबधी विचारो मे बहुत कुछ समानता दिखाई देती है। कबीरदासजी की तरह सामीजी भी मानते हैं कि परमात्मा का निवास मनुष्य के भीतर है पर माया के आवरण के कारण वह दिखाई नही देता। जब मनुष्य अपने पाँच विकारो को नष्ट कर अन्तर्मुख होगा तब ही उसे उस ज्योति का दर्शन होगा। माया अत्यन्त ही प्रबल है, वह मनुष्य को मृगतृष्णा की तरह व्याकुल करती है और परमात्मा को प्राप्त करने मे अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित करती रहती है। वह नाना रूप धारण कर मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करती रहती है, अत मनुष्य अपने सच्चे परमात्म-स्वरूप को भूलकर, उसके जाल मे फँसता और अपने अमूल्य मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर देता है।

सामीजी मानते है कि ससार स्वप्न की तरह है। जिस प्रकार स्वप्न मे जो कुछ दिखाई देता है वह सत्य नही है उसी प्रकार ससार की सभी वस्तुएँ झूठी है। सामीजी ने ससार को वृक्ष की छाया, मृगतृष्णा तथा अस्तित्वहीन सागर के समान माना है। आत्मा, परमात्मा, माया, अविद्या, ससार आदि विषयो के अतिरिक्त सामीजी ने मानव-शरीर, गुरु-महिमा, साधु-सगति, साधुओ के लक्षण, प्रेम, भक्ति, वैराग्य आदि विषयो पर भी अनेक श्लोक लिखे है।

काव्य

सरलता तथा स्वाभाविकता सामीजी के काव्य की विशेषताएँ हैं। वेदान्त के कठिन, गूढ एव गहन विषयो को जिस सरलता के साथ सामीजी समझा सके हैं वैसा शायद ही कोई दूसरा कवि कर पाता। आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि वाले कवि होने के कारण प्रो० मघाराम मल्काणीजी ने सामीजी को सिन्ध का "मिल्टन" कहा है। सिन्ध के सूफी परिवेश मे रहकर भी वेदान्त की ओर उन्मुख होना, सामीजी की विशेषता है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि सामीजी को प्रकृति मे ही वेदो के खजाने

खोलने की मानो कुंजी मिली थी, जिससे उन्होंने गहन तथा गंभीर विषयों को सरल व सुगम बनाकर लोगों के सामने रखा।

सामीजी ने अपने श्लोक सिंधी उपभाषा की शिकारपुरी बोली में लिखे। सामीजी संस्कृत के तो विद्वान् थे ही, पर साथ ही साथ उन्होंने अरबी और फारसी भाषा का भी गहन अध्ययन किया था। उनके श्लोकों में संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों के साथ-साथ अरबी, फारसी के शब्दों तथा मुहावरों का भी सफल प्रयोग दिखाई देता है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि 'सामी के श्लोक' भाव पक्ष तथा कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों से सिन्धी-साहित्य की अमूल्य निधि है। यद्यपि वे पहले दार्शनिक हैं, बाद में कवि, फिर भी उनके श्लोकों से हमें पता चलता है कि काव्य शास्त्र से भी वे पूर्ण परिचित थे। उनकी रचनाओं में उपमा तथा रूपक अलंकारों की भरमार है।

आशा है भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ द्वारा प्रकाशित, इन श्लोकों के हिन्दी अनुवाद सहित देवनागरी लिप्यन्तरण से न केवल सिन्धी-भाषी वरन् अखिल देश की जनता सिन्धु-प्रदेश के भाव-भाषामृत का रसास्वादन करेगी।

श्रीगणेशाय नम.

[ॐ]

सामीअ जा सलोक

(अथवा वेदान्त-सार)

माया

माया कया मर्कट, मोहे जीअ जहान जा ।
भवनि भौसागर मे, ग्रिचीअ पाए घ्राट ।
कटी सभ कल्पना, समुझी कहि सुभट ।
पाए खिम्याँ खट, सामी सुम्हयों सराइ मे ॥ १ ॥

माया ने ससार के जीवो को आकर्षित कर उन्हे बन्दर बना दिया है, अत: वे अपने गले मे प्रपच रूपी फाँसी लटका कर भवसागर मे भटकते रहते हैं। सामीजी कहते है कि किसी सुभट (ज्ञानी ही) ने इस धोखे को सोच समझ कर काट दिया है, अब वह (ससार-रूपी) सराय मे शाँति की शय्या बिछाकर सो गया है ॥ १ ॥

माया करे मकरु, मूर्ख मोहिया मोह साँ ।
पुठी ड्रेई पाण खे, भवनि भौसागरु ।
सामी तर्यो साध सगि, को दानाहु डुतरु ।
पूरणु परमेश्वरु, ड्रिठो जहि अख्युनिसाँ ॥ २ ॥

माया ने कपट कर, मोह से मूर्खो को अपनी ओर आकर्षित कर दिया है, जिससे वे अपने आप को भूलकर भवसागर मे भटक रहे है (गोते खा रहे है)। सामीजी कहते है कि कोई बुद्धिमान तथा ज्ञानवान् ही साधुओ के सग के सहारे पार हो गया है तथा पूर्ण परमात्मा को अपनी आँखो से देख पाया है ॥ २ ॥

माया करे मकरु, मोहे मारे सभ खे ।
रखे न रतीअ जेत्रो, ड्राइणि कहिजो डरु ।
को प्रेमी लघे पार पियो; भारी भौसागर ।
पूरणु परमेश्वरु, सामी ड्रिठो जहि साधसगि ॥ ३ ॥

माया कपट तथा मोह से सब को मार देती है (नष्ट कर देती है।) वह डाइन रत्तीमात्र भी किसी से नहीं डरती। सामीजी कहते हैं, जिस प्रेमी ने साधुओं के सत्संग से पूर्ण परमेश्वर को देखा है, वहीं इस भारी भवसागर से पार उतर पाया है ॥ ३ ॥

माया करे मकरु, मोहे मारे सभखे।
रखे न रतीअ जेत्रो, ड्राइणि कहिंजो ड्रु।
सामी बचियो को सूमों, सुजाग्रो सुभरु।
पूरणु परमेश्वरु, ड्रिठो जहिं आकास जॉं ॥ ४ ॥

माया धोखे से सब को आकर्षित कर मार देती है। यह डाइन रत्तीमात्र भी किसी से नहीं डरती। सामीजी कहते हैं कि कोई बहादुर, जागृत (ज्ञानी) और प्रेमी, जिसने पूर्ण परमात्मा को आकाश की तरह (निर्लिप्त होकर) देखा है, वही इस माया से बच सका है ॥ ४ ॥

माया करे मकरु, मोहे मारे सभखे।
विझी ग्रटुं ग्रिचीअ में, घुमाए घरु घरु।
इस्थति रहे आकास जॉं, को साधूजनु सुभरु।
पूरणु परमेश्वरु, सामी ड्रिठो जहिं सम थी ॥ ५ ॥

माया कपट से सब को आकर्षित कर मार देती है। वह (मनुष्य के) गले में प्रपञ्च रूपी फाँसी डालकर, उसे घर-घर घुमाती रहती है (अनेक जन्म भुगताती रहती है)। सामीजी कहते हैं कि किसी प्रेमी साधु जिसने सम होकर पूर्ण परमात्मा को देखा है, वही आकाश की भाँति स्थित रहता है ॥ ५ ॥

माया कया मोग्रा, सामी जीअ जहान जा।
हणनि वातु, वीचार रे, उठनि जॉं ओग्रा।
जनी ना जोग्रा, था तर्क चलाइनि तिनिते ॥ ६ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने संसार के जीवों को मंद (मूर्ख) बना दिया है। वे मूर्ख ऊँट की तरह (मूर्खों की भाँति) बिना सोच-विचार के मुँह चलाते रहते है (बकवास करते रहते हैं)। जो जानने योग्य नहीं उसपर ही वे तर्क करते रहते हैं ॥ ६ ॥

माया खसे मति, सामी विधी सभजी।
स्वप्न जे संसार खे, मूर्ख ज्राणनि सति।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, आशिकु थियो अपरन्ति।
जाग्री जुर्यो तिति, जिते तूँ मॉं नाहिं का ॥ ७ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने सब की बुद्धि छीन ली है, यही कारण है कि वे मूर्ख स्वप्न के समान (झूठे) ससार को सत्य समझ रहे है। पर कोटि मनुष्यो मे से किसी ही एक प्रेमी ने जागृत होकर, ससार से अलग (निर्लिप्त) होकर वहाँ निवास किया है जहाँ 'तू'-'मैं' की भावना नही है ॥ ७ ॥

माया करे गुलाम, सामी विधो सभखे।
को नेही व्युसि निकिरी, निरविकल्पु निष्कामु।
लधो जहिं गुरु ज्ञात साँ, अन्भय आदी धामु।
जहिं मे रम्ता रामु, सूर्य जाँ साक्षी रहे ॥ ८ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने सब को गुलाम बना दिया है। कोई निर्विकल्प, निष्काम प्रेमी ही उससे बच पाया है, जिसने गुरु के ज्ञान (उपदेश) से अन्भय आदि-धाम ढूँढ निकाला है, जिस (धाम) मे राम सूर्य के समान प्रत्यक्ष तथा व्याप्त है।

[विशेष सामीजी ने ब्रह्म का निरूपण राम के नाम से किया है। इनका राम कबीर की भाँति दशरथ-पुत्र राम से भिन्न है। वह निराकार सर्वव्यापक तथा अविनाशी है।] ॥ ८ ॥

माया खसे मति, मोझो कयो माणु हुनि खे।
जन्मु पाए जग मे, भवनि नाना भाँति।
समुझी थियो सामी चए, को आशिकु उपरन्ति।
जहिखे साध सगति, लख्य लखाई अन्भई ॥ ९ ॥

माया ने मनुष्यो की बुद्धि छीनकर उन्हे मद बना दिया है, अत वे ससार मे जन्म लेकर अनेक प्रकार से भटक रहे हैं (दु ख भोग रहे हैं)। सामीजी कहते है कि कोई विरला प्रेमी जिसे साधुओ के सग ने अन्तर्बोध द्वारा लक्ष्य दिखा दिया है, वही इस माया को समझकर इससे अलग रह सका है ॥ ९ ॥

माया खसे मति, मोझो कयो माणुहुनि खे।
भोग्रिनि भोग्र भर्म जा, सामी ज्ञाणी सति।
को सुजाग्रो सूर्मो, उल्टी थियो उपरन्ति।
तक्यो कयाऊँ तिति, जिते आहि न नाहिका ॥ १० ॥

सामीजी कहते है कि माया ने मनुष्यो की बुद्धि छीनकर, उन्हे मन्द कर दिया है, अत वे झूठे भोगो को सत्य मानकर भोग रहे हैं। पर कोई

विरला जागृत वीर ही इस माया से मुख मोडकर, निश्चिन्त हो वहाँ जा बसा है जहाँ 'है' और 'नही है' की भावना नही है ॥ १० ॥

माया खसे मति, सभजी वर्ती वेसाह साँ ।
स्वप्न जे ससार खे, सामी ज्ञाणनि सति ।
पाण पछाणनि कीनकी, अन्धा थी उपरन्ति ।
विया विञाए पति, अमोलकु अकुलरे ॥ ११ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने विश्वास से सब की बुद्धि छीन ली है (हटा ली है), अत. वे स्वप्नवत् ससार को सत्य मान बैठे है । ये अन्धे (अज्ञानी) ससार से अलग होकर भी अपने स्वरूप को नही पहचानते । अमूल्य बुद्धि के होते हुए भी ये (अज्ञानी) अपनी मर्यादा खो बैठे है ॥ ११ ॥

माया जगतु ठगो, सामी सारो वसि कयो ।
जिनिखे सायो सन्त जो, तिनिखे कीन लगो ।
लघे वर श्राप खो, पहुता यार अगो ।
जिते ज्योति जगो, अठई पहर अन्भई ॥ १२ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने ससार को ठग कर अपने वश मे कर लिया है, पर जिनपर सतो की कृपा है उनपर इस (माया) का प्रभाव नही पडता । वे प्रेमी वरदान तथा श्राप से ऊपर उठकर वहाँ जा पहुँचे हैं जहाँ आठो पहर आत्मप्रकाश की ज्योति जल रही है ॥ १२ ॥

माया करे वल छल, मोहिया जीअ जहान जा ।
वहिया वञनि वह मे, कहिखे पवे न कल ।
सोटो हँयुसि सम जो, कहि साधु जन सबल ।
जहिखे प्रेम पहल, सामी पीआरी सतिगुरुअ ॥ १३ ॥

माया ने छल-बल से ससार के लोगो को अपनी ओर आकर्षित कर दिया है, अत वे अनजान बनकर उसके प्रवाह मे बह रहे है । सामीजी कहते है, पर किसी बलवान साधु ने, जिसे सतगुरु ने प्रेम की घुट्टी पिलाई है, (उसने ही) समता रूपी डडे से उस (माया) पर प्रहार किया है ॥१३॥

माया मति मलीनु, मोहे कयो माणुहुनि खे ।
रहनि खाव ख्याल मे, अठई पहर अधीनु ।
जाणी जुर्यो स्वरूप साँ, को प्रेमी प्रवीनु ।
जहिखे पाकु यकीनु, सामी द्विनो सतिगुरुअ ॥ १४ ॥

माया ने मनुष्यो को मोहित कर उनकी बुद्धि मलीन कर दी है, अत. वे आठो पहर झूठे स्वप्नो तथा विचारो के अधीन होकर रहते है। पर सामीजी कहते है कि कोई विरला प्रवीण प्रेमी, जिसे सतगुरु ने पवित्र विश्वास दिया है, वह ही जागृत होकर अपने स्वरूप (परमात्मा) से जा मिला है ॥ १४ ॥

माया भुलाया, भवनि जीअ भर्म मे।
मने वेठो पाण खे, कल्पत जी काया।
उल्टी पंहिजे घर मे, के आशिक जन आया।
जेके जग़ाया, सामी पूरे सतिगुरुअ ॥ १५ ॥

माया मे (अपने स्वरूप को) भूलकर जीव, भ्रमो मे भटक रहा है, अत वह स्वय को 'नाशवान शरीर' ही मान बैठा है। पर सामीजी कहते है कि कुछ प्रेमी, जिन्हे पूर्ण सद्गुरु ने जागृत किया, वे ससार से मुख मोडकर अपने घर (हृदय) मे स्थित हो बैठे है ॥ १५ ॥

माया भुलाए, विधा जीअ भर्म मे।
सामी ड्रिसे कोनको, मूहु मढीअ पाए।
जंहिखे अविद्या निन्ड्रमो सतिगुरु जाग़ाए।
सो वेही वज़ाए, नगारो निरबाण जो ॥ १६ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने जीव को भ्रमो मे भुला दिया है, अत वह अपने भीतर झाँककर नही देखता, पर जिसे सद्गुरु ने अविद्या रूपी नीद से जगा दिया है, वह बैठकर निर्वाण रूपी नगारा बजाता है (अर्थात् ब्रह्मानन्द मे मस्त रहता है) ॥ १६ ॥

माया भुलाए, विधो जीउ भर्म मे।
पाण पंहिजो पाण मो, वेठो विञाए।
अण हूदे दर्याह मे, गोता नितु खाए।
महुं मढ़ीअ पाए, सामी ड्रिसे कोनकी ॥ १७ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने जीव को भ्रमो मे भुला (उलझा) दिया है अत वह अपने आप को खो बैठा है। वह (जीव) (माया के) अस्तित्व-हीन समुद्र मे सदैव गोता खाता रहता है, पर अपने भीतर झाँककर नही देखता ॥ १७ ॥

माया भुलाए, विधा जीअ भर्म मे।
अन्धो द्रिसे कीनकी, मूहु मढीअ पाए।
सामी अविद्या निन्ड्र मो, सतिगुरु जाग्राए।
त सुखी थी खाए, अन्भय फल आकास जॉ ॥ १८ ॥

माया ने जीव को भ्रम मे उलझा दिया है, अत वह अन्धा (अज्ञानी) अपने भीतर झाँककर नही देखता है। पर सामीजी कहते है, जिसे सद्‌गुरु ने अविद्या की नीद से जगाया है वह आकाश की तरह सुखी हो अन्तर्ज्ञान-रूपी फल खाता है ॥ १८ ॥

माया भुलाए, विधो जीउ भर्म मे।
अणहून्दे दर्याह मे, गोता नितु खाए।
सामी द्रिसे कीन की, मूहु मढीअ पाए।
सतिगुरु जाग्राए, त जाग्री जुरे पाण सॉ ॥ १९ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने जीव को भ्रमो मे उलझा दिया है, अत वह (माया के) अस्तित्वहीन समुद्र मे नित्य गोते खा रहा है, वह अपने भीतर झाँककर नही देखता है, पर यदि उसे सद्‌गुरु जागृत कर देता है तो वह अपने (परमात्मा) से जा मिलता है ॥ १९ ॥

माया भुलाए, जीअ कया वसि पंहिजे।
कहिखे छद्दे कीनकी, सभ खे नचाए।
सामी वचियो को सूर्मो, साधुअ जे साये।
वेठो लिव लाए, चेतन चिदाकास मे ॥ २० ॥

माया ने जीव को भुला कर अपने वश मे कर दिया है, वह किसी को भी नही छोडती, सबको नचाती रहती है। पर सामीजी कहते है कि कोई शूरवीर (ज्ञानी), साधु की कृपा से इस माया से वचता है और चेतन चिदाकाश (परमात्मा) मे मस्त होकर वैठता है ॥ २० ॥

माया भुलाए, विधा जीअ जहान जा।
नाना रूप रचे करे, वेठा ठठु ठाहे।
पंहिजे पंहिजे मति खे, सभुको वद्राए।
मूहु मढीअ पाए, सामी द्रिसे कीन की ॥ २१ ॥

माया ने ससार के जीवो को भुला रखा है (अपने स्वरूप से भुला दिया है), अत वे अनेक प्रकार के रूप धारण कर आडम्बर सहित वैठे

है। सामीजी कहते है कि प्रत्येक (जीव) अपने-अपने मत (पथ, विचार) की प्रशसा कर रहा है पर कोई भी अपने भीतर झाँककर नही देखता है ॥ २१ ॥

माया बुरी बलाइ, कहिंखे छद्रे कीन की।
सामी लुटे सभखें, देई हिसु-हवाइ।
तहिंजो लेखो नाहि को, जहिंखे सचुसहाइ।
सूर्त सभही जाइ, द्रिसे कुलु आलम मे ॥ २२ ॥

सामीजी कहते है कि माया दुष्ट बला (नागिन) सदृश है, वह किसी को भी नही छोडती, वह लोभ-लालच आदि देकर सब को लूट लेती है। जिसे सत्य का सहारा है उसका वर्णन अकथनीय है, क्योकि वह पूरे ससार मे, प्रत्येक जगह उसी सूरत (परमात्मा) को देखता है ॥ २२ ॥

माया करे मकरु, मोहे मारे सभखे।
रहे अलेपु आकास जाँ, को निरासो निड्रु।
पर्चो लधो जंहि पहिंजो, अन्भय आदी घरु।
सामी जर अजरु, माणे मौज मुक्ति जी ॥ २३ ॥

माया ने धोखे से सब को आकर्षित कर मार (नष्ट कर) दिया है। सामीजी कहते है कि कोई निराश एव निडर (व्यक्ति) ही आकाश के समान निर्लिप्त रहता है (माया का उस पर कुछ प्रभाव नही पडता)। उसने राज़ी होकर अपना अन्तर्मुख आदि-घर (वह घर जहाँ ज्ञान का प्रकाश रहता है) ढूंढ लिया है, अत वह विनाश और अविनाश मे भी मुक्ति का आनद लूटता रहता है ॥ २३ ॥

माया करे मजूरु, छद्रिया जीअ जहान जा।
वञनि मति मर्म रे, विषयनि काणि वहलूरु।
रहे पहिंजे हाल मे, को महबती मामूरु।
जहिंखे निर्मल नूरु, सामी द्रिनो सतिगुरूअ ॥ २४ ॥

माया ने संसार के जीवो को विवश बना दिया है, अत वे बुद्धि-हीन एवं निर्लज्ज हो विषयो (के प्रवाह) मे बहते रहते हैं। सामीजी कहते है, परन्तु जिस पूर्णप्रेमी को सद्गुरु ने निर्मल प्रकाश (ज्ञान) दिया है वह अपनी हालत पर ही मस्त रहता है ॥ २४ ॥

माया जीअ मोहिया, लाडे लाए पहिंजे ।
विझी ज्ञारु भर्म जो, सभजा खम्भ खोहिया ।
के पक्षी व्यसि निकिरी, उज्यलु अछोहिया ।
बेहद जा ग्रोहिया, द्रीआ द्रिठा जहि द्रील मे ॥ २५ ॥

माया ने जीवो को अपने पीछे पागल (मस्त) वना दिया है । उसने भ्रम रूपी जाल फैलाकर सव के मार्ग अवरुद्ध (वन्द) कर दिये हैं । पर कुछ अनत को ढूंढनेवाले, शुद्ध विचारोवाले, अछूते (माया से अप्रभावित) उस जाल से निकल गये और उन्होने अपने शरीर मे ही (ज्ञान के) दीपक देखे ॥ २५ ॥

माया भुलायो, सामी जीउ स्वरूपखों ।
देही मने पाणखे, सन्से मँझि आयो ।
जीए नारीअ निन्ड्र मे, ब्रालकु विञायो ।
जाग्रये जाग्रयो, तद्री कणो कल्पत न रही ॥ २६ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने जीव को स्व-रूप से भुला दिया है, अत वह भ्रम मे पडकर अपने को शरीर ही मान रहा है । जिस प्रकार नारी नीद मे वालक गवाँकर वेचैन हो जाती है (पर जागृत होने पर ही उसकी बेचैनी नष्ट होती है) उसी प्रकार ज्ञान के उदय होने पर ही भ्रम का पूरा निवारण होता है ॥ २६ ॥

माया भुलाए, विधो जीउ भर्म मे ।
पाण पहिंजो पाण मो, वेठो विञाए ।
स्वप्न मे सामी चए, कोट जन्म पाए ।
अविद्या पटु लाहे, सामी द्रिसे कीनको ॥ २७ ॥

माया ने जीव को भ्रम मे डालकर भुला दिया है अत. वह अपने अह मे अपने को खो वैठा है । सामीजी कहते है कि इस (माया रूपी) स्वप्न मे वह कोटि-कोटि जन्म प्राप्त करता है किन्तु अज्ञान रूपी आवरण को हटाकर नही देखता ॥ २७ ॥

माया भुलायो, सामी जोड़े जीअ खे ।
नागु द्रिसी नोडीअ मे, डूरो ड्रहकायो ।
ग्रणितीअ लेखे दुखे जे, सन्से मझि आयो ।
सतिगुर समुझायो, तद्री समुझे सोझिरो पाण मे ॥ २८ ॥

माया ने जीव को अपने से जोडकर उसे भुला दिया है, अत दूर से

ही रस्सी को सर्प समझकर वह भयभीत होता रहता है, दुख की चिन्ता के कारण वह भ्रमित हो गया है। पर जब उसे सद्गुरु ने ज्ञान दिया तब उसे अपने आप मे प्रकाश दिखाई दिया ॥ २८ ॥

माया मकरु करे, मोहे मारे सभखे ।
सामी रहे को सूर्मो, पापिणि खों परे ।
पीतो जहि प्रतीति सॉ, प्यालो पाकु भरे ।
सभ मे द्रिसी ठरे, पहिजे अख्ये पाण खे ॥ २९ ॥

माया कपट से सब को मोहकर मार देती है। सामीजी कहते है कि कोई शूरवीर ही इस पापिन से अपने को दूर रख सका है। जिसने विश्वासपूर्वक (ज्ञान का) पवित्र प्याला भर कर पिया है वह अपनी आँखो से सब में अपने ही स्वरूप को देखकर शीतल होता है ॥ २९ ॥

माया मचाई, कूडी रादि कल्पत जी ।
सची ज्ञाणी सभुको, छाणे नितु छाई ।
व्रिले कहि गुर्मुख खे, अन्भय मे आई ।
सामी सदाई, इस्थिति रहे आकास जॉ ॥ ३० ॥

माया ने प्रपच का झूठा खेल खेला है, जिसे सब सत्य मान कर अपने मुँह मे धूल डाल रहे है। सामीजी कहते है किसी विरले गुरुमुख को ही यह (माया का रूप) समझ मे आया है। अब वह सदैव आकाश की भाँति (सर्वत्र-व्याप्त, सर्वमय) स्थित रहता है ॥ ३० ॥

माया मचाई, कूडी रादि कल्पत जी ।
तहिं में मोहे खलिक सभ, फाहीअ फासाई ।
व्रिले कहि गुर्मुख खे, समुझ मे आई ।
सामी सदाई, मुखि रखी मौजॉ करे ॥ ३१ ॥

माया ने प्रपच का झूठा खेल रच कर, उसमे सभी लोगो को आकर्षित कर, फन्दे मे फँसा दिया है। सामी जी कहते है, किसी विरले गुरुमुख को ही वह (माया) समझ मे आई है, अत वही सदैव अन्तर्मुख हो आनन्द मनाता रहता है ॥ ३१ ॥

माया मचायो, कूडो खेलु कल्पत जो ।
तहिंमे कनि तद्रूपु थी, मूर्ख मनु भायो ।
व्रिले कहि गुर्मुख खे, अन्भय मे आयो ।
सामी समायो, जल पपोटो जल मे ॥ ३२ ॥

माया ने प्रपंच का झूठा खेल रचा है जिसमे मूर्ख (जीव) तद्रूप होकर मनचाहा (कार्य) कर रहे है। सामीजी कहते है कि किसी विरले गुरुमुख को ही (माया का रूप) समझ मे आया है, तब वह जल के बुदबुदे की तरह जल मे ही समा गया। (अर्थात् जिस प्रकार पानी का बुदबुदा पानी से मिलकर अपना अस्तित्व नष्ट कर देता है, उसी प्रकार गुरुमुख की आत्मा परमात्मा मे लीन हो अपना अस्तित्व खो देती है ॥३२॥

माया मचायो, भारी भेषु भर्म जो।
तंहि मे मोहे सभखे, ड्रह द्रिस दौरायो।
व्रिले कंहि गुर्मुख खे, अन्भय मे आयो।
पंहिजो परायो, ख्यालु छड्डे खामोशु थियो ॥ ३३ ॥

माया भ्रम का अत्यन्त मोहक भेष धारण कर उसमे सब (जीवो) को आकर्षित कर उन्हे दसो दिशाओ मे दौडाती है। पर किसी विरले गुरुमुख को वह (माया का रूप) समझ मे आ जाता है, अत वह अपने-पराये की भावना छोडकर शान्त हो जाता है ॥ ३३ ॥

माया मति खसे, वर्ती माणुहुनि जी मोह सॉ।
गुझी ग्राल्हि अन्दर जी, कंहिखे कीन ड्रसे।
सामी हँयुसि कंहि सूर्में, बेहद ब्राणु कसे।
हर्दमि द्रिसी हँसे, पाणु वराए पाण सॉ ॥ ३४ ॥

माया ने मोह से मनुष्यो की बुद्धि छीन ली है। वह भीतर के गूढ रहस्य को (परमात्मन्स्वरूप का दर्शन) किसी को नही होने देती। सामीजी कहते है, पर जिस शूरवीर (गुरु) ने अनहद रूपी तीर कसकर मारा वह अह खोकर हर जगह अपने स्वरूप को लख कर प्रसन्न हो रहा है ॥ ३४ ॥

माया मति खसे, सभजी विधी वल सॉ।
सामी अन्भय आत्मा, ड्रेहो डूरि ड्रसे।
हँयुसि ग्रटु ग्रिचीअ मे, कंहि दर्दवन्द दसे।
हर्दमि द्रिसी हँसे, पाणु वराए पाण खे ॥ ३५ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने छल से सब की बुद्धि छीन ली है, अत वह (माया) भीतर (हृदय मे) स्थित आत्मा को दूर देशो मे भरमाती है। जिसके गले से, किसी प्रेम से पीडित (गुरु) ने, (अपने) बल से (माया की) फाँसी उतार दी है, वह अपने अह को खोकर सदैव अपने स्वरूप को देखकर आनन्दमग्न रहता है ॥ ३५ ॥

माया मति हरे, मोंञो कयो माणुहुनि खे।
भवनि भौसागर मे, नाना रूप धरे।
को आशिकु चढ़ियो अछते, सर्व त्यागु करे।
सामी द्रिसी ठरे, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ ३६ ॥

माया ने मनुष्यो की बुद्धि हर कर उन्हे मन्द बना दिया है, अत वे नाना प्रकार के रूप धारण कर भवसागर मे भटक रहे है। सामी जी कहते हैं, पर कोई प्रेमी ही सर्वस्व त्याग कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है। वह बाहर-भीतर आत्मा को देख कर शीतल हो रहा है ॥३६॥

माया मति मोंञी, मोहे कई मूढनि जी।
भुली भौसागर मे, भवनि था भोञी।
सामी मिल्यो स्वरूप सॉ, को जाञयो जोञी।
अन्भय अरोञी, धिरी लधो जहिं घर मों ॥ ३७ ॥

माया ने मूर्खो को मोह कर उनकी बुद्धि मन्द कर दी है, अत. वे भोगी बन, भवसागर मे भूल कर भटक रहे है। सामी जी कहते है कि कोई अरोगी (माया के रोग से मुक्त), अन्तर्ज्ञानी एव जागृत योगी ही (हृदय रूपी) घर मे प्रवेश कर अपने स्वरूप को ढूंढ उससे जा मिला है ॥ ३७ ॥

माया मवाली, कया जीअ जहान जा।
छद्रे समता सुख खे, थिया सामी सोआली।
लधी खाणि खुशीअ जी, कहिं नेहीअ निराली।
खावन्द रे खाली, कन्रो द्रिसेकीन की ॥ ३८ ॥

सामी जी कहते है कि माया ने ससार के जीवो को पागल बना दिया है, अत वे समता रूपी सुख को छोड, भिखारी बने हुए है। किसी-किसी प्रेमी ने ही अनोखे आनन्द की खान ढूंढ निकाली है। अत वे एक कण को भी परमात्मा-रहित नही देखते (कण-कण मे परमात्मा को व्याप्त देखते है ॥ ३८ ॥

माया मवासी, कया जीअ जहान जा।
पाए भवनि पाणही, फुर्ने जी फासी।
व्रिले को गुर्मुख बचियो, उतमु अभ्यासी।
अलखु अबिनासी, सामी द्रिठो जहि समथी ॥ ३९ ॥

माया ने ससार के जीवो को अहकारी बना दिया है, अत वे खुद

ही प्रपच की फांसी लटकाकर भटक रहे है। सामी जी कहते है कि कोई विरल-श्रेष्ठ अभ्यासी गुरुमुख, जिसने सम-भाव हो कर अलख अविनाशी का दर्शन किया है, वही इस (माया के बन्धन) से बच सका है ॥ ३९ ॥

माया मवासी, कया जीअ जहान जा।
भुली भवनि पाणही, चित मे चौरासी।
सामी कटी कहि सूर्मे, फुर्ने जी फासी।
अलखु अविनासी, जाग्री द्विठो जहि जोति मे ॥ ४० ॥

माया ने ससार के जीवो को अहम्-भाव-युक्त, बना दिया है, इसलिए उनका चित अपने (स्वरूप) को भूल कर चौरासी (चौरासी लाख योनियो) मे भटक रहा है। सामीजी कहते है कि कोई शूरवीर, जिसने जागृत हो अलख अविनाशी ज्योति का साक्षात्कार किया है, उसने ही प्रपच की फाँसी काटी है ॥ ४० ॥

माया मवासी, मोहे कयो मूढ़नि खे।
भुली भवन पाणही, चित मे चौरासी।
सामी बचियो को साध सगि, व्रिले वेसासी।
अलखु अविनासी, जाग्री द्विठो जहि जोति मे ॥ ४१ ॥

माया ने मूर्खों को मोहकर उन्हे अहंकारी (अह-सत्ताधारी) बना दिया है, इसलिए उनका चित्त अपने (वास्तविक आत्म-) रूप को भूल कर चौरासी (लाख योनियो) मे भटक रहा है। सामीजी कहते है कि कोई विरल-विश्वासी ही साधुओ के सत्सग से इस (माया के जाल) से बच सका है, और जागृत होकर अलख अविनाशी प्रकाश को देख सका है ॥ ४१ ॥

माया महा प्रब्लु, जीती वञे न जीअ खो।
विधो जहि जहान मे, अण हूँदो खौफु-खललु।
उथन्दे वेहन्दे निड्रमे, सामी छद्रे न छलु।
को गुर्मुख रहे अचलु, जहि जाग्री द्विठो पाणखे ॥ ४२ ॥

माया महा प्रबल है जिसने विश्व को अस्तित्वहीन बुराई तथा भयानक (मायाजाल) मे डाल दिया है, अत वह (माया) जीव द्वारा जीती नही जाती (जीव उस पर विजय प्राप्त नही कर पाता।) वह (माया) उठते-बैठते तथा नीद मे भी कपट से बाज नही आती। पर

सामी जी कहते हैं कि कोई गुरुमुख जिसने जागृत हो अपने (स्वरूप) को पहचान लिया है, वह अचल रहता है ॥ ४२ ॥

माया मुझाए, मोशो कयो मूढनि खे ।
पाणु पहिंजो पाण मे, वेठा विञाए ।
सामी लधो काहि सूर्मे, साधूअ जे साए ।
अन्दर उज्लाए, मोण सुख स्वरूप जो ॥ ४३ ॥

माया ने मूर्खों को आकर्षित कर उन्हे विमूढ बना दिया है, अत. वे अपने अह मे अपने (आत्म-स्वरूप) को भूल बैठे है। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर ही, साधुओ की कृपा से अपना अतस (हृदय को) उज्जवल कर, अपने स्वरूप का सुख भोग रहा है ॥ ४३ ॥

माया मुझाए, विधा जीअ वहण मे ।
सामी सभ खे गैब जा, गोता खाराए ।
को प्रेमी लंघे पारि पियो, मन खे मनाए ।
ड्रीओ जग्राए, ड्रिठो जहिं अन्भई ॥ ४४ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने जीवो को-उलझाकर (प्रपच रूपी) प्रवाह मे डाल दिया है, वह सब को गोते खिला रही है (भटका रही है)। कोई प्रेमी जिसने मन को वश मे कर, ज्ञान का दीपक जलाकर, परमात्मा को देख लिया है, वही इस (प्रवाह) से पार हो सका है ॥ ४४ ॥

माया मोह मई, कहिखे छद्दे कीनकी ।
विझी ज्ञारु भर्म जो, सभ विश्व वसि कई ।
सामी बचियो को सूर्मो, साधूअ सरणि पई ।
लोकु परलोकु ब्रई, लघे चढियो लख्यते ॥ ४५ ॥

मोहमयी माया किसी को भी नही छोडती। वह भ्रम का जाल बिछाकर सारे विश्व को अपने वश मे करती है। सामीजी कहते है कि कोई शूरवीर ही साधुओ का आश्रय पा कर इससे बच सका है, तथा लोक-परलोक दोनो (की लालसा) को छोड अपने लक्ष्य (आत्मपद-प्राप्ति) की ओर अग्रसर हुआ है ॥ ४५ ॥

माया मूहु कारो, मोहे कयो माणुहुनि जो ।
ज्ञाणनि मति भर्म रे, मूर्ख मोचारो ।
सामी रहे को सूर्मो, नभ ज्यॉ न्यारो ।
जाग्री जगु सारो, लै ड्रिठो जहिं लख्य मे ॥ ४६ ॥

माया ने मनुष्यों को मोह कर उनका मुँह काला कर (उन्हे कलकित कर) दिया है। अत वे निर्लज्ज तथा बुद्धिहीन मूर्ख उस (माया) को अच्छा ही समझ रहे है। सामीजी कहते हैं, कोई शूरवीर जिसने जागृत होकर सारे ससार को परमात्मा मे लीन (समाया हुआ) देखा है, वही नभ के समान न्यारा (निर्लिप्त) रहता है ॥ ४६ ॥

माया मूहु कारो, केरे मोहियो माणुहुनि खे ।
पाए भवनि था पाणही, ग्रिचीअ मे ग्रारो ।
सामी रहे को सूर्मो, नभ ज्यॉं न्यारो ।
जाग्री जग्रु सारो, लै द्रिठो जहिं लख्य मे ॥ ४७ ॥

माया ने लोगो को मुग्ध कर उनका मुँह काला कर दिया है। अतः वे स्वय ही गले मे (प्रपच रूपी) फाँसी डालकर भटक रहे है। सामी-जी कहते है कोई वहादुर जिसने जागृत होकर सारे विश्व को परमात्मा मे लीन देखा है, वही आकाश की भाँति न्यारा (निर्लिप्त) रहता है ॥४७॥

माया मूहु कारी, कहिसा नेवहु कीनकी ।
सभखे मारे मोचिरा, द्रेई द्रेखारी ।
सामी वचियो वलाखो, को भाग्यवानु भारी ।
जहिखे पीआरी, सतिगुरु सुर्की सचजी ॥ ४८ ॥

सामीजी कहते है कि इस काले मुँह वाली माया के साथ किसी का भी निर्वाह नही। यह अपने नानाप्रकार के झूठे रूपो को दिखा कर सब को जूतो से पीटती है। कोई महा भाग्यशाली ही, जिसे सद्गुरु ने सत्य-रूपी मदिरा पिलाई है, वही इस वला (की नागिन) से वच पाया है ॥४८॥

माया मूहु कारी, मोहे मारे सभखे ।
कहिखे छड्डे कीनकी, द्रेई द्रेखारी ।
रहे अलेपु आकास जॉं, को भाग्यवानु भारी ।
जहिखे सुधि सारी, सामी पेई साध-सगि ॥ ४९ ।

सामी जी कहते है कि इस काले मुँह वाली माया ने सव को आकर्षित कर मार दिया है। वह अपनी शक्ति से किसी को भी नही छोडती। परन्तु कोई महा भाग्यशाली जिसने साधुओ के सग से पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है वही आकाश के समान (इस माया से) निर्लेप रहता है ॥ ४९ ॥

माया मूहु कारी, मोहे मारे सभखे।
कहिखे छद्रे कीनकी, देही जनि धारी।
रहे अलेपु आकास जाँ, को विरले वीचारी।
सामी संभारी, जहिं आदि अन्भय पहिंजो ॥ ५० ॥

काले मुख वाली माया सब को आकर्षित कर मार देती है। वह किसी भी देहधारी को नही छोडती। सामीजी कहते है कोई विरल-विचारवान (व्यक्ति) ही, जिसने अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया है, वही आकाश की तरह (इस माया से) निर्लिप्त रहता है ॥ ५० ॥

माया मोहे गुलाम, कया जीअ जहान जा।
पुठी डेई पाण खे, दरि दरि भरिन सलाम।
मस्तु रहनि महिराण मे, के नेही निष्काम।
जिनि खे रम्ता राम, डिनी समुझ सामी चए ॥ ५१ ॥

माया ने ससार के जीवों को आकर्षित कर उन्हे गुलाम बना दिया है, अतः वे अपने आप को भूल कर, द्वार-द्वार सलामी बजाते रहते है। सामीजी कहते है कि कुछ निष्काम प्रेमी जिन्हे रमता राम (सर्वव्यापी ब्रह्म) ने ज्ञान दिया है, वे (ही प्रेम रूपी) सागर मे मस्त रहते है ॥ ५१ ॥

माया मोहे छलु, करे कुल जहान खे।
सामी बचे को सूमों, साधूअ संगि सबलु।
डिठो जंहि आकास जाँ, आत्म पद अचलु।
मेटे सभु खललु, वर्ते वेद वीचार साँ ॥ ५२ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने सारे विश्व को छल से (अपनी ओर) आकर्षित कर रखा है, कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही बलवान साधु के सग से इस (माया) से बच पाता है और वह अचल आत्मपद को आकाश की भाँति (सर्वत्र व्याप्त) देखता है तथा सब प्रकार के भेद-भाव को मिटाकर वेदो के अनुसार आचरण करता है ॥ ५२ ॥

माया मोहे जग्गु, विधो सभु वहण मे।
कोर्युनि मो को हिकिडो, बचियो पुरुष अलग्गु।
जंहि उलटी पद अवाच जो, लिव सा लधो दग्गु।
सामी थियो सर्वगयु, चाह मिटाए चित जी ॥ ५३ ॥

माया ने ससार को मोहित कर उसे (भ्रम-रूपी) प्रवाह मे डाल

दिया है। करोडो मनुष्यो मे से कोई एक ही पुरुष इस (माया) से अलग रह पाया है। सामीजी कहते हैं कि जो वैराग्य वृत्ति को धारण करता, तथा चित्त से 'चाह' को मिटाकर आत्मपद की राह को प्रेम से ढूंढ लेता है वही सर्वज्ञ (पूर्ण) बनता है ॥ ५३ ॥

माया मोहे मनु, मोॾो कयो मूढ़नि जो।
भवनि भौसागर मे, ज्ञाणी सति स्वपनु।
सामी माणे सेज सुखु, को जाॻयो साधूजनु।
परमेश्वरु पूरनु, ॾिठो जहिं आकास जाँ ॥ ५४ ॥

माया ने मूर्खों के मन को मोह कर उन्हे मद बना दिया है, अत. वे स्वप्न को सत्य मान कर, ससार-रूपी सागर मे भटकते रहते है। सामीजी कहते हैं कि कोई जागृत साधु जिसने पूर्ण परमेश्वर को आकाश की भाँति (सर्वव्यापक-रूप मे) देखा है वास्तव मे वही आत्म-सुख भोग रहा है ॥५४॥

माया मोहे मनु, मोॾो कयो मूढनि जो।
भवनि भौसागर मे, धारे नाना तनु।
ॿिले कहिं गुर्मुख लधो, उल्टी आत्म धनु।
सदाईं प्रसनु, सामी रहे स्वभाव मे ॥ ५५ ॥

माया ने मूर्खों के मन को मोह कर उन्हे मूढ बना दिया है, अत. वे नाना प्रकार के शरीर (जन्म) धारण कर भवसागर मे भटकते रहते हैं। सामीजी कहते है कि किसी विरले-गुरुभक्त ने ही (ससार से) विमुख हो कर (वैराग्य धारण कर) आत्मा-रूपी धन ढूंढ लिया है, अत. वह सदैव अपने ही भावो मे प्रसन्न रहता है ॥ ५५ ॥

माया मोहे मनु, मोॾो कयो मूढनि जो।
सदा कनि सामी चए, विना ज्ञाति गमनु।
पर्चौ लधो कहिं पहिंजो, वेसासीअ वतनु।
मेटे जन्मु मरणु, इस्थति थियो आकास जाँ ॥ ५६ ॥

माया ने मूर्खों के मन को मोह कर उन्हे मूढ बना दिया है, अत. सामीजी कहते है कि वे (मूर्ख) बिना-सोच-विचार के चलते रहते है। पर जिस विश्वासी ने प्रेम से अपना देश (सच्चा धाम) ढूंढ निकाला है वह जन्म-मरण (के दुख) को मिटाकर आकाश की भाँति स्थित रहता है ॥ ५६ ॥

माया मोहे मोर, द्रुई ओट अन्धनि खे।
भवनि भौसागर में, हीरो जन्मु हारे।
सामी सुजाग्रा बर्चिया, धीर सची धारे।
वेहद द्रीओ ब्रारे, पूरणु द्रिठाऊ पीअ खे॥ ५७॥

माया ने अन्धो (अज्ञानी मनुष्यो) को आकर्षित कर (अज्ञान की) ओट (पर्दे) मे रख कर, मार (नष्ट कर) दिया है, अतएव वे हीरक (रत्न) के समान (अमूल्य मानव-) जीवन को नष्ट कर भवसागर मे भटक रहे हैं। सामीजी कहते है कि सच्चा धैर्य धारण कर (अटल विश्वास से ज्ञान का) अखण्ड-दीपक जलाकर जो जागृत (ज्ञानवान्), पूर्ण परमात्मा को देख पाये हैं वे-ही इस माया से वच सके है॥ ५७॥

माया मझि अपर्सु, व्रिले को गुर्मुखु रहे।
कई जहिं कल्पत खों, सामी समुझी वसि।
कद्री थिए कीनकी, मन इन्द्रयुनि जे वसि।
क्षिम्यां जी खसि-खसि, घोटे पीए प्रेम सां॥ ५८॥

सामीजी कहते हैं कि जिसने प्रपच (की निस्सारता) को समझ कर, उससे किनारा कर लिया है, ऐसा विरला गुरुभक्त ही इस (माया) से अछूता (अप्रभावित) रह पाया है। वह कभी मन-इन्द्रियो के वशी भूत नही होता, वल्कि सतोष-रूपी खस-खस (Poppy Seed) घोट कर [सतोष-रूपी अमृत] प्रेम से उसे पीता रहता है (आत्मानद मे मग्न रहता है)॥ ५८॥

माया मोहे मारे, सभिनी खे सामी चए।
भवनि भौसागर मे, ब्रली ब्रलु हारे।
को प्रेमी लघे पारि पियो, धीर सची धारे।
बेहदि द्रीओ ब्रारे, देउ द्रिठाईं देहि में॥ ५९॥

सामीजी कहते है कि माया ने सब को मोह कर मार (नष्ट कर) दिया है, अत शक्तिशाली भी अपनी शक्ति हार कर भवसागर मे भटक रहे है। पर जिसने सच्चा धैर्य धारण कर लिया है (जिसे अटल विश्वास है) तथा अनत-दीपक (ज्ञान-रूपी दीपक) जलाकर अपने आप मे ही परमात्मा को देखा है, ऐसा कोई भगवत् प्रेमी ही इस (माया-रूपी सागर) से पार हो सका है॥ ५९॥

माया करे मकरु, मोहे मारे सभखे।
सामी वचियो को सूर्मो, निरासो निडरु।
मारे मनु मवासु, जर्यो जहिं अजरु।
भारी भौसागरु, लघे चढियो लख्यते॥ ६० ॥

सामीजी कहते हैं कि माया छल-कपट द्वारा सब को अपनी ओर आकर्षित कर मार (नष्ट कर) देती है। जिसने अपने अहंकार को मार कर अपना मन अविनाशी (परमात्मा) से जोड लिया है, ऐसा कोई निष्काम तथा निर्भय वीर ही इससे बच कर भारी भवसागर को पार कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सका है॥ ६० ॥

माया मोहे जीअ, विधा वाच वहण मे।
गोता खाइनि गैब जा, विना समुझ सचीअ।
लघे चढियो लख्य ते, को प्रेमी प्रीति पकीअ।
जहिंखे पर्चो पीअ, सामी सावधानु कयो॥ ६१ ॥

माया ने जीवो को अपनी ओर आकर्षिक कर, उन्हे (प्रपच के) तेज प्रवाह मे डाल दिया है, अत वे सच्ची बुद्धि से हीन हो गैव [दुर्भाग्य] के गोते खा रहे हैं। सामीजी कहते है कि कोई ऐसा दृढ प्रेमी जिसे प्रियतम (परमात्मा) ने प्रसन्न होकर सावधान कर दिया है वही अपने दृढ प्रेम के वल पर इस (माया) को पार कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकता है॥ ६१ ॥

माया मवाली, कया जीअ जहान जा।
पाए भवनि पाणही, सिर मथे छाली।
उल्टी डिसनि कीन की, खावन्द ख्याली।
सामी समाली, आहे जहिंजे आसिरे॥ ६२ ॥

माया ने ससार के जीवो को पागल वना दिया है, अत वे सिर पर (भ्रम रूपी) राख डाले हुए (व्यर्थ ही) भटक रहे है। सामीजी कहते है कि वे उलट कर (ससार से विरक्त होकर) उस ज्ञानवान परमात्मा को, जिसके भरोसे सारा ससार स्थित है, नही देख पाते॥ ६२ ॥

माया मध भरी, मोहे मुझाए मति खसे।
सामी मोहे सभ खे, कपर करे कहरी।
अहिड़ी काहि गुर्मुख खे, पेई खवर खरी।
तर्मां तारि तरी, चढियो चेतन चिट ते॥ ६३ ॥

सामीजी कहते है कि मद भरी माया सब (लोगो) को आकर्षित कर उन्हे उलझन मे डाल कर उनकी बुद्धि हर लेती है तथा उन्हे सकट मे डाल देती है, पर जिस गुरुमुख भक्त को माया के इस वास्तविक रूप का ज्ञान हो जाता है वह कामना-रूपी सागर को पार करके (इच्छाओ से पार होकर) ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो जाता है ॥ ६३ ॥

माया मध भरी, सूरत धारे सोहिणी।
पुठीअ लाए पहिजे कयाई खलिक चरी।
सामी सुधर ज़न खे, पेई खबर खरी।
विया सिध तरी, पहुता पूरण पद मे ॥ ६४ ॥

मदभरी माया ने सुन्दर रूप धारण करके लोगो को अपने पीछे पागल बना दिया है। सामीजी कहते है कि जब प्रेमी भक्तो को (माया की धोखेबाज़ी का) वास्तविक ज्ञान हो जाता है तब वे सिद्ध-पुरुष इस (माया) को पार कर आत्म-पद प्राप्त कर लेते है ॥ ६४ ॥

माया महा छलु, परे रहे को सुर्मो।
जहिखे शौक सचे जो, चाढ़ियो गुरूअ अमलु।
सुन्ह सिधि स्वरूप खों, पासे थिए न पलु।
एन अभेद अचलु, सामी माणिनि सान्ति सुखु ॥ ६५ ॥

महाछलिनी माया से वही शूरवीर बच सकता है जिसे श्रेष्ठ गुरु ने (परमात्मा के) सच्चे स्वरूप का अनुरागी बना दिया है। सामीजी कहते है कि वे (परमात्मा के) सच्चे स्वरूप से एक क्षण के लिए भी अलग नही होते बल्कि वे (सदैव) मौलिक, भेदरहित एव अचल सुख-शान्ति भोगते रहते हैं ॥ ६५ ॥

माया माउ बणी, मोहे मुसाए सभखे।
सामी खसे सारु धनु, खूह मे विझे खणी।
कयुसि गुमु ज्ञाति सा, कहि हर्जन हथुहणी।
घर मे घर धणी, डिठो जहि अभेदु थी ॥ ६६ ॥

सामीजी कहते है कि माया माँ बनकर सब को अपनी ओर आकर्षित कर उन्हे आपत्ति मे डाल देती है एव सार रूपी धन छीनकर उन्हे (प्रपच रूपी) कुए मे डाल देती है। पर जब कोई सत पुरुष किसी (मनुष्य) पर कृपा का हाथ रखकर, अपने ज्ञान से उस माया को नष्ट कर देता है, तब अभेद (आत्मा एव परमात्मा मे किसी भी प्रकार का भेद न समझकर)

रूप से वह व्यक्ति अपने मनमंदिर में ही मनमंदिर के स्वामी परमात्मा का दर्शन पा जाता है ॥ ६६ ॥

माया मिठाई, खाई जीअ ख़ोआरु थिया।
भवनि भौसागर में, सामी सदाई।
विरले कहि गुर्मुख खे, अन्भय में आई।
पहिंजी पराई, ताति मेटे तद्रूपु थिया ॥ ६७ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया रूपी मिठाई खाकर जीव व्यर्थ ही बदनाम हो रहे हैं एवं भवसागर में भटक रहे हैं। यह माया किसी विरले गुरुमुख की ही समझ में आ सकती है। ऐसा ज्ञानी गुरुभक्त अपने और पराए की भावना भूलकर (परमात्मा के साथ) तद्रूप हो जाता है ॥ ६७ ॥

माया मित्रु वणी, मोहे मारे सभखे।
रोले पहिंजे राज़ में, सदा साणु खणी।
सामी बचियो को सूर्मो, साधुअ जी सरणी।
घर में घर धणी, अचलु डि़ठो जहिं आदिजो ॥ ६८ ॥

माया मित्र बनकर सबको अपनी ओर आकर्षित कर मार (नष्ट कर) देती है, वह सभी को अपने अज्ञानरूपी राज्य में भटकाती रहती है। सामीजी कहते हैं कि जिसने अपने मनमंदिर में ही मनमंदिर के स्वामी परमात्मा को अचल रूप से विराजमान देख लिया है ऐसा कोई सच्चा शूरवीर ही सच्चे साधु की संगति से इस माया से बच सका है ॥ ६८ ॥

माया मिरेई, रचिया ठाह ठगीअ जा।
मारे मूर्खनि खे, डाइणि डुख डेई।
विरले कहिं गुर्मुख खे, सामी सुधि पेई।
लोक परलोक ब्रई, लघे चढियो लक्ष्य ते ॥ ६९ ॥

माया ने सब धोखे के ही ठाट रचे हैं। वह डाइन मूर्खों (अज्ञानी मनुष्यों) को दुख देकर उन्हे नष्ट कर देती है। सामीजी कहते हैं कि किसी विरले गुरुमुख को ही इसका भेद समझ में आ सकता है जिससे वह लोक-परलोक दोनों को पार कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है ॥ ६९ ॥

माया मध मातो, सामी सभु संसारु थी ।
कोर्युनि में को हिकिडो, आतम रंगि रातो ।
मिली साध संगति सां, कहि साहिबु सुञातो ।
वारे खतु खातो, कढियाईं कल्पत जो ॥ ७० ॥

सामीजी कहते है कि सारा विश्व माया के मद मे मस्त है । करोडो मे से ऐसा कोई एक ही (मनुष्य) आत्मज्ञान के रंग मे रंगा हुआ है जिसने साधुओ के संग से परमात्मा को पहचान लिया है तथा माया रूपी वहीखाते को मिटा दिया है (माया से मुक्त हो बैठा है) ॥ ७० ॥

माया मति मोंझी, मोहे कई मूढ़नि जी ।
पंछिन ज्ञाणी पाणखे, सदा फिरनि सोंझी ।
माणे सुख स्वरूपजो, को जाण्यो जोंझी ।
अनन अरोंझी, सामी रहे स्वभाव मे ॥ ७१ ॥

माया ने मूर्खो को मोहकर उनकी बुद्धि मन्द कर दी है, अत वे अपने को नाशवत् समझकर सदैव दु खी होकर भटकते रहते है । सामीजी कहते है कि कोई ज्ञानवान् योगी ही स्वरूप के सुख को भोगता है एवं ईर्ष्या के रोग से मुक्त होकर अपनी ही मस्ती मे मग्न रहता है ॥ ७१ ॥

माया मति मारी, लोभाए लोकनि जी ।
खयो वतनि खुशि थी, खोआरीअ जी खारी ।
सदा कनि समुझ रे, जतन ऐ जारी ।
सामी चए सारी, विया विञाए आर्जा ॥ ७२ ॥

माया ने लोगो को ललचाकर उनकी बुद्धि नष्ट कर दी है, अत वे प्रसन्नतापूर्वक निंदा की पिटारी उठाये हुए घूम रहे है । वे सदैव बिना सोच-विचार के यत्न एवं युक्तियाँ करते रहते हैं । सामीजी कहते है कि इसी प्रकार वे अपनी आयु गँवाकर इस संसार से चले जाते है ॥ ७२ ॥

माया मंझि उदासु, विरले को गुर्मुख रहे ।
जंहि मिली साध संगति सा, कयो अन्तरि मुखि अभ्यासु ।
पंर्चो डिठाई पाण में, चेतन चिदाकासु ।
सामी ज्ञाणे नासु, जगतु सभु जगदीस रे ॥ ७३ ॥

जिसने साधुओ के संग से अन्तरमुख हो अभ्यास किया है ऐसा कोई विरला गुरुमख भक्त ही माया से विमुख रह सकता है । सामीजी कहते हैं

कि उसने प्रसन्न हो अपने आप मे ही चेतन चिदाकाश (परमात्मा) को देखा है तथा जगदीश्वर के सिवा सारे विश्व को नश्वर माना है ॥ ७३ ॥

माया मझि उदासु, व्रिले को गुर्मुख रहे।
जंहि मिली साध सगति सा, कयो अन्तरि मुखि अभ्यासु।
जीए घटनि मे आकाश, तीए साक्षी द्रिसे सभमे ॥ ७४ ॥

जिसने साधुओ के सग से अन्तरमुख हो, अभ्यास किया है ऐसा कोई विरला गुरुमुख भक्त ही माया से विमुख रह सकता है। जिस प्रकार अनेक घड़ो में एक ही आकाश दिखाई देता है, उसी प्रकार वह भी सब (जीवो) मे एक ही परमात्मा को देखता है ॥ ७४ ॥

विशेष—आकाश एक है लेकिन उसकी परछाई अलग-अलग घडो मे अलग-अलग रूप से पड़ती है, यदि घडे को तोड दिया जाय तो भी आकाश नही टूटता (नष्ट होता) है। उसी प्रकार परमात्मा एक ही है लेकिन उसकी ज्योति सब जीवो मे समाई हुई है, पर भ्रमवश मनुष्य उसे अलग ही मानता है। पर जो ज्ञानी है उन्हे आत्मा एव परमात्मा मे किसी भी प्रकार का भेद दिखाई नही देता।

माया मझि उदासु, व्रिले को गुर्मुखु रहे।
कयो जंहि गुर ज्ञाति सा, अन्तरि मुखि अभ्यासु।
चढी ड्रिठाई चेत ते, अन्भय जो आकासु।
सामी ज्ञाणे नासु, द्रष्टमानु सन्सार खे ॥ ७५ ॥

सामीजी कहते हैं कोई विरला गुरुमुख ही माया से उदास रहकर गुरु के ज्ञान के सहारे, अन्तर्मुख हो अभ्यास करता है, एवं विकारो से ऊपर उठकर ज्ञानरूपी आकाश को देखता है, एव दृश्यमान ससार को नाशवान् मानता है ॥ ७५ ॥

माया मझि उदासु, रहनि साधूजन सूर्मा।
अची अजगैवी लगी जिनि खे प्रेम प्यास।
सामी मिली स्वरूप सां, थिया खिल्वती खास।
वेहद कनि विलास, चढ़ी चेतन चिटते ॥ ७६ ॥

माया से वे शूरवीर साधुजन ही उदास रहते है, जिन्हे अचानक ही प्रेम की अनोखी (रहस्य भरी) प्यास आ लगती है। सामीजी कहते हैं कि वे चैतन्य रूपी चट्टान पर चढकर पवित्र एव एकान्तवासी होकर

परमात्मा के स्वरूप से मिलकर, अनन्त परमात्मा के साथ विलास करते हैं (समाधि अवस्था मे ईश्वर के साथ वार्तालाप करते है) ॥ ७६ ॥

माया मंझि उदासु, व्रिले को गुमुख रहे।
सो द्रिष्टमान सन्सार खे, निश्चे ज्राणे नासु।
सामी साधसगति जो, वठे भवर जा वासु।
जीए घटनि मे आकासु तीए साक्षी द्रिसे सभ मे ॥ ७७ ॥

माया से कोई विरला ही गुरुमुख उदास रहता है एव इस दृश्यमान ससार को निश्चय ही नाशवान मानता है। सामीजी कहते है कि वह भ्रमर की तरह सत्सग का आनन्द लूटता रहता है, (जिस प्रकार भ्रमर फूलो का रस चूसता है, पर कभी भी तृप्त नही होता है, उसी प्रकार माया से विमुख जीव भी सत्सग से कभी तृप्त नही होता है।) एव जिस प्रकार घड़ो मे एक ही आकाश दिखाई देता है उसी प्रकार वह सभी जीवो मे एक ही परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है ॥ ७७ ॥

माया मझि उदासु, सामी रहनि सापुरुष।
जीअण मरण दु ख सुख जी, मन मे रखनि न आस।
साक्षी ज्राणी सभ मे, थिया दासनि जा दास।
कटे अविद्या फास, चढ़िया अन्भय अछते ॥ ७८ ॥

सामीजी कहते हैं कि उत्तम पुरुष ही माया से उदास रहते है तथा मन मे जीने-मरने एव दु ख-सुख की आशा से रहित रहते है। वे सब मे परमात्मा को प्रत्यक्ष समझकर सबके सेवक बने रहते है और अविद्या रूपी फाँसी को काटकर ज्ञान रूपी मार्ग पर अग्रसर होते है ॥ ७८ ॥

माया मझि पर्सनु, मूर्ख रहनि मति रे।
भोग्रे भोग्रे भर्म जा, खोहिनि मानुष्य तनु।
माणे सुखु स्वरूप जो, को जाग्रयो साधू जनु।
मेटे सभु मननु, सीतलु थियो सामी चए ॥ ७९ ॥

सामीजी कहते है कि बुद्धिहीन मूर्ख व्यक्ति ही माया मे प्रसन्न रहते हैं एव भ्रम के भोग्र भोगकर अपना मानव-शरीर व्यर्थ ही नष्ट करते है। कोई जागृत साधु ही चिन्तन-मनन से ऊपर उठकर शान्ति स्वरूप परमात्मा के मिलन का सुख भोगता है। (ब्रह्मानन्द को प्राप्त होता है।) ॥ ७९ ॥

माया मझि मगनु, मूर्ख रहनि मति रे।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, नितु तके थो तनु।
जाग्री जुर्यो पाणसा, को प्रेमी पूरनु।
जहिखे आत्म धनु, सामी ड्रिनो सतिगुरूअ॥ ८० ॥

माया मे बुद्धिहीन मूर्ख ही मस्त रहते हैं। वे कन्धे पर सवार मृत्यु को निरन्तर अपने शरीर की ओर ताकते हुए नही देखते हैं। सामीजी कहते हैं कि जिसे सतगुरु ने आत्म-धन दिया है वही पूर्णप्रेमी जागृत हो अपने आप (परमात्मा) से मिल सकता है॥ ८० ॥

माया मझि मगनु, मूर्ख रहनि मति रे।
भोग्रे भोग्रे भर्म जा, खोहिनि मानुष्य तनु।
ज्ञाणे सुखु स्वरूप जो, को जाग्रयो साधू जनु।
मेटे सभु मननु सीतलु थिए सामी चए॥ ८१ ॥

मूर्ख बुद्धिहीन होकर माया मे ही मग्न रहते है। वे भ्रम के भोग भोगकर, अपने मानव-शरीर को नष्ट करते है। सामीजी कहते है कि कोई जागृत (ज्ञानवान्) साधु-पुरुष ही अपने स्वरूप के सुख (आत्मानन्द) को समझकर, सोच मिटाकर, शान्त हो सका है॥ ८१ ॥

माया मझि मगनु, मूर्ख रहनि मति रे।
जुदा ज्ञाणी पाण खे, धार्नि नाना तनु।
सामी सिक वारनि खे, मिल्यो आत्म-धनु॥
अन्भय आत्म अनु, सफा कयाई सुर्तिसाँ॥ ८२ ॥

मूर्ख (अज्ञानी) ही बुद्धिहीन होकर माया मे मग्न रहते है। वे अपने को अलग मानकर (आत्मा और परमात्मा मे भेद समझकर) नाना प्रकार के शरीर (जन्म) धारण करते रहते है। सामीजी कहते है कि परमात्मा से प्रेम करने वालो को ही आत्म-धन मिल सका है, क्योकि उन्होने ध्यान (मेडीटेशन) से आत्मज्ञान रूपी अन्न को [अज्ञान रूपी चोकर से] स्वच्छ कर दिया है। [ज्ञान मिलने के पश्चात् ध्यान एव अभ्यास से दृढ बनाया है।] ॥ ८२ ॥

माया मझि मगनु, मूर्ख रहनि मति रे।
जुदा ज्ञाणी पाण खे, धार्नि नाना तनु।
सामी माणे सेज सुखु, को प्रेमी पूरनु।
अन्भय आत्म धनु, विरी लधो जहि घरमों॥ ८३ ॥

मूर्ख (अज्ञानी) ही बुद्धिहीन होकर माया मे मग्न रहते है। वे अपने को (परमात्मा से) अलग मानकर नाना प्रकार के शरीर धारण करते रहते है। सामीजी कहते है कि ऐसा कोई पूर्णप्रेमी, जिसने (हृदय रूपी) घर मे झाँककर आत्म-ज्ञान रूपी खजाना पा लिया है, वही परमात्मा के मिलन का आनन्द प्राप्त कर सका है ॥ ८३ ॥

माया मझि मगिरूरु, मूर्ख ज्ञाणनि मति रे।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, सामी सहनि सूरु।
कालु न द्रिसनि कन्ध ते, थोकरे नितु कलूरु।
राजा राउ मजूरु, मारे जहि मिटी कया ॥ ८४ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख एव बुद्धिहीन (व्यक्ति) माया मे मगरूर (घमडी) रहते है। वे ससार को सत्य मानकर दुख सहते रहते है। जो राजाओ, महाराजाओ तथा मजदूरो आदि सभी को मारकर मिट्टी मे मिला देती है, ऐसी अपनी जिन्दगी के दिनो को गिनने वाली सदा अपने कधे पर सवार मृत्यु को भी वे लोग नही देख पाते ॥ ८४ ॥

माया मझि मस्तानु, मूर्ख रहनि केतिरा।
कालु न द्रिसनि कन्ध ते कशू बीठो कानु।
वर्तनि वेद वीचारसा, के नेही निरअभिमानु।
भग्नति द्रिनी भग्नवान, जहि खें पर्ची पहिजी ॥ ८५ ॥

माया मे कितने ही मूर्ख मस्त रहते है, वे अपने कन्धे पर तीर-तानकर खडी हुई मृत्यु को नही देखते है। पर जिन्हे भगवान ने प्रसन्न होकर अपनी भक्ति दी है वे निरभिमानी (अभिमान-रहित) प्रेमी ही सोच-समझ कर वेदो के अनुसार आचरण करते है ॥ ८५ ॥

माया मंझि मुक्ति, व्रिलो को गुर्मुख रहे।
जहिंखे द्रिनी सतिगुरूअ, सामी जोग्र जुग्नति।
सम द्रिसे जिति किति, अन्भय पुरुष अख्युनिसाँ ॥ ८६ ॥

सामीजी कहते है कि माया से वही विरला गुरुमुख मुक्त रहता है जिसे सतगुरु ने योग-युक्ति दी है, अतएव वह अपनी आँखो से सभी जगह अन्भय पुरुष (परमात्मा) को देखता रहता है ॥ ८६ ॥

माया रचाई, कूडी रादि कल्पत जी ।
व्रिले कहि गुर्मुख खे, अन्भय मे आई ।
सामी मिली स्वरूप सा, ममत्व मिटाई ।
सम थी सदाई, माणे मौज मुक्ति जी ॥ ८७ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने कल्पना (भ्रम) का झूठा खेल रचा है। किसी विरले गुरुमुख को ही माया का यह (खेल) समझ मे आ सका है, जिसके बाद परमात्मा के स्वरूप से मिलकर, ममत्व मिटाकर, सदैव सम होकर मुक्ति का आनन्द प्राप्त कर सका है ॥ ८७ ॥

माया रचायो, कूडो ठाहु ठगीअ जो ।
सामी तहि मे सभ खे, मोहे मुझायो ।
व्रिले कहि गुर्मुख खे, अन्भय रसु आयो ।
पहिंजो परायो ख्यालु छडे खामोशु थियो ॥ ८८ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने धोखे का झूठा ठाठ रचा है, उस (ठाट) मे आकर्षित कर उसने सबको उलझन मे डाल दिया है। किसी विरले गुरुमुख को ही आत्मज्ञान का आनन्द प्राप्त हो पाता है जिससे वह अपने-पराये के भाव को भूलकर शान्त हो जाता है ॥ ८८ ॥

माया सभि मोहे, जीअ कया वसि पंहिजे ।
सामी सन्त अचाह खे, सघे कीन जोहे ।
विधा जहिं खोहे, पंजई पर पक्षीअ जा ॥ ८९ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने सब जीवो को आकर्षित कर अपने वश मे कर लिया है पर ऐसे निष्काम (कामना-रहित) सन्तो की ओर, जिन्होंने (मन रूपी) पक्षी के पाचो ही पखो (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार) को नष्ट कर दिया है, उनकी ओर वह (माया) अपनी दृष्टि नही उठा सकती ॥ ८९ ॥

माया सभु माधाणु, अणहून्दो उभो कयो ।
मूर्ख तहि मे मति रे, हणनि पहिजो पाणु ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को नेही निरबाणु ।
सामी सज्रण साणु, मिली नित मौजाँ करे ॥ ९० ॥

माया ने ऐसा अस्तित्वहीन प्रपच खडा कर रखा है, जिसमे मूर्ख (अज्ञानी) बुद्धिहीन होकर अपने आप को नष्ट कर रहे है। सामीजी

कहते है कि ऐसे मे कोई (इच्छाओ से) मुक्त प्रेमी ही आकाश के समान निर्लिप्त होकर प्रियतम (परमात्मा) के साथ मौज (आनन्द) मना सकता है ॥ ९० ॥

माया रचाई, कूडी रादि कल्पत जी ।
तहिंमें मोहे मोहसाँ, सभ विश्व फासाई ।
विरले कहिं गुर्मुख खे, अन्भय मे आई ।
सामी सफाई, करे चढियो चग ते ॥ ९१ ॥

माया ने प्रपच की झूठी क्रीडा रचाई है और उसमे सारे विश्व को मोह से आकर्षित करके फँसा रखा है। सामीजी कहते है कि किसी विरले गुरुमुख को ही यह समझ मे आई है जिससे वह शुद्ध होकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो सका है ॥ ९१ ॥

माया सभि गुलाम, कया जीअ जहान जा ।
पिटिनि कारण पेट जे, वद्दा वीर वर्यामि ।
सामी बचिया के सूर्मा, निरविकल्पु निष्काम ।
जिनिखे रम्ता राम, द्विनो दर्सनु देहिमे ॥ ९२ ॥

माया ने ससार के सभी जीवो को अपना गुलाम बना रखा है जिससे बड़े-बड़े दृढ वीर भी पेट के कारण इधर उधर भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि कुछ ऐसे निर्विकल्प एव निष्कामी शूरवीर (व्यक्ति) ही, जिन्हे सर्वव्यापक राम (ब्रह्म) ने हृदय मे ही अपना दर्शन दे दिया है, इस (माया) से बच सके है ॥ ९२ ॥

माया सिधि कयो, अण हूदो सन्सारु सभु ।
स्वप्न मे सामी चए, जीए नाना जीउ थियो ।
पाणु भुलाए पहिंजो, सन्से मझि पियो ।
तद्दी भमु वियो, जद्दी जाग्री जुर्यो जोति साँ ॥ ९३ ॥

सामीजी कहते है कि जिस प्रकार जीव स्वप्न मे नाना प्रकार के रूप धारण करता है, उसी प्रकार माया ने भी इस अस्तित्वहीन ससार को बनाया है (स्वप्न मे देखे हुए झूठे रूपो की तरह ही यह ससार भी झूठा ही है, जिस प्रकार स्वप्न मे वे झूठे रूप भी हमे सत्य प्रतीत होते है, उसी प्रकार यह झूठा ससार भी हमे सत्य प्रतीत हो रहा है।) अत वह (जीव) अपने स्वरूप को भूलकर भ्रमित हो जाता है। पर जब वह जागृत होकर परमात्म-ज्योति से मिल जाता है तब उसका भ्रम नष्ट हो जाता है ॥ ९३ ॥

माया मझि मुझी पिया, सभि जीअ जहान जा ।
मरनि मति मर्म रे, रात्यू ड्रीह रुझी ।
सामी कहि साधूअ जी, अविद्या आग व्रुझी ।
जहिखे ग्रालिह ग्रुझी, सतिगुर ड्रसी स्वरूपजी ॥ ९४ ॥

ससार के सब जीव माया मे उलझे हुए है । वे निर्लज्ज तथा बुद्धि-हीन हो दिन-रात (माया मे) मस्त होकर नष्ट हो रहे हैं । सामीजी कहते है कि उसी साधु की अविद्या रूपी अग्नि वुझ सकी है जिसे सतगुरु नें (परमात्मा के) स्वरूप की रहस्य भरी बात सुझा (समझा) दी है ॥ ९४ ॥

माया मझि मवास, मूर्ख रहनि मति रे ।
इस्थति ज्ञाणी पाणखे, ऊन्ही रखनि आस ।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, थो-सामी ग्रणे स्वास ।
लटे सभि लबास, खाधा जहिं ख्याल सॉं ॥ ९५ ॥

मूर्ख (अज्ञानी मनुष्य) वुद्धिहीन होकर माया मे घमडी वने रहते हैं, वे अपने कन्धे पर सवार उस मृत्यु को नही देख पाते जो उनके (मनुष्यो के) श्वास गिन रही है तथा जिसने विचार मात्र से ही कितने ही शरीररूपी वस्त्र मिट्टी (नष्ट) कर दिये है ॥ ९५ ॥

माया मोहु रचियो, कूडो कल्पत काल जो ।
तहिं मे जगु तद्रूपु थी, नाना भाइ नचियो ।
को साधू जनु सूर्मो, बला खो बचियो ।
आत्म सुखु सचो, सामी माणे सर्वगति ॥ ९६ ॥

माया ने काल तथा प्रपच का झूठा मोह रचा है जिसमे सारा ससार भ्रमित होकर, नाना प्रकार से नाच रहा है । सामीजी कहते है कोई शूरवीर साधु ही इस नागिन से वचकर सच्चे शाश्वत आत्मानन्द को भोग पाता है ॥ ९६ ॥

माया मोहे मति मोग्रो कयो माणुहुनि खे ।
भुली भवनि पाणही, खणी साणु खप्ति ।
सामी रहे सम सदा, को आशिकु इस्थति ।
जाग्री शिवु शक्ति, ड्रिठो पाण जहान मे ॥ ९७ ॥

माया ने मनुष्यो की बुद्धि को आकर्षित कर, उन्हे मूढ बना दिया है, अतः वे अपने को भूलकर कष्टपूर्वक उधर-उधर भटक रहे हैं। सामीजी कहते है कि वह स्थिर प्रेमी ही सदैव सम रहता है जिसने जागृत होकर (ज्ञान प्राप्त कर) परमात्मा की सत्ता को ससार मे प्रत्यक्ष देखा है (जिसे ससार के सभी प्राणियो मे एक ही परमात्मा के दर्शन होते है।) ॥ ९७ ॥

माया मडे मडाणु, मोहे मारे सभखे।
कहिखे छदे कीनकी, ख़ाली खुशीअ साणु।
रहे अलेपु आकास जॉ, को सामी सन्तु सुजाणु।
पाण वराए पाणु, जाग़ी डि्ठो जहिं ज्योति मे ॥ ९८ ॥

माया ने नाना प्रकार के ठाठ रचकर, सब को आकर्षित कर नष्ट कर रखा है। उसने सभी को वास्तविक (सच्चे) आनन्द से वचित कर रखा है। सामी जी कहते है, वही सज्जन सन्त आकाश की भाँति (माया से) निर्लिप्त रह सकता है जिसने जागृत होकर, अपने अह से हटकर, अपने स्वरूप को उस ज्योति मे देखा है ॥ ९८ ॥

माया मझि मुक्ति विरले को गुर्मखु रहे।
जहिंखे डसी सतिगुरूअ, जुर्ब जी जुगति।
डेई कडि-कल्प खे, चेतनु कयाई चिति।
अन्भय सुख अमिति, सामी पाए सम थियो ॥ ९९ ॥

सामीजी कहते है कि वही विरला गुरुमुख भक्त ही माया से मुक्त रहता है जिसे सतगुरु ने (परमात्मा से) मिलने की युक्ति बता दी है। उसने प्रपच को ताला लगाकर (प्रपच से मुख मोडकर) अपने चित्त को चेतन (ज्ञानवान्) बना दिया है, तथा सम होकर अनत आत्म-सुख की अनुभूति कर रहा है ॥ ९९ ॥

माया सभ मोही, ख़लिक पहिंजे ख़्यालसॉ।
भुलाए भग़वन्त खो, द्रोहु करे द्रोही।
सामी बचियो को साध सगि, आशिकु अद्रोही।
बोध रूप बोही, खेती जहिं ख़ामोश सॉ ॥ १०० ॥

माया ने अपने आकर्षण से ससार के लोगो को आकर्षित कर उन्हे परमात्मा से अलग कर दिया है अत वे अपराधी के समान अपराध करते रहते हैं। सामीजी कहते है कि वही दृढ प्रेमी साधुओ के सग से इस माया से बच सका है, जिसने शान्त होकर अपने (हृदय रूपी) खेत मे बोध या

उपदेश रूपी बीज बोया है (जिसने हृदय मे उपदेश का चिन्तन एव मनन किया है।) ॥ १०० ॥

त्यागी वैरागी, माया सभि मस्तानु कया।
सामी को व्रिले वचियो, गुर्मुखु वद्रभागी।
द्रिठो जहिं जागी, पहिंजे अख्ये पाण खे ॥ १०१ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने त्यागी, वैरागी आदि सबको मदमत्त बना दिया है। कोई ऐसा विरला भाग्यशाली गुरुमुख ही इससे बच सका है, जिसने जागृत होकर अपनी आँखो से अपने आप (स्वरूप) को देखा है ॥ १०१ ॥

द्राढी द्रेवाली, माया द्राइणि द्रन्दरी।
सामी कयो जहिं सभखे, कृपणु कंगाली।
व्रिले को गुर्मुख रहे, खलि-खलि खो खाली।
लूँअँ लूँअँ मे लाली, प्रत्क्ष द्रिठी जहिं पीअजी ॥ १०२ ॥

सामीजी कहते हैं कि बडे-बडे दाँतो वाली डाइन माया ने सबका दिवाला निकाल दिया है, तथा उन्हे कृपण एव कगाल बना दिया है। ऐसा कोई विरला गुरुमुख ही, जिसने कि रोम-रोम मे (सर्वत्र) अपने प्रियतम की सत्ता को प्रत्यक्ष देखा है, इसके (माया के) झझट से मुक्त रह सका है ॥ १०२ ॥

द्राढी द्रेवाली, माया द्राइणि द्रन्दरी।
सामी कयो जहिं सभखे, समुझ खसे खाली।
को गुर्मुख ज्ञानी रहे, खलि-खलि खो खाली।
लूँअँ लूँअँ मे लाली, प्रत्क्षु द्रिठी जहिं पीअजी ॥ १०३ ॥

सामीजी कहते है, बड़े-बडे दाँतो वाली डाइन माया ने सबका दिवाला निकाल दिया है। उसने सबकी बुद्धि नष्ट करके उन्हे रिक्त (खोखला विचारहीन) बना दिया है। ऐसा कोई ज्ञानी गुरुमुख ही जिसने रोम-रोम मे (सर्वत्र) अपने प्रियतम की सत्ता को प्रत्यक्ष देखा है, इस माया के झझट से बच सका है ॥ १०३ ॥

द्राठी द्रेवाली, माया द्रिठी मोहिणी।
लुटे कयाईं लोक जो, खजानो खाली।
सामी को सूरो वचियो, आशिकु अब्दाली।
पूरे गुर पाली, दया जहिंते दर्स जी ॥ १०४ ॥

मोहिनी माया सबका दिवाला निकाल देती है, उसने लोगो के (ज्ञान रूपी) खजाने को लूटकर उसे रिक्त कर दिया है (लोगो ने अपनी सारी आयु माया के पीछे पड़कर नष्ट कर दी है)। सामीजी कहते है कि दुखो को सहन करने वाला ऐसा दृढ प्रेमी ही, जिस पर कि पूर्ण गुरु ने कृपा की है तथा (परमात्मा) का दर्शन कराया है, इस (माया) से बच सका है ॥ १०४ ॥

ढ्राढी देवाली, माया मुठी मोहिणी।
जंहिं फुरे सभि फकीर कया, खलि खलि सॉ खाली।
सामी को साबितु रह्यो, आशिकु अकाली।
पूरे गुर पाली, दया पहिंजे सिषते ॥ १०५ ॥

मोहिनी माया ने सबको लूटकर, सबका दिवाला निकाल दिया है तथा उन्हे फकीर बना दिया है। (माया के झझट मे सभी अपना मानव-शरीर नष्ट कर बैठे है)। सामीजी कहते है कि ऐसा कोई अकाली (जिसने काल को जीत लिया है) प्रेमी शिष्य ही, जिस पर कि पूर्ण (पहुँचे हुए) गुरु ने दया की है, वही इससे बच सका है ॥ १०५ ॥

ड्रिए ड्रेखारी, माया मोहे मूढनि खें।
समुझ खसे सामी चए, करे दिलि कारी।
रहे अलेपु आकास जॉ, को भाग्यवानु भारी।
जहिंखे पीआरी, सतिगुर सुर्की सार जी ॥ १०६ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने तमाशा दिखाकर मूर्खों को मोह लिया है। वह (मनुष्यो की) बुद्धि को हरकर, उनके हृदय काले कर देती है (कपट से उनका मन मलीन कर देती है।) अत ऐसा कोई महान् भाग्यशाली ही, जिसे कि सतगुरु ने आत्मरस का घूंट पिलाया है, इस (माया) से आकाश की तरह निर्लिप्त रह सकता है ॥ १०६ ॥

ड्रिठा सभि मगनु पाणोवाणे हाल मे।
मने वेठा मन मे, नाना भाइ मननु।
कोर्युनि मे को हिकिडो, रहे अलेपु अननु।
जंहिं जीत्यो मनु, सामी सन्तनि सॉ मिली ॥ १०७ ॥

सामीजी कहते है कि सब (मनुष्य) अपने ही हाल मे मस्त दिखाई देते है, वे अपने मन मे नाना प्रकार के सोच लिए बैठे है। करोडो मे से ऐसा कोई एक व्यक्ति ही, जिसने कि सन्तो से मिलकर, अपने मन को जीत लिया है, निर्लिप्त एव एकरस रह सकता है ॥ १०७ ॥

द्रिठा सभि दुखी, सान्ति वराए जगत में ।
ज्ञानी ध्यानी ग्रहस्ती, माया पात मुखी ।
कहिखे छदे कीन की, चिन्ता चाह भुखी ।
थियरा सन्त सुखी, सन्से रे सामी चए ॥ १०८ ।'

सामीजी कहते हैं कि ससार मे सभी (मनुष्य) शान्ति के सिवा दु खी दिखाई देते है । ज्ञानी, ध्यानी तथा गृहस्थ, सभी माया मे फँसे रहते हैं । चिन्ता तथा इच्छा की भूखी (माया) किसी को भी नही छोड़ती, केवल सन्त ही भ्रम-रहित हो सुखी हो सके है ॥ १०८ ॥

अन्धनि खे ओलो, माया द्रिनो मोह जो ।
पाए भवनि पाणही, चिन्ता जो चोलो ।
सामी सुजाग्नि खे, कोन्हे भय भोलो ।
क्षमा खटोलो, पाए सुम्हया पद मे ॥ १०९ ॥

माया ने अन्धो (अज्ञानी व्यक्तियो) को मोह मे फँसा रखा है अत. वे चिन्ता रूपी चोला पहनकर (चिन्ता मे डूबे) भटक रहे है । सामीजी कहते है, पर जो जागृत (ज्ञानवान) हैं उन्हे किसी प्रकार का भय एवं भ्रम नही है, वे आत्मपद मे आनन्द की सेज पर सो रहे है (आत्म-आनन्द मे लीन है ।) ॥ १०९ ॥

करे छद्रियो छलु, माया मोहिया जीअ सभि ।
कहिखा थिए कीनकी, पापिणि पासो पलु ।
को नेही व्युसि निकिरी, निराधार निर्मलु ।
जहिखे वेहदि ब्रलु, सामी द्रिनो सतिगुरूअ ॥ ११० ॥

माया ने छल से सभी जीवो को आकर्पित कर रखा है, यह पापिन, एक क्षण के लिए भी किसी का पिड नही छोडती । सामीजी कहते हैं कि जिसे सतगुरु ने अनन्त शक्ति दी है, वही निर्मल स्वतन्त्र प्रेमी इस माया जाल से निकल सकता है ॥ ११० ॥

करे जीअ कर्म, फाहीअ फाथा पाणही ।
सदा रहनि सन्सार जे, विसा मझि वहम ।
को आशिकु चढियो अछते, छद्रे कूडा कम ।
सामी द्रिसे सम, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ १११ ॥

जीवो ने कर्म कर स्वय ही अपने आप को (कर्म रूपी) फाँसी मे फँसा दिया है, वे ससार के भ्रमो मे सदैव खोये हुए से रहते है। सामीजी कहते हैं कि कोई प्रेमी ही (ससार के) झूठे कर्मो को छोड़कर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, एव एक ही आत्मा को बाहर तथा भीतर समान रूप से देख पाया है ॥ १११ ॥

करे ठ्याई ठठु, माया मोहिया जीअ सभि।
भवनि नितु भवण मे, रखी हैबत हठु।
ईहा ग्वाल्हि सही करे, ग्याति गुरूअ खो वठु।
त कढी सभ्ता मठु, सामी करेई शुधि मनु ॥ ११२ ॥

माया ने बाह्याडम्बर से सब जीवो को आकर्षित कर रखा है, अत. वे आतक और अभिमान मे सदैव इस ससार मे भटकते रहते है। सामीजी कहते हैं (ऐ मनुष्य) यह बात जानकर तू गुरु से ज्ञान ले, वही तेरे हृदय की समस्त कालिमा मिटाकर, उसे शुद्ध करेगा ॥ ११२ ॥

करे नाना छल, माया मोहे सभखे।
कंहिखे छड्डे कीन की, खाली बिना खलल।
के नेही व्यसि निकिरी, निरासा निर्मल।
जिनिखे समुझ सबल, सामी द्विनी सतिगुरूअ ॥ ११३ ॥

अनेक प्रकार के छल-बल दिखा करके माया सबको आकर्षित करती है। वह किसी को भी बुराई से खाली नही छोड़ती (सबकी बुराई करती रहती है)। सामीजी कहते है जिन्हे सतगुरु ने तीक्ष्ण बुद्धि दी है, वही निर्मल तथा आशा-वासना-रहित प्रेमी इस (माया) से बच पाता है ॥ ११३ ॥

अण हूंदी रादि रची, माया मोह ममत्व जी।
तहि मे मति मर्म रे, मूर्ख मरनि पची।
को प्रेमी मिल्यो पीअ सा, बला खा बची।
जंहिखे समुझ सची, सामी द्विनी सतिगुरूअ ॥ ११४ ॥

माया ने मोह और ममता का जो अस्तित्वहीन खेल रचा है, उसमे मूर्ख बुद्धिहीन ही निर्लज्ज हो कर पचते (अर्थात् डूबते और) मरते रहते हैं। सामीजी कहते है कि जिसे सतगुरु ने सत्य को समझने की शक्ति दी है, वही प्रेमी इस माया रूपी नागिन से बच कर प्रियतम से मिल पाता है ॥ ११४ ॥

अण हून्दी हर्कत, माया रचे रासि की ।
तहिंमे लोक लुढी विया, मूर्ख मन जे मत ।
आशिक चढ़िया अछते, लिवँ सा हणी लत ।
कटे सभ कल्पत, सीतलु थिया सामी चए ।। ११५ ।।

माया ने अस्तित्वहीन बाजी (यानी खेल) रचकर तैयार किया है, जिसमे कितने ही मूर्ख मन के विचारो (मनोरथो) मे पडकर वह गये हैं । सामीजी कहते है पर कुछ प्रेमी भक्त ही प्रेम के वशीभूत होकर, माया को ठुकरा कर, भ्रमो को काटकर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होकर शान्त हो सके है ।। ११५ ।।

अण हूंदी रादि रची, नारायण नानत जी ।
तहिंमे मोआ केतिरा, मुर्ख लोक पची ।
पादु खणी पधिरी कई, कहिं औधूत अची ।
जहिंखे समुझ सची, सामी डि्नी सतिगुरूअ ।। ११६ ।।

नारायण ने भेद (वास्तव मे आत्मा और परमात्मा मे कोई भेद नही, पर ज्ञान के अभाव मे यह भेद साफ दिखाई देता है) का अस्तित्वहीन खेल रच रखा है, जिसमे कितने ही मूर्ख (अज्ञानी मनुष्य) पचते (डूबते और) मरते हैं । सामीजी कहते हैं, जिस अवधूत (प्रेमी) को सतगुरु ने सच्ची वुद्धि (सच्चा ज्ञान) दी है वही अज्ञान के इस आवरण को हटाकर वास्तविक रहस्य का पता पा सका है ।। ११६ ।।

खिल सां मति खसे, माया वदी जीअ जी ।
दौड़े पहिंजो पाणही, फाहीअ मझि फसे ।
तहिंखे डि्से कीन की, जो हाजुरु हरि वसे ।
जे सतिगुरू राह डसे, त सुखी थिए सामी चए ।। ११७ ।।

माया ने खेल ही खेल मे जीव की बुद्धि हर ली है, जिससे वह माया-जाल मे फँसकर, स्वय ही भटक रहा है । सामीजी कहते हैं कि वह (जीव) सर्वव्यापक परमात्मा को नही देख पाता, पर जव उसे सतगुरु रास्ता सुझा (वता) देता है तव वह सुखी हो जाता है ।। ११७ ।।

काया ऐ माया, कूडी सभि कल्पत जी ।
जीए फोटो जल मे, दर्सत जी छाया ।
जेके जगि आया, से सामी रहिया कीन की ।। ११८ ।।

सामीजी कहते है कि जल के बुदबुदे तथा वृक्ष की छाया की तरह काया एव माया का प्रपच झूठा है, क्योकि जो भी इस ससार मे आये है वे सदा नही रह पाये है (बुदबुदे तथा वृक्ष की परछाई की तरह सभी मनुष्य तथा वस्तुएँ अस्थिर और नाशवान है।) ॥ ११८ ॥

रचे मनु खललु, फाहीअ फाथो पाणही ।
सामी समुझे कीनकी, मूर्खु माया छलु ।
सान्ति न पाए मृघ जॉ, द्रिसी मृघी जलु ।
तद्री थिए अचलु, जद्री पर्ची द्रिसे पाणखे ॥ ११९ ॥

सामीजी कहते है कि मन ने भ्रम रचकर उसकी फॉसी मे अपने आप को फँसा रखा है, वह मूर्ख मन, माया के छल-बल को नही समझता है। वह मृग की तरह मृगतृष्णा मे शान्ति नही पाता। (जिस प्रकार मृग मरुभूमि मे सूर्य की किरणो मे चमकती हुई रेत को पानी समझकर उसके पीछे वेचैन हो दौडता रहता है, पर कभी शान्ति नही पाता, उसी प्रकार मनुष्य भी माया के चमकते हुए रूप के पीछे भटकता रहता है पर उसे कभी शान्ति नही मिलती)। पर जब मनुष्य अपने भीतर झाँककर देखता है, तभी वह स्थिरता (शान्ति) प्राप्त कर पाता है ॥ ११९ ॥

रन विधो रोलो, जुदाईअ जो जग मे ।
सामी कयांई सभ खे, पिनाए पोलो ।
कहिं गुर्मख हयुसि ज्ञान जो, गैबी गुलेलो ।
अणहून्दो भोलो, मेटे वेठो मन मो ॥ १२० ॥

सामीजी कहते है इस छलिनी माया ने ससार मे (ईश्वर और जीव के बीच) विछोह डाल दिया है, तथा सभी मनुष्यो को भटका कर खोखला बना दिया है (आत्म धन से वचित कर दिया है)। कोई गुरुमुख ही ज्ञान के रहस्य का गुलेल चलाकर अपने मन से माया के अस्तित्वहीन भ्रम को नष्टकर सका है ॥ १२० ॥

रोलो विधो रन, जुदाईअ जो जग मे ।
मारे मुझाए सब खे, धारे नाना वन ।
सोंटो हयुसि सम जो, कहिं जाग्ये साधूजन ।
समुझी वेद वचन, सामी चढियो चिटते ॥ १२१ ॥

इस छलिनी माया ने ससार मे विछोह डाल दिया है, (आत्मा तथा परमात्मा मे विछोह करा दिया है), तथा नाना प्रकार के रूप धारण कर

सबको उलझाकर नष्ट कर दिया है। कोई जागृत साधु पुरुष ही वेदो के वचनो को समझकर, समता रूपी सोटे (डंडे) से इस माया पर प्रहार कर आत्मज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो सका है ॥ १२१ ॥

वञे थी वही, खलिक त पहिंजे ख्याल मे।
विरले कंहि गुर्मुख कई सामी ग्राल्हि सही।
चढ़ियो अन्भय अछ ते, पजई दूत दही।
करे राजु रही, बेगमपुरि शहर जो ॥ १२२ ॥

सामीजी कहते है कि मनुष्य अपने विचार-प्रवाह मे बहते जाते है। कोई विरला गुरुमुख ही वास्तविक बात जानकर, पाँचो ही दूतो (काम, क्रोध, लोभ, मोह एव अहंकार) को मारकर आत्मज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है तथा चिन्ताहीन देश का राज्य भोग सकता है (चिन्तामुक्त होकर आत्मानन्द मे लीन रह सकता है।) ॥ १२२ ॥

वञे सभि वहन्दी, खलिक खाम ख्याल मे।
विरले कंहि गुर्मुख लधी कृपा साणु कन्धी।
चढ़ियो चेतन चिट ते, लिवं सां लकु ब्रन्धी।
मेटे चडी मन्दी, सामी सम सीतलु थियो ॥ १२३ ॥

लोग (माया के) व्यर्थ के विचार-प्रवाहो मे वह जाते है। कोई विरला गुरुमुख ही (परमात्मा की) कृपा से किनारा ढूँढ पाता है (माया रूपी सागर से पार हो पाता है।) सामीजी कहते है कि वह प्रेम के रास्ते से ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है तथा समता अपना कर, भलाई एव बुराई को मिटा कर शान्ति प्राप्त करता है ॥ १२३ ॥

वञे सभि वहन्दी, खलिक सभि ख्याल मे।
सति ज्ञाणी ससार जी, विना नीर नन्दी।
विरले कंहि गुर्मुख लधी, कृपा साणु कन्धी।
जंहिखे प्रेम पन्धी, सामी डिनी सतिगुरूअ ॥ १२४ ॥

सब लोग माया के विचार-प्रवाह मे बहते जाते है, वे जल-रहित (असार) ससार रूपी नदी को सत्य मान बैठे है। (असार ससार को सत्य मान बैठे है।) सामीजी कहते है कि जिसे सतगुरु ने प्रेम का उपदेश दिया है, वह गुरुमुख भक्त ही गुरु की कृपा से किनारा ढूँढ सका है। (माया रूपी सागर से पार हो सका है।) ॥ १२४ ॥

वञे सभि वहन्दी, ख़लिक ख़ाम ख्याल मे ।
सति ञाणी स्वप्न जी, बिना नीर नन्दी ।
विरले काहि गुर्मुख लधी, कृपा साणु कन्धी ।
मेटे चडी मन्दी, सामी जुर्यो स्वरूप सां ॥ १२५ ॥

सब लोग माया के व्यर्थ के विचार-प्रवाह मे बहते जाते है। वे स्वप्न की जल-रहित (ससार रूपी) नदी को सत्य मान बैठे है (झूठे तथा असार ससार को सत्य मान बैठे है।) सामीजी कहते हैं कोई बिरला गुरुमुख ही (परमात्मा की) कृपा से (माया रूपी सागर का) किनारा पा सका है तथा भलाई एव बुराई को मिटाकर स्व-रूप (परमात्मा) से जा मिला है ॥ १२५ ॥

वञे सभि वही, खलिक त पहिजे ख्याल मे ।
विरले कहि गुर्मुख कई, सामी ग्रालिह सही ।
चढियो अनभय अछ्ते, पंजई दूत दही ।
करे राज़ु रही, बेहद बेगमपुरि जो ॥ १२६ ॥

सामीजी कहते है कि सब लोग तो अपने-अपने विचार-प्रवाहो मे बहते जाते हैं; केवल कोई बिरला गुरुमुख ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकता है जिससे कि वह पाँच दूतो (काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहकार) को मारकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है, तथा चिन्ता रहित देश का राज्य करता है। (वह उस स्थिति को प्राप्त करता है जहाँ चिन्ता का नामो-निशान तक नही, केवल आनन्द ही आनन्द है और वह उस आनन्द का ही उपभोग करता रहता है) ॥ १२६ ॥

वञे सभि वहन्दी, खलिक ख़ाम ख्याल में ।
सामी लधी साध सगि, कृपा साणु कन्धी ।
पहुतो पूरणु पद मे, काबू कर्म बन्धी ।
दया दर्दवन्दी, मुखि रखी मौजाँ करे ॥ १२७ ॥

सामीजी कहते है कि सब लोग व्यर्थ के विचार-प्रवाहो मे बहते जाते है। कोई विरला मनुष्य ही साधुओ के सग तथा कृपा से (माया रूपी सागर का) किनारा ढूंढ लेता है और अपने कर्मो के बन्धनो को काटकर पूर्णपद को प्राप्त करता है, तथा दयालु और करुणामय (दूसरो के दु ख को जानने वाले परमात्मा) की ओर उन्मुख होकर आनन्द प्राप्त करता है ॥ १२७ ॥

विधा जीअ लुटे, माया सभि ममत्व मे।
ब्रधाई ब्र्याईअ जे, नोड़ीअ साणु घुटे।
भर्म मझि भुली करे, रात्यू ड्रीह भिटे।
सामी तड्री छुटे, जड्री पहुचे पूरणु पद ते॥ १२८॥

माया ने सब जीवो को मोह मे डालकर लूट लिया है, तथा उन्हे द्वेष की रस्सी से बाँध उनकी सासो को रोक दिया है (उन्हे बेहाल कर दिया है)। वे अपने (स्वरूप) को भूलकर दिन-रात भ्रमो मे भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, वे (इन भ्रमो से) तभी मुक्ति पाते हैं, जब कि पूर्णपद (आत्मपद) को प्राप्त कर लेते है॥ १२८॥

विधा जीअ लुटे, माया सभि मर्म रे।
ब्रधाई ब्र्याईअ जे, नोड़ीअ साणु घुटे।
सन्से जे सोटियुनि सॉ, रात्यू-ड्रीह कुटे।
को व्रिले जनु छुटे, जहिखे सामी मिल्यो सतिगुरू॥१२९॥

माया ने सब जीवो को लूटकर निर्लज्ज बना दिया है, तथा उन्हे द्वेष की रस्सी से बाँधकर, उनकी साँसो को रोक दिया है (उन्हें बेहाल कर दिया है)। वह दिन-रात उन्हे भ्रम के डडे से कूटती रहती है। सामीजी कहते हैं, जिस विरले-पुरुष को सद्गुरु मिल जाता है, वही इस (माया) से मुक्ति पाता है॥ १२९॥

विधा सभि केरे, माया जीअ महल मों।
छद्र्याई छल बल सॉ, हिर्स मझि हेरे।
वेठो मूहु फेरे, सामी चए स्वरूप खो॥ १३०॥

सामीजी कहते है कि माया ने सब जीवो को महल (आत्मपद) से गिरा दिया है (आत्मानद से वचित कर दिया है)। इस (माया) ने सब को छल या कपट से लालच मे फँसा दिया है, अत सभी लोग (परमात्मा के) स्वरूप से मुंह मोड बैठे है॥ १३०॥

डे नितु माया मार, करे जेरि जीअनि खे।
भवनि भौसागर मे, रोअनि जारो जार।
कयुमि गुमु ग्याति सॉ, कहि हर्जन हुश्यार।
जहिखे गुर्जि मस्भार, सामी ड्रिनी सतिगुरूअ॥ १३१॥

माया जीवों को अपने अधीन कर, उन्हे सदैव मार देती रहती है अत वे अश्रु बहाते हुए अत्यन्त दुखी होकर ससार-सागर मे भटकते रहते है। सामीजी कहते हैं जिस हरि के प्रवीण भक्त को सद्गुरु ने-

ज्ञान व बुद्धि दी है, वह अपने ज्ञान से उस (माया) को लुप्त कर देता है (माया से मुक्त हो जाता है) ॥ १३१ ॥

नाना रूप धरे, माया मोहे सभखे ।
भोग भोगाए भर्म जा, फुरे फकीरु करे ।
व्रिलो को गुर्मुख रहे, प्रेमी पाकु परे ।
जहि द्रे नजर भरे, सामी द्रिठो सतिगुरूअ ॥ १३२ ॥

माया नाना प्रकार के रूप धारण कर, सब (जीवो) को आकर्षित करती है तथा उन्हे भ्रमो के भोग भुगताकर, (विषय-वासनाओ मे उलझा कर) और लूटकर फकीर बना देती है (आत्म-धन से वचित कर देती है)। सामीजी कहते है पर पवित्र, विरला प्रेमी गुरुमुख व्यक्ति ही जिसे कि सद्गुरु ने (दया) दृष्टि मे देखा है, वही इस (माया) से दूर रहता है ॥ १३२ ॥

नाना रूप धरे, माया मोहियो सभखे ।
सामी वचियो को सूर्मो, सतिगुरु सम्भारे ।
जाद्रे निहारे, ताद्रे सज्जणु सामुहो ॥ १३३ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने नाना प्रकार के रूप धारण कर सबको आकर्षित कर लिया है, पर कोई शूरवीर (ज्ञानी) जिसे सद्गुरु ने याद किया है (जिस पर सद्गुरु की कृपा है) वह इस (माया) से बच गया है, अत अब वह जहाँ भी दृष्टि उठाता है, वहाँ उसे सामने प्रियतम (परमात्मा) ही दिखाई देता है ॥ १३३ ॥

पछिन्ता पलीतु, कया जीअ जहान जा ।
कोर्युनि मे को हिकिडो, रहे अलेपु अतीतु ।
पर्चो लधो जहि पहिजो, आदी अन्भय मीतु ।
सदाई सुर्जीतु, सामी रहे स्वभाव मे ॥ १३४ ॥

सामीजी कहते है कि नश्वर-मायावी प्रपच ने ससार के जीवो को पलीत (अपवित्र) कर दिया है। करोडो मे से कोई एक ही इस (माया) से अलग एव निर्लिप्त रहता है। जिसने प्रेम से अपना आदि-ज्ञान रूपी मित्र ढूँढ लिया है। (जिसने आत्मज्ञान को ही अपना मित्र बना लिया है), वह सदैव जागृत होकर अपने ही भावो मे (मस्त) रहता है ॥ १३४ ॥

पछिन्ता पलीतु, कया जीअ जहान जा ।
सामी थियो को साध सगि, प्रेमी परम पुनीतु ।
जाग्री जहि जुग्रति सॉ, जीत्यो मनु अजीतु ।
तन मे तुर्यातीतु, प्रत्क्षु द्रिसे पाणखे ॥ १३५ ॥

सामीजी कहते है कि नश्वर-मायावी प्रपच ने ससार के जीवो को पलीत (अपवित्र) कर दिया है। वह परम प्रेमी ही साधुओ के सग से इस (माया) से पवित्र (अप्रभावित) रह सका है जिसने जागृत होकर (ज्ञान की) युक्ति से अजीत मन को जीत लिया है एव अपने शरीर (आप) मे ही साक्षात् चेतन परमात्मा को प्रत्यक्ष देखा है ॥ १३५ ॥

पछिन्ता पिटाए, मारे मूर्खनि खे।
पाणु पहिंजो पाण मे, वेठा विञाए।
मुल्ह सिधि स्याणनि ड्रिठो, उल्टी लिव लाए।
पूरणु पद पाए, सामी माणिनि सान्ति सुखु ॥ १३६ ॥

नश्वर-मायावी प्रपच मूर्खो (अज्ञानी लोगो) को भटका-भटका कर मार (नष्ट कर) देता है। वे अपने अह मे अपने आप (स्वरूप) को खो बैठे है। सामीजी कहते है कि बुद्धिमानो ने (ससार से) विरक्त होकर, प्रेम से अपने आव (परमात्मा) को देखा है अतएव वे पूर्ण-पद प्राप्त कर आत्म-सुख लूट रहे है ॥ १३६ ॥

पिटीअ खो पालो, व्रिलो को गुर्मुख रहे।
जहिंखे ड्रिनो सतिगुरूअ, निर्भय नवालो।
करे न कतर जेत्रो, कल्पत कशालो।
सदा सुखालो, सम वर्ते सामी चए ॥ १३७ ॥

दुष्टा माया से वही विरला गुरुमुख दूर रहता है, जिसे सद्गुरु ने निर्भय बना देने वाला (ज्ञान का) उपदेश दिया है। सामीजी कहते है कि वह रत्ती भर भी कष्टदायिनी (माया) का कष्ट नही उठाता है बल्कि समता का व्यवहार कर, सदैव सुखी रहता है ॥ १३७ ॥

फाहीअ विन फथो, सभुको माया मोह मे।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, मूर्ख हणनि मथो।
व्रिले कहिं गुर्मुख जो, सामी भर्मु लथो।
लोई शाल खथो, ज्ञाणे अन्भय उन जो ॥ १३८ ॥

सब (जीव) माया-मोह की फन्द-रहित (झूठी) फाँसी मे फँस गये है। (माया की झूठी एव काल्पनिक फाँसी मे फँस गये है)। वे मूर्ख ससार को सत्य मानकर व्यर्थ ही अपना सिर खपा रहे है (कष्ट उठा रहे है)। सामीजी कहते हैं उसी विरले-गुरुमुख का ही भ्रम दूर हुआ है जिसने कम्बल, शाल तथा कफन को एक ही ज्ञान रूपी ऊन

से वना हुआ समझ लिया है। (जो सव मनुष्यो मे एक ही आत्मा का दर्शन कर प्रेम करता रहता है वही आत्मज्ञानी है।) ॥ १३८ ॥

फाहीअ रे फाथी, खलिकत ख़ाम ख़्याल मे।
सामी मारे सभ खे, स्वप्न जो हाथी।
जागी कहिं जतन रे, ओति पोति लाथी।
सदा सग साथी, द्रिसे अन्भय आत्मा॥ १३९ ॥

सामीजी कहते है कि सभी लोग विचारो की फन्द-रहित झूठी फांसी मे फँस गये है, स्वप्नवत् (ससार-रूपी) हाथी सव को मारता रहता है (सांसारिक वातो मे ही अपना अमूल्य जीवन नष्ट करते रहते है)। किसी एक जागृत व्यक्ति ने ही विना यत्न (आसानी से यह झूठा आवरण हटा दिया है। वह सदैव आत्मा को ही अपने साथी के रूप मे देखता है॥ १३९ ॥

फुरे फिकिल साणु, सभखे माया मोहिणी।
लडू खाराए लोभ जा, करे महवत माणु।
रहे अलेपु आकास जाँ, को साधू जनु सुज्ञाणु।
पले रख्याऊ पाणु, सामी भेद भर्म खो॥ १४० ॥

मोहिनी माया ने सव (जीवो) को अपने फँदे मे डालकर लूट लिया है। वह झूठे प्रेम से सव को लोभ के लड्डू खिलाती है। सामीजी कहते है, कुछ सज्जन साधु-जन ही भेद तथा भ्रम से अपने को दूर रखकर, आकाश की तरह निर्लिप्त रहते हैं॥ १४० ॥

ब्रधनि खे ब्रोडे, थी सामी लहर समुन्द्र जी।
तिनिखे चए कीन की, जे सन्त छद्रिया छोडे।
वेठा मूहु मोडे, जगत खो, जगदीस द्रे॥ १४१ ॥

सामीजी कहते है (माया मे) वँधे हुए लोगो को समुद्र की लहर (सासारिक झझट) डुवो देती है। पर जिन्हे, सन्तो ने (माया से) मुक्त कर दिया है, उनका वह कुछ भी नही विगाडती है, अत वे ससार से मुख मोड कर जगदीश्वर की तरफ मुख किये वैठे है॥ १४१ ॥

ब्रधी कयो ब्रान्हो, माया मूर्खनि खे।
खसे ख़ाम ख़्याल साँ, खिम्या ख़जानो।
सामी बचियो साध सगि, को दर्दबन्द दानो।
निर्भय निशानो, द्रिठो जहिं अन्भई॥ १४२ ॥

माया ने मूर्खों को बाँध कर गुलाम बना दिया है। वह व्यर्थ के विचारों से (उन्हे व्यर्थ के विचार प्रवाह मे उलझाकर) उनका आत्मिक खज़ाना छीन लेती है। सामीजी कहते है कि कोई बुद्धिमान् प्रेमी ही साधुओ के सग से इस (माया) से बच गया है तथा अन्तर्मुख हो कर निर्भय निशान (निर्भय बना देने वाले परमात्मा को) देख लिया है ॥ १४२ ॥

ॿधो सभु जहानु, माया फासीअ फन्द रे।
पची रहनि पिण्ड साँ, भुलाए भगिवानु।
जाॻी कढनि कीन की, अन्दर मो अभिमानु।
को सामी पुरुप सुजानु, समुझी चढियो सीर ते ॥ १४३ ॥

माया ने सारे विश्व को बिना फन्दे वाली फाँसी से बाँध लिया है अत वे (ससार के लोग) परमात्मा को भूल कर शरीर मे ही प्रसन्न रहते है (शरीर से ही प्रेम करते है)। सामीजी कहते है कि वे जागृत हो कर हृदय से अभिमान नही निकालते है, केवल कोई सज्जन पुरुष ही सोच समझकर परमात्मा की ओर उन्मुख होता है ॥ १४३ ॥

ॾुयाईअ मझि ॿुॾी, मूर्ख मोआ केतिरा।
सामी को साधू लघे, पियो कृपा साणु कुॾी।
चाढी जहि गुर ग्यांति साँ, गगन मझि गुॾी।
तोडे करे लाॾु, लुॾी, ताभी सीतलु रहे स्वभाव मे ॥ १४४ ॥

कितने ही मूर्ख द्वैत (रूपी समुद्र) मे डूब कर मर गये है। सामीजी कहते है कोई साधु ही (परमात्मा की) कृपा से छलाँग मार कर पार हो गया है एव गुरु के ज्ञान से उसने अपने प्राण दसवे द्वार† मे चढा दिये है। यद्यपि लटके वाली (माया) उससे लाड-प्यार करती रहती है (उसे अपनी ओर आकर्षित करती है) फिर भी वह अपने ही भावो मे शीतल (शान्त) रहता है ॥ १४४ ॥

† दसवाँ द्वार—मानव-शरीर के अन्दर नौं छिद्र है, जिनमे दो छिद्र नाक के है, दो कान के है, दो आंखो के है, एक मुह, एक लिंग, एक गुदा का। दसवाँ द्वार ब्रह्मरन्ध्र कहलाता है। यह मस्तक के मध्य में माना जाने वाला एक छेद है, जिससे होकर प्राण निकलने मे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होना माना जाता है। जो साधक ब्रह्मरन्ध्र की साधना कर लेता है, वही ज्ञानी कहलाता है।

ब्याईअ मझि ब्रोड़े, माया छद्रियो मूढनि खे ।
मरनि मति मर्म रे, सदा सिरु फोडे ।
को प्रेमी लघे पारि पियो, सामी मुहु मोडे ।
वेठो वञु खोडे, आदी अन्भई घर मे ॥ १४५ ॥

माया ने मूर्खो को द्वैत (की भावना) मे डुबो दिया है अत वे निर्लज्ज एवं वुद्धिहीन हो अपना सिर फोडकर (कष्ट उठाकर) मर रहे है। सामीजी कहते है कोई प्रेमी ही (माया से) मुख मोडकर (द्वैत रूपी समुद्र से) पार हो गया है तथा अपने आदि ज्ञान (आत्मिक ज्ञान) रूपी घर मे धूनी रमाकर वैठा है ॥ १४५ ॥

विना गप गपी, पिया सभि जीअ जहान जा ।
मरनि मति मर्म रे, खपित मझि खपी ।
कहि सुजाग्रे सूर्मे, कल्पन ग्रंढि कपी ।
जंहि खे ग्राल्हि छिपी, सामी ब्रुधाई सतिगुरूअ ॥ १४६ ॥

ससार के सव जीव (माया के) झूठे कीचड मे फँस गये है। वे निर्लज्ज तथा वुद्धिहीन होकर, (माया के) झझट मे अपने आप को खपा-खपा कर मार रहे है (नष्ट कर रहे है)। सामीजी कहते है उसी जागृत शूरवीर (ज्ञानी व्यक्ति) ने ही कल्पना की गाठ काट ली है जिसे सद्गुरु ने छिपी हुई वात (ज्ञान का रहस्य) वता दी है ॥ १४६ ॥

विना गप गपी, पिया सभि जीअ जहान जा ।
मरनि मति मर्म रे, खपित मझि खपी ।
कहि सुजाग्रे सूर्मे, सामी कल्प कपी ।
जंहिखे छुटे छिपी, लख्य लखाई अन्भई ॥ १४७ ॥

ससार के सव जीव (माया के) झूठे दलदल मे फँस गये है। वे निर्लज्ज एव वुद्धिहीन होकर, (माया के) गोरख-धधे मे अपने को खपा-खपाकर (कष्ट उठाकर) मार रहे है (नष्ट कर रहे है)। सामीजी कहते है, उसी जागृत शूरवीर (ज्ञानी) ने कल्पना (प्रपच) को काट दिया है जिसे मुक्त (माया से मुक्त सद्गुरु) ने अन्तर्ज्ञान का लक्ष्य (रास्ता) दिखा दिया है ॥ १४७ ॥

विना ज्ञाति गुलाम, मूर्ख माया जा थिया ।
हर्दमि हथ ब्रधी करे सामी कनि सलाम ।
रहनि अलेपु आकास जाँ, के नेही निरबाण ।
जिनिखे रम्ता राम, पाण लखायो पाण मे ॥ १४८ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख ज्ञान के अभाव में माया के गुलाम बन गये है। वे सदैव हाथ बाँधकर (गुलामो की तरह) सलाम करते रहते है। पर कुछ (माया से) मुक्त प्रेमी, आकाश के समान निर्लिप्त रहते है क्योकि उन्हे व्यापक ब्रह्म ने अपने आप को दिखा दिया है (उन्होने अपने भीतर ही परमात्मा का दर्शन कर लिया है) ॥ १४८ ॥

बिना ड्रर ड्ररी, मूर्ख मरनि ममत्व मे ।
मृघ तृष्णा जे जल जी, सघनि न सिन्धु तरी ।
स्याणनि खे सामी चए, पेई ख़बर खरी ।
सटे भर्म भरी, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ १४९ ॥

मूर्ख (अज्ञानी लोग) ममता मे पडकर, (माया के) झूठे भय से भयभीत होकर मर रहे हैं। वे मृगतृष्णा के जल रूपी समुद्र को पार नही कर सकते है। (जिस प्रकार मरुभूमि मे प्यासा मृग चमकती हुई रेत को पानी समझकर, अपनी प्यास मिटाने के लिए दौडता ही रहता है, पर कभी भी तृप्त नही होता और अन्त मे अपने प्राण तक खो बैठता है, उसी प्रकार ससार के लोग चमकती हुई रेत के समान माया के पीछे पडकर अपने आप को नष्ट कर देते हैं, पर कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं कर पाते अर्थात् माया से मुक्त नही होते है।) सामीजी कहते हैं पर बुद्धिमानो (ज्ञानवानो) को वास्तविक बात का पता लग गया है, अत वे भ्रम रूपी गठरी को पटककर (माया से मुक्त होकर) स्व-रूप का सुख भोग रहे हैं (ब्रह्मानद मे मस्त है) ॥ १४९ ॥

विना ड्रर ड्ररे, जग्रतु सभोई जीअ मे ।
नागु ज्ञाणी नोडीअ खे, सघे न धीर धरे ।
वह्यो वञे वीचार रे, कूडी कल्प करे ।
जन्मे ऐं मरे, स्वप्न मे सामी चए ॥ १५० ॥

सामीजी कहते हैं कि सारा ससार हृदय मे झूठे भय से भयभीत हो रहा है। (भ्रम के कारण) वह रस्सी को सर्प मान कर अधीर हो उठा है तथा झूठे भ्रमो मे विचारहीन होकर वह रहा है। और (इस प्रकार) स्वप्न मे ही जन्म तथा मृत्यु को प्राप्त करता रहता है ॥ १५० ॥

विना द्रर द्ररे, जन्तु सभोई जीअ मे ।
पछिन्न प्राणी पाण खे, जन्मे नितु मरे ।
पूरणु द्रिसे पीअ खे, को नेही नेण भरे ।
जंहिते हथु धरे, सामी पूरो सतिगुरू ॥ १५१ ॥

सारा ससार हृदय मे झूठे भय से भयभीत हो रहा है, वह अपने को क्षणभगुर मानकर सदैव जन्म एव मृत्यु को प्राप्त होता रहता है (वास्तव मे आत्मा न मरता है, न जन्मता है, केवल शरीर ही जन्म-मरण के चक्कर मे रहता है, पर माया के कारण मनुष्य अपने को आत्मा न मानकर नश्वर-शरीर ही मान वैठता है और सदैव भयभीत होता रहता है) । सामीजी कहते है पर कोई प्रेमी जिस पर सद्गुरु ने अपना पूरा हाथ रखा है (दया की है) वह नेत्र भरकर (जी भर कर) पूर्ण प्रियतम को देखता रहता है ॥ १५१ ॥

विना मुख खाई, सन्सो वियो सन्सार खे ।
कहिजी चले कान का, स्याणप चतुराई ।
इहा ग्गाल्हि समुझ मे, कंहि गुर्मुख खे आई ।
तंहिजी समाई, सामी सुर्ति स्वरूप मे ॥ १५२ ॥

मुख-रहित भ्रम ने ससार को निगल लिया है, उसके आगे किसी की भी विद्वत्ता तथा चतुराई नही चलती है । सामीजी कहते है पर जिस गुरुमुख ने यह (रहस्यपूर्ण) वात समझ ली है, उसकी बुद्धि (परमात्मा के) स्वरूप मे समा गई है । (वह स्वरूप से तद्रूप हो गया है ।) ॥१५२॥

भारी पटु पियो, अड्यो वाच अवाच जो ।
साक्षीअ खे सामी चए, तंहि जोडे जीउ कयो ।
अणहून्दे दर्याह जे, वह मे वञी पियो ।
जद्धी साधूअ सगि थियो, तदी जाग्गी जुर्यो पाण मे ॥ १५३ ॥

सामीजी कहते है कि अवाच (अकथनीय परमात्मा) के आगे माया का भारी आवरण आ पडा है, जिससे जीव ने साक्षात् (आत्मा) को शरीर से जोड लिया है (माया के कारण जीव अपने को आत्मा न मानकर नश्वर शरीर ही मान वैठा है ।) वह (माया के) अस्तित्वहीन समुद्र के प्रवाह मे जा पडा है । पर जव उसे साधुओ का सग प्राप्त हुआ, तव वह जागृत हो अपने आप (परमात्मा) से जा मिला है । ॥ १५३ ॥

भारी हिक वला, वेढ़े वेई सभखे।
जोडे जीअनि खे, थी हणे रात्यूं डींह खला।
मोडे मूहु मुठीअ खो, वेठा के विरला।
जिनिखे ज्ञान कला, सामी डिनी सतिगुरूअ ॥ १५४ ॥

एक अत्यन्त ही बडी नागिन (माया) ने सबको घेर रखा है। वह जीवो को बाँधकर, दिन-रात उन्हे डक मारती रहती है (बेचैन और दुखी बनाती है।) सामीजी कहते है पर जिन विरले-मनुष्यो को सद्गुरु ने ज्ञान की कला सिखाई है (उपदेश दिया है), वे इस दुष्टा से मुख मोड बैठे है। ॥ १५४ ॥

भुली सभु सन्सारु, देही मने पाणखे।
जन्मे, मरे दुख सहे, छडे न अहकारु।
विरले कहि गुर्मुख कयो, वास्तव वीचार।
डिसी साक्षी सारु, सन्मुखु थियो सामी चए ॥ १५५ ॥

ससार के सब लोग (माया मे) अपने (स्वरूप) को भूलकर, अपने आपको शरीर मान बैठे है। वे दुख सहन कर, जन्मते एव मरते रहते है पर फिर भी अहकार नही छोडते हैं। सामीजी कहते है विरले-गुरुमुख ने ही वास्तविक विचार कर अपने सम्मुख साक्षात् परमात्मा को देखा है ॥ १५५ ॥

भुली हिन बन्दे, खासु खजानो गुमु कयो।
खणी विधाई पाण खे, धिके मंझि धन्धे।
डीओ बारे घर जो, डिठो कीन अन्धे।
प्री पाण कन्दे, सहायता सामी चए ॥ १५६ ॥

यह बन्दा (माया मे) अपने आप को भूलकर, विशेष निधि (ज्ञान का खजाना) से हाथ धो बैठा है। इसने स्वय ही अपने को (माया के) झझट मे धकेल दिया है। इस अन्धे (अज्ञानी) ने (हृदय रूपी) घर मे (ज्ञान का) दीपक जलाकर नही देखा है। सामीजी (मनुष्य को उत्साहित करके) कहते है कि परमात्मा स्वय आकर तेरी सहायता करेगा। (यदि तू ज्ञान का दीपक जलाने की कोशिश मात्र करेगा।) ॥ १५६ ॥

महा प्रबल प्राणु, माया महबूबनि जी।
सामी सभ कहि जो, जहि भुलायो पाणु।
साक्षी रहे माणु, सो नजरि अचे कीन की ॥ १५७ ॥

सामीजी (मनुष्यो से) कहते है कि प्रियतम की माया को अत्यन्त ही प्रबल जान। इस (माया) ने सब (जीवो) को अपने स्वरूप से भुला दिया है अत जो (परमात्मा) सदैव साथ रहता है, वह (माया के कारण) दिखाई ही नही देता है ॥ १५७ ॥

महा प्रबलु माया, तरी सघे कोन को।
जहि सिध साधिक जोगी जती, भय मे भुलाया।
मने वेठा पाणखे, कल्पत जी काया।
सतिगुर छद्राया, सामी, छुटा से दुख खो ॥ १५८ ॥

माया अत्यन्त ही प्रबल है, इससे कोई भी पार नही हो सकता है। इस (माया) ने सिद्ध, साधक, योगी एव यति, सबको भय से भ्रमित कर दिया है, अतएव वे स्वय को झूठा (नश्वर) शरीर ही मान बैठे है। सामीजी कहते है पर जिसे सद्गुरु ने (माया से) छुडा दिया है, वह दुखो से मुक्त हो गया है ॥ १५८ ॥

अण हून्दी हर्कत, माया रची ममत्व सॉ।
सामी खस्याई सभ जी, भुलाए बर्कत।
लिव सॉ हणी लत, चढी वेठो चौद्रोल मे ॥ १५९ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने ममता से अस्तित्वहीन (झूठा) खेल रचा है। इस (माया) ने सबको भ्रमित कर उनकी सम्पत्ति छीन ली है। केवल कुछ विरले पुरुष ही (परमात्मा) के प्रेम मे मस्त होकर (माया को) लात मार कर, आत्म-पद को प्राप्त कर सके है ॥ १५९ ॥

अण हून्दे ओले, देउ लिकायो देह मे।
लधो लिव सचीअ सॉ, फकीरनि फोले।
सामी सभि कार्य करे, द्रिसे बुधे ब्रोले।
पर्च्छिन्न पटु खोले, माणिनि दौर दर्स जा ॥ १६० ॥

झूठे भ्रम ने (आत्मा रूपी) देवता को शरीर मे छिपा लिया है (भ्रम के कारण जीव अपने को आत्मा न समझकर शरीर समझ रहा है), पर फकीरो (प्रेमी-भक्तो) ने उसे (आत्मा को) सच्चे प्रेम से ढूंढ कर प्राप्त कर लिया है। सामीजी कहते है कि आत्मा ही देखता, सुनता, बोलता तथा समस्त कार्य करता है, पर (कुछ लोग ही) (प्रच्छन्नता) का आवरण हटाकर अपने स्वरूप (परमात्मा) के दर्शन का सुख भोगते है ॥ १६० ॥

अन्धनि ड्रे आई, माया बणी मोहणी ।
फुरे कयाईं फोक सभि, ड्रेई वड्राई ।
सामी सुजाग्नि खो, भग्री भउ खाई ।
मातामी साई, करिनि गुमु ग्याति सॉं ॥ १६१ ॥

माया अन्धो (अज्ञानी जीवो) के सामने मनहर (सुन्दर) रूप धारण करके आई है। उसने (झूठी) प्रशसा से सबको लूट कर खोखला बना दिया है। सामीजी कहते है पर जागृतो (ज्ञानी जीवो) से वह भयभीत होकर भाग गई (ज्ञानवान् व्यक्तियो पर उसका कुछ भी प्रभाव न पडा)। उन्होंने अपने ज्ञान के बल पर रुलाने वाली माया को गायब कर दिया है। (माया के कारण ही मनुष्य रोते-पीटते रहते हैं) ॥ १६१ ॥

अन्धा जीअ अपार, माया मोहे वसि कया ।
परिच्छिन्न ज्ञाणी पाण खे, मुक्ती खाइन मार ।
माणिनि सुख स्वरूप जो, मुज्राग्रा सचार ।
हर्दमि रहनि हुशार, सामी सम स्वभाव मे ॥ १६२ ॥

माया ने अनेक अन्धे जीवो (अज्ञानी जीवो) को आकर्षित कर अपने वश मे कर लिया है अतएव वे अपने को नश्वर जानकर, मुक्ति से मार खाते रहते हैं (मुक्ति से हाथ धो बैठते है।) सामीजी कहते है पर जो सच्चे जागृत (ज्ञानवान्) है वे सदैव समता भाव मे सावधान होकर (द्वैत की भावना से मुक्त होकर) स्वरूप का सुख (आत्म-सुख) भोगते रहते है ॥ १६२ ॥

कई अणहूदी हर्कत, माया ख्राब ख्याल जी ।
जहिमे मुठा केतिरा, मूर्ख करे ममत्व ।
ज्रमनि मरनि मति रे, भवनि डते खॉं उत ।
सामी सहनि दिकत, जाग्री द्रिसनि न ज्योति खे ॥ १६३ ॥

माया ने झूठे विचारो की अस्तित्वहीन (झूठी) वाजी (खेल, क्रीड़ा) रची है, जिससे ममता कर कितने ही मूर्ख नष्ट हो गये है। सामीजी कहते हैं कि वे बुद्धिहीन जन्म-मरण के चक्कर मे पडकर यहाँ से वहाँ भटक रहे है तथा कष्ट भोग रहे है, पर जागृत होकर आत्म-प्रकाश को नही देखते है ॥ १६३ ॥

कई खलिक अन्धी, माया मोहे ममत्व सॉ ।
मृघ तृष्णा जे जल मे, वञे सभि वहदी ।
विरले कहि गुर्मुख लधी, कृपा साणु कन्धी ।
ब्राभण जहि ब्रन्धी, पजई कया वसि पहिजे ॥ १६४ ॥

माया ने लोगो को ममता से मोहित कर अन्धा (अज्ञानी) बना दिया है, अत वे मृग-तृष्णा के जल मे (मृग-तृष्णा के समान माया मे) बहते जाते है । ब्राह्मण (सामीजी) कहते है कि जिस विरले, गुरुमुख ने पाँच विकारो (काम, क्रोध, लोभ, मोह एव अहकार) को बाँधकर अपने वश मे कर लिया है, उसने ही (परमात्मा की) कृपा से (माया रूपी समुद्र का) किनारा प्राप्त कर लिया है ॥ १६४ ॥

कटे कलेजो, माया ड्राइणि सभजो ।
कहिखो करे कीन की, पापिणि परिहेजो ।
सामी हयुसि सचजो, कहि नेहीअ नर नेजो ।
वरी जहि वेझो, डिठो अन्भय आतमा ॥ १६५ ॥

डाइन-माया सबका कलेजा (हृदय) काट लेती है (आत्मज्ञान से वचित कर देती है।) वह पापिन किसी से भी परहेज नही करती है (दूर नही रहती है) । सामीजी कहते है कि किसी स्नेही पुरुष ने उसे (माया को) सत्य का तीर मारा है एव विरक्त होकर आत्मा को अपने ही समीप देखा है ॥ १६५ ॥

करे नाचु नटी, माया मोहे सभखे ।
छड्डे न पीर फकीर खे, पापिणि पाड़ पटी ।
सन्तनि विधुसि समुझी, ग्रिचीअ मे ग्रटी ।
वेठा खेप खटी, सुञ वसव जे विचमे ॥ १६६ ॥

माया रूपी नर्तकी अपने नृत्य से सबको आकर्षित कर देती है। (ज्ञान की) जड़ उखाडने वाली पापिन, पीर एव फकीर को भी नही छोडती (सन्त-महात्माओ को भी अपने वश मे कर लेती है) । पर कुछ सन्तो ने सोच-समझकर उस (माया) के गले मे रस्सी डाल दी है (उसे अपने वश मे कर लिया है) अत अब वे एकान्त स्थल या बस्ती मे रहकर भी अपनी ही मस्ती मे मस्त रहते है ॥ १६६ ॥

ग्रसे ग्रासे, सभ खे माया मोहिणी ।
कहिखो थिए कीन की, पलु पापिणि पासे ।
कयुसि गुमु ग्याति साँ, कहि नेईअ निरासे ।
हरदमि हिकु भासे, जहिखे अन्दरि आत्मा ।। १६७ ।।

मोहिनी माया सबको निगल लेती है (सबको अपने वश मे कर नष्ट कर देती है।) यह पापिन एक क्षण के लिए भी किसी से दूर नही रहती है। पर जिसे (सब के) भीतर एक ही आत्मा दिखाई देती है, उस आशा को जीत लेने वाले प्रेमी ने गुरु के ज्ञान द्वारा उसे (माया को) गायब कर दिया है (माया से मुक्त हो बैठा है।) ।। १६७ ।।

छलु प्रबलु आहे, माया महबूबनि जी ।
डिठा बुधा कीन की, से वहण वहाए ।
विझी ज्ञारु भर्म जो, भला भुलाए ।
पहिजा पियो खाए, कहिजी चले कीनकी ।। १६८ ।।

प्रियतम की (बनायी हुई) माया छल-कपट करने मे अत्यन्त ही प्रवल है। वह (मनुष्य से) ऐसे ऐसे कार्य कराती है, जो कभी न सुने गये हैं, न देखे गये है। वह भ्रम का जाल फैलाकर सज्जन पुरुषो को भी (अपने स्वरूप से) भुला देती है अतएव वे अपने ही मन के लड्डू खाते रहते हैं, पर उनके सामने किसी की भी नही चलती है (वे मनमानी ही करते रहते है, और दूसरे किसी की बात नही सुनते है।) ।। १६८ ।।

छलु प्रबलु आहे, माया महबूबनि जी ।
सामी छड्यिो सभखे, फाहीअ मझि फाहे ।
को आशिकु चढियो अछ ते, दुत्या गँवाए ।
नकी को ठाहे, नकी भजे भेद भर्म सॉ ।। १६९ ।।

सामीजी कहते है कि प्रियतम की (बनाई हुई) माया छल-कपट करने मे अत्यन्त ही प्रबल है। उसने सब (जीवो) को अपने फन्दे मे फँसा लिया है अत कोई प्रेमी ही द्वैत (भाव) मिटा कर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है। वह न तो भेद तथा भ्रमो को बनाता है और न ही उन्हे मिटाता है। (वह अपने स्वरूप मे ही लीन रहता है।) ।।१६९।।

जीअ कया सभि जेरि, माया मोहे मतिसाँ ।
नचाए नाचूअ ज्यॉ, पाए पर्चिछन्न छेरि ।
कोर्युनि मो को हिकिडो, साधू चढियो सुमेरि ।
विना दिकत देरि, सामी डिसे स्वरूप खे ।। १७० ।।

माया ने चतुराई से सब जीवो को आकर्षित कर अपने अधीन कर लिया है। वह (उन्हे) परिच्छिन्नता (भेदभाव) के नूपुर पहना कर नट की तरह नचाती रहती है। सामीजी कहते है करोडो मे से कोई एक साधु ही (ज्ञान के) सुमेरु (पर्वत) पर अग्रसर हुआ। उसने शीघ्र ही बिना कष्ट उठाये अपने परमात्मा को देख लिया है ॥ १७० ॥

गुद्रे गुलाम करे, माया सभ ससार खे।
हणे कल्पत कर्डा, कहिखो कीन टरे।
सन्तनि खो सामी चए, रहे पञ्ज कोह परे।
ज्योति अखण्डु ब्रुरे, सदा जिनिजे घरमे ॥ १७१ ॥

माया ने सारे विश्व को फँसाकर गुलाम बना दिया है। वह किसी से भी न डर कर, सबको प्रपच के कोडे लगाती रहती है। पर सामीजी कहते है कि जिन सन्तो के (हृदय रूपी) घर मे (ज्ञान की) अखण्ड ज्योति जलती रहती है, उनसे वह (माया) पॉच कोस दूर ही रहती है (माया का प्रभाव उन पर नही पडता है।) ॥ १७१ ॥

जीए मछीअ खे मेउ, मारे ज्ञार कुन्ढीअ सॉ।
तीए माया माणुहुनि खे, छल वल सॉ द्रे छेहु।
सामी बचियो को सूर्मो, भाडी पाए भेउ।
दूडहों अन्दरि द्रेहु, घिरी लधाई घरमो ॥ १७२ ॥

जिस प्रकार मछुआ जाल तथा बसी (फिशिंग हुक) द्वारा मछली को (पकड कर) मार देता है, उसी प्रकार माया मनुष्यो को अपने छल-कपट से नष्ट कर देती है। सामीजी कहते है, कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही (माया के) महान् भेद (रहस्य) को जानकर इससे बच सका है। उसने दूर स्थित परमात्मा को अपने (हृदय रूपी) घर मे ढूंढ लिया है ॥ १७२ ॥

विधा सभि ठगे, माया जीअ ममत्व सॉ।
मन्जिल विधी मर्न खो, कहि औधूत अगे।
जिते तूँ मॉ नाहि का, नको लेपु लगे।
जग मग ज्योति जगे, सामी सदा अन्भई ॥ १७३ ॥

माया ने मोह से सब जीवो को ठग लिया है। किसी अवधूत ने ही मन से परे (उस जगह पर) अपनी मजिल बनायी है, जहाँ न तो किसी प्रकार का लेप ही लगता है और न तू-मैं की भावना ही है, अपितु जहाँ सदैव केवल ज्ञान का प्रकाश ही जगमगाता रहता है ॥ १७३ ॥

विधा जीअ वगे, माया सभि ममत्व सॉ ।
ड्राढी ड्राइणि ड्रन्दरी, कहिंखो कीन संगे ।
को नेही व्युसि निकिरी, अटिकल साणु अग्ने ।
ट्रेई लोकलंघे, सामी वेठो सम थी ॥ १७४ ॥

माया ने सब जीवो को मोह मे डालकर नष्ट कर दिया है। वह बड़ी दाँतो वाली डाइन (माया) किसी का भी साथ नही देती है। सामीजी कहते है कोई प्रेमी ही किसी युक्ति से इस (माया) से मुक्त हो सका है, तथा तीनो लोको को पार कर सम-भाव अपना सका है ॥ १७४ ॥

विधा जीअ वगे, माया मोहे मकर सॉ ।
को नेही व्युसि निकिरी, साधूअ जे सगे ।
सामी मिल्यो सतिगुरू, कयो पारि पग्ने ।
लध्यो लकु लंघे, मिली महद जननि सॉ ॥ १७५ ॥

माया ने कपट से सब जीवो को मोह कर नष्ट कर दिया है, कोई प्रेमी ही साधु के सग से इस (मायाजाल) से निकल सका है। सामीजी कहते हैं कि जिसे सद्‌गुरु मिला है वह अपने ही पैरो से (ससार रूपी) पगडंडी पार कर परमात्मा से जा मिला है ॥ १७५ ॥

सभ खे कानु कसे, माया हयो मोह जो ।
विधाई वल छल सॉ, दुब्धा मझि दसे ।
काँहि गुर्मुख विधुसि ज्ञाति सॉ, ब्राभण ब्रलु खसे ।
जहिंखे राह डसे, सतिगुरु ड्रिनी सच जी ॥ १७६ ॥

माया ने सबको मोह रूपी तीर तान कर मारा है। उसने छल-बल से सबको दुविधा मे फँसा (डाल) दिया है। ब्राह्मण (सामीजी) कहते है, पर जिस गुरुमुख को सद्‌गुरु ने सत्य का रास्ता दिखाया है, उसने उस (माया) का बल छीनकर, अपने ज्ञान से उसे मार दिया है ॥ १७६ ॥

सभ खे ग्रासे, माया वेई मुख रे ।
सामी हिक हरिजन खो, रहे रन पासे ।
जहिंखे हरि भासे, चीटीअ ऐ कुन्चरमें ॥ १७७ ॥

सामीजी कहते है कि यह मुख-हीन माया सबको निगल गई है। पर जिन हरि के भक्त को चीटी एव हाथी मे एक ही परमात्मा दिखाई देता है, उसने यह कुटा (माया) दूर रहती है ॥ १७७ ॥

सभ खे कई कुच, माया पहिजे मोह जी ।
सामी समुझीन कीनकी, अन्धा जीअ असुच ।
ईए चवनि था अनभई, साधूजन समुच ।
राम मिलण जी रुच, अन्दर जिनिजे अणमई ॥ १७८ ॥

माया ने अपने मोह से सबको मैला (अपवित्र) बना दिया है । सामीजी कहते है, पर अपवित्र अन्धे (अज्ञानी) जीव उस (माया) को नही समझ पाते हैं । समस्त अनुभवी साधु यही कहते है कि जिनके भीतर राम से मिलने की अनत (उत्कठा) अभिलाषा है (वे ही माया के कीचड से मुक्त रहते है ।) ॥ १७८ ॥

सभखे तमा तार, लग्री माया मोह जी ।
भवनि भौसागर मे, पाए जन्म अपार ।
सटियो पिण्डु मथे तो, कहि हरिजन हुशियार ।
जिते जीत न हार, तिते कयाऊ तकियो ॥ १७९ ॥

सबको माया मोह की गहरी तमन्ना लगी हुई है, अत वे अनेक जन्म प्राप्त कर ससार-सागर मे भटक रहे है । किसी हरि के प्रवीण भक्त ने ही सिर से (माया के) पिण्ड को पटक कर, वहाँ जाकर निवास किया है, जहाँ न हार है और न जीत । (आत्म-पद को प्राप्त कर लिया है ।) ॥ १७९ ॥

सभ खे दिलासे, लाए माया मोहिणी ।
फुर्ने फाहीअ मे विझी, पलक न थिए पासे ।
कयुसि गुमु ज्ञाति साँ, कहि नेहीअ निरासे ।
सामी सम भासे, जहिखे अनभय आतमा ॥ १८० ॥

मोहिनी माया सबको (झूठे) दिलासे देकर भ्रम रूपी फन्दे मे फँसा देती है, वह पल भर भी किसी से दूर नही रहती है । सामीजी कहते है कि जिस निराश प्रेमी को सब मे समान (एक ही) आत्मा दिखाई देता है, उसने ही अपने ज्ञान से उस (माया) को निर्मूल कर दिया है ॥ १८० ॥

सभखे वसि करे, माया हणी मोचिडा ।
द्राढी द्राइणि द्रुन्दरी, कहिखो कीन टरे ।
सन्तनि सापुरुषनि खो, रहे पाण परे ।
सधे न धीर धरे, सामी ज्ञाणी सूर्मा ॥ १८१ ॥

माया सबको जूते लगाकर (जोर-जबरदस्ती से) अपने वश मे कर लेती है। वह अत्यन्त बडी दाँतो वाली डाइन (माया) किसी से भी दूर नही रहती है। सामीजी कहते है, पर साधु-सन्तो से वह स्वय ही दूर रहती है क्योंकि उन्हे शूरवीर (ज्ञानी) जानकर, वह (माया) धैर्य नहीं धारण कर सकती है ॥ १८१ ॥

सभु विश्व वसि कई, माया मोहे ममत्व साँ।
कहिखे छड्दे कीन की, निपटि निर्दई।
को नेही व्यसि निकिरी, रगी रस मई।
जहिखे शाल्हि चई, सामी सतिगुरू समजी ॥ १८२ ॥

माया ने ममता मे सारे विश्व को मोहित कर अपने वश में कर रखा है, वह निपट निर्दयी (क्रूर) किसी को भी नहीं छोड़ती है। सामीजी कहते हैं कि जिसे सद्गुरु ने समता (आत्मा एव परमात्मा एक ही है) की बात बता दी है, वही आत्मा के रग मे रँगा प्रेमी इस (मायाजाल) से बचकर निकल गया है ॥ १८२ ॥

सभु ससार छले, माया कयो वसि पहिंजे।
सामी सुपिर्युनि जी, वेठो राह मले।
बली बलु हारे रहिया, कहिंजी कान चले।
जहिखे सचु पले, तहिखे डन्डवतु दूरोही करे ॥ १८३ ॥

सामीजी कहते है—माया ने सारे विश्व को धोखे से अपने वश मे कर लिया है, अत वह प्रियतम (परमात्मा) की राह को बन्द कर बैठा है। (माया के आगे) बलवान् अपना बल लगाकर हार गये, पर किसी की एक भी न चली (किसी ने भी माया को वश मे न किया)। पर जिसे सत्य का पता लग गया है, उसे वह (माया) दूर से ही दण्डवत (प्रणाम) करती है ॥ १८३ ॥

सभेई हैरानु, डिठा माया मोह मे।
त्रिलो को गुरुमुख रहे, सम सीतलु निरबाण।
जहिखे आतमज्ञानु, सामी डिनो सतिगुरूअ ॥ १८४ ॥

सामीजी कहते है कि माया के मोह मे सब परेशान ही दिखाई दिये। जिसे सद्गुरु ने आत्मज्ञान दिया है, ऐसा कोई विरला गुरुमुख व्यक्ति ही सम, शीतल और मुक्त रह पाया है ॥ १८४ ॥

सभोई ससारु, माया कयो वसि पहिंजे ।
खाली छद्रियाऊँ कोनको, जोआणु बूढ़ु ऐं ब्राए ।
विझी ज्ञारु भर्म जो, कयाई खलिक खोआरु ।
को सामी पुरुष सचारु, जाग़ी छुटे जिन खो ॥ १८५ ॥

माया ने सारे विश्व को अपने वश मे कर लिया है । इस (माया) ने, जवान, वृद्ध एव बालक किसी को भी (अपने प्रभाव से), खाली नही छोडा है । इसने भ्रम-जाल फैलाकर ससार के लोगो को बदनाम कर दिया है । सामीजी कहते हैं कोई सत्यव्रती पुरुष ही जागृत होकर इससे मुक्त हो सका है ॥ १८५ ॥

सारी खलिक खोआरु, रहे माया मोह मे ।
उथन्दे वेहन्दे निंड् मे, करे कीन करारु ।
व्रिले को गुर्मुखु बचियो, सामी चए सचारु ।
द्रिठो जहि दीदारु, पहिंजे अख्ये पहिंजो ॥ १८६ ॥

सब लोग माया-मोह मे बदनाम होते रहते है । अत उन्हे उठते-बैठते तथा नीद मे भी चैन प्राप्त नही होता है । सामीजी कहते हैं कि वही विरला सत्यव्रती गुरुमुख इस (माया) से बच गया है, जिसने अपनी आँखो से ही अपने स्वरूप (परमात्मा) का दर्शन किया है ॥ १८६ ॥

सारी विश्व छली, माया मोहे ममत्व सॉं ।
कोर्युनि मे को हिकिडो, ब्राभण बचियो ब्रली ।
जहिखे सतिगुर समुझ जी, गुझी ग़ाल्हि सली ।
सो रमी रामकली, ग़ाए वेहद बाग़ मे ॥ १८७ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते है कि माया ने ममता से सारे विश्व को आकर्षित कर छल (ठग) लिया है, करोडो मे से कोई एक बलवान् (ज्ञानी) ही इससे बच सका है । जिसे सद्गुरु ने ज्ञान की छिपी हुई बात बता दी है, वह अनन्त के उद्यान मे बैठकर, मस्त होकर, रामकली (रागिनी का नाम) आलाप रहा है ।

रामकली भारत के गायन विद्या के अनुसार रामकली हिंडोल राग की पॉच स्त्रियो मे से एक है । इस रागिनी मे योग तथा योगियो की स्तुति ही गाई जाती है । गीता मे जो कुछ भी योग तथा योगियो के विषय मे कहा गया है, वह सिन्ध के कवि-शिरोमणि शाह अब्दुल लतीफ ने रामकली मे गाया है ॥ १८७ ॥

सारी विश्व छली, माया मोहे ममत्व साँ ।
को ब्रिलो वेसासी वचियो, ब्रांभणु चए ब्रली ।
जहिखे ड्रिनी सतिगुरुअ, बेहद मति भली ।
रमी रामकली, ग्रावन्दो वते ग्रोठ मे ॥ १८८ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने ममता से सारे विश्व को आकर्षित कर ठग लिया है, अत कोई विरला विश्वासी गुरुमुख ही इस (माया) से वच सका है। जिसे सद्गुरु ने अपार सद्बुद्धि दी है, वह मस्त होकर अपने ही गाँव (हृदय) मे रामकली गीत गाता हुआ घूम रहा है ॥ १८८ ॥

सारी विश्व छली, माया मोहे ममत्व साँ ।
ब्रिलो को गुर्मुख बचियो, ब्राभणु चए ब्रली ।
जहिखे सुतह स्वरूप जी, सतिगुर ग्रालिह सली ।
ग्राणे सभु भली, कई कर्ता पुरुष जी ॥ १८९ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते है कि माया ने सारे ससार को ममता से मोह कर ठग लिया है। अत कोई विरला-बलवान-गुरुमुख ही इस (माया) से वच सका है। जिसे सद्गुरु ने परमात्मा के स्वरूप की (रहस्यमयी) वात वता दी है, वह कर्तार पुरुष द्वारा किये हुए कामो मे भलाई ही मानता है (परमात्मा के किये हुए कार्यो मे ही प्रसन्न रहता है।) ॥ १८९ ॥

सारी विश्व ठग्री, माया मोहे ममत्व साँ ।
कहिखे छड्रे कोन की, वते साणु लग्री ।
सामी कहि सही कई, जोगेस्वर जग्री ।
तहिखो उथी भग्री, सति करे गर्कु ग्राति मे ॥ १९० ॥

माया ने ममता से सारे विश्व को मोह कर ठग लिया है। वह किसी को भी नही छोडती, सवके साथ लगी हुई है। सामीजी कहते हैं कि जिस योगीश्वर ने जागृत होकर अपने को सच्चे ज्ञान मे डुवोकर इस (माया के सही रूप) को जान लिया है, उससे ही यह (माया) दूर भागी है ॥ १९० ॥

सारी विश्व लुटी, माया मोहे ममत्व साँ ।
कहिखे छडे कोन की, विना ढव ढुटी ।
को नेहीं व्युसि निकिरी, केरे कल्प कुटी ।
जहिजी ग्रण्ढि छुटी, सामी पेई साध सगि ॥ १९१ ॥

माया ने ममता से सारे विश्व को आकर्षित कर लूट लिया है। यह अडियल, किसी को भी अपने वश करने के सिवा नही छोडती (सबको अपने वश में करके ही चैन लेती है)। सामीजी कहते हैं कि जिस प्रेमी की साधुओं के सग से (माया की) गाँठ खुल गई है, वह प्रपच रूपी कुटिया को गिराकर (प्रपच से मुक्त होकर) निकल गया है (माया से मुक्त हो गया है।) ॥ १९१ ॥

सारी विश्व वही, वही वाच वहण मे।
लंघे चढ़ियो लख्य ते, को ताल्बी तशी।
जंहिखे साध सगति जी, रमिज हथि लशी।
अन्भय ज्योति जशी, सामी डि्ठाई देहि मे ॥ १९२ ॥

सारा ससार प्रपच के तेज प्रवाह मे बह कर थपेड़े खा रहा है। कोई (मुक्ति का) इच्छुक प्रेमी ही सत्र कुछ त्याग कर (ज्ञान के) लक्ष्य की ओर अग्रसर हुआ है। सामीजी कहते हैं, जिसे साधु-सगति की युक्ति हाथ लग गई है (जिसे साधु-सगति की महिमा का पता लग गया है), उसने जागृत होकर अपने शरीर मे ही (आप मे ही) आत्मज्ञान का प्रकाश देख लिया है ॥ १९२ ॥

सारो जगु अन्धो, थियो माया जे मोह में।
विझी वेठा पाणखे, व्रिना समुझ सन्धो।
को आशिकु चढियो अछ्ते, ज्ञाणी धूडि धन्धो।
वारे खपति खन्धो, सामी मिल्यो स्वरूप साँ ॥ १९३ ॥

माया के मोह मे सारा ससार अन्धा हो गया है अत वह बुद्धिहीन होकर अपने को (परमात्मा से) अलग मान बैठा है। सामीजी कहते है कि कोई प्रेमी ही (माया के) झूठे व्यवहार को जानकर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो सका है। वही (माया के) वही-खाते (हिसाव-किताव) से निपट कर, स्वरुप से जा मिला है ॥ १९३ ॥

सारो जगु जखे थो कुते जाँ कल्पति मे।
मर्म मानुष्य देहि जो, को रहतिवानु रखे।
जो मिली साध सङ्गति साँ, अन्भय रसु चखे।
सामी सम लखे, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ १९४ ॥

सामीजी कहते है कि सारा ससार कुत्ते की तरह (माया के) प्रपच मे भौकता रहता है। कोई प्रेमी ही मानव-देह का महत्व समझ कर, साधुओ का सग कर, आत्म-रस चख कर, बाहर और भीतर एक ही आत्मा को देखता है ॥ १९४ ॥

सारो जग्गु जखे थो, मनन जे महलात में ।
कोर्युनि मे को हिकिडो, आत्म रसु चखे ।
जंहिते हथु रखे, सामी पूरो सतिगुरू ॥ १९५ ॥

सामीजी कहते है कि सारा ससार मन के महलो मे (झूठी कल्पनाओं मे) व्यर्थ ही शेखी बघारता रहता है। करोड़ो मे से उसी एक व्यक्ति ने आत्म-रस का स्वाद लिया है, जिस पर पूर्ण सद्‌गुरु ने अपना हाथ रखा है (कृपा की है।) ॥ १९५ ॥

सारो जग्गु जखे, स्वप्न मे सामी चए ।
जाग्यो पहिजे जीअ मे कल्पति कोन रखे ।
अन्दरि ब्राहरि नभ ज्यॉं, अन्भय लालु लखे ।
चेतन रसु चखे, रोम रोम मे राति ड्रीह ॥ १९६ ॥

सामीजी कहते है कि सारा ससार (माया के झूठे) स्वप्न मे बड़बडाता रहता है पर जागृत (व्यक्ति) अपने हृदय मे (माया की) कलुषता नही रखता है। वह आकाश की भॉंति (निर्लिप्त हो) बाहर तथा भीतर आत्म-ज्ञान रूपी रत्न को ही देखता रहता है। उसका रोम-रोम दिन-रात आत्मरस का स्वाद लेता रहता है ॥ १९६ ॥

सारो जग्गु जखे, स्वप्न मे सामी चए ।
जाग्यो पहिजे जीअ मे, रती न मेलु रखे ।
अन्दरि ब्राहरि आत्मा, पूरणु पाकु लखे ।
चेतनु रसु चखे, लूअँ लूअँ लाल गुलाल थी ॥ १९७ ॥

सामीजी कहते है कि सारा ससार (माया के झूठे) सपने मे बड़बडाता रहता है। पर जागृत (ज्ञानवान्) अपने हृदय मे रत्ती भर भी (माया की) मैल नही रखता है। उसे बाहर-भीतर पूर्ण, पवित्र आत्मा ही दिखाई देता है तथा उसका रोम-रोम गुलाल की तरह लाल होकर (आत्मानन्द के रग मे रगकर) आत्मरस का स्वाद लेता रहता है ॥१९७॥

सभ साँ साणु लगी, रहे माया मोहिणी ।
सामी सदाई करे, ब्रन्धी ठाह ठगी ।
सोटी हयसि सम जी, कहि जोगेस्वर जगी ।
भय खो उथी भगी, कूँ कूँ कन्दी कुतीअ जाँ ॥ १९८ ॥

सामीजी कहते है कि मोहिनी माया सब के साथ लगी हुई है (सब को प्रभावित करती रहती है ।) वह सदैव लोगो को बाँधकर (अपने जाल मे फँसाकर) कपट एव धोखे का व्यवहार करती रहती है । पर जब कोई जाग्रत योगीश्वर उसे समता का डडा लगाता है तब वह भयभीत होकर कुत्ते की तरह कूँ कूँ करके भाग जाती है । (जिस प्रकार कुत्ते पर डडे का प्रहार करने से, वह दुखी हो कूँ कूँ कर रोता है एव भयभीत होकर भाग जाता है, उसी प्रकार समता के डडे लगने पर माया भी भयभीत होकर भाग जाती है ।) ॥ १९८ ॥

सारो जगु जले, थो बिना बाहि अन्दर मे ।
विरलो को गुर्मुख बचे, जहिखे सचु पले ।
सामी मिल्या स्वरूप साँ, पञ्जई दूत दले ।
कहिखे कीन सले, अन्भय सुख अन्दर जो ॥ १९९ ॥

सामीजी कहते है कि सारा ससार भीतर की (मन की अथवा माया की) झूठी आग मे जल रहा है । जिसे सत्य (परमात्मा) की प्राप्ति हुई है ऐसा कोई विरला गुरुमुख ही माया से बचकर, पाँचो ही दूतो (पाँच विकारो) को मार कर, स्वरूप से जा मिला है । वह अपने आन्तरिक आत्म-सुख का रहस्य किसी को भी नही बताता ॥ १९९ ॥

सारो जगु झुरे, थो माया कारणि मन मे ।
जहिखे डाइणि डेह मे, फिकुर साणु फुरे ।
को नेही नारायण खो, दर्सनु दानु घुरे ।
पर्ची प्रेम पुरे, सामी वेठो सम थी ॥ २०० ॥

सारा ससार माया के कारण मन मे दुखी होता है । वह डाइन उस (मानव) को अपने फन्दे मे फँसाकर लूट लेती है । सामीजी कहते है, कोई प्रेमी ही नारायण से उसके दर्शन का दान माँगता है तथा पूर्ण (परमात्मा) के प्रेम मे ही प्रसन्न होकर, समता अपना कर, सुखी हो जाता है ॥ २०० ॥

सारो जगु नचे, मनन जे महलात मे।
अठई पहर अन्दर में, थो बिना बाहि पचे।
कोर्युनि मे को हिकिडो, वला खों बचे।
जहिखे दृष्टि अचे, सामी सूरजु सिरते ॥ २०१ ॥

सारा ससार मन के महलो (झूठी कल्पनाओ) मे नाच रहा है। वह आठो पहर भीतर की झूठी आग मे जल रहा है। सामीजी कहते है कि करोडो मे से वही एक (मनुष्य) ही इस (माया रूपी) नागिन से बच सका है, जिसे अपने सिर के ऊपर सूर्य (ज्ञान का सूर्य) दृष्टिगोचर हुआ है (जिसे आत्म-साक्षात्कार हुआ है।) ॥ २०१ ॥

सारो जगु बुड़े, थो मृग तृष्णा जे जल में।
सामी सूर्य खे ड्रिसी, ज्ञानी कीन लुड़े।
विधा जहि गुड़े, पेरनि हेठो पञ्जई ॥ २०२ ॥

सामीजी कहते है कि सारा ससार (माया रूपी) मृग-तृष्णा के जल मे डूब रहा है। पर जिसने पाँचो (विकारो) को जीतकर अपने पैरो के नीचे डाल दिया है, वह ज्ञानी (आत्मा रूपी) सूर्य को देखकर कभी विचलित नही होता है ॥ २०२ ॥

सारो जगु वहे, थो अणहून्दे दर्याह मे।
समुझ रे सामी चए, इस्थिति कीन रहे।
को गुर्मुखु पारि पए, साध सगति जे धीर सॉ ॥ २०३ ॥

सामीजी कहते हैं कि सारा ससार (माया के) अस्तित्वहीन (झूठे) समुद्र मे वह रहा है, ज्ञान के अभाव के कारण वह स्थित नही रह पाता है। केवल कोई गुरुमुख ही साधु-सगत के धैर्य से (जो धैर्य धारण कर साधुओं का सग करता है) पार हो पाता है ॥ २०३ ॥

कूडी कल्प करे, मूर्ख मुठा मति रे।
भवनि भौसागर मे, नाना रूप धरे।
पर्चिछन्नता पापिणि खों, को प्रेमी रहे परे।
सामी ड्रिसी ठरे, पहिंजे अख्ये पाण खे ॥ २०४ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे भ्रमो मे कितने ही मूर्ख बुद्धिहीन हो अपने आप को नष्ट कर रहे हैं। वे नाना प्रकार के रूप धारण कर भवसागर मे

भटकते रहते है। पर कोई प्रेमी ही पर्च्छन्नता रूपी (नश्वर मायाजाल) पापिन से दूर रहता है और अपनी आँखो से (अपने को) परमात्मा को देख शीतल होता है ॥ २०४ ॥

कूड़ी वड्राई, काया माया कुल जी।
कहिसाँ नेवहु न थिए, ड्राइणि दुखदाई।
सामी सभ ससार मे, मिठी मन भाई।
कहि व्रिले विञाई, गुर्मुख गुर ज्ञाति साँ ॥ २०५ ॥

सामीजी कहते है कि काया, माया तथा कुल की प्रशसा सब झूठी है। यह दुखदायी डाइन (माया) किसी से भी प्रेम नही निभाती है (सबको धोखा देती है।) सारे ससार मे मधुर एव मन को भानेवाली (मधुर समझी जाने वाली माया) को कोई विरला-गुरुमुख ही गुरु के ज्ञान (उपदेश) से लुप्त कर सका है ॥ २०५ ॥

कूड़ी वड्राई, काया माया कुल जी।
छड्रे थिए छल वल साँ, पल मे पराई।
सामी जंहिखे साध सगि, अन्भय मे आई।
तहि जाग्री लिवँ लाई, पाणु वराए पाण साँ ॥ २०६ ॥

सामीजी कहते है कि काया, माया तथा कुल की प्रशसा सब झूठी है, यह (प्रशसा) एक ही क्षण मे छल-बल से हमे छोड कर, दूसरो की हो जाती है। पर जिसे साधुओ के सग से आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है, वही जाग्रत तथा (ससार से) विरक्त होकर अपने स्वरूप (परमात्मा) से प्रेम कर पाया है ॥ २०६ ॥

कूड़ी वड्राई, काया माया कुल जी।
समुझ विना ससार खे, मिठी मन भाई।
गुर्मुख गुर ज्ञाति साँ, ममत्व मिटाई।
सामी सदाई, पर्चो रहे पाण मे ॥ २०७ ॥

सामीजी कहते है कि काया, माया तथा कुल की वडाई सब झूठी है पर विचार-रहित (बुद्धिहीन) ससार (के लोगो) को यह मधुर तथा मन को भाने वाली लग रही है। केवल गुरुमुख ही गुरु के ज्ञान से, ममता मिटाकर अपने स्वरूप (परमात्मा) मे सदैव प्रसन्न रहता है ॥ २०७ ॥

कूडी वडाई, काया, माया कुल जी ।
सहजे थे सामी चए, पल मे पराई ।
जीएं सुख स्वप्न जो, रहे नाॅ राई ।
तहिसाॅ लिव लाई, मूर्ख जीअ मर्म रे ॥ २०८ ॥

सामीजी कहते है कि काया, माया तथा कुल की वडाई सब झूठी है, यह सहज ही पल भर मे पराई हो जाती है (अस्थिर है) । जिस प्रकार सपने मे प्राप्त सुख (जाग्रत होने पर) राई जितना भी नही रहता है, उसी प्रकार मूर्ख जीव निर्लज्ज होकर झूठे स्वप्न-सुख (माया) से प्रेम लगा कर वैठे हैं ॥ २०८ ॥

करे मति मैली, मूर्ख मुठा केतिरा ।
सामी पिया ससार जे, फाहीअ मझि फैली ।
रहे न्यारो नभ ज्याँ, को साधूजन सैली ।
जीए मजिनू लैली, लिवँ साॅ लालु गुलालु थे ॥ २०९ ॥

सामीजी कहते है कि कितने ही मूर्ख (माया मे) अपनी बुद्धि मैली कर नष्ट हो गये है, वे ससार के माया-पाश मे फँस गये है । कोई सच्चा साधु-पुरुष ही आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है । वह लैला-मजनू की तरह (प्रियतम परमात्मा के) प्रेम मे अनुरक्त रहता है । (परमात्मा के प्रेम मे ही मस्त रहता है ।) ॥ २०९ ॥

फुर्ने कया फोक, फुरे जीअ जहान जा ।
भवनि भौसागर मे, मिटी पाए मोक ।
को आशिकु चढियो अछ्ते, लघे ट्रेई लोक ।
जहिखे रमिज रोक, सामी ड्रिनी सतिगुरूअ ॥ २१० ॥

भ्रम ने ससार के जीवों को लूटकर खोखला वना दिया है (आत्म-धन से वचित कर दिया है), अतएव वे व्यर्थ ही भवसागर मे भटक रहे है । सामीजी कहते है कि जैसे सद्गुरु ने (भ्रमो को) रोकने की युक्ति वता दी है, वह प्रेमी तीनो ही लोको को पार कर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो गया है ॥ २१० ॥

फुर्ने करे फकीर, कया जीअ जहान जा ।
पिटिनि कारणि पेट जे, धरे सधनि न धीर ।
सामी के साधू वचिया, ज्ञानवान गम्भीर ।
पाण लखायो पीर, जिनिखे पूरणु पाण मे ॥ २११ ॥

भ्रम ने ससार के जीवो को फकीर बना दिया है, अतः वे अधीर होकर पेट के कारण अपने को पीट रहे है (दुखी हो रहे है)। सामीजी कहते है कि वे ही गम्भीर ज्ञानवान् साधु (भ्रमो से) बच पाये है जिन्हे पीर (सद्‌गुरु) ने अपने आप मे ही पूर्ण परमात्मा को दिखा दिया है ॥ २११ ॥

फुर्ने करे फकीर, कया जीअ जहान जा।
भवनि भौसागर मे, धरे सघनि न धीर।
को मुजाग्रो सूर्मो, सामी चढियो सीर।
जहिखे पूरे पीर, लख्य लखाई अन्भई ॥ २१२ ॥

भ्रम ने ससार के जीवो को फकीर बना दिया है (उन्हे आत्म-धन से वचित कर दिया है), अत वे अधीर होकर ससार-सागर मे भटक रहे है। सामीजी कहते है कि वही जाग्रत शूरवीर (ज्ञानी) परमात्मा की ओर उन्मुख हुआ जिसे पूर्णसन्त (सद्‌गुरु) ने आत्मज्ञान का लक्ष्य दिखाया है ॥ २१२ ॥

फुर्ने खो फार्कु, को विरलो वेसासी रहे।
सामी ड्रिनो सतिगुरूअ, जहिखे तत्व तिलकु।
अन्दरि ब्राहरि आत्मा, हर्दमि ड्रिसे हिकु।
जीएं नाणो नाजिक, रखे सराफ सदूक मे ॥ २१३ ॥

सामीजी कहते है कि वही विरला विश्वासी भ्रमो से मुक्त रह सका है जिसे सद्‌गुरु ने तत्वज्ञान रूपी तिलक दिया है (तत्वज्ञान का उपदेश दिया है)। वह हरदम, बाहर तथा भीतर एक ही आत्मा को देखता है, वह सराफ की तरह मूल्यवान खज़ाने (आत्म-धन) को (हृदय-रूपी) सदूक मे सुरक्षित रखता है ॥ २१३ ॥

फुर्ने खो फार्कु, सामी रहे को सूर्मो।
जहिंखे ड्रिनो सतिगुरूअ, ऐन, अभेद अशिकु।
वेठो अन्भय तखित ते, लाए तत्व तिल्कु।
हर्दम ड्रिसे हिकु, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ २१४ ॥

सामीजी कहते है कि वही शूरवीर (ज्ञानी) भ्रमो से मुक्त रहता है, जिसे सद्‌गुरु ने सच्चा अभेद (जो भेदा न जा सके) प्रेम दिया है।

वह तत्वज्ञान रूपी तिलक लगाकर आत्मज्ञान रूपी सिंहासन पर बैठा है, तथा हर पल, भीतर एवं बाहर एक ही आत्मा देखता है ॥ २१४ ॥

फुर्ने फासाए, छद्रिया जीअ जहान जा ।
भवनि भौसागर, मे कोट जन्म पाए ।
तहिंजो लेखो कोन को, जहिखे छुटो छद्राए ।
वेही वज्राए, नगारो निरबाण जो ॥ २१५ ॥

भ्रमो ने ससार के जीवो को उलझा दिया है, अत वे करोडो जन्म पाकर ससार-सागर मे भटक रहे हैं। पर जिसे मुक्त (माया से मुक्त अर्थात् सद्गुरु) ने (माया से) छुडा दिया है उसकी समानता करने वाला कोई नही हैं। वह तो सदैव निर्वाण रूपी नगारा बजाता रहता है (निर्वाण प्राप्त कर उसी मे मस्त रहता है) ॥ २१५ ॥

फुर्ने फासाए, छद्रिया जीअ जहान जा ।
भुली भवन पाण ही, कोट जन्म पाए ।
सामी वचियो को सूर्मो, साधूअ जे साए ।
ममत्व मिटाए सदा माणे सेज सुखु ॥ २१६ ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रमो ने ससार के जीवो को फँसा दिया है, अत वे अपने (स्वरूप) को भूलकर, कोटि-कोटि जन्म पाकर, भटक रहे हैं। कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही साधु के सहारे (भ्रमो से) बच सका है तथा ममत्व मिटाकर सदैव सुख-शय्या का उपभोग करता है (परमात्मा के साथ विलास करता है) ॥ २१६ ॥

फुर्ने फासाए, विधा जीअ वहण मे ।
गोता खाइनि गैब जा, कोट जन्म पाए ।
सामी वचियो को सूर्मो, हरि सॉ लिवँ लाए ।
वेठो वज्राए, नगारो निरबाण जो ॥ २१७ ॥

भ्रमो ने जीवो को अपने प्रवाह मे फँसा दिया है; अत वे कोटि जन्म पाकर गैब (रहस्यमय) के गोते खा रहे है। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही परमात्मा से स्नेह कर इन (भ्रमो) से बच सका है तथा निर्वाण रूपी नगारा बजा रहा है (निर्वाण प्राप्त कर उसी मे मग्न रहता है) ॥ २१७ ॥

फुर्ने फुरे फोक, कया जीअ जहान जा।
पच्छिनु ज्ञाणी पाणखे, सामी सहनि सोक।
को आशिकु चढ़ियो अछते, लघे ट्रई लोक।
मारे वेठो झोक, आदी अन्भय घर में॥ २१८॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रमो ने ससार के जीवो को लूट कर खोखला वना दिया है, अत वे अपने को नश्वर समझकर दु ख भोग रहे है (अपने को शाश्वत आत्मा न मानकर नश्वर शरीर समझ रहे है)। कोई प्रेमी ही तीनो लोको को पार कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है तथा दृढ (स्थिर) होकर आदि आत्म-ज्ञान रूपी घर मे वैठा है (भ्रमो से अविचलित होकर आत्म-ज्ञान को अपना वैठा है।)॥ २१८॥

फुर्ने फुरे फोक, कया जीअ जहान जा।
पिटिनि कारणि पेट जे, चित्त मे चोडह लोक।
सामी वेठा सम मे, के जाग्रया मारे झोक।
जिनि खे ड्रिना सतिगुरूअ, रीझी टका रोक।
लाए महवत मोक, पोख पकाऊ पहिंजी॥ २१९॥

भ्रमो ने ससार के जीवो को लूटकर खोखला वना दिया है, अत वे पेट के कारण चित्त के द्वारा चौदहो लोको मे भटकते रहते है। सामीजी कहते है कि कुछ जाग्रत (ज्ञानी) जिन्हे सद्गुरु ने प्रसन्न होकर छुटे पैसे (ज्ञान का उपदेश) दे दिये है, वे दृढ-निश्चयी होकर समता को अपना वैठे हैं। उन्होने प्रेम का पानी देकर (परमात्मा से प्रेम कर) अपनी (मनुष्य-जन्म रूपी) फसल पकाई है अर्थात् परमात्मा से प्रेम कर अपना मानव-जीवन सफल वनाया है॥ २१९॥

फुर्ने फुरे फोक, कया जीअ जहान जा।
भवनि भौसागर मे, पाए तमॉ तोकु।
इस्थति रहे आकास जॉ, को औधूतु असोकु।
जाग्री लोकु परलोकु, लै ड्रिठो जहि लख्य मे॥ २२०॥

सामीजी कहते है कि भ्रमो ने ससार के जीवो को लूटकर खोखला वना दिया है; वे इच्छाओ के पीछे पडकर, ससार रूपी सागर मे भटक रहे है। केवल कुछ शोक-रहित अवधूत ही आकाश की भाँति स्थित (अचल) रहते है। उन्होने जाग्रत होकर लोक तथा परलोक को आत्मा मे ही देख लिया है॥ २२०॥

सामीजी कहते है कोई शूरवीर ही साधुओं की कृपा से (काल से) बच सका है तथा चित्त को समेटकर आकाश की भाँति स्थिर हो सका है ॥४८७॥

मूर्ख मवासी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
सामी पिया सन्सार जे, फुर्न मे फासी ।
जाग्री कहिं जोगीअ कई, क्षण मे खलासी ।
अलखु अविनासी, डिठो जंहि अख्युनि सां ॥ ४८८ ॥

सामीजी कहते है—अहकारी मूर्ख सत्य को नही पहचानते हैं, अत. वे ससार के भ्रमो मे उलझ गये है । किन्तु वह जाग्रत जोगी जिसने अपनी आँखो से अलख अविनाशी (आत्मा) को देख लिया है, एक ही क्षण मे (ससार के भ्रमो) को खत्म कर देता है ॥ ४८८ ॥

मूर्ख मुल्हि ग्रिधो, भुली भूत भर्म जो ।
जन्म मरण जे दुख मे, ब्रधी पाणु विधो ।
ईहो इशारो अन्भई, कहिं प्रेमीअ पुर्धो ।
समता मझि सिधो, सूक्षमु थी सामी चए ॥ ४८९ ॥

सामीजी कहते है मूर्ख जीव ने भ्रमित होकर भ्रम-रूपी भूत को मूल्य देकर (सहर्ष) ले लिया है और इस प्रकार अपने आपको जन्म-मरण के दुखो से बाँध लिया है, किन्तु जिस प्रेमी ने अन्तर्ज्ञान के इशारे को समझ लिया है, वह समता को अपनाकर सूक्ष्म (आत्म-पद) को प्राप्त कर बैठा है ॥ ४८९ ॥

मूर्ख मूर्खाई, छद्रिनि कीन क्षण भरि ।
पुठो डेई पाण खे, छाणिनि नितु छाई ।
दानाहनि जे दिलि मे, सुत्ह सफाई ।
अन्भय मे आई, सामी तिनि खे समता ॥ ४९० ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख लोग एक पल भी मूर्खता को नही छोडते है । वे अपने स्वरूप से मुख मोडकर, सदैव ही खाक छानते रहते है (मानव-जीवन नष्ट करते रहते हैं) किन्तु जिन बुद्धिमानो के हृदय साफ हैं (जो अज्ञान-रूपी कीचड से मुक्त है) वे भीतर स्थिर एक ही आत्मा को देख लेते है ॥ ४९० ॥

मूर्ख मैं मेरी, मिठी ज्ञाणनि मन मे ।
प्रीति न कनि प्रतीति साॅ, पर्ची पकेरी ।
कालु न डि्सनि कन्ध ते, वज्रे थो वेरी ।
भस्म जी ढेरी, सामी कयो जंहि सभखे ॥ ४९१ ॥

सामीजी कहते है मूर्ख लोग मै-मेरी की भावना को मधुर मानते है। वे आत्मतुष्ट होकर पूर्ण विश्वास के साथ (परमात्मा से) प्रेम भी नही करते हैं। तथा जिस वैरी काल ने सबको जलाकर राख का ढेर बना दिया है, उसे भी अपने कन्धे पर सवार हुआ नही देखते है। ४९१ ॥

मूर्ख वादि कई, पण्डतु ज्ञाणी पाण खे ।
बुधायाई सभखे, चारई वेद चई ।
सामी सार स्वरूप खे, कयाई कोन सही ।
व्यरो पाण वही, डेई हथ ब्यनि खे ॥ ४९२ ॥

सामीजी कहते है मूर्ख अपने को पण्डित मानकर वाद-विवाद करता है, तथा सब लोगो को चारो वेद सुनाता है किन्तु स्वरूप-ज्ञान से स्वय भी अनभिज्ञ रहता है। अत दूसरो को सहारा (उपदेश) देकर भी खुद (अज्ञान के) प्रवाह मे बह जाता है ॥ ४९२ ॥

मूर्ख सभि मुझी, पिया वेदनि जे वाच मे ।
सामी लख्य स्वरूप जी, कहि स्याणे समुझी ।
जंहिखे डि्नी कुन्जी, सतिगुर ऐन आकास जी ॥ ४९३ ॥

सामीजी कहते है मूर्ख लोग वेदो के प्रावह मे ही उलझ जाते है, किन्तु वह बुद्धिमान् जिसे सदगुरू ने ज्ञान की कुजी दे दी है, आत्मा के स्वरूप को पहचानता तथा समझ पाता है ॥४९३ ॥

रहिया सभि रुझी, जप तप साधन योग मे ।
सुत्ह सुधि स्वरूपजी, कहिखे कोन सुझी ।
कोर्युनि मों कहि हिकिडे, ब्याईअ विना बुझी ।
जंहिखे ग्राल्हि गुझी, सामी सली सीतगुरुअ ॥ ४९४ ॥

सामीजी कहते है कि सब लोग जप तप तथा योग-साधना मे ही उलझे हुए है। किसी ने भी विशुद्ध स्वरूप की जानकारी प्राप्त नही की है। करोड़ो मे से उसी एक (व्यक्ति) ने द्वैत-रहित होकर उसे (आत्मा के स्वरूप को) समझा है, जिसे सद्गुरू ने रहस्यमयी (आत्मज्ञान-संबधी) बात बता दी है ॥ ४९४ ॥

फुर्ने मझि फासी, पिया जीअ जहान जा ।
भुली भवनि पाणही, चर्या चौरासी ।
सामी कई जहि सूर्मे, खतु फारे खलासी ।
अलखु अविनासी, डिठो जहि अभेदु थी ॥ २२१ ॥

ससार के जीव भ्रमो मे फँस गये हैं। वे पागल अपने (स्वरूप) को भूल कर चौरासी (लाख योनियो) मे स्वेच्छा से भटक रहे हैं। सामीजी कहते है पर जिस शूरवीर (ज्ञानी) ने (पूर्वकर्म रूपी) पत्र को फाड़कर खत्म कर दिया है (जो पूर्व-कर्मों को काटकर मुक्त हो बैठा है), उसने ही अभेद (द्वैत रहित अथवा आत्मा एव परमात्मा को अभेद मानने वाला) होकर अलख अविनाशी को देखा है ॥ २२१ ॥

फुर्ने मझि फासी, पिया जीअ जहान जा ।
भुली भवनि पाणही, चर्या चौरासी ।
सामी वचियो को साध संगि, विरलो वेसासी ।
अलखु अविनासी, घिरी लधो जहि घर मो ॥ २२२ ॥

ससार के जीव भ्रमो मे फँस गये हैं। वे पागल, अपने (स्वरूप) को भूल कर, चौरासी (लाख योनियो) मे स्वय ही भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं, वही विरला विश्वासी साधुओं के सग के सहारे (भ्रमो से) बच गया है जिसने (हृदय रूपी) घर मे झाँककर अलख अविनाशी को ढूंढ लिया है ॥ २२२ ॥

फुर्ने मझि फासी, पिया जीअ जहान जा ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को नेही निरासी ।
सामी जंहिखे सर्व गति, सम सता भासी ।
गंगा गया कासी, भवे कीन भुलनि जाँ ॥ २२३ ॥

सामीजी कहते हैं कि ससार के जीव भ्रमो मे फँस गये है। वह निराश प्रेमी ही आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है, जिसे सर्वगत एक ही सत्ता (आत्मा) समान रूप से दिखाई देती है, वह भूले हुए लोगो (अज्ञानी जीवो) की तरह गगा, गया तथा काशी मे नही भटकता है ॥ २२३ ॥

मूर्ख विना मति, भुली पिया भर्म में।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपनि मझि खपति।
आशिक चढिया अछ ते, करे श्रुधि सम्वति।
निन्दा ऐं उस्तति, सामी ज्ञाणनि सम थी ॥ ४८४ ॥

सामीजी कहते है मूर्ख लोग बुद्धिहीन होकर भ्रमो मे अपने आपको भूल बैठे है। वे ससार को सत्य मानकर उसके झझट मे फँसे हुए है, किन्तु प्रेमीजन निन्दा एव स्तुति को सम समझकर, शुद्ध आचरण द्वारा ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होते है ॥ ४८४ ॥

मूर्ख भोगे भोग, रज्ञनि न रतीअ जेतिरो।
तोड़े पाइनि अन्ति मे, सामी नाना रोग।
रहनि अलेपु आकास जॉ, के औधूत असोग।
जप तप साधन जोग, साधे जिनि सिधि कया ॥ ४८५ ॥

सामीजी कहते है यद्यपि मूर्ख लोग भोग भोगकर अन्त मे नाना प्रकार के रोगो को प्राप्त करते है, फिर भी वे (उन भोगो से) रत्ती भर भी तृप्त नही होते है। किन्तु वे शोक-रहित अवधूत (प्रेमी भक्त) जिन्होने जप, तप एव योग साधनाकर अपने आपको पूर्ण बना दिया है—आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते है ॥ ४८५ ॥

मूर्ख मति मलीन, पिटिनि कारण पेट जे।
मानुष्य देह अमोल्य जो, कदुरु ज्ञाणनि कीन।
उल्टी अन्तरि मुखु थिया, के प्रेमी प्रवीन।
सदा साणु सगीन, सामी रहनि सुमेर जाँ ॥ ४८६ ॥

मलीन बुद्धि वाले मूर्ख लोग पेट के कारण भटकते रहते हैं। वे अमूल्य मानुष-देह की कद्र (मूल्य) नही करते है। सामीजी कहते हैं—किन्तु प्रवीण प्रेमी (ससार से विरक्त हो), अन्तर्मुख होकर सदैव ही सुमेरु पर्वत की तरह परमात्मा के साथ (अटल) रहते है ॥ ४८६ ॥

मूर्ख मनु लाए, भोगिनि भोग भर्म जा।
कालु न डिसनि कन्ध ते, जो खर्चु यो खाए।
सामी बचियो को सूर्मो, साधूअ जे साए।
चित्त चौको पाए, इस्थति थियो आकास जाँ ॥ ४८७ ॥

मूर्ख लोग मन लगाकर भ्रमो के भोग भोगते रहते है। वे ज़िन्दगी को खानेवाले (नष्ट करनेवाले) काल को अपने कन्धे पर सवार नही देखते है।

रहे सदाई साणु, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ।
अन्धो द्रिसे कीन की, कढी ममत्व माणु ।
भवे सदाई भर्म में, दरि दरि थी हैरानु ।
सामी थिए सुज्ञाणु, पाए द्राति गुरूअजी ।। ४९५ ।।

सामीजी कहते है कि यद्यपि प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा सदैव ही साथ रहती है, फिर भी अन्धा (अज्ञानी) जीव ममता एव बडप्पन को छोडकर उसे नही देख पाता है अत. वह भ्रम से परेशान होकर सदैव द्वार-द्वार भटकता रहता है । किन्तु जब उसे गुरू (आत्मज्ञान का उपदेश रूपी) उपहार देता है, तब वह पूर्ण ज्ञानी बन जाता है ।। ४९५ ।।

रहे सदाई साणु, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ।
तहिखे द्रिसे कीनकी, अन्धो जीउ अज्ञाणु ।
भवे भवसागर में, करे ममत्व माणु ।
जे प्री लखाए पाण, त सुखी थिए सामी चए ।। ४९६ ।।

सामीजी कहते है कि यद्यपि प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा सदैव ही साथ रहती है, फिर भी अज्ञानी अन्धा जीव उसे नही देख पाता है । अत वह ममता एवं प्रशसा मे पडकर ससार-रूपी सागर मे भटकता रहता है । किन्तु यदि प्रियतम उसे अपने आप को दिखा देता है (परमात्मा कृपा करता है) तो वह सुखी होता है ।। ४९६ ।।

रहे होतु हजूरि, सामी सभ कहोजे ।
भर्म मझि भुलो करे, मूर्ख ज्ञाणनि दूरि ।
रात्यू द्रीह मर्म रे, मरनि सन्से सूरि ।
चढ़ी पके पूरि, थिया मुकाबिल महबती ।। ४९७ ।।

सामीजी कहते है यद्यपि प्रियतम सबके अत्यन्त ही निकट रहता है, फिर भी भ्रमो मे भ्रमित होकर, मूर्ख लोग उसे अपने से अत्यन्त दूर जानते है । अत वे निर्लज्जता-पूर्वक दिन-रात भ्रमो मे दुखी होकर मरते (नष्ट होते) रहते है, किन्तु पूर्ण प्रेमी ज्ञान के मार्ग पर चढकर पूर्ण पद को प्राप्त कर लेते है ।। ४९७ ।।

रात्यू द्रीह पिटे, थो मूर्खु जीउ मर्म रे ।
मिली चाह चमारि सॉ, पहिजो पाण भिटे ।
विना साध सगति जे, ममत्व कीन मिटे ।
सामी तद्री छुटे, जद्री जाग्री जुड़े पाण मे ।। ४९८ ।।

मूर्ख जीव निर्लज्जतापूर्वक दिन-रात भटकते रहते है। वे चाह-रूपी चमारिन से मिलकर (बुरी इच्छाओ मे फँसकर) स्वय ही भटकते रहते है। सामीजी कहते है कि साधुओ के सग के सिवा उनकी ममता मिटनेवाली नही है। वे तव ही (अज्ञान से) मुक्त होते है जब जाग्रत होकर (आत्मज्ञान प्राप्त कर) अपने आप (स्वरूप) से जुड जाते है ॥४९८॥

रात्यूं द्रीह राखी, मूर्ख कनि माया जी।
कालु न डिसनि कन्ध ते, कड़ो कटाखी।
समुझी सटी सिरतो, कहि हरिजन हलाखी।
सामी थी साक्षी वर्ते, विधि वीचार सॉं ॥ ४९९ ॥

मूर्ख दिन-रात माया की रखवाली करते रहते है। वे अपने कन्धे पर तीक्ष्ण कटाक्ष करनेवाली मृत्यु को नही देखते है। सामीजी कहते है, किन्तु हरि के भक्तो ने (माया को) दु खदायी समझकर, उसे अपने सिर से उतार कर फेक दिया है, अत वे आत्मा का साक्षात्कार कर सब के साथ नियम एव विचार-पूर्ण वर्ताव करते है ॥ ४९९ ॥

लखे जीअ लुडहनि, था अण-हून्दे दर्याह मे।
चडो ज्ञाणी चित्त मे, मूर्ख कीनि मुडनि।
सामी कीअ छुड़नि, जे ब्रधा कल्पत पाणही ॥ ५०० ॥

लाखो जीव (अज्ञान-रूपी) मिथ्या समुद्र मे वहते रहते है। सामीजी कहते है, इन मूर्खो ने अज्ञान के प्रवाह मे बहते रहने मे ही अपनी भलाई मान ली है, अत वे इस प्रवाह से दूर नही हो पाते (अज्ञान से बचने की कोशिश नही करते है)। भला जिन्होने स्वयं ही अपने आप को प्रपच मे बाँध लिया है, वे उससे कैसे मुक्त हो सकते है? ५०० ॥

लखे लबाडी, गाल्हियूं कनि अगम जूं।
सामी कूडाए साधू थिया, मथो ऐ ड्राढ़ी।
गलि पाइनि कपट जी, काती कोहाडी।
भाडि खई भारी, वहन्दा वञनि वह मे ॥ ५०१ ॥

सामीजी कहते है लाखो झूठी वकवास करनेवाले अगम की वाते करते रहते है। वे अपना सिर एव दाढी मुडवाकर साधू वन जाते हैं तथा अपने गले मे झूठे प्रपच की तलवार एव कुल्हाडी लटकाकर (अपना अहित कर) सासारिक प्रपच के भारी वोझ को उठाकर अज्ञान के प्रवाह मे वहते जाते हैं ॥ ५०१ ॥

लखे लेखा कनि, पछाणू को हिकिडो ।
लेखो छदे अलेख मे, के गुर्मुख गर्कु रहनि ।
ब्या सभि वादि वकनि, स्वप्न मे सामी चए ।। ५०२ ।।

सामीजी कहते है, लाखो लोग (परमात्मा सबधी) वाते तथा वादो पर वाद-विवाद करते रहते है । किन्तु कुछ विरल गुरुमुख ही बातो को छोड़ कर अलख परमात्मा को पहचानते हैं, एव (उसके प्रेम मे) डूबे रहते हैं ।। ५०२ ।।

लखे लेखारी, लेखे मझि लुढी विया ।
गोता खाइनि गैब जा, भर्म करे भारी ।
चढियो चेतन चिट ते, को व्रिलो वीचारी ।
सामी विश्व सारी, जाग्री द्रिठी जहिं ज्योति मे ।। ५०३ ।।

सामीजी कहते है—लाखो वकवास करनेवाले वक-वक मे ही बह गये है । वे भ्रमो मे भ्रमित होकर गैब के गोते खाते रहते है । उस विरल विचारवान् ने ही ज्ञान के मार्ग को अपनाया है, जिसने जाग्रत होकर एक ही आत्मा के प्रकाश को सारे विश्व मे देखा है ।। ५०३ ।।

लखे लेखारी, लेखे मझि लुढी विया ।
जीए पसू घुमनि घाणे मे, पाए पाजारी ।
सामी माणे सान्ति सुखु, को व्रिले वीचारी ।
भौसागरु भारी, लघे चढियो लख्य ते ।। ५०४ ।।

लाखो वकवास करनेवाले जीव, व्यर्थ की वक वक मे वह गये है । जिस प्रकार तेल की चक्की चलानेवाला पशु आँखो पर पट्टी चढवाकर तथा गले मे रस्सी से वँधकर चक्की के चारो तरफ चकर लगाता रहता है, उसी प्रकार जीव, अज्ञान-रूपी पट्ट से वँधा हुआ ससार-रूपी चक्की के चारो ओर चक्कर काटता रहता है । सामीजी कहते हैं, कोई विरल विचारवान् ही भारी भवसागर पार कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होकर शान्ति-सुख का आनन्द लूटता है ।। ५०४ ।।

लखे लेखारी, लेखे मझि लुढी विया ।
लघे चढियो लख्य ते, को उतमु अधिकारी ।
जहिंखे द्रिनो सतिगुरुअ, भवँसो भारी ।
सामी सचारी, मुखि रखी मोजा करे ।। ५०५ ।।

सामीजी कहते हैं लाखो झूठी वकवास करनेवाले वक-वक मे ही

वह गये हैं। केवल वही उत्तम अधिकारी ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, जिसे सद्गुरु ने पूर्ण विश्वास दिया है, अत वह सत्यवादी परमात्मा की ओर मुख कर आनन्द मनाता रहता है ॥ ५०५ ॥

लखे लेखारू, लेखे मंझि लुढ़ी विया।
लंघे चढियो लख्य ते, को तमा रे तारू।
जहिखे पातो सतिगुरुअ, दिव अजन दारू।
सामी मल्हारु मारू, ग्रावन्द वते ग्रोठ मे ॥ ५०६ ॥

सामीजी कहते हैं—लाखो झूठी बकवास करनेवाले बक-बक के प्रवाह मे वह गये हैं, केवल वही इच्छा-रहित तैराक लक्ष्य की ओर अग्रसर हुआ है जिसे सद्गुरु ने ज्ञान-रूपी अजन तथा प्रेम-रूपी शराब दी है, अत वह मल्हार (प्रसन्नता से परिपूर्ण गीत) एव मारू (दुख से परिपूर्ण गीत) राग ससार-रूपी गाँव मे गाता फिरता है, अर्थात् सुख एव दुख मे समान भाव से रहता है ॥ ५०६ ॥

लखे लेखारी, वहनि वाच वहण मे।
लघे चढियो लख्य ते, को भाग्यवानु भारी।
सटी जहि सामी चए, परिच्छिन पिण्ड सारी।
समता सच्चारी, मुखि रखी मौजा करे ॥ ५०७ ॥

सामीजी कहते हैं—लाखो झूठी बकवास करनेवाले अज्ञान के तेज प्रवाह मे वहते रहते है। वही महाभाग्यशाली ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, जिसने समस्त परिच्छिन्नता के पिण्ड को पटक दिया है तथा सच्चाई एव समता को अपनाकर परमात्मा की ओर मुखकर आनद मनाता रहता है ॥ ५०७ ॥

लखे लोक लाफी, लाफा हणनि लख्य रे।
स्वप्न मे साहिब थी, मुलिक द्रियन माफी।
जाग्री कहि योधे कई, सामी चए साफी।
जहिखे सराफी, सतिगुरु द्रसी स्वरूप जी ॥ ५०८ ॥

लाखो झूठे लोग लक्ष्य-रहित (ज्ञान-रहित) होकर झूठी वडाई करते रहते है। वे सपने मे साहब (राजा) बनकर देश को माफी देते हैं। अर्थात् अज्ञानवश दूसरो को ज्ञान का उपदेश देते हैं। सामीजी कहते है, वही विरल-योद्धा जाग्रत होकर अज्ञान-रूपी कीचड साफ करता है, जिसे सद्गुरु रूपी महाजन (Banker) ने स्वरूप का सच्चा खजाना दिखाया है ॥ ५०८ ॥

लखे हजारे, ग्राल्हियू कनि वेदान्त जूं।
द्रिसे सिक सचीअ साँ, को ब्रिलो वीचारी।
लहे लालु अन्दर मों, गैबी गोतो मारे।
नानत निवारे, सुखी थे सामी चए ॥ ५०९ ॥

सामीजी कहते हैं हजारों-लाखों लोग वेदान्त की बातें करते रहते हैं, किन्तु केवल विरल-विचारवान् ही सच्चे प्रेम से परमात्मा को देखता है। वह हृदय के भीतर रहस्यमय गोता लगाकर (आत्मा-रूपी) लाल ढूंढ लेता है, अर्थात् हृदय मे स्थित आत्मा-रूपी लाल को ज्ञान की डुबकी द्वारा निकाल लेता है तथा द्वैत त्यागकर सुखी बन जाता है ॥ ५०९ ॥

लखे हजारे, ग्राल्हियू कनि वेदान्त जूं।
सामी सौदो प्रेम जो, ब्रिलो को धारे।
जे विहे अन्भय हट ते, नानत निवारे।
पर्ची पीआरे, प्यालो भेद भर्म रे ॥ ५१० ॥

सामीजी कहते है—हजारो-लाखो लोग वेदान्त की बाते करते रहते है, किन्तु कोई विरल-पुरुष ही द्वैत त्यागकर आत्मज्ञान-रूपी दुकान पर बैठकर प्रेम का सौदा करता है तथा आत्म-तुष्ट होकर भेद एव भ्रम से रहित, प्रेम या ज्ञान-रूपी प्याला पिलाता है अर्थात् दूसरो को भेद व भ्रम से मुक्तकर आत्मज्ञान से सन्तुष्ट करता है ॥ ५१० ॥

लखे हजारे, वेद पढी वादी थिया।
ब्रिले को विधि साँ बुझे, विधि साँ वीचारे।
आणे मन पवन खे, अन्दरि आतारे।
नानत निवारे, सीतलु थियो सामी चए ॥ ५११ ॥

सामीजी कहते है—हजारो-लाखो लोग वेद पढकर विवादी बन गये है। उनमे से कोई विरल-व्यक्ति ही विधिपूर्वक उस पर विचार करता है तथा विधिपूर्वक उसे समझता है। वह वायु के समान बहनेवाले मन को सासारिक विपयो से हटाकर अन्तर्मुखी बनाता है अर्थात् मन को हृदय मे स्थित आत्मा मे लीन करता है एव द्वैत मिटाकर शीतल बनता है ॥५११॥

लाफाँ-लख हणनि, पण्डतु ग्राणी पाणखे।
ग्राल्हियू वेदनि जूं बुधी, मर्मु न न रखनि मनि।
ठाकुर वसे घर में, सो अन्धा कीन द्रिसनि।
लखाया लहनि, सामी सुपिर्युनि खे ॥ ५१२ ॥

भोगनि भुलाए, छद्रिया जीअ जहान जा ।
भवनि पँहिजो पाणही, फाही गलि पाए ।
कालु न द्रिसनि सिर ते, वरी वाझाए ।
विया सभि विञाए, हीरो जन्मु हथनिमो ॥ २५० ॥

विषय-भोगो ने ससार के जीवो को (अपने स्वरूप से) भुला दिया है अत वे स्वय ही गले मे फाँसी डालकर भटक रहे है। वे उलट कर (विरक्त होकर) सिर पर खडी मृत्यु को अपनी ओर ताकते हुए नही देखते है। वे सव अपने हाथो से हीरे के समान (मानव) जीवन को गँवा रहे है ॥ २५० ॥

भोगनि भुलाए, विधा जीअ जहान जा ।
धिका खाइनि धर्म जा, कोट जन्म पाए ।
सामी वचियो को सूर्मो, साधुअ जे साए ।
ममत्व मिटाए, मिल्यो शुधि स्वरूप साँ ॥ २५१ ॥

विषय-भोगो ने ससार के जीवो को (अपने स्वरूप से) भुला दिया है, अत वे कोटि-कोटि जन्म पाकर व्यर्थ के धक्के खा रहे है। सामीजी कहते है कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही साधुओ के सहारे, ममत्व मिटाकर, भोगो से बचकर, शुद्ध स्वरूप से जा मिला है ॥ २५१ ॥

भोगनि भुलाए, विधा जीअ जहान जा ।
पाणु पँहिजो पाण मे, वेठा विञाए ।
सामी समुझनि कीन की, कोट जन्म पाए ।
छुटो छुटाए, त अचनि अन्भय पद मे ॥ २५२ ॥

सामीजी कहते है कि भोगो ने ससार के जीवो को भुला दिया है, अत वे अपने अह मे अपने (परमात्मा अथवा स्वरूप) को खो वैठे है। करोडो जन्म पाकर भी वे यह नही समझते है पर जव कोई मुक्त (माया से मुक्त व्यक्ति अथवा सद्गुरु) उन्हे (माया तथा विषय भोगो से) छुडाता है तभी वे आत्म-पद को प्राप्त होते है ॥ २५२ ॥

भोगनि भुलाए, विधा जीअ जहान जा ।
सामी सुम्हिया सुखि थी, पेट ग्रिचीअ पाए ।
कालु न द्रिसनि कन्ध ते, खर्ची थो खाए ।
लेखो चुकाए, अची घुटीन्दुइ ओचितो ॥ २५३ ॥

भोगों ने संसार के जीवों को (अपने स्वरूप से) भुला दिया है अतः वे निश्चिन्त होकर सुख की नींद सो रहे हैं (अज्ञान में ही मस्त रहते हैं)। वे कन्धे पर सवार (आयु अथवा जीवन को) खरचने-खाने वाली मृत्यु को नहीं देखते हैं। सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं कि यह (काल) तेरा हिसाव किताव तुझे पकड़कर, अचानक ही चुका देगा ॥ २५३ ॥

भोगनि भुलाए, विधा जीअ वहण में।
गोता खाइनि गैंव जा, कोट जन्म पाए।
सामी वचियो को सूर्मो, साधूअ जे साए।
ममत्व मिटाए, पूरणु डिठो जँहि पीअ खे ॥ २५४ ॥

भोगों ने ससार के जीवों को (प्रपच के) प्रवाह मे डाल दिया है। वे कोटि जन्म पाकर गैंव के गोते खा रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि किसी शूरवीर (ज्ञानी) ने ही, साधुओं के सहारे ममता मिटाकर, भोगों से वचकर, पूर्ण प्रियतम को देखा है ॥ २५४ ॥

भोगनि भुलाए, विधो जीउ वहण मे।
पुठी डेई पाणखे, गोता नितु खाए।
उल्टी डिसे कीनकी, मूँहु मढ़ीअ पाए।
जागयो जागाए, त सुखी थिए, सामी चए ॥ २५५ ॥

सामीजी कहते है कि भोगों ने जीव को (प्रपच के) प्रवाह मे डाल दिया है, अतः वह अपने स्वरूप से मुख मोड़कर सदैव (प्रपच रूपी समुद्र मे) गोते खा रहा है, वह पलट कर (ससार से विरक्त होकर) हृदय मे नहीं देखता है। पर जव उसे जागृत (सद्गुरु) जगाता है (ज्ञान देता है) तभी वह सुखी होता है ॥ २५५ ॥

भोगनि भुलायो, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा।
सति ज्ञाणी संसार खे, भर्म भुलायो।
सामी सङ्गि साधूअ जे, उल्टी घरि आयो।
नकी विञायो, नकी पातो पाण रे ॥ २५६ ॥

भोगों ने प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा को (अपने स्वरूप से) भुला रखा है अतः वह भ्रम मे भूलकर ससार को सत्य मान वैठा है। सामीजी कहते हैं कि जो (व्यक्ति) साधुओं के सग से (ससार से) विरक्त होकर (हृदय रूपी) घर मे वापस लौट आया है, उसने न तो कुछ खोया है और न कुछ पाया है ॥ २५६ ॥

भोगनि भुलायो, सभ कँहिखो सुप्री।
सतिगुर पॅहिजे सघ सॉ, जॅहिखे जागायो।
सुख दुख जे सागर मे, विझी वहायो।
उल्टी घरि आयो, सामी चए को सूर्मो॥ २५७॥

सामीजी कहते है कि भोगो ने सब जीवो को प्रियतम से वचित कर दिया है (भोगो मे पड़ कर सब प्रियतम को भूल गये है) तथा उन्हे सुख-दुख के सागर मे डालकर वहा दिया है (नष्ट कर दिया है)। पर जिसे सद्गुरु ने अपनी शक्ति से जागृत किया है वही शूरवीर (ज्ञानी) पलट कर (ससार से विरक्त होकर) अपने घर मे आया है (आत्मा को पा लिया है)॥ २५७॥

भोगनि मझि भुली, पिया जीअ जहान जा।
मरनि मति मर्म रे, रात्यॉ द्वीह रुली।
सामी लधो कॅहि सूर्मे, अन्भय घरु असुली।
मेटे कल्प कुली, इस्थिति थियो आकास जॉ॥ २५८॥

ससार के सब जीव भोगो मे पडकर (अपने आप को) भूल गये है। वे निर्लज्ज एव बुद्धिहीन, दिन रात भटक-भटक कर मर रहे है। सामीजी कहते है कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही समस्त प्रपच को मिटाकर, आत्म-ज्ञान के आदि घर को ढूँढ कर, आकाश की भॉति स्थिर हो सका है॥ २५८॥

भोग भोगे भारी, कूडा रज्ञनि कीन की।
खयो वतनि सिर ते, तमा तगारी।
सुखी रहे सामी चए, को विलो वीचारी।
बेहद जी बारी, पटे डिठो जॅहि पाण खे॥ २५९॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोग (अज्ञानी जीव) अनेक भोग भोगकर भी सन्तुष्ट (तृप्त) नही होते है। वे सिर पर कामना रूपी तगारी (बोझ) लेकर फिरते रहते है। कोई विरला विचारवान् ही अनत की खिडकी खोलकर, अपने स्वरूप को देखकर, सुखी हुआ है॥ २५९॥

भोग भोगे भोगी, रज्ञनि न रतीअ जेत्रो।
जिनिजी माया मोह सॉ, मति कई मोगी।
माणे सुखु स्वरूप जो, को जागायो जोगी।
सदा निरोगी सामी रहे स्वभाव मे॥ २६०॥

सामीजी कहते है कि वह भोगी जिसकी माया ने मोह से बुद्धि मन्द कर दी है, अनेक भोग भोगकर भी रत्ती मात्र भी तृप्त नही होता। पर जागृत योगी सदैव ही निरोगी (भोग रूपी रोग से मुक्त) होकर, स्वरूप के सुख का उपभोग करता है एव अपने ही भावो मे मस्त रहता है ॥ २६० ॥

भोले भुलाए, सभखे माया मोहिणी।
मति खसे मोॻो करे, वह मे वहाए।
सामी बचियो को सूर्मो, साधूअ जे साए।
वेठो वॼाए, नगारो निरबाण जो ॥ २६१ ॥

मोहिनी माया सब को भ्रम मे भुला देती है, वह (माया) सब की बुद्धि छीन कर, मन्द बनाकर (प्रपच के) प्रवाह मे वहा देती है। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही साधुओ के सहारे से (माया से) बच सका है एव बैठकर निर्वाण रूपी नगाड़ा बजा रहा है (माया से मुक्त हो आत्मानद प्राप्त कर रहा है) ॥ २६१ ॥

भोले भुलायो, अणहून्दे अज्ञान जे।
पुठी ॾेई पाणखे, दह दिसा धायो।
स्वप्न मे सामी चाए, सभु रगु रचायो।
अखि खुल्ये आयो, ऐनु अभेद आकास मे ॥ २६२ ॥

सामीजी कहते है (मनुष्य को) अस्तित्व-हीन (झूठे) अज्ञान के भ्रम ने भुला दिया है, अत वह अपने से मुख मोडकर (अपने स्वरूप को न पहचानकर) दसो दिशाओ मे भटक रहा है। स्वप्नवत् (ससार मे) उसने अनेक (प्रपच के) रग रच दिये हैं, पर आँख खुलने पर ही (ज्ञान प्राप्त होते ही) उसे अनत मे अभेद, चेतन आत्मा दिखाई देती है ॥ २६२ ॥

भोलो पियो भारी, जुदाईअ जो जग मे।
तपी तॅहिजे ताव सॉ, नचनि नर नारी।
सामी वेठो सम थी, को ॿिलो वीचारी।
वेहद जी बारी, पटे ॾिठो जॅहि पाणखे ॥ २६३ ॥

सामीजी कहते है कि ससार मे द्वैत का ऐसा भारी भ्रम फैल गया है, जिसके ताप मे तपकर (प्रभावित होकर) समस्त नर-नारी नाच रहे है। वही विरला विचारवान् सम होकर (दुख-सुख मे समभाव

होकर) बैठा है, जिसने अनत की खिडकी खोलकर अपने स्वरूप को देख लिया है ॥ २६३ ॥

मनन जी माखी, चटे जीअ चर्या थिया ।
काया माया कुल मे, कल्पत नितु काखी ।
कँहि सुजाणे सही कई, सामी थी साक्षी ।
छद्दे हलाखी, जुर्यो रहे जगदीस सॉ ॥ २६४ ॥

सामीजी कहते है कि मन का शहद चाट कर जीव पागल से हो गये है (मन के सकल्प-विकल्प मे जीव अपने आप को खो बैठे है) । वे सदैव काया, माया तथा कुल के प्रपच के ही इच्छुक रहते है । कोई (ज्ञानी) ही दुखदायी (माया) के सही रूप को जानकर, साक्षात् जगदीश्वर से जा जुडा (मिला) है ॥ २६४ ॥

मनन मझि मुठा, ज्ञानी ध्यानी गृहस्ती ।
सूधी राह छद्दे करे, पाइनि पेर पुठा ।
वारौ वार समुझ रे, कल्पत काल कुठा ।
मूर्ख रहनि रूठा, सामी शुधि स्वरूप खो ॥ २६५ ॥

सामीजी कहते है कि ज्ञानी, ध्यानी तथा गृहस्थी मन के सकल्प-विकल्प मे नष्ट हो गये है, वे सीधी राह छोडकर, उल्टी राह पर पैर रख रहे है (उल्टी राह अपना रहे है) । वे बुद्धिहीन होकर बारबार जन्म-मृत्यु के चक्कर मे भटक रहे है । ये मूर्ख शुद्ध स्वरूप (परमात्मा) से सदैव रूठे रहते है (दूर रहते है) ॥ २६५ ॥

रङ्ग अपारु रचियो, माया मोह ममत्व जो ।
तँहिमे जगु तद्रूपु थी, नाना भाइ नचियो ।
को साधू जन सूर्मो, बला खो बचियो ।
आत्म शुधि सचो, सामी माणे सर्वगति ॥ २६६ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने मोह तथा ममता का असीम प्रपच रचा है, जिसमे ससार तद्रूप होकर, नाना भाँति से नाच रहा है । कोई शूरवीर (ज्ञानी) साधु ही (माया रूपी) नागिन से बच पाया है एव शुद्ध तथा शाश्वत आत्म-सुख का उपभोग कर रहा है ॥ २६६ ॥

लाहे जँहि धरी, ममत्व पिण्डु मथेतो ।
सामी तँहि सापुरुप जी, लूअँ लूअँ सभुठरी ।
मँझो तारि तरी, पहुतो पारि प्रियनि सॉ ॥ २६७ ॥

सामीजी कहते है कि जिस महान् पुरुष ने सिर से ममता का पिण्ड उतार कर रख दिया है, उसका रोम-रोन शीतल हो गया है। वह (ससार रूपी) समुद्र को तैर कर, उस पार प्रियतम से जा मिला है ॥ २६७ ॥

लाहे जँहि भरी, बिधी माया ममत्व जी ।
सामी तँहि सापुरुष जी, लूअँ लूअँ पई ठरी ।
मोटी ड्रिसे कीन की, माया मझि अरी ।
वञे पाण मरी, जीअन्दे हिन जहान मो ॥ २६८ ॥

सामीजी कहते है कि जिस श्रेष्ठ पुरुष ने माया-ममता की गठरी उतार कर रख दी है, उसका रोम-रोम शीतल हो गया है। वह माया मे दुवारा नही फँसता (एक वार माया से मुक्त होने पर, वह दुवारा उसमे नही फँसता है)। वह इस ससार से जीवनमुक्त हो जाता है ॥ २६८ ॥

सन्से जगु सारो, मुझाए मोंझो कयो ।
कँहिजी हले कीनकी, चतुराई चारो ।
ब्रिलो को गुर्मुखु रहे, निर्पक्षु न्यारो ।
अन्भय उज्यारो, सामी डिठो जँहि सम थी ॥ २६९ ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रम ने सारे ससार को उलझन मे डाल कर मन्द वना दिया है। इस (भ्रम) के आगे किसी की कोई युक्ति तथा चतुराई नही चलती है। वही विरला-गुरुमुख निष्पक्ष तथा न्यारा रहता है जिसने सम होकर आत्मज्ञान का प्रकाश देखा है ॥ २६९ ॥

सन्से सभु सन्सार, लोड़े लावारो कयो ।
लही सघे न लख्य रे, परिच्छिन्नता जो पारु ।
साख ड्रिए सामी चए, साधूजनु सच्यारु ।
करे जँहि करारु, पूरणु डिठो पीअ खे ॥ २७० ॥

भ्रम ने सारे समार को (अपने प्रवाह मे) वहाकर नष्ट कर दिया है। आत्मज्ञान के सिवा वह परिच्छिन्नता (आत्मा-परमात्मा के अलग भाव का रहस्य) का अन्त भी नही पा सकता है। सामीजी कहते है कि सत्यव्रती सावु पुरुषो ने यही साक्षी दी है कि वही (मनुष्य) चैन से रहता है, जिसने पूर्ण प्रियतम (परमात्मा) को देख लिया है ॥ २७० ॥

सन्से सभेई, डङ्गे जीअ दुःखी कया ।
अणहून्दी अविद्या जी, जहरु चढ़ी वेई ।
सामी सुधि पेई, ईहा जागये जन खे ॥ २७१ ॥

भ्रम ने सब जीवो को अपने डक से दुखी कर दिया है, अस्तित्वहीन अविद्या का जहर उन (जीवो) मे व्याप (फैल) गया है। (जिस प्रकार सर्प के डक से सारे शरीर मे उसका जहर फैल जाता है उसी प्रकार भ्रम रूपी सर्प के डक से अज्ञान रूपी जहर सारे शरीर मे व्याप्त हो गया है।) सामीजी कहते है कि जागृत (ज्ञानी) को ही इस वात का ज्ञान होता है ॥ २७१ ॥

सन्से सर्प डङ्गे, मोगो कयो माणुहुनि खे ।
अठई पहर अन्दर मे, सभिको पियो सङ्गे ।
को आशिकु चढियो अछ ते, लोकाँ लोक लघे ।
जँहिखे रङ्गि रङ्गे, सामी छद्गियो सतिगुरूअ ॥ २७२ ॥

भ्रम रूपी सर्प ने मनुष्यो को डक मार कर, उन्हे बुद्धिहीन वना दिया है, अत आठो पहर सव उस भ्रम मे ही भटकते रहते हैं। सामीजी कहते है कि वही प्रेमी ससार को पार कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, जिसे सद्गुरु ने (आत्म) रग से रग दिया है ॥ २७२ ॥

सन्से सर्प डङ्गे, सामी विधा जीअ सभि ।
चिन्ता चाह रसीअ साँ, वेठा पाणु वङ्गे ।
सघे कोन लघे, मृघतृष्णा जे जल खो ॥ २७३ ॥

सामीजी कहते है कि भ्रम रूपी सर्प ने सब जीवो को डस लिया है। वे चिन्ता तथा चाह रूपी रस्सी से अपने आप को बाँध वैठे है, अत वे मृगतृष्णा के जल (माया) से पार नही हो सकते है ॥ २७३ ॥

सन्से सर्प डङ्गे, सारो द्रेहु दुखी कयो ।
सामी वियो को सूर्मो, परिपकु पारि लघे ।
जँहिखे छद्रियो सतिगुरूअ, आत्म रङ्गि रङ्गे ।
काँहिखों कोन मङ्गे, माणे मौज मुक्ति जी ॥ २७४ ॥

सामीजी कहते है कि भ्रम रूपी सर्प ने सारे विश्व को डस कर दुखी वना दिया है। कोई परिपक्व (अनुभवी) शूरवीर ही इस

(भ्रम) से पार हो सका है। जिसे सद्गुरु ने आत्म-रंग में रंग दिया है वह किसी से कुछ न माँगकर मुक्तावस्था का ही आनंद लूटता है ॥ २७४ ॥

सभखे फकुं फिकिलि, माया लाथो मोह सॉ ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, सामी हणनि सिरु ।
कॉहि सुजागो सुर्मे, साधूअ कयो सबुरु ।
जाग्री जॉहि जाहिरू, ज्योति डि्ठी जिन्दपीर जी ॥ २७५ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने मोह से सब को भेद तथा भ्रम मे डाल दिया है, अत वे ससार को सत्य मानकर अपना सिर खपा रहे है (कष्ट उठा रहे है)। पर जागृत शूरवीर साधु ने धैर्य से काम लिया क्योकि उसने जागृत होकर (ज्ञान प्राप्त कर) जिन्दपीर (परमात्मा) की ज्योति को प्रत्यक्ष देखा ॥ २७५ ॥

सभखे भउ भारो, लायो भूत भर्म जो ।
कॉहिजी चले कीनकी, चतुराई चारो ।
सामी रहे को सूर्मो, नभ जॉ न्यारो ।
जाग्री जगु सारो, लै डि्ठो जॉहि लख्य मे ॥ २७६ ॥

भ्रम रूपी भूत का भारी भय सब (जीवो) को लगा हुआ है। उसके (भ्रम के) आगे किसी की चतुराई एव विद्वत्ता नही चलती है। सामीजी कहते हैं कि जिस शूरवीर (ज्ञानी) ने जागृत होकर, सारे विश्व को परमात्मा मे लय होते देखा है, वही आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है ॥ २७६ ॥

सभखे मन करे, छद्रियो अटु ग्रिचीअ मे ।
भवनि नितु भुलनि जॉ, ज्ञाणी पीअ परे ।
कॉहि आशिक हयुसि अन्भई, वेहद ब्राणु भरे ।
सामी ड्रिसी ठरे, पॅहिजे अख्ये पाण खे ॥ २७७ ॥

सामीजी कहते है कि मन ने सब के गले मे (माया की) फाँसी डाल दी है, अत वे प्रियतम को (अपने से) दूर जान कर भूले हुए लोगो की तरह सदैव भटक रहे हैं। पर कोई अन्तर्मुख प्रेमी जिसने (मन को) अनत (ज्ञान का) तीर भर कर मारा है, वह अपने ही नेत्रो से अपने स्वरूप को देखकर शीतल हो गया है ॥ २७७ ॥

सभखे मन मारे, मोश्रो कयो मुकुनि साँ ।
सुद्रिकनि स्याणा सूर्मा, ब्राभणु ब्रलु हारे ।
कँहि निरविकल्प नेहीअ छद्रियो, तूहनि जाँ तारे ।
द्रिठो जँहि ब्रारे, द्रीओ पँहिजे द्रील मे ॥ २७८ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते है कि मन ने सब को घूँसो से मार कर, मन्द वना दिया है। बुद्धिमान तथा शूरवीर भी मन के सामने वल हारकर रो रहे है, मन पर उनका कोई वश नही चलता है। पर जिस निर्विकल्प प्रेमी ने शरीर मे ही (ज्ञान का) दीपक जला कर देखा है, उसने माया को अनाज के छिलको (Husk) की तरह आसानी से बाहर निकाल दिया है। (जिस प्रकार छिलके वाले अनाज को पानी मे डालने से छिलके पानी के ऊपर-ऊपर तैरते है और फिर उन्हे आसानी से निकाला जा सकता है, उसी प्रकार प्रेमियो ने आत्मज्ञान द्वारा माया को सरलता से अलग कर दिया है) ॥ २७८ ॥

सभ खे मन मुठो, द्रेई शर्टु ग्रिचीअ मे ।
जीए दसे ब्रकिरीअ खे, कासाईअ कुठो ।
सामी वचियो को सूर्मो, जँहि ते सन्तु तुठो ।
उठे बुहि चुठो, करे मिल्यो महबूब साँ ॥ २७९ ॥

सामीजी कहते है कि जिस प्रकार कसाई वकरी को फँसा कर मार देता है उसी प्रकार (निर्दयी) मन ने सब के गले मे (माया रूपी) फाँसी डालकर उन्हे मार दिया है। पर जिस शूरवीर (ज्ञानी) पर सन्त प्रसन्न हुआ है (जिस पर सन्तो की कृपा है), वह सासारिक अग्नि से शुद्ध होकर महबूब (परमात्मा) से जा मिला है ॥ २७९ ॥

सभ खे मन मुठो, द्रेई शर्टु ग्रिचीअ मे ।
सूधी राह छद्रे करे, पाइनि पेरु पुठो ।
सामी मन मवास खे, कँहि कामिल कुठो ।
उठो बुहि चुठो, कयो जँहि कारी कढी ॥ २८० ॥

मन ने सब के गले मे (माया की) फाँसी डालकर उन्हे मार दिया है। वे सीधा मार्ग छोड़कर, उल्टे रास्ते पर पैर रख रहे हैं। सामीजी कहते है कि जिस उत्तम पुरुष ने कालिमा (इच्छा, वासना आदि) निकाल कर अपने अहकारी मन को मार दिया है (वश मे कर लिया है), वही सासारिक अग्नि से शुद्ध हुआ है ॥ २८० ॥

सभखे मुठो मन, ड्रेई ग्रटु ग्रिचीअ मे।
नाना भाइ भर्म जा, भुली पाइनि तन।
सामी वचियो को सूर्मो, जाग्री विना जतन।
ब्रुधा जँहि वचन, ऐनु अभेदु अन्भई॥ २८१॥

मन ने सब के गले मे (माया रूपी) फाँसी डालकर, उन्हे मार दिया है (नष्ट कर दिया है), अत वे भ्रम मे भूले हुए लोगो की तरह नाना प्रकार के शरीर धारण कर भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि जिस शूरवीर ने शुद्ध एव अभेद आत्मज्ञान के वचन (उपदेश) सुने हैं, वह विना यत्न के जागृत होकर (मन के सकल्प-विकल्प से) वच गया है॥ २८१॥

सभ खे मुठो मन, विझी ग्रटु ग्रिचीअ मे।
पछिन ज्ञाणी पाणखे, कूडा कनि जतन।
ईए चवनि था अन्भई, सामी साधू जन।
कोट अख्यू ऐ कन, लिव लिव जिनिखे लख्यजी॥ २८२॥

सामीजी कहते हैं कि अन्तर्मुख साधु जिन्हे कोटिनेत्र एवं कान प्राप्त हैं, तथा जिनके रोम-रोम मे परमात्मा (वस रहा) है, वे कहते हैं कि मन ने सव के गले मे (माया रूपी) फाँसी डालकर उन्हे मार दिया है, अत. वे अपने को नाशवान् मानकर झूठे यत्न करते है॥ २८२॥

सभखे रोआरे, मोहे माया मोहिणी।
भवाए भव सिन्धु मे नाना रूप धारे।
सामी बचियो को सूर्मो, सतिगुर सम्भारे।
वेहद ड्रियो ब्रारे, पूरणु ड्रिठो जँहि पाण खे॥ २८३॥

मोहिनी माया सव को आकर्षित कर रुलाती रहती है। वह नाना प्रकार के रूप धारण कर उन्हे ससार रूपी सागर मे भटकाती रहती है। सामीजी कहते है कि जिस शूरवीर (ज्ञानी) को सद्गुरु ने याद किया है (कृपा की है), वही (माया से) वच गया है, तथा उसने अनन्त (ज्ञान रूपी) दीपक जलाकर पूर्ण परमात्मा को देख लिया है॥ २८३॥

सभेई यी आतुरु, पिटिनि कारणि पेटजे।
पाए भवनि पाणही भर्म खे भाकुरु।
सामी सुजाग्रनि ड्रिठो, हरि हाजुरु नाजुरु।
करे मनु अफुरु, माणिनि मौज मुक्ति जी॥ २८४॥

सब पेट के कारण दुखी होकर (अपने को) पीट रहे है तथा भ्रम को स्वय ही गले से लगाकर भटक रहे हैं। सामीजी कहते है कि जागृत लोगो ने मन को स्थिर कर, परमात्मा को सब स्थानो पर व्याप्त देखा है, अत वे मुक्ति का (आत्मा की मुक्तावस्था का) आनद लूट रहे है ॥ २८४ ॥

सामी विश्व सारी, माया मोहे वसि कई ।
कँहिखे छदे कीन की, डेई डेखारी ।
को नेही व्युसि निकिरी, भाग्यवानु भारी ।
जँहिखे पीआरी, सतिगुरु सुर्की सार जी ॥ २८५ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने सारे विश्व को झूठे ठाठो द्वारा आकर्षित कर अपने वश मे कर लिया है, वह (झूठे) ठाठ दिखाकर किसी को भी नही छोड़ती है। (सब को वश मे करती है)। कोई महान् भाग्यशाली प्रेमी जिसे सद्गुरु ने ज्ञान का घूंट पिलाया है, वही इस (माया) से मुक्त हो पाया है ॥ २८५ ॥

सामी सभेई, भुला जीअ भर्म मे ।
वठनि कचु खुशीअ साँ, था आतम धनु डेई ।
डीओ बारे घर मे, दिसनि कीन पेही ।
विरला जन केई, सुर्झा रहनि स्वभाव मे ॥ २८६ ॥

सामीजी कहते है कि सब जीव भ्रम मे (अपने स्वरूप को) भूल गये हैं अत वे आत्मारूपी धन देकर खुशी से (विषय-वासनाओ रूपी) कीचड़ को ले रहे हैं। वे अपने (हृदय रूपी) घर मे (ज्ञान का) दीपक जलाकर, भीतर पैठकर (झाँक कर) नही देखते, केवल कुछ विरले-लोग ही अपने भावो मे सचेत रहते है ॥ २८६ ॥

हर हर कनि हर्कत, माया खाब ख्याल साँ ।
जँहि मे मुठा केतिरा, मूर्ख करे ममत्व ।
ज्रमनि मरनि मति रे, भवनि बिना कँहि मत ।
सामी सहनि दिकत, जाग्री डिसनि न जीअ मे ॥ २८७ ॥

सामीजी कहते है कि माया के झूठे ख्यालो मे फँसकर लोग बार-बार (बुरा व्यवहार करते है)। कितने ही मूर्ख उस (व्यवहार) से ममता कर अपने को नष्ट करते रहते है। वे बुद्धिहीन होकर जन्मते तथा मरते रहते है और सिद्धान्त-हीन होकर भटकते रहते है। वे कष्ट सहन

करते हैं पर जागृत होकर हृदय मे (स्थित परमात्मा को) नही देखते ॥ २८७ ॥

हैरत ऐ हासी, अचे हिक अचिरज ते।
खावन्दु पँहिजे ख्याल मे, पियो फाहीअ रे फासी।
भवे नितु भुलनि ज्याँ, गगा गया कासी।
खुदि रे खलासी, ब्रियो करे सघे कोन को ॥ २८८ ॥

सामीजी कहते है कि मुझे इस बात पर हँसी आ रही है तथा आश्चर्य भी हो रहा है कि जीव (जो स्वय परमात्मा का अश है अर्थात् जो खुद परमात्मा है), अपने ही विचारो मे विना फन्दे की फाँसी मे फँस गया है। (माया परमात्मा द्वारा बनाई गई है, जीव परमात्मा का अश है, पर अपनी ही बनाई माया में वह अपने सच्चे स्वरूप को भूल जाता है और माया को सत्य मान कर उसी मे ही फँसा रहता है।) अत वह भूले हुए की तरह गगा, गया एव काशी मे (परमात्मा को पाने के लिए) भटकता रहता है, वह यह नही जान पाता कि उसके सिवा दूसरा कोई उसके (माया रूपी) वन्धन को नही काट सकता है। (माया के वन्धनो से मनुष्य स्वय ही जागृत होकर अपने को बचा सकता है, दूसरे किसी की सहायता से ये वन्धन नही कट सकते।) ॥ २८८ ॥

हैरत ऐ हासी, अचे हिक अचिरज ते।
खावन्दु पँहिजे ख्याल मे, पियो फाही अरे फासी।
भवे नितु भुलनि ज्याँ, गगा गया कासी।
खुदि रे खलासी, केरु करे कर्तार जी ॥ २८९ ॥

सामीजी कहते है कि मुझे इस आश्चर्यपूर्ण वात पर हँसी आ रही है एव विस्मय भी हो रहा है कि जीव (जो परत्मामा का अश होने के कारण खुद परमात्मा ही है वह) अपने ही विचारो मे (माया की) विना फन्दे वाली फाँसी मे फँस गया है, अत भूले हुए की तरह (अपने परमात्मा को पाने के लिए) गगा, गया तथा काशी मे भटकता रहता है। भला परमात्मा के वन्धनो को उसके सिवा दूसरा कौन नष्ट कर सकता है? (परमात्मा का अश जीव ही माया के इन वन्धनो को स्वय काट सकता है, दूसरा कोई भी इसे काटने मे असमर्थ है) ॥ २८९ ॥ .

हैरत ऐ हासी, अचे हिक अचिरज ते।
मञे वेठो पाण खे, अविनासी नासी।
सदा भवे सामी चए, चित मे चोरासी।
खुदि रे खलासी, केरु करे कर्तार जी ॥ २९० ॥

सामीजी कहते है कि मुझे इस बात पर हँसी भी आ रही है तथा विस्मय भी हो रहा है कि अविनाशी (आत्मा) अपने को नश्वर मान बैठा हैं। (आत्मा परमात्मा का अश होने के कारण शाश्वत है परन्तु जीव जिसमे आत्मा का निवास है, वह अपने को आत्मा न मानकर नश्वर शरीर ही मान बैठा है)। अत वह चित्त द्वारा सदैव चौरासी (लाख योनियो) मे भटकता रहता है, पर परमात्मा के बनाये हुए माया के बन्धनो को स्वय उसके सिवा कौन नष्ट कर सकता है ? कोई नही ॥ २९० ॥

हैरत ऐ हासी, अचे हिक अचिरज ते।
साई फोले आत्मा, खन्डु के पतासो।
ग्रहणों ढून्ढे सोन खे, मिटीअ खे कासो।
पाणी प्यासो, सामी रहे नितु नीर जो ॥ २९१ ॥

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस आश्चर्य पर हँसी भी आ रही है एव विस्मय भी हो रहा है कि जीव स्वय परमात्मा का अश होते हुए भी उसे उसी प्रकार ढूँढता है, जिस प्रकार शक्कर का बना हुआ बताशा शक्कर को, सोने के बने हुए आभूषण सोने को, तथा मैल मिट्टी को ढूँढती रहती है। (वास्तव मे सोने तथा सोने के आभूषणो मे, शक्कर तथा बताशे मे, मैल एव मिट्टी मे किसी प्रकार का भेद नही है, उनका केवल रूप ही अलग है। उसी प्रकार जीव तथा परमात्मा मे भी कोई भेद नही है, पर अज्ञानवश जीव अपने को अलग मान बैठा है)। पानी मे रहकर भी (आत्मा के अत्यन्त समीप होते हुए भी) जीव प्यासे का प्यासा रहता है ॥ २९१ ॥

हैरत ऐ हासी, अचे हिक अचिरज ते।
सामी ज्ञाणे पाण खे, अविनासी नासी।
कुपिडीअ मे आकासु पियो, फाहीअ रे फासी।
पाणीअ मे प्यासी, मरे पपोटो मति रे ॥ २९२ ॥

सामीजी कहते है कि मुझे इस आश्चर्य पर हँसी भी आ रही है तथा विस्मय भी हो रहा है कि अविनाशी आत्मा (जीव) अपने को नश्वर

मान बैठा है। अनन्त आकाश को छोटे घडे मे देखकर जीव विना फन्दे की फाँसी मे फँस गया है। (आकाश अनन्त है, पर जब उसकी परछाई घट मे पडती है जो घटाकाश कहलाती है। वास्तव मे घटाकाश तथा आकाश मे कोई अन्तर नही है, भेद केवल घडे के कारण ही उत्पन्न हुआ है। उसी प्रकार जीव परमात्मा का अश होने पर भी अपने को उससे अलग मानता है।) जिस प्रकार जल का बुदबुदा पानी मे रहकर भी उससे न्यारा दिखाई देता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव परमात्मा के अत्यन्त समीप होते हुए भी अपने को उससे अलग मानता है ॥ २९२ ॥

हैरत ऐ हासी, अचे हिक अचिरज ते।
सामी रहनि सरीर मे, मूर्ख मवासी।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, जो खयो फिरे फासी।
क्षण मे खलासी, मारे कई जॅहि मुल्क जी ॥ २९३ ॥

सामीजी कहते है कि मुझे इस आश्चर्यपूर्ण वात पर हँसी भी आ रही है तथा विस्मय भी हो रहा है कि अहकारी मूर्ख अपने शरीर मे ही मस्त रहते है (आत्मा के विषय मे न सोच कर शरीर के लिए ही सोच-विचार करते रहते हैं)। वे फाँसी को लेकर अपने कन्धे पर सवार उस मृत्यु को नही देख पाते जिसने एक ही पल मे सारे देश (ससार) को मार कर नष्ट कर दिया है ॥ २९३ ॥

सभजी मति खसे, माया वदी मोह साँ।
सामी रम्ता राम जो, देरो दूरु ड्रसे।
कढियुसि थर्टु ग्रिचीअ मो, कॅहि दानाह दसे।
हर्दमि ड्रिसी हसे, पाणु वराए पाण खे ॥ २९४ ॥

माया ने मोह से सव की वुद्धि छीन ली है, अत (जीव को) सर्वव्यापक ब्रह्म का निवास-स्थान दूर ही दिखाई देता है। सामीजी कहते है किसी वुद्धिमान ने ही अपने गले से (माया की) फाँसी को निकाल दिया है। (मायापाश से मुक्त हो वैठा है।) वह सदैव अपने अह से मुख मोडकर, अपने स्वरूप (परमात्मा) को देखकर हँसता रहता है ॥ २९४ ॥

माया करे -मजाक, मोहे मारे सभखे।
रहनि अलेपु आकास जाँ, ताल्हमन्द तराक।
समुझा जिनि सामी चए, मरी महावाक्य।
तमाँ खे तलाकु, ड्रेई कढियाऊ देहिमो ॥ २९५ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने सब को आकर्षित कर अपने वश मे कर लिया है। पर आध्यात्मिक रास्ते पर चलने वाले वे भाग्यशाली, जिन्होने महावाक्य समझकर अपने अहकार को मार दिया है, आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते है। (सभी धर्मो तथा धार्मिक ग्रन्थो मे कहा गया है कि इच्छाओ को मारने से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है, अत. सच्चे सन्तो ने इस महावाक्य को समझकर अपनी इच्छाओ को मार दिया है)। उन्होने अपने हृदय से कामनाओ को निकाल दिया है ॥ २९५ ॥

माया मति मोगी, मोहे कई माणुहुनि जी।
भवनि काणि भोगनि जे, बधा ब्योगी।
माणे सुख स्वरूप जो, को जागयो जोगी।
अननु अरोगी, सामी रहे स्वभाव मे ॥ २९६ ॥

सामीजी कहते है कि माया ने लोगो को आकर्षित कर, उनकी बुद्धि मन्द कर दी है, अत वे दोनो मे बन्धे हुए हैं (एक ओर वे परमात्मा को पाना चाहते है, तो दूसरी ओर ससार के सुखो को भोगना चाहते है, पर जैसा कि कहा गया है कि 'दुविधा मे दोनो गये, माया मिली न राम', उसी प्रकार ये न तो परमात्मा को ही प्राप्त कर सकते है और न ससार के सुखो का ही उपभोग कर सकते है)। वे भोगो के पीछे भटकते रहते हैं, परन्तु जागृत तथा द्वैत रोग से मुक्त योगी, स्वरूप सुख का आनन्द लूटता रहता है तथा अपने ही भावो मे मस्त रहता है ॥ २९६ ॥

माया मुँझाए, मागो कयो माणुहुनि खे।
पाणु पँहिजो पाण मे, वेठो विञाए।
सामी लधो कँहि सूर्मे, साधुअ जे साए।
वदो सो पाए, जो असुलु हुयो आदीजो ॥ २९७ ॥

माया ने लोगो को उलझन मे डाल कर उन्हे मन्द बना दिया है, अत वे अपने आप को खो बैठे है (अपने सच्चे स्वरूप को भुला बैठे है)। सामीजी कहते है किसी शूरवीर ने ही साधु के आश्रय से वास्तविक आदिज्ञान ढूंढकर प्राप्त कर लिया है ॥ २९७ ॥

माया मझि मग़रूरु, मूर्ख रहनि मति रे।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, कन्दो चकिनाचूर।
सामी हलनि हलीम थी, भाग्यवान भर्पूरि।
लिकी ताजा तूरु, कूडी ज्ञाणनि कल्पना ॥ २९८ ॥

सामीजी कहते है कि माया मे मूर्ख बुद्धिहीन होकर घमड करते रहते है। वे चकनाचूर करने वाले काल को अपने कन्धे पर सवार होते नहीं देखते है। पर महान् भाग्यशाली विनम्रता का वर्ताव करते है। वे अभी-अभी तूर नामक पर्वत से फिसल कर आये है, अत वे सारे प्रपच को झूठा मानते है। (ईश्वरीय ज्योति के देखने के पश्चात् वे सारे प्रपच को झूठा मानते है)। तूर यह एक पर्वत का नाम है। कहा जाता है कि हजरत मूसा इसी पर्वत पर पश्चिम की ओर मुख कर जब प्रार्थना करते थे तब उन्हे वहाँ ईश्वरीय ज्योति दिखाई देती थी, अत जिन्हे ईश्वरीय प्रकाश का दर्शन होता है उनके लिए कहा जाता है कि ये तूर पर्वत से आये हुए है ॥ २९८ ॥

माया रग रचो, भारी भेद मर्म जो।
मोहे मारे सभखे, करे कालु कचो।
को सुजाग्रो सूर्मो, वला खो वचो।
सामी सुखु सचो, ग्रोल्हे लधाई साधसगि ॥ २९९ ॥

माया ने भारी भेद तथा भ्रम का खेल रचा है। वह सबको आकिंपत कर, चकनाचूर कर मार देती है। सामीजी कहते है कि वही जागृत शूरवीर (ज्ञानी) इस नागिन से वच पाया है जिसने साधुओ के सग से सच्चा सुख (आत्मज्ञान) ढूँढ कर प्राप्त कर लिया है ॥ २९९ ॥

परे खाँ परे, माया महबूबनि जी।
कही पातो कीन की, अन्तु उयानु करे।
गुमु कयुसि कँहि ज्ञाति साँ, ज्ञानवानु गहरे।
सामी ड्रिसी ठरे, पँहिजे अख्ये पाणखे ॥ ३०० ॥

सामीजी कहते है कि प्रियतम की माया अगम है, कोई भी (व्यक्ति) इसका अन्त नही पा सका है। (माया का अन्त पाना अत्यन्त ही कठिन है।) पर किसी गभीर ज्ञानवान ने इसे अपने ज्ञान के बल पर नष्ट कर दिया है, अत वह अपने ही नेत्रो से अपने (स्वरूप) को देख कर शीतलता का अनुभव कर रहा है ॥ ३०० ॥

हिर्स हलाखु कयो, भेप गृहस्ती लोक सभि।
भुली सार स्वरूप खो, सन्से मझि पिया।
स्वप्न मे सामी चए, नाना रूप थिया।
जाग्रये दुःख विया, अण हून्दा अविद्या जा ॥ ३०१ ॥

सामीजी कहते है कि सासारिक सुख भोगने की इच्छा ने गृहस्थी एव वेश धारण करने वाले सभी लोगो को परेशान कर रखा है, अत वे सच्चे स्वरूप को भूलकर भ्रम मे पड गये है। वे इस स्वप्नवत् ससार मे नाना प्रकार के रूप धारण करते रहते है। पर जागृत होने पर ही अस्तित्वहीन अविद्या के ये दु ख समाप्त होते हैं ॥ ३०१ ॥

हिर्स हलाखु कयो, सामी सभ सन्सार खे।
काया माया कुल जे, वह मे वही वियो।
कोर्युनि मे को हिकिडो, पँहिजीअ मझि पियो।
तँहिखे सङ्गु थियो, सन्तनि सापुरुषनि जो ॥ ३०२ ॥

सामीजी कहते है कि सासारिक सुख भोगने की इच्छा ने सारे विश्व को परेशान कर रखा है। वह काया, माया तथा कुल के प्रवाह मे वह गया है। करोडो मे से किसी एक को ही सन्तो तथा महान् पुरुषो का सग प्राप्त हुआ है, अत वह (सासारिक सुखो से मुख मोड़कर) अपने स्वरूप मे ही जा पडा है (अपने आत्म-सुख मे ही मस्त है) ॥ ३०२ ॥

हिर्स हलाखु कयो, सामी सभ सन्सार खे।
काया माया कुल जे, वह मे वही वियो।
कोर्युनि मे को हिकिडो, पँहिजीअ मझि पियो।
जँहिखे सङ्गु थियो, साध सङ्गत महाजन जो ॥ ३०३ ॥

सामीजी कहते है कि सासारिक सुख भोगने की इच्छा ने सारे विश्व को परेशान कर रखा है। वह काया, माया तथा कुल के प्रवाह मे वह गया है। करोडो मे से वही एक अपने आप (स्वरूप) मे जा पडा है, जिसे साधुओ तथा महापुरुषो का सग मिला है ॥ ३०३ ॥

हिर्स ऐं हर्फत, जोडे ब्रधा जीअ सभि।
मजे वेठा मन मे, सामी नाना मत।
विरले काँहि गुर्मुखु कढी, अण हून्दी कल्पत।
लधे पजई तत, चढियो अन्भय अछ ते ॥ ३०४ ॥

सामीजी कहते है कि सासारिक सुख भोगने की इच्छा तथा धोखे ने सभी जीवो को बाँध रखा है, अत वे मन मे नाना प्रकार के मत-मतान्तरो को मान बैठे है। कोई विरला गुरुभक्त ही अस्तित्वहीन (झूठे) प्रपच को (हृदय से) निकाल पाया है, एव पाँच तत्वो को पारकर (पाँच तत्वो के बने हुए शरीर को पार कर) ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है ॥ ३०४ ॥

अज्ञान

अखियाँ आई ओट, अन्धनि खे अज्ञान जी।
पाण भवनि पाणही, कल्पत जन्म कोट।
सुजाग्नि सटे विधी, पोली पछिन्न पोट।
चेतन उते चोट, सामी लाइनि सम थी ॥ ३०५ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धो (अज्ञानी जीवो) के आगे अज्ञान का पर्दा आ गया है अत वे स्वय ही करोडो जन्म पाकर प्रपच मे भटक रहे है। पर जागृतो (ज्ञानी जीवो) ने (माया अथवा प्रपच की) खोखली एव नश्वर पोटली को पटक दिया है तथा वे समभाव होकर, चेतन (परमात्मा) को ही अपनी उपासना का लक्ष्य बना रहे है (परमात्मा को पाने का ही प्रयत्न करते रहते है) ॥ ३०५ ॥

अठई पहर मरे, थो मूर्खु जीउ मनन मे।
ज्ञाणी सति सन्सार खे, नाना आस धरे।
काया माया कुल जो, गर्बु गुमान करे।
सामी ठ्रिसी ठरे, मृघतृष्णा जे जल खे ॥ ३०६ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख जीव आठो याम मन के सकल्प-विकल्पो में भटकता रहता है, वह ससार को सत्य मानकर नाना प्रकार की आशाएँ धारण करता रहता है, काया, माया एव कुल का व्यर्थ अभिमान करता रहता है और मृगतृष्णा के जल (माया के बाह्य आडम्बर) से शीतल होना चाहता है ॥ ३०६ ॥

अठई पहर वञनि, था भुली जीअ भर्म मे ।
पुठी ड्रेई पाणखे, था नाना दुख सहनि ।
मानुष्य देहि अमूल्य जो, मर्मु न रखनि मनि ।
के लखाया लहनि, सामी सुख स्वरूप खे ॥ ३०७ ॥

सामीजी कहते हैं कि सभी जीव आठो याम भ्रम मे भूले हुए हैं । वे अपने (स्वरूप) से मुख मोडकर नाना प्रकार के दुख सहन करते रहते है । वे अपने हृदय मे अमूल्य मानुष-शरीर की भी कदर नही करते हैं, केवल कुछ अनुभवी (ज्ञानी) ही स्वरूप-सुख का उपभोग करते है ॥ ३०७ ॥

अणहूंदे अज्ञान, ड्रिनी ओट अन्धनि खे ।
सुत्ह सिधि स्वरूप जी, सुद्धि ब्रुद्धि रखनि कान ।
करनि अदालत अन्भई सुजागा सुल्तान ।
रहनि मझि जहान, सदा अलेपु आकास जाँ ॥ ३०८ ॥

झूठे अज्ञान ने अन्धो के आगे (अज्ञान का) पर्दा डाल दिया है अत वे साक्षात् परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान नही रखते है । पर अन्तर्मुख जागृत सुलतान (आत्मज्ञानी) अदालत करते रहते हैं (न्याय देते रहते है) वे ससार मे रहकर भी आकाश के समान निर्लिप्त रहते है ॥ ३०८ ॥

अणहून्दे अज्ञान, रची रांदि रग भरी ।
सति ज्ञाणी सामी चए, नृति कनि नादान ।
मुशिकनि कुशिकनि कीनकी, ड्रिसी सन्त सुजान ।
रहनि मंझि जहान, सदा अलेपु आकास जाँ ॥ ३०९ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे अज्ञान ने रगमयी क्रीडा रची है, अत नादान (जीव) उसे सत्य मानकर नृत्य करते रहते है । पर सज्जन सन्त उसे (क्रीड़ा को) देखकर न तो हँसते (गदगद होते) है न दुखी होते है । वे ससार मे रहकर भी सदैव आकाश की तरह निर्लिप्त रहते है ॥ ३०९ ॥

अणहून्दे अज्ञान, विधा जीअ वहण मे ।
गोता खाइनि गैब जा, कोट करे उन्मान ।
लघे चढिया लखते, साधूजन सुजान ।
सदा सावधान, सामी रहनि स्वभाव मे ॥ ३१० ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे अज्ञान ने जीवों को (माया के) प्रवाह में डाल दिया है अत वे करोड़ों (प्रकार के) अनुमान करते हुए रहस्य में गोते खा रहे हैं। पर सज्जन साधु पुरुष (माया को) पार कर (ज्ञान के) लक्ष्य पर अग्रसर रहते हैं तथा सदैव अपने (स्वरूप के) भावों में सचेत रहते हैं ॥ ३१० ॥

अणहून्दे ओले, सामी लिको सुप्री।
अन्धा ड्रिसनि कीनकी, जो बुधे ऐ ब्रोले।
कँहि मुजाग़े सही कयो, घटु घूंघटु खोले।
वेही विचोले, पलि पलि पीए प्रेम रसु ॥ ३११ ॥

सामीजी कहते हैं कि प्रियतम (परमात्मा) झूठे भ्रम में छिप गया है, अत अन्धे (अज्ञानी जीव) उस सुनने तथा बोलने वाले (आत्मा) को नहीं देखते हैं (परमात्मा के अंश आत्मा के हृदय में स्थित होने पर ही मनुष्य बोलता तथा सुनता है, पर फिर भी वह उसे देख नहीं पाता है)। किसी जागृत ने ही हृदय के घूंघट को खोल (अज्ञान के पर्दे को हटाकर) उसे (परमात्मा को) जान लिया है, अत वह बीच में बैठकर, पल-पल प्रेम रस का पान कर रहा है ॥ ३११ ॥

अणहून्दे ओले, सामी लिको सुप्री।
लधो पँहिंजे घर मों, फकीरनि फोले।
जिनिखे अशिकु अगम जो, चिणिग लगी चोले।
पटु पर्दो खोले, माणिनि दौर दर्सजा ॥ ३१२ ॥

सामीजी कहते हैं कि प्रियतम (परमात्मा) झूठे भ्रम में छिप गया है पर फकीरों (प्रेमियों) ने उसे अपने (हृदय रूपी) घर में ही ढूंढ लिया है। जिनके (शरीर रूपी) चोले में अगम प्रेम की चिनगारी लग गई है (जिनके हृदय में प्रेम की आग भड़क उठी है), वे अज्ञान के पर्दे को भस्म करके (प्रियतम के) दर्शन का आनन्द लूट रहे हैं ॥ ३१२ ॥

अणहून्दे ओले, सामी लिको सुप्री।
लधो सिक सचीअ सॉ, फकीरनि फोले।
वेही विचोले, पल पल पीअनि प्रेम रसु ॥ ३१३ ॥

सामीजी कहते हैं कि प्रियतम (परमात्मा) झूठे भ्रम में छिप गया है पर फकीरों (प्रेमी भक्तों) ने उसे अपने सच्चे प्रेम से ढूंढ लिया है, अत वे (आत्मा के) मध्य बैठकर, पल-पल प्रेम रस का पान कर रहे हैं ॥ ३१३ ॥

अणहून्दे ओले, सामी लिको सुप्री ।
लधो संगि साधूअ जे, फकीरनि फोले ।
जिनिखे अशिकु अगम जी, चिणिग पई चोले ।
प्रियनि पटु खोले, डिठाऊं देहीअ मे ।। ३१४ ।।

सामीजी कहते है कि प्रियतम झूठे भ्रम मे छिप गया है पर फकीरो (प्रेमी भक्तो) ने साधुओ के सग से उसे ढूँढ लिया है। जिनके (शरीर रूपी) चोले मे अनन्त प्रेम की चिनगारी लग गई है (जिनके हृदय मे अनन्त प्रेम की आग भडक उठी है), उन्होने (अज्ञान रूपी) पर्दे को भस्म करके देह मे ही प्रियतम को देख लिया है ।। ३१४ ।।

अणहून्दे ठगे ठगे, कोडे विधा केतिरा ।
जीए पाछाओ पँहिजो, थी भारी भूतु लगे ।
लताड़े लतनि सॉ, के आशिक लध्या अगे ।
अनभय ज्योति जगे, सामी जिनिजे घर मे ।। ३१५ ।।

सामीजी कहते है कि जिस प्रकार अपनी ही परछाईं भयकर भूत की तरह लगती (डराती रहती) है उसी प्रकार झूठे (अज्ञान रूपी) ठग ने कितने ही (जीवो) को ठग कर नष्ट कर दिया है। (वास्तव मे परछाई की तरह अज्ञान भी अस्तित्वहीन है)। पर जिन प्रेमियो के (हृदय रूपी) घर मे आत्मज्ञान की ज्योति जग रही है, वे इसे (अज्ञान रूपी ठग को) लातो से रौद कर ज्ञान की ओर अग्रसर हुए है ।। ३१५ ।।

अणहून्दे भोले, विधो जीउ भर्म मे ।
जीए खस्तूरी मृघ मे, मृघु ब्राहरि फोले ।
अविद्या पटु खोले, सामी डिसे कीनकी ।। ३१६ ।।

सामीजी कहते है यद्यपि कस्तूरी मृग के भीतर होती है पर फिर भी वह (अज्ञान वश) उसे बाहर ढूँढता रहता है। उसी प्रकार झूठे अज्ञान ने जीव को भ्रम मे डाल दिया है। (कस्तूरीमृग की तरह वह भीतर स्थित आत्मा को बाह्य उपकरणो मे ढूँढता है।) अतएव वह अविद्या रूपी आवरण को हटाकर नही देख पाता ।। ३१६ ।।

अणहून्दे भोले, विधो जीउ भर्म मे ।
पुठी डेई पाण खे, थो दह दसॉ फोले ।
तँहिखे डिसे कीनकी, जो बुधे ऐं ब्रोले ।
सतिगुर ग्रढि खोले, त सुखी थे सामी चए ।। ३१७ ।।

झूठे अज्ञान ने जीव को भ्रम मे डाल दिया है अतएव वह अपने स्वरूप से मुख मोडकर, उसे (परमात्मा को) दसो दिशाओ मे ढूंढ रहा है। सामीजी कहते है कि जिस आत्मा के कारण ही जीव सुनता एव बोलता है, उसे वह नहीं देख पाता है, पर जब सद्गुरु (अज्ञान रूपी) गाँठ खोल देता है तब वह (जीव) सुखी होता है ॥ ३१७ ॥

अणहून्दो भोलु भर्म, मूर्ख मन्यो मति रे।
न कँहि जोरु जुल्मु कयो, न कँहि लज्ज शर्मु।
नितु खला खाए सिर ते, रखे न मनि ममु।
जे कर्ता करे कर्मु, त सामी का सुधि पए ॥ ३१८ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख (जीव) ने बुद्धिहीन हो, झूठे अज्ञान तथा भ्रम को (सत्य) मान लिया है। उसे (इस भ्रम को सत्य मानने के लिए) न तो किसी ने जोर-जुल्म किया है, न ही किसी ने उसे लज्जित किया है (वह अपने आप अज्ञान को ही सत्य मान बैठा है)। वह निलज्ज होकर सदैव सिर पर (प्रपच की) गठरी उठाता है, पर जब कर्ता (परमात्मा) उस पर अनुकम्पा करता है, तब उसे अपनी भूल प्रतीत होती है ॥ ३१८ ॥

अणहून्दो भोलो, पियो मालिक जे मन मे।
सामी शाहु स्वप्न जो, थियो गोलनि जो गोलो।
पहिरे वेठो पाण ही, चिन्ता जो चोलो।
केरु कढे रोलो, बिना जागिये पँहिजे ॥ ३१९ ॥

सामीजी कहते है जिस प्रकार शाह (राजा) सपने मे दासो का भी दास बन जाता है (जागृत होने पर ही उसे अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान होता है), उसी प्रकार जीव के मन मे झूठा अज्ञान इस प्रकार समा गया है (कि वह अपने आत्म-स्वरूप को भूल बैठा है)। उसने स्वय ही चिन्ता का चोला धारण कर लिया है (चिन्ता को अपना लिया है)। जागृत होने के सिवा भला यह बाधा कौन दूर कर सकता है ? (ज्ञान प्राप्त करने के सिवा अपने स्वरूप को समझना असभव है) ॥ ३१९ ॥

अन्धनि खे अटिकल, कान्हे ताडि तरण जी।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, भवनि मझि भवजल।
लहजे मझि लघे पिया, के सुजागा सबल।
सामी सभ महल, हाजुर द्रिसनि हजूर खे ॥ ३२० ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी तथा मायारूपी) समुद्र को पार करने की युक्ति से अनभिज्ञ है। वे ससार को सत्य मान कर भव-सागर मे भटकते रहते है। पर जागृत-बलवान् (ज्ञानवान्) एक क्षण मे ही इस (माया के समुद्र) से पार हो जाते है तथा हर समय परमात्मा को ही अपने सामने उपस्थित देखते है ॥ ३२० ॥

अन्धनि खे अभिलाष, मिटे न माया मोह जी।
भवनि भवसागर मे, खणी, तमअ जा तबाख।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, के साधूजन सुजाख।
सामी सची साख, वेदनि द्निनी विधि साँ ॥ ३२१ ॥

अन्धो की माया और मोह की इच्छा नही मिटती है (माया-मोह की इच्छा बनी हुई रहती है)। वे इच्छाओ के थाल लेकर भवसागर मे भटकते रहते है। सामीजी कहते है कि वेदो ने विधि से यह साक्षी दी है कि कुछ जागृत (ज्ञानी) साधु पुरुष ही स्वरूप-सुख भोगते है ॥ ३२१ ॥

अन्धनि खे आई, अड्यो ओट अज्ञान जी।
पच्छिन्न ज्ञाणी पाण खे, छाणिनि नितु छाई।
सामी सुज्ञाणनि खे, समता सदाई।
लूअँ लूअँ लालाई, प्रत्क्षु द्सिनि पीव जी ॥ ३२२ ॥

अन्धो के आगे अज्ञान का पर्दा आ गया है अत वे अपने को नश्वर समझकर सदैव धूल डालते रहते है, (अपने को धोखा देते रहते है)। सामीजी कहते है परन्तु जागृत (ज्ञानी) सदैव सम-भाव में रहते है तथा प्रियतम (परमात्मा) की लालिमा (झलक) रोम-रोम मे प्रत्यक्ष देखते है ॥ ३२२ ॥

अन्धनि खे आई, अड्यो ओट अज्ञान जी।
पाए भवनि पाणही, छज्ज भरे छाई।
सामी सुजाणनि खे, समता सदाई।
लूअँ लूअँ लालाई, प्रत्क्षु द्सिनि पीअ जी ॥ ३२३ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धो (अज्ञानी जीवो) के आगे अज्ञान का पर्दा आ गया है, अत वे धूल के सूप (winnowing basket) भर कर (व्यर्थही) अपने आप भटकते रहते है। पर जागृत (ज्ञानी) सदैव समभाव रहते है, वे रोम-रोम मे प्रियतम (परमात्मा) की लालिमा (झलक) प्रत्यक्ष देखते है ॥ ३२३ ॥

अन्धनि खे आहे, अन्धेरी अख्युनि मे।
पविन पँहिजो पाणही, कन्डनि मे काहे।
सामी सुजाग्रनि खे, फुर्णो न फाहे।
पटु पर्दो लाहे, पूरणु ड्रिसनि पीअखे ॥ ३२४ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धो (अज्ञानी) की आँखो मे अधकार ही रहता, है अत वे स्वय ही अपने को (अज्ञान रूपी) काँटो मे डाल देते है। पर जागृतो (ज्ञानवानो) को भ्रम नही फँसाते हैं (ज्ञानवान् भ्रमो से मुक्त रहते हैं)। वे अज्ञान के आवरण को हटाकर पूर्ण प्रियतम (परमात्मा) को ही देखते हैं ॥ ३२४ ॥

अन्धनि खे इत्बारु, अचे न आत्म राम ते।
आहे जँहिजे आसरे, सामी सभु सन्सारु।
कँहि सुजाग्रे सूर्मे, दिलि मे कयो दीदारु।
जँहिखे सन्तु सचारु, अची मिल्यो अन्भई ॥ ३२५ ॥

सामीजी कहते है कि परमात्मा जिसके आसरे ही सारा ससार है, उसपर अन्धो (अज्ञानी जीवो) को विश्वास नही आता है, पर जागृत शूरवीर (ज्ञानी) जिसे सच्चा आत्मज्ञानी सन्त मिल गया है, उसने (परमात्मा का) अपने हृदय मे ही दर्शन कर लिया है ॥ ३२५ ॥

अन्धनि खे इत्बारु, अचे न आत्म राम ते।
पुठी ड्रेई पाण खे, खपी थियनि खुआरु।
सदा सुजाग्रनि खे, दिलि अन्दरि दीदारु।
सामी करे करारु, सुम्हिया सुषोप्ति सेज ते ॥ ३२६ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धो को सर्वव्यापक परमात्मा पर विश्वास नही आता है। वे अपने (स्वरूप) से मुख मोडकर, अपने को खपा-खपाकर बदनाम हो रहे हैं। पर जागृत (ज्ञानी) सदैव हृदय मे ही (परमात्मा का) दीदार करता है। वह सुषुप्ति रूपी सेज पर सो कर आराम करता है। (आत्मानन्द मे मस्त रहता है) ॥ ३२६ ॥

अन्धनि खे इत्बारु, अचे न आत्म राम ते।
वेठा कनि वेसाह रे, वाणीअ जो वीचारु।
सामी सुजाग्रनि खे, द्वैत विना दीदारु।
ज्ञाणनि सभु सन्सारु, चिमत्कारु चेतन जो ॥ ३२७ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धो को सर्वव्यापक परमात्मा पर विश्वास ही नही आता है, वे विश्वास के सिवा (विश्वास-हीन) वाणी पर विचार करते है। पर द्वैत रहित जागृत (सब मे एक ही आत्मा के देखने वाले ज्ञानी पुरुष) उसका (परमात्मा का) दीदार करते है। वे सारे विश्व को चेतन (परमात्मा) का ही चमत्कार मानते है ॥ ३२७ ॥

अन्धनि द्रिनी आङुरि, परिच्छिन्नता जी पाण खे ।
ऊंचा सद्ड अलाह खे, उथी कनि असुरि ।
सामी सुजाणा विया, धीरजु धारे घरि ।
पर्ची पीअनि पुरि, पाकु प्यालो प्रेम जो ॥ ३२८ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धो (अज्ञानी जीवो) ने स्वय ही (अपनी आँखो मे) परिच्छिन्नता (भेदभाव) की ऊँगली डाली है (अपने को मायावी भुलावे मे भुला दिया है)। वे प्रातकाल को शीघ्र ही उठकर परमात्मा को जोर से पुकारत है (वास्तव मे आत्मा परमात्मा का ही अश है, उसका निवास हमारे भीतर ही है पर फिर भी अज्ञानवश जीव उसे वाहर ढूंढता एव पुकारता है)। पर जागृत (ज्ञानी) धैर्य धारण कर (हृदय रूपी) घर मे ही बैठे है (हृदय मे ही आत्मा का दर्शन करते है)। वे प्रसन्न हो प्रेम का पवित्र प्याला लबालब भरकर पी रहे है ॥ ३२८ ॥

अन्धनि द्रिनी ओट, अग्यो भेद भर्म जी ।
पाए भवनि पाणही, कल्पत जन्म कोट ।
सामी सुजाणनि जी, सम चेतन ते चोट ।
सटे परिच्छिन्न पोट, इस्थति थिया आकास मे ॥ ३२९ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धो ने अपने आगे भेद एव भ्रम की ओट खडी करली है। वे स्वय ही करोडो कल्पित जन्म पाकर भटक रहे है। पर जागृत (ज्ञानी) सदैव समान रहनेवाले चैतन्य (आत्मा) को ही अपना लक्ष्य बनाते है (चैतन्य आत्मा के विषय मे ही सोचते रहते है)। वे परिच्छिन्नता (भेदभाव) की पोटली पटक कर (मायावी भुलावे से रहित होकर) आकाश मे स्थित हो बैठे है ॥ ३२९ ॥

अन्धनि द्रिनी ओट, पँहिजे अग्यो पाणही ।
मारी पाइनि मति रे, जन्म जन्मी कोट ।
सामी ग्राल्हि सही कई, काँहि घूंघट खोले घोट ।
सटे परिच्छिन्न पोट, इस्थति थियो आकास जॉ ॥ ३३० ॥

सामीजी कहते है कि अन्धो ने स्वयं ही अपने आगे (अज्ञान का) आरवण डाल लिया है। वे बुद्धिहीन होकर करोडो जन्म पाकर ससार मे भटक रहे है। पर किसी दूल्हे (प्रेमी भक्त) ने (अज्ञान का) घूंघट हटाकर (ईश्वर का) वास्तविक रूप जान लिया है, अत उसने परिच्छिन्नता (भेदभाव) रूपी पोटली को पटक दिया है (माया से मुक्त हो गया है), अव वह आकाश की तरह स्थिर हो गया है ॥ ३३० ॥

अन्धनि ड्रिनी ओट, रखी आश अज्ञान जी।
जा पाए भवनि पाणही, कल्पत जन्म कोट।
सामी सुजाग्रनि ते, कँहिजी चले न चोट।
सटे परिच्छिन्न पोट, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ ३३१ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धो ने अज्ञान की ओट लेली है। वे अज्ञान-वश आशा रखकर, करोडो जन्म पाकर, प्रपच मे स्वय ही भटक रहे है। पर जागृतो (ज्ञानवानो) पर किसी का भी प्रभाव नही पड़ता है, वे परिच्छिन्नता (भेदभाव) रूपी पोटली को पटक कर (माया से मुक्त होकर) स्व-रूप का सुख भोगते रहते है (आत्मानद मे लीन रहते है) ॥ ३३१ ॥

अन्धनि ड्रिनो ओलो, अग्र्या पाण अज्ञान जो।
भवनि भौसागर मे, थी ढावाँढोलो।
सामी सुजाग्रनि खे, कोन्हे भउ भोलो।
क्षिम्या खटालो, पाए सुम्हिया पदमे ॥ ३३२ ॥

अन्धो ने अपने आगे अज्ञान रूपी आवरण डाल रखा है, अतः वे डांवाडोल (विचलित) होकर ससार रूपी सागर मे भटक रहे है। सामीजी कहते है पर जागृतो (ज्ञानवानो) को किसी भी प्रकार का भय तथा भ्रम नही है, वे सतोष रूपी सेज विछाकर आत्मपद मे सोये हुए है ॥ ३३२ ॥

अन्धनि राह अन्धी, वदी मति मशाल रे।
भवनि भौसागर मे, लहनि कीन कन्धी।
सामी सुजाग्रनि जी, मति सुजाग्री सुग्रन्धी।
वेठा ग्रढि ग्रन्धी, अन्भय लालु अण-मुल्हो ॥ ३३३ ॥

अन्धो (अज्ञानी जीवो) ने बुद्धि रूपी मशाल-रहित, अन्धकारमय रास्ता अपना लिया है। वे ससार रूपी सागर मे भटकते रहते है पर

किनारा नही ढूंढ पाते है। सामीजी कहते है कि जागृतो (ज्ञानवानो) की वुद्धि सचेत एव (ज्ञान रूपी सुगन्ध से पूर्ण) सुगन्धित रहती है। उन्होने अमूल्य आत्म-ज्ञान रूपी मणि को (हृदय मे) गाठ बाँधकर रख लिया है (वे सदैव आत्मा का ही चिन्तन करते रहते है) ॥ ३३३ ॥

अन्धा अज्ञानी, सचु सुञाणनि कीन की।
खोहे मानुष देहि खे, भवनि वैरानी।
सामी सुजाग्रनि ड्रिठो, दिलि मे दिलि जानी।
मुशिकुलु आसानी, समुझाए कनि सिषजी ॥ ३३४ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे अज्ञानी लोग सत्य को नही पहचानते है, वे मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर, निर्धन वनकर (आत्म-धन गँवाकर) भटकते रहते है। परन्तु जागृतो (ज्ञानवानो) ने हृदय मे प्राणप्यारे प्रियतम को देख लिया है, क्योकि गुरु ने अपने शिष्य की प्रत्येक कठिनता को सरल वना दिया है ॥ ३३४ ॥

अन्धा अज्ञानी, सचु सुञाणनि कीन की।
ग्रल्हियू कनि आकास जूँ, जोडे जबानी।
सामी जुर्यो स्वरूप सॉ, को हर्जनु हकानी।
निउड़ी नीशानी, सही कई जँहि सम थी ॥ ३३५ ॥

अज्ञानी अन्धे सत्य को नही पहचानते है, वे मुख से आकाश की वाते (ज्ञानचर्चा) जोड-जोड कर कहते है। सामीजी कहते है किन्तु वही एक आत्मज्ञानी हरिभक्त स्व-रूप से जा मिला है, जिसने नीचे झुककर (नम्रता से) समता अपना कर अपने लक्ष्य को जान लिया है। (आत्मा को पहचान लिया है) ॥ ३३५ ॥

अन्धा अज्ञानी, सचु सुञाणनि कीनकी।
ज्ञमनि मरनि मति रे, वणी अभिमानी।
सामी सुजाग्रनि ड्रिठो, दिलि मे दिलि जानी।
हर्दमि हकानी, माणिनि मौज मुक्ति जी ॥ ३३६ ॥

अज्ञानी अन्धे सत्य को नही पहचानते है। वे वुद्धिहीन अभिमानी वनकर जन्मते एव मरते रहते हैं। सामीजी कहते है किन्तु जागृतो ने हृदय मे ही प्राणप्यारे (परमात्मा) को देख लिया है। वे आत्मज्ञानी सदैव ही मुक्ति का आनन्द मनाते रहते हैं ॥ ३३६ ॥

अन्धा अति अनीति, भुली कनि भर्म मे ।
पुठी ड्रेई पाणखे, भोगिनि था भयभीति ।
सामी सुजाग्रनि जी, सभि सुजाग्री रीति ।
करे प्रेम प्रतीति, पूर्ण ड्रिसनि पीअ खे ।। ३३७ ।।

अन्धे (अज्ञानी) भ्रमो मे (अपने सच्चे स्वरूप को) भूलकर महान् अनीति करते रहते हैं। वे अपने (स्वरूप) से मुख मोड़ कर, भयभीत होकर (सासारिक सुख) भोगते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, परन्तु जागृत (ज्ञानी) सब कुछ सावधानी से ही करते है । वे पूर्ण प्रियतम (परमात्मा) को प्रेम तथा विश्वास से देखते रहते हैं ।। ३३७ ।।

अन्धा अन्धी राति, ड्रिसनि मति मशाल रे ।
पुठी ड्रेई पाण खे, कनि पराई ताति ।
सामी सुजाग्रनि खे, सदाई प्रभाति ।
पाए आत्म ज्ञाति, इस्थति थिया आकास जाँ ।। ३३८ ।।

अन्धा (अज्ञानी) ज्ञान रूपी मशाल का प्रकाश न पाकर सदा अन्धकारमयी रात्रि को ही देखता है। वह अपने स्वरूप से मुख मोडकर दूसरो की चिन्ता करता रहता है। सामीजी कहते है परन्तु जागृतो के लिए सदैव ही (ज्ञान रूपी) प्रभात बना रहता है, अत वे आत्मज्ञान प्राप्त कर आकाश की भाँति स्थित हो गये है ।। ३३८ ।।

अन्धा अन्धगुबारु, ड्रिसनि मति मर्म रे ।
भवनि भौ-सागर मे, करिनि कीन करारु ।
सामी सुजाग्रनि जो, सुजाग्रो वहिवारु ।
अन्दरि ब्राहरि यारु, पूरणु ज्ञाणनि पंहिजो ।। ३३९ ।।

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी जीव) निर्लज्ज तथा बुद्धिहीन होकर अज्ञान को ही देखते रहते हैं। वे कभी भी चैन नही पाते हैं, सदैव भवसागर मे भटकते ही रहते है। किन्तु जागृतो (ज्ञानी जीवो) का व्यवहार जागृत (ज्ञान पूर्ण) ही होता है। वे भीतर तथा बाहर अपने पूर्ण मित्र (परमात्मा) को ही देखते है ।। ३३९ ।।

अन्धा अन्धेरी, ड्रिसनि मति मशाल रे ।
गर्भ जूणि जे गार में, पाडनि नितु फेरी ।
सामी सुजाग्रनि जी, सुजाग्री सेरी ।
मेटे मैं मेरी, इस्थति थिया आकास जाँ ।। ३४० ।।

सामीजी कहते हैं कि कि अन्धो को बुद्धि (ज्ञान) रूपी मशाल के अभाव मे सदा अन्धकार ही दिखाई देता है। वे सदैव गर्भ रूपी गुफा मे चक्कर काटते रहते है, किन्तु जागृतो (ज्ञानवानो) की रक्षा जागृति (ज्ञान) करती रहती है। वे 'मैं' तथा 'मेरी' की भावना मिटाकर आकाश की भाँति स्थित हो गये है ॥ ३४० ॥

अन्धा अन्धो न्याउ, भुली कनि भर्म सॉ।
रखनि न रतीअ जेतिरी, सामी सुधि समाउ।
स्याणनि सुजाग्रनि जो, सुजाग्रो स्वभाउ।
लूअ लूअ मझि लखाउ, प्रत्क्ष द्रिसनि पीअ खे ॥ ३४१ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी) भ्रम मे भूलकर अन्धा न्याय करते है (अन्याय करते हैं)। वे रत्ती भर भी होश तथा पहचान नही रखते हैं। परन्तु जागृतो (ज्ञानवालो) का स्वभाव जाग्रत (ज्ञान पूर्ण) ही होता है। वे रोम-रोम मे प्रियतम की झलक प्रत्यक्ष देखते है ॥ ३४१ ॥

अन्धा अनाड़ी, सचु सुञाणनि कीन की।
लाए वेहनि लोक मे, तमा जी ताडी।
सामी सुजाग्रनि जी, सम सुञाण वाड़ी।
सम थी सपाडी, कटे छड्रियाऊ कल्पना ॥ ३४२ ॥

अनाडी अन्धे (ज्ञान से अनजान) सत्य को नही पहचानते है। वे ससार मे इच्छाओ की कडी बाँध कर बैठे है। (एक इच्छा पूरी होते ही दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है)। सामीजी कहते है, किन्तु जागृतो (ज्ञानवानो) को समता की पहचान रहती है, अत समता को अपना कर उन्होने प्रपच को जड सहित काट दिया है ॥ ३४२ ॥

अन्धा अनीतो, हलनि मति मर्म रे।
पाए भवनि पाणही, कये जो कीतो।
सुजाग्रनि सामी चए, जाग्री मन जीतो।
पर्ची पुरि पीतो, प्यालो प्रेम अगम जो ॥ ३४३ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी जीव) निर्लज्ज तथा बुद्धि (ज्ञान) हीन होकर अनीति करते रहते है। वे स्वय ही अपने (बुरे) कर्मो का फल पाकर भटक रहे है। परन्तु जागृतो ने जागृत होकर (आत्मज्ञान प्राप्त कर) अपने मन को जीत लिया है, अत वे प्रसन्न होकर अनन्त प्रेम का प्याला लबालब भर कर पी रहे है ॥ ३४३ ॥

अन्धा अनुमानी, सचु सुञाणनि कीन की ।
करिनि पहिजी पाणही, हैबत हकानी ।
सामी सुजाग्निनि खे, दिलि मे दिलि-जानी ।
निर्भय निशानी, ड्रियनि ड्रेह अगम जी ॥ ३४४ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे सत्य को नही पहचानते है, वे केवल (सत्य के विषय मे) अनुमान ही करते रहते है वे स्वय ही अपने को मुसीवतो का अधिकारी वनाते है (अज्ञान के कारण स्वय ही मुसीबतो को मोल लेते है।) परन्तु जागृतो (ज्ञानवानो) के हृदय मे प्राणप्यारे (परमात्मा) का निवास है, अत वे निर्भय होकर अमरपुरी (परमात्मा के निवास-स्थान) की प्राप्ति को ही अपना लक्ष्य वनाते है (परमात्मा को पाने की राह पर चलते है) ॥ ३४४ ॥

अन्धा अनुमानी, सचु सुञाणनि कीन की ।
ग्रालिह्यू कनि ब्रुधी सुधी, जोडे जवानी ।
सामी सुजाग्निनि ड्रिठो, दिलि मे दिलिजानी ।
सदा सैलानी, खेलिनि पहिजे ख्याल मे ॥ ३४५ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी) सत्य को नही पहचानते है, वे (सत्य के विपय मे) केवल अनुमान ही करते रहते है तथा (सत्य अथवा परमात्मा के विषय मे) सुनी हुई वातो मे अपनी ओर से कुछ जोड कर वकते रहते है, किन्तु जागृतो (ज्ञानियो) ने प्राणप्यारे (परमात्मा) को हृदय मे देख लिया है, अत वे सैलानी सदैव अपने ही विचारो मे खेलते रहते है (मस्त रहते है) ॥ ३४५ ॥

अन्धा अनुमानी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
ग्रालिह्यू कनि गुणनि जू, जोडे जवानी ।
सामी सुजाग्निनि ड्रिठो, दिलि मे दिलिजानी ।
सदा सैलानी, रहनि रहति सचीअ सॉ ॥ ३४६ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे, सत्य को नही पहचानते है । वे (उसके विपय मे) केवल अनुमान ही करते रहते है तथा (परमात्मा के) गुणो का वखान, अपने ही मुख से वनाई हुई वातो द्वारा करते रहते है। परन्तु जागृतो ने प्राणप्यारे (परमात्मा) को अपने हृदय मे ही देख लिया है । वे सैलानी (सैर करनेवाले) सदैव सत्य (परमात्मा) से ही प्रसन्न रहते है ॥ ३४६ ॥

अन्धा अनुमानी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
दरि दरि देवाननि जाँ, कनि कूडी कहानी ।
सामी सुजाग्गनि डि्ठो, दिलि मे दिलिजानी ।
सदा सैलानी, पीअनि प्यालो प्रेम जो ।। ३४७ ।।

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानीजीव) सत्य को नही पहचानते है, वे (उसके विषय मे) केवल अनुमान ही कहते रहते है। वे पागलो की तरह द्वार-द्वार जाकर झूठी कहानियाँ ही कहते रहते है, किन्तु जागृतो ने प्राणप्यारे (परमात्मा) को हृदय मे ही देख लिया है, अत वे सैलानी, सदैव ही प्रेम का प्याला पीते रहते है (परमात्मा के प्रेम मे मस्त रहते है) ।। ३४७ ।।

अन्धा अभिमानी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
खयो वतनि पाण साँ, भर्म जी भानी ।
इस्थति रहे आकास जाँ, को त्रिलो विज्ञानी ।
दिलि मे दिलिजानी, सामी डि्ठो जहि सम थी ।। ३४८ ।।

सामीजी कहते है कि अभिमानी अन्धे (अज्ञानी) सत्य को नही पहचानते है। वे अपने साथ भ्रम रूपी पोटली उठाकर घूमते रहते है, पर जिस विरले विज्ञानी ने सम होकर प्राणप्यारे (परमात्मा) को हृदय मे ही देख लिया है, वह आकाश की भाँति स्थिर हो जाता है ।। ३४८ ।।

अन्धा अहकारी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
खयो वतनि पाण साँ, खुआरीअ जी खारी ।
सामी सुजाग्गनि सटी, सिर तो पिण्ड सारी ।
वेहदि जी ब्रारी, पटे वेठा पाकु थी ।। ३४९ ।।

सामीजी कहते है कि अहकारी अन्धे (अज्ञानी) सत्य को नही पहचानते है। वे निन्दा की पिटारी अपने साथ लेकर घूमते रहते है (अज्ञान मे अपने को व्यर्थ ही नष्ट करते रहते है)। लेकिन जागृतो ने अपने सिर से (अज्ञान के) सारे पिण्ड को पटक दिया है तथा पवित्र होकर अनत की खिडकी खोले बैठे है। (अनत परमात्मा मे लीन हो गये है) ।। ३४९ ।।

अन्धा इशारत, समुझनि कोन सजण जी ।
देही ज्ञाणी पाणखे, भञिनि नाना मत ।
सुजाग्रा सही थिया, कटे सभि कल्पत ।
सदा सनाखत, सामी रखनि स्वरूप जी ॥ ३५० ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी जीव) सज्जन पुरुष (ज्ञानी) के इशारों को नहीं समझते हैं । वे अपने को शरीर मानकर नाना प्रकार के पंथों को अपनाते रहते हैं, लेकिन जागृतों ने समस्त प्रपंच को त्याग कर, सत्य को जान लिया है, अत वे सदैव स्व-रूप की पहचान रखते हैं ॥ ३५० ॥

अन्धा उपाधी, सचु सुञाणनि कोनकी ।
खणनि पंहिजो पाण ही, रोई पिटे राधी ।
सुजाग्रनि सही करे, समता मति साधी ।
सदा समाधी, सामी रहनि स्वभाव मे ॥ ३५१ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) भ्रमों मे ही प्रसन्न रहते हैं । वे सत्य को नहीं पहचानते हैं । वे स्वयं ही अपनी पकाई हुई चीजें अर्थात् अपने किये हुए बुरे कर्मों का फल रो-धोकर उठा रहे हैं (भोग रहे हैं) । किन्तु जागृतों ने सत्य को पहचानकर समता का रास्ता अपना लिया है, अतः वे अपने ही भावों मे समाधि लगाये बैठे हैं ॥ ३५१ ॥

अन्धा उपाधी, सचु सुञाणनि कोनकी ।
देही ज्ञाणी पाणखे, रोई खणनि राधी ।
सुजाग्रा रहनि सामी चए, सदा समाधी ।
ऊन्हो अगाधी, डिसनि अनभय आतमा ॥ ३५२ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) भ्रमों मे ही प्रसन्न रहते हैं, वे सत्य को नहीं पहचानते हैं तथा अपने को शरीर मानकर अपनी पकाई हुई चीजें अर्थात् अपने किये हुए कर्मों के फल को रो-धोकर भोग रहे हैं (अपने बुरे कर्मों का फल भोगकर दुःखी हो रहे हैं) । परन्तु जागृत सदैव ही समाधि मे स्थित रहते हैं । उन्होंने गहरे पैठकर (अन्तर्मुख होकर) आत्मा को देख लिया है ॥ ३५२ ॥

अन्धा उपाधी, सचु सुञाणनि कोनकी ।
सुजाग्रनि सन्तोष सा, सुर्ति निर्ति साधी ।
सदा समाधी, सामी रहनि स्वभाव मे ॥ ३५३ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी) भ्रमो मे ही मस्त रहते है, वे सत्य को नही पहचानते हैं, किन्तु जागृतो (ज्ञानवानो) ने सतोष से ज्ञान का रास्ता अपनाया है, अत वे अपने ही भावो मे समाधि लगाये वैठे है ॥ ३५३ ॥

अन्धा ओट ड्रेई, दरि-दरि फोलिनि दोस खे ।
करे वीठा कल्प सा, साधन सभेई ।
सहजे 'सुजाणनि खे सामी सुधि पेई ।
शिव शक्ती ब्रई, ड्रिसनि पहिंजे ड्रील मे ॥ ३५४ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अपने आगे) अज्ञान का आवरण डाले हुए, प्रियतम को द्वार-द्वार ढूँढते रहते है, उन्होने भ्रम मे रहकर (परमात्मा को प्राप्त करने के) सभी प्रकार के साधन किये है (हृदय मे अज्ञान होने के कारण, सभी प्रकार के साधन करने पर भी परमात्मा की प्राप्ति नही कर पाते है), किन्तु जागृतो को सही बात का पता सहज ही लग गया है, अत वे शिव एव शक्ति दोनो को ही अपने हृदय मे देखते है ॥ ३५४ ॥

अन्धा कनि अकसु, सभ कहि सा सखिणो ।
पुठी ड्रेई पाण खे, भुली पाइनि भसु ।
सुजाणा साईंअ रे, खाली खणनि न खसु ।
जिनिखे आयो रसु, सामी सफाईअ जो ॥ ३५५ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी) सब से खोखला (झूठा अथवा सारहीन) विरोध करते रहते है (परमात्मा के सबध मे सारहीन बाते बकते रहते है)। वे अपने से मुख मोडकर तथा अपने (स्वरूप) को भूलकर धूल प्राप्त कर रहे है। किन्तु उन जागृतो को जिन्हे पवित्रता (आत्मज्ञान) का रस मिल गया है, वे परमात्मा के सिवा (अज्ञानरूपी) घास को नही ग्रहण करते है (माया एव अज्ञान से मुक्त हो परमात्मा मे ही मस्त रहते हैं) ॥ ३५५ ॥

अन्धा कनि अनुमान, कल्पी कर्ता पुरुष जो ।
जंहिंजे अखि फर्क मे, थे उत्पति लै जहानु ।
मनु बुधि पहुचे कीन की, ज्ञानु ध्यानु गल्तानु ।
नानत खो निरबाण, को सामी सुजाणो ड्रिसे ॥ ३५६ ॥

सामीजी कहते है कि कर्ता पुरुष (परमात्मा) जिसके पलक झपकने से ही सारा ससार उत्पन्न एव लय हो जाता है, उसके विषय मे अन्धे

(अज्ञानी जीव) केवल कल्पना तथा अनुमान ही करते रहते हैं। यद्यपि वे ज्ञान तथा ध्यान मे व्यस्त रहते है फिर भी (द्वैत के कारण) उनका मन और बुद्धि वहाँ (परमात्मा) तक नही पहुँच पाती है। केवल द्वैतहीन जागृत (आत्मा एव परमात्मा मे किसी भी प्रकार का भेद न देखनेवाला ज्ञानी) पुरुष ही उसे (परमात्मा को) देख पाता है ॥ ३५६ ॥

अन्धा कनि अनुमानु, सुत्हसिधि स्वरूप जो।
ड्रिसनि कोन अख्युनि रे, अग्यो अन्भय भानु।
सामी सुजाग्निनि खे, अस्तामलु आसानु।
जाग़ी सभु जहानु, लै ड्रिठाऊ लख मे ॥ ३५७ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी) साक्षात् परमात्मा के स्वरूप के विषय मे अनुमान ही करते है। वे (ज्ञान रूपी) आँखो के न होने के कारण, अपने आगे प्रकाशित आत्मारूपी सूर्य को नही देख पाते है। किन्तु जागृतो (ज्ञानवानो) के लिए (परमात्मा के विषय मे) सब कुछ जानना आसान है, क्योकि उन्होने जागृत होकर (अज्ञान को त्यागकर) सारे ससार को आत्मज्ञान के प्रकाश मे देख लिया है ॥ ३५७ ॥

अन्धा कनि अभिमानु, काया माया कुल जो।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, कशे बीठो कानु।
व्रिलो को गुर्मुखु रहे, सामी सावधानु।
जहि खे आत्म ज्ञानु, सुत्ह ड्रिनो सतिगुरुअ ॥ ३५८ ॥

अन्धे (अज्ञानी जीव) काया, माया एव कुल पर अभिमान करते रहते है। वे अपने कन्धे पर तीर तानकर खडी हुई मृत्यु को नही देख पाते है। सामीजी कहते है कि वही विरला गुरुभक्त सावधान रह पाता है, जिसे सद्गुरु ने स्वय ही आत्मज्ञान दिया है ॥ ३५८ ॥

अन्धा कनि इत्बारु, काया माया कुल जो।
उल्टी ड्रिसनि कीन को, कन्ध ते कालु कहारु।
मारे जहि मिटी कयो, सामी सभु सन्सारु।
सिधु साधिकु अवतारु, हल्यो वञे हेकिलो ॥ ३५९ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी) काया, माया एव कुल पर विश्वास करते है। वे (ससार से) विरक्त होकर उस विकराल मृत्यु को कन्धे पर सवार नही देख पाते हैं, जिस (मृत्यु) ने सारे ससार को मिटा दिया है। इसी मृत्यु के कारण सिद्ध, साधक तथा अवतारी मनुष्य (महान् आत्माएँ) अकेले ही चले जाते है ॥ ३५९ ॥

अन्धा कनि इत्बारु, काया माया कुल ते ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपी थियनि ख़ुआरु ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को साधूजनु सचारु ।
जहिखे सुखु करारु, सामी डिनो सतिगुरुअ ॥ ३६० ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी जीव) काया, माया तथा कुल पर विश्वास करते रहते हैं। वे ससार को सत्य मानकर, अपने को खपा-कर बदनाम होते हैं। किन्तु जिसे सद्‌गुरु ने सुख-शान्ति दी है, वही सत्यवादी साधु पुरुष, आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है ॥ ३६० ॥

अन्धा कनि इत्बारु, काया माया कुल ते ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपी थियनि ख़ुआरु ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को सुजाग्रो सचारु ।
जहिं आदी अन्भय यारु, प्रत्क्षु डिठो पहिजो ॥ ३६१ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) काया, माया तथा कुल का विश्वास करते रहते हैं। वे ससार को सत्य मानकर, अपने को खपाकर बदनाम होते रहते है, लेकिन जिसने आदिज्ञान-रूपी मित्र को साक्षात् देखा है, वही सच्चा जागृत (ज्ञानी) आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है ॥ ३६१ ॥

अन्धा कनि इत्बारु, काया माया कुल ते ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपी थियनि ख़ुआरु ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को साधूजनु सचारु ।
माणे मौज अपारु, सामी मिली स्वरूप साँ ॥ ३६२ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) काया, माया एव कुल पर विश्वास करते रहते है। वे ससार को सत्य मानकर, अपने को खपाकर बदनाम होते रहते हैं। परन्तु जो स्व-रूप से मिलकर अनन्त आनद मनाता रहता है, वही सच्चा साधु आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है ॥ ३६२ ॥

अन्धा कनि इत्बारु, काया माया कुल ते ।
स्वप्न जे सन्सार मे, खपी थियनि ख़ुआरु ।
सामी वचियो को सूर्मो, सुजाग्रो सचारु ।
दोस्त जो दीदार, डिठो जहिं अभेदु थी ॥ ३६३ ॥

अन्धे (अज्ञानी जीव) काया, माया एव कुल पर विश्वास करते रहते है। वे स्वप्नवत् ससार मे अपने को खपाकर बदनाम होते रहते हैं।

सामीजी कहते है, किन्तु जिसने अपने दोस्त (परमात्मा) का दीदार अभेद (भेद-रहित) होकर किया है, वही सच्चा जागृत शूरवीर (वदनामी) से वच पाता है ॥ ३६३ ॥

अन्धा कनि उपाउ, पसण काणि प्रियनि जे ।
आदी अन्भय घर जो, रखनि न सुधि समाउ ।
सामी सुजाग्रनि जे, लूअ लूअ मंझि लखाउ ।
मेटे दुत्या भाउ, इस्थति थिया आकास जाँ ॥ ३६४ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) प्रियतम (परमात्मा) को देखने के लिए अनेक उपाय (साधन) करते है, किन्तु वे आदि आत्मिक घर का ज्ञान नही रखते है (आत्मज्ञान से अनजान रहते है) । लेकिन जागृतो के रोम-रोम मे (ईश्वरीय) ज्योति समायी हुई रहती है, अत. वे द्वैत भाव को मिटाकर आकाश की भाँति स्थिर हो गये है ॥ ३६४ ॥

अन्धा करे अज्ञानु, खोहिनि मानुष देहि खे ।
भोग्रिनि भोग्र भर्म जा, रखी कनि अभिमानु ।
सुजाग्रनि सोधे लधो, भगति भाउ भग्रिवानु ।
सदा सावधानु, सामी रहनि स्वभाव मे ॥ ३६५ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे जीव अज्ञानवश मानव शरीर को नष्ट करते हैं । वे अभिमानी वनकर भ्रमो के भोग भोगते है लेकिन जागृतो (ज्ञानवानो) ने भक्ति भाव से परमात्मा को ढूँढ लिया है, अत वे सदैव सचेत होकर अपने ही भावो मे मस्त रहते है ॥ ३६५ ॥

अन्धा कीन ड्रिसनि, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ।
दर दर देवाननि जाँ, कूडा किसा कनि ।
सुत्ह सिधि सही कयो, सामी सुजाग्रनि ।
महवत जिनिजे मनि, हुई अभेदु अणमई ॥ ३६६ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी जीव) भीतर तथा वाहर आत्मा को (स्थित) नही देखते है, अत वे पागलो की तरह द्वार-द्वार पर जाकर झूठी कहानियाँ कहते रहते है, परन्तु जिन जागृतो (ज्ञानवानो) के हृदय मे (परमात्मा के प्रति) अपार प्रेम है, तथा जो द्वैत से रहित है, उन्होने परमात्मा के सच्चे स्वरूप को पहचान लिया है ॥ ३६६ ॥

अन्धा कीन द्रिसनि, प्रत्क्षु परमेश्वर खे ।
भर्म मझि भुली करे, भौदूअ जॉ भिटिकनि ।
सुत्ह सिधि सही कयो, सामी सुजाग्रनि ।
रता रंगि रहनि द्वेत वराए दिलि मों ।। ३६७ ।।

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी) प्रत्यक्ष परमेश्वर को नही देख पाते है । वे बेवकूफो की तरह भ्रमो से (अपने स्वरूप को) भूलकर भटकते रहते है । किन्तु जागृतो (ज्ञानियो) ने परमात्मा के स्वरूप को पहचान लिया है, अत वे हृदय से द्वैत निकाल कर, आत्म-रग मे रगे हुए है (आत्मानद मे लीन रहते है) ।। ३६७ ।।

अन्धा जीअ अज्ञाण, सचु सुञाणनि कीनकी ।
करे कर्म भला बुरा, भवनि भोगिनि पाण ।
सुजाग्रा स्वरूप जी, रखनि प्रीति पछाण ।
सदाई निरब्राण, सामी रहनि स्वभाव मे ।। ३६८ ।।

सामीजी कहते है कि अन्धे जीव अनजान रहते है । वे सत्य को नही पहचानते है । वे भले-बुरे कर्म करते रहते हैं तथा सासारिक भोगो के पीछे भटकते रहते है, किन्तु जागृत (ज्ञानी) स्व-रूप से प्रेम करते है एव उसकी पहचान रखते हैं, अत वे सदैव अपने भावो मे स्थित रहकर मुक्तावस्था का आनद लूटते हैं ।। ३६८ ।।

अन्धा जीअ अज्ञाण, सचु सुञाणनि कीनकी ।
भुली भवसागर मे, पवनि पहिंजो पाण ।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, के नेही निरब्राण ।
प्रत्क्षु जिनि प्रमाण, सामी समुझो सभ मे ।। ३६९ ।।

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी) जीव अनजान रहते हैं, वे सत्य को नही पहचानते हैं, वे स्वय ही ससार रूपी सागर मे पडकर अपने स्व-रूप को भूल बैठे हैं । किन्तु (अज्ञान से) जिन्होने सब मे प्रत्यक्ष प्रमाण (एक ही आत्मा को) देख लिया है, वे मुक्त प्रेमी स्व-रूप सुख का ही उपभोग करते रहते है ।। ३६९ ।।

अन्धा जीअ अज्ञाण, सचु सुञाणनि कीनकी ।
माया मोह असार मे, सदा रहनि गलतान ।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, नेही निराभिमान ।
सम सीतलु सावधान, सामी रहनि स्वभाव मे ।। ३७० ।।

अन्धे ऐ सुजे, चर्चा कई चेतन जी ।
हू डिसे अपरोक्षु अख्युनि सॉ, हू दमि दमि दूरि भजे ।
बिन्ही जो वाभिणु चए, खललु कीन खजे ।
जो प्री पाण कजे, त अख्यू डे अन्धे खे ॥ ३७७ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे और नेत्रवाले (अज्ञानी और ज्ञानी) ने चेतन (परमात्मा) की चर्चा की। वह (नेत्रवाला ज्ञानी) परमात्मा को अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) आँखो से देखता है, किन्तु अन्धा अज्ञानी पल-पल उससे (परमात्मा से) दूर भागता रहता है। अत. दोनो के बीच जो वाद-विवाद हो रहा है, उसका अन्त ही नही हो पाता है। यदि प्रियतम (परमात्मा) प्रसन्न होकर अन्धे को आँखे दे दे (ज्ञान दे) (तब ही दोनो के बीच का झगडा समाप्त हो) ॥ ३७७ ॥

अन्धे खे आई, अड्यो ओट अज्ञान जी ।
जुदा जाणी पाणखे, रोले विधाई ।
सामी सुजाणनि कई सुल्ह सफाई ।
सभि घट लालाई, प्रत्क्षु डिसनि पीअ जी ॥ ३७८ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धो के आगे अज्ञान का पर्दा आ गया है, अत. वे अपने को परमात्मा से अलग मान कर भटक रहे है, किन्तु जागृतो ने अपने हृदय को साफ कर लिया है (अज्ञान को हृदय से निकाल दिया है) इस लिए वे घर-घर मे (सब जगह) प्रियतम की लालिमा (झलक) प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ३७८ ॥

अन्धे वटि आयो, सुजाणो स्वभाव सॉ ।
तहिं डेई हथ हिमथ जो, राह सचीअ लायो ।
घरि पहुँचाए पहिंजे, सन्सो मिटायो ।
सामी समायो, जल पपोटो जल मे ॥ ३७९ ॥

सामीजी कहते हैं कि जब अन्धे (अज्ञानी) के पास (ईश्वरीय सत्ता को जानने वाला) जागृत (ज्ञानी) सहज ही आ जाता है तब वह उसे (अज्ञानी जीव को) हिम्मत के हाथ देकर (अपनी ज्ञान शक्ति के सहारे) सत्य के रास्ते पर लगा देता है, तथा भ्रम को मिटाकर, उसे उसके ही घर पर पहुँचा देता है (हृदय रूपी घर मे आत्मा का दर्शन कराता है अथवा उसे अन्तर्मुख बनाता है), जिससे वह पानी के बुदबुदे की तरह पानी मे समा जाता है। (परमात्मा मे लीन हो जाता है) ॥ ३७९ ॥

अन्धो अभाग्रो, सचु सुञाणे कीन की ।
भुली भरे सभ जो लोभी थी लाग्रो ।
माणे सुखु स्वरूप जो, को साधू सुजाग्रो ।
सदा अनुराग्रो, सामी रहे स्वभाव मे ।। ३८० ।।

सामीजी कहते है कि अन्धा (अज्ञानी) भाग्यहीन है, क्योकि वह सत्य को नही पहचानता है। वह अपने (स्वरूप) को भूलकर, लालच-वश लेन-देन के फेर में पड जाता है (कुछ प्राप्त करने की अपेक्षा सब कुछ गँवा बैठता है)। लेकिन जागृत साधु पुरुष सदैव अपने ही भावो मे अनुरक्त हो, स्वरूप-सुख का उपभोग करता रहता है ।। ३८० ।।

अन्धो जीउ अहमकु, सचु सुञाणे कीन की ।
देही ज्ञाणी पाणखे, भोगे नितु नर्कु ।
व्रिलो को गुर्मुखु रहे, फुर्नें खों फार्कु ।
ब्रांभण थी ब्रालकु, वर्ते सभ वहिवार मे ।। ३८१ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धा जीव (अज्ञानी जीव) बेवकूफ है क्योकि वह सत्य को नही पहचानता है। वह स्वय को शरीर समझकर, सदैव नरक (के दु खो को) भोगता है। कोई विरला गुरुभक्त ही भ्रमो से मुक्त रहता है एव सब प्रकार के व्यवहार मे बालको की तरह (निर्दोष होकर) बर्ताव करता है ।। ३८१ ।।

अहंकारी अहमक, सचु सुञाणनि कीन की ।
बुधी वाक्य वेदान्त जा, दरि दरि बकनि बक ।
इस्थति रहनि आकास ज्यॉ, के प्रेमी प्रपक ।
लूअं लूअ साणु लटक, सामी लाए लालु थिया ।। ३८२ ।।

अहकारी नादान (जीव) सत्य को नही पहचानते हैं। वे वेदान्त के वाक्य सुनकर (बिना उन पर आचरण किए) उन्हे द्वार-द्वार बकते रहते है। सामीजी कहते हैं किन्तु पक्के प्रेमी पुरुष आकाश की भाँति स्थिर रहते है। उनका रोम-रोम परमात्मा के प्रेम-रूपी रग मे रगकर लाल हो गया है ।। ३८२ ।।

कर्म करिनि कूडा, पाए सघनि न पीअ खे ।
भुली भवनि पाणही, ममत्व मे मूढा ।
माणिनि दौर दर्सजा, सम थी सचूडा ।
सदा गउड़ा गूड़ा, सामी रहनि स्वभाव में ।। ३८३ ।।

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी) जीव अनजान रहते है। वे सत्य को नही पहचानते है। वे सदैव असार माया एव मोह मे डूबे रहते हैं। किन्तु अभिमान-रहित प्रेमी अपने ही भावो मे सम, शीतल एवं सचेत रहते हैं, तथा स्व-रूप सुख का उपभोग करते रहते है ॥ ३७० ॥

अन्धा जीअ अड़ी, पिया सभि माया मोह मे ।
मरनि मति मर्म रे, रात्यू ड्डीह अड़ी ।
कहि सुजाग्ो सूर्मे, भग्ो भर्म भड़ी ।
चेतन चिट चढी, सैल करे सामी चए ॥ ३७१ ॥

सामीजी कहते हैं कि सब अन्धे जीव (अज्ञानी) मोह तथा माया मे अटके पडे है। वे निर्लज्ज एव ज्ञानहीन हठ कर दिन रात (माया मे) मर रहे है (जानबूझ कर वे भ्रमो मे फँस रहे हे)। किन्तु जागृत शूरवीर (ज्ञानी) ने भ्रम रूपी गाँठ तोड (खोल) दी है अत वह चेतन (ज्ञान के) मार्ग पर विचरण कर रहा है ॥ ३७१ ॥

अन्धा जीअ अड़ी, पिया भर्म माया मोह मे ।
मरनि मति मर्म रे, रात्यू ड्डीह रडी ।
सामी सुजाग्ा विया, चेतन चिट चढी ।
भग्ी भर्म घडी, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ ३७२ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी) जीव माया मोह एव भ्रमो मे अटके हुए है। वे निर्लज्ज तथा ज्ञानहीन दिन रात रो-रो कर मर रहे हैं। परन्तु जागृत (ज्ञानी) चेतन मार्ग पर अग्रसर होते रहते है। उन्होने भ्रम-रूपी घडे को तोड दिया है, (भ्रमो से मुक्त हो गये है), अत वे स्वरूप सुख का आनन्द भोग रहे है ॥ ३७२ ॥

अन्धा जीअ अहमक, सचु सुञाणनि कीन की ।
पुठी ड्डेई पाण खे, दरि दरि वकनि वक ।
सामी जुर्या स्वरूप साँ, के प्रेमी परिपक ।
पलक मझि झलक, ड्रिठी जिनि अन्भई ॥ ३७३ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) जीव मूर्ख है, क्योकि वे सत्य को नही पहचानते है। वे अपने (स्व-रूप) से मुख मोड कर द्वार-द्वार वकवक करते रहते है। किन्तु जिसने पलक मे भीतर स्थित आत्मा

की झलक देख ली है, वही पक्का प्रेमी अपने स्वरूप मे स्थित रहता है ॥ ३७३ ॥

अन्धा थी उत्पति, सचु सुञाणनि कीनकी ।
रोलिनि मानुष्य देहिखे, करे कूड कुसति ।
सुजाग्रनि कई साध सगि, भाग्रवती भग्रति ।
मेटे ममत्व मति, सामी जुर्या स्वरूप सॉ ॥ ३७४ ॥

अन्धे (अज्ञानी) सत्य को नही पहचानते हैं, अत वे बेचैन रहते है । वे झूठे एव बुरे कार्य कर अपने मानव जीवन को भटकाते रहते हैं, (बुरे कर्मो के कारण नीच योनियो मे भटकते रहते है) । सामीजी कहते हैं किन्तु जागृतो (ज्ञानवानो) ने साधुओ के सग से प्रेमपूर्ण भक्ति की है, अत वे ममत्व-बुद्धि मिटाकर स्वरूप से जा जुडे है ॥ ३७४ ॥

अन्धा पिया उझीं, काया माया कुल मे ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, फोक विया फुर्जी ।
सामी डि्ठो स्वरूप खे, कहि सुजाग्र सुर्जी ।
पीताई पर्ची प्यालो प्रेम अगम जो ॥ ३७५ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी) काया माया एव कुल मे ही फँस गये है । वे ससार को सत्य मानकर (माया द्वारा) व्यर्थ ही ठग लिए गये है । किन्तु जिस जागृत ने सचेत होकर अगम (परमात्मा) के प्रेम रूपी प्याले को प्रसन्नता से पी लिया है, उसने स्वरूप का दीदार भी कर लिया है ॥ ३७५ ॥

अन्धे अभाग्रे घोटु न लधो घर जो ।
भवे भेद भर्म सॉ, दहदिस दिलि दाग्रे ।
पूरणु डि्ठो पीअ खे, कहि साधुअ सुजाग्रे ।
तमा सभि त्याग्रे, सामी माणे सेज सुखु ॥ ३७६ ॥

सामीजी कहते हैं कि भाग्यहीन अन्धे को घर का स्वामी नही मिला है, (अज्ञानी जीव को हृदय मे स्थित प्रियतम दिखाई नही देता है) अत: वह दुखी हृदय लेकर, भेद तथा भ्रमवश होकर दसो दिशाओ मे भटक रहा है। लेकिन जिस जागृत साधु ने पूर्ण प्रियतम को देख लिया है वह सभी कामनाओ को त्याग कर शय्या-सुख भोग रहा है, (परमात्मा के साथ विलास कर रहा है) ॥ ३७६ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूढ (जीव) झूठे कर्म करते रहते है, अत. प्रियतम को प्राप्त नही कर सकते हैं। वे ममता मे पड़कर अपने (स्वरूप) को भूलकर स्वय ही भटक रहे है। किन्तु सन्त पुरुष, समभाव होकर प्रियतम के दर्शन का आनद लूटते हैं तथा अपने ही भावो मे सदैव गहराई से डूबे रहते है। (जिस प्रकार भारी वस्तु एक ही जगह पर स्थिर रहती है उसी प्रकार आत्मा के गूढ़ ज्ञान को प्राप्त करनेवाले अधजल गगरी की भाँति छलकते नही है, वल्कि अपनी ही जगह पर स्थिर एव गभीर रहते है) ॥३८३॥

करे हठु हठी, खोहिनि मानुष्य देहखे।
खेप खटी विया प्रीतिवान, नेही वाट वठी।
कसौटी कामिल जी, सामी जिनि सठी।
कल्पत पिण्ड पठी, सटे मिल्या स्वरूप साँ ॥ ३८४ ॥

हठी (अज्ञानी) हठ कर मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट करते है, किन्तु प्रेमी प्रेम का रास्ता अपनाकर विजयी वने वैठे हैं (आत्मज्ञान प्राप्त कर मानव-जीवन को सफल कर वैठे हैं)। सामीजी कहते हैं कि जिन्होंने पहुँचे हुए सद्गुरु द्वारा ली गई कसौटी के दु.ख सहन किये हैं (गुरु द्वारा ली गई परीक्षा मे सफल हुए हैं), वे प्रपच रूपी पिण्ड को पटककर स्वरूप से जा मिले है ॥ ३८४ ॥

कंहिखे पवे न कल, अणहून्दे आड़ाह जी।
लुढी लहवारा थिया, सूरवीर सबल।
लंघे चढ़िया लख्य ते, के नेही निर्मल।
अठई पहर अचल, सामी रहनि स्वभाव मे ॥ ३८५ ॥

सामीजी कहते हैं कि इस मिथ्या (ससार रूपी) समुद्र की पहचान किसी को भी नही है, अत सवल तथा शूरवीर भी (अज्ञान-वश) इसके प्रवाह मे नष्ट हो गये है। किन्तु कुछ पवित्र प्रेमी अज्ञान को मिटाकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुए हैं। वे आठो ही याम अपने ही भावो (आत्मा सवधी भावो) मे अचल रहते हैं ॥ ३८५ ॥

किसा करे कूड़ा, ब्रुधाइनि ब्रियनि खे।
पाणु पछाणनि कीनकी, मूढा मति मूढ़ा।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, साधू जन सूड़ा।
सदा ओरा गूडा, सामी रहनि स्वभाव मे ॥ ३८६ ॥

सामीजी कहते है कि मन्द बुद्धि मूर्ख (अत्यन्त ही अज्ञानी जीव) अपने (स्वरूप) को तो पहचानते नही है परन्तु दूसरो को (आत्मा-सबधी) झूठी कहानियाँ सुनाते रहते है। किन्तु पूर्ण साधु पुरुष स्वरूप-सुख का उपभोग करते रहते हैं, फिर भी सदैव अपने ही भावो मे (आत्म-सबधी विचारो मे) भारी एव गभीर बने हुए रहते हैं। (अज्ञानी जीव अधजल गगरी की भाँति छलकते रहते है किन्तु ज्ञानवान सदैव गभीर रहते हैं) ॥ ३८६ ॥

की ज्ञाताईं पाणु ? प्री ज्ञाताई की ब्रियो ?
सामी तहिंखे सन्तजन, ज्ञाणनि अति अज्ञाणु ।
पर्ची करे न पाणखे, नानत खों निरब्राणु ।
सदा सरो साणु, भवे भौसागर मे ॥ ३८७ ॥

सामीजी कहते है कि सन्त-जन उन लोगो को अनभिज्ञ (अज्ञानी) मानते है, जो स्वय को पहचान कर (पहचानने का दावा कर) भी प्रियतम को अपने से अलग मानते है (जिनके हृदय मे द्वैत की भावना है, जो आत्मा एव परमात्मा मे भेद मानते हैं वे वास्तव मे अज्ञानी ही हैं)। ऐसे (अज्ञानी) लोग स्वय को द्वेष से मुक्त नही कर पाते बल्कि भ्रमित होकर सदैव ससार रूपी सागर मे भटकते रहते हैं ॥ ३८७ ॥

कूड़नि कूड़ी तार, लाथी माया मोह जी ।
भवनि भौसागर मे, पाए जन्म अपार ।
सामी सचारनि जी, सची समुझ सम्भार ।
घर धणीअ खॉ धार, कड्हिं थियनि कीन की ॥ ३८८ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोगो (अज्ञानियो) ने माया तथा मोह से झूठी प्रीति की है, अत वे अनेक जन्म पाकर ससार रूपी सागर मे भटक रहे हैं। किन्तु सच्चे (ज्ञानी) सत्य (ज्ञान) से परिचित हैं अत. वे (हृदय-रूपी) घर के मालिक (ईश्वर) से कदापि अलग नही होते है ॥ ३८८ ॥

कूड़नि खे कदुर, कोन्हे मानुष देहि जो ।
भवनि भौसागर मे, थी अधीनु आतुरु ।
सचारनि सोधे लधो, ठिकर मों ठाकुरु ।
ऐन अभेद अफुरु, सामी रहनि स्वभाव मे ॥ ३८९ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे (अज्ञानी जीव) मानव शरीर की कद्र

नही करते है। वे अधीन एव आतुर होकर सदैव ससार-सागर मे भटकते रहते है। किन्तु सत्य को जाननेवालो (ज्ञानी जीवो) ने पत्थर मे भी परमात्मा को ढूढ लिया है, अत वे पवित्र, अभेद तथा अविचलित रहकर अपने ही भावो मे (मस्त) रहते है॥ ३८९॥

कूडनि खे कर्तव्य, वेदनि चयो विधि साँ।
सामी सचारनि जो, सुल्ह पाकु पलउ।
पूरणु डि्सनि पीअखे, मेटे भोलो भउ।
सोनार्कों सउ, लोहार्कों धकु हिकिडो॥ ३९०॥

सामीजी कहते है कि वेदो ने झूठे लोगो (अज्ञानी जीवो) को कर्तव्य की विधि बता दी है (परमात्मा को पाने के साधन बता दिये हैं)। किन्तु सच्चे (ज्ञानी जीवो) का आँचल सदैव पाक व पवित्र रहता है। वे भय तथा भ्रम मिटाकर पूर्ण प्रियतम को देखते रहते हैं। जिस प्रकार सुनार के सौ प्रहार लुहार के एक प्रहार के बराबर है उसी प्रकार अज्ञानी जीव सुनार की तरह बार-बार परमात्मा को पाने के प्रयत्न करते रहते है, परन्तु ज्ञानी जीव लुहार की तरह एक ही प्रयत्न से परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं॥ ३९०॥

कूड़नि खे कर्तारु, पाणु पसाए कीनकी।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपी थियनि खुआरु।
माणे दीर दर्स जो, को साधू जन सचारु।
बणीअ ते हुशियारु, सदा रहे सामी चए॥ ३९१॥

सामीजी कहते हैं झूठे (अज्ञानी जीवो) को कर्तार अपने आप को नही दर्शाते हैं (अज्ञानी जीव परमात्मा को देख नही पाते हैं), अत वे ससार को सत्य मानकर, अपने को खपाकर, बदनाम होते रहते है, किन्तु सत्य को जानने वाला साधु चतुर बनकर परमात्मा के दर्शन का आनन्द भोगता है॥ ३९१॥

कूडनि झालिह कची, मञी कूड़ कल्पत जी।
मरनि माया मोह मे, पंहिजो पाण पची।
सचारनि सामी चए, समुझी लख सची।
रह्या रग रची, सुल्ह सिधि स्वरूप मे॥ ३९२॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (अज्ञानी) लोगो ने झूठे प्रपंच को सत्य मान लिया है, अत वे स्वय ही मोह तथा माया मे पच-पच कर मर रहे

है। किन्तु सत्य को जाननेवालो ने सत्य को पहचान लिया है (आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है) अत वे साक्षात् परमात्मा के रूप मे रगे हुए रहते हैं ॥ ३९२ ॥

कूड़नि जी कहिणी, कूड़ी कथ रहणीअ रे।
भवनि भौसागर मे, करे पाणु पिणी।
सामी सुजाग्रनि डि्ठो, घर मे घर धणी।
पिननि पंज कणी, तांभी राजा रावल देसजा ॥ ३९३ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोगो की कहनी (कथित बाते) आचरण-हीन होने के कारण झूठी है (झूठे लोग दूसरो को तो सत्य का उपदेश देते हैं पर खुद उस पर आचरण नही करते है। वे स्वय ही अपने को वदनाम कर ससार-सागर मे भटकते रहते है। किन्तु जागृतो (ज्ञानी लोगो) ने (हृदय-रूपी) घर मे घर के मालिक (परमात्मा) को देख लिया हैं, अत यद्यपि वे (पेट के कारण) अन्न के पांच-कण की भीख भी माग रहे है, फिर भी वे ससार के सम्राट् है ॥ ३९३ ॥

कूडनि जो कर्तौं, कूड़ो सभु कल्पत जो।
भवनि भोग्रिनि पाणही, रखी कूडो तौ।
सामी सचारानि जे, मन वसे माधौ।
मेटे भोलो भौ, इस्थति थिया आकास जाँ ॥ ३९४ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोगो (अज्ञानी जीवो) का समस्त व्यवहार झूठा एव प्रपच-युक्त है। वे झूठ का सहारा लेकर (अज्ञान-वश) स्वय ही दु खो को भोग-भोग कर भटक रहे है, किन्तु सत्य को जाननेवालो (ज्ञानी जीवो) के हृदय मे माधव (परमात्मा) का निवास है। वे भ्रम तथा भय मिटाकर आकाश की भांति स्थित हो गये है ॥ ३९४ ॥

कूडनि जो कल्याणु, थिए न समता सच रे।
तोड़े सभि साधन करे, मारिनि पहिजो पाणु।
सदा सचारनि जे, सज्रणु रहे सांणु।
पाए पदु निरबाणु, सामी माणिनि सेज सुखु ॥ ३९५ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) यद्यपि अपने (मन) को मारकर (परमात्मा को प्राप्त करने के लिए) सव प्रकार के साधन करते रहते है, फिर भी समता-सत्य को (शाश्वत आत्मा को सर्व में समान रूप से देखने के सिवा) अपनाये विना उनका कल्याण नही होता है। लेकिन

सत्य को जाननेवालो के साथ सदैव प्रियतम (परमात्मा) रहता है। वे निर्वाण पद प्राप्त कर, शय्या-सुख लूटते है (परमात्मा के साथ विलास करते है) ॥ ३९५ ॥

कूड़नि जो कोई, थाइ न पवे जोगु जपु।
भोगिनि भोग नर्क जा, रहित बिना रोई।
सामी सचारनि जो सम सचो सोई।
जीए रग रती लोई, तीएं रता रहनि रग मे ॥ ३९६ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोगो (अज्ञानियो) को योग और जप करने से भी कुछ प्राप्त नही होता है। वे करनी के बिना नरक के दुख रो-रो कर भोगते रहते हैं, किन्तु सत्य को जाननेवाले (ज्ञानी) उस (आत्मा) को ही सत्य और सम मानते हैं, अत वे उसके (आत्मा के) रग मे उसी प्रकार रगे हुए रहते हैं, जिस प्रकार कम्बल अपने रग मे रगा हुआ रहता है ॥ ३९६ ॥

कूड़नि लिव लाई, कूड़ीअ माया मोह साँ।
सति ज्ञाणी ससार खे, छाणिनि था छाई।
सामी सचारनि खे, समुझ सची आई।
सम थी सदाई, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ ३९७ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोगो (अज्ञानी जीवो) ने झूठी मोह-माया से प्रीति की है। वे ससार को सत्य मानकर, राख छान रहे है (अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं)। किन्तु सत्य को जाननेवालो को सच्ची बुद्धि (ज्ञान) प्राप्त हो गयी है अत. वे सदैव सम-भाव होकर स्वरूप-सुख का उपभोग करते रहते हैं ॥ ३९७ ॥

कूड़ा ऐ कुमती, साड़ न ज्ञाणनि सम जो।
खोहिनि मानुष देह खे, करे मन मती।
सामी सचारनि जी, लिव लिवं रग रती।
पाए प्राण पती, इस्थति थिया आकास जाँ ॥ ३९८ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे एव कुमति-जीव (अज्ञानी और कुमार्गी) समता के महत्व को नही जानते हैं। वे मन के अधीन होकर (अमूल्य) मानव-शरीर को व्यर्थ ही गँवाते है। लेकिन सत्य को जाननेवालो का रोम-रोम (परमात्मा के प्रेमरूपी) रग मे रगा हुआ रहता है। वे प्राण-पति (परमात्मा) को प्राप्त कर आकाश की भाँति स्थिर रहते है ॥ ३९८ ॥

कूड़ा कथे कथ, ब्रुधाइनि ब्रियनि खे।
वहनि पाण वह मे, हारे सभि हिमथ।
पूरणु ज्ञाणनि पीअ खे, सूर्मा समिरथ।
जिनिखे ड्रेई हथ, सामी रख्यो सतिगुरुअ ॥ ३९९ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे जीव (अज्ञानी) दूसरो को झूठे कथन सुनाते रहते है, परन्तु स्वय समस्त हिम्मत हारकर (प्रपच रूपी) प्रवाह मे वहते रहते है। किन्तु जिन्हे सदगुरु ने अपने हाथो का सहारा दिया है (ज्ञान का उपदेश दिया है), वे समर्थ शूरवीर (ज्ञानी) पूर्ण प्रियतम (परमात्मा) को जानते है ॥ ३९९ ॥

कूड़ा कपटी कोर, सचु सुञाणनि कोनकी।
मरी पाइनि मति रे, जन्म अनेक अघोर।
को सुजाग्रो सूर्मो, माणे दर्सन दौर।
सामी चए जहिं चोर, भञी कया वसि पहिंजे ॥ ४०० ॥

झूठे, कपटी तथा मूढ लोग सत्य को नही पहचानते हैं। वे बुद्धि-हीन मर-मर कर अनेक अघोर (अशुभ) जन्म प्राप्त करते रहते है। सामीजी कहते हैं, किन्तु जिसने (काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहकार रूपी) चोरो को मार कर अपने वश मे कर लिया है, वह जागृत शूरवीर (परमात्मा के) दर्शन के आनन्द का उपभोग करता है ॥ ४०० ॥

कूड़ा कमाई, कूडी कनि कल्पत जी।
सभुकी सहनि सिरते, ज्ञाणी वड्राई।
सचा माणिनि सान्ति सुखु, सामी सदाई।
पकी पकाई, रोटी खाइनि रस भरी ॥ ४०१ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोग (अज्ञानी) प्रपच की झूठी कमाई करते हैं (ससार के प्रपच मे फँसे हुए रहते है)। वें (प्रपंच के) दुखो को सहन करने मे ही अपना बडप्पन मानते है, किन्तु सच्चे (ज्ञानी) सदैव पकी-पकाई, रस-भरी रोटी खाकर (हृदय मे ही स्थित आत्मा का ध्यान कर) शान्ति तथा सुख का उपभोग करते है ॥ ४०१ ॥

कूड़ा करे कर्तबु, ड्रेखारिनि सभु ड्रेह खे।
अग्यो अजीबनि जे, छुपे कोन कसबु।
सामी सचारनि खे, कोन्हे लालच लबु।
रात्यू ड्रीहा रबु, ड्रिसनि पहिंजे ड्रील मे ॥ ४०२ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोग (अज्ञानी) ससार को अपनी (झूठी) चतुराई दिखाते रहते है, किन्तु परमात्मा के आगे उनके (झूठे) करतव नही छिपते हैं (परमात्मा से अपने बुरे कार्यों को नही छिपा सकते हैं)। किन्तु सत्य को जाननेवालो (ज्ञानियों) को किसी प्रकार की लालच और चाह नही रहती है, वे दिन रात अपने ही शरीर (हृदय) मे परमात्मा को देखते रहते है ॥ ४०२ ॥

कूडा कहाणी, कूड़ी कनि कल्पत जी।
सति ज्राणी सन्सार खे, विलोरिनि पाणी।
सामी सचारनि जी, सची ब्रुधी ब्राणी।
सभ घट समाणी, ज्योति डिसनि जग्रदीस जी ॥ ४०३ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोग (अज्ञानी) प्रपच की झूठी कहानी कहते रहते हैं। वे संसार को सत्य मानकर पानी को मथते रहते हैं (व्यर्थ परिश्रम करते रहते है। जिस प्रकार पानी को मथने से मक्खन नही निकलता है, उसी प्रकार कठोर से कठोर परिश्रम करने पर भी नश्वर संसार मे शाश्वत परमात्मा को नही पाया जा सकता है)। किन्तु सत्यवादी लोगो की वाणी एव बुद्धि सच्ची ही रहती है। वे घर-घर मे जगदीश्वर की ज्योति समाई हुई देखते हैं ॥ ४०३ ॥

कूड़ा कारि कची, कूडी कनि कल्पत जी।
मरनि मति मर्म रे, पंहिजो पाण पची।
सामी सचारनि जी, सदा मति सची।
रह्या रग रची, सुत्ह सिधि स्वरूप जे ॥ ४०४ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोग (अज्ञानी) प्रपच के झूठे कार्य विना सोचे-समझे करते रहते हैं। वे निर्लज्ज तथा बुद्धिहीन स्वयं ही पच-पच कर मर रहे है, किन्तु सत्यवादी लोग सदैव सच्ची बुद्धि (आत्मज्ञान) रखकर, परमात्मा के स्वरूप-रग मे रगे हुए रहते हैं (सदैव परमात्मा का ही चिन्तन करते रहते हैं) ॥ ४०४ ॥

कूड़ा कुरीतो, हलनि हर्फ हिसाब रे।
मरी पाइनि पाणही, किये जो कीतो।
सामी सचारनि सचो, प्यालो पुरि पीतो।
जाग्री जहिं जीत्यो, पूरणु ज्राणी पीअखे ॥ ४०५ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोग (अज्ञानी) सोच-विचार-हीन होकर बुरा व्यवहार करते रहते है। वे अपने किये का फल मर कर (नष्ट होकर) स्वयं ही पा लेते है। किन्तु सत्यवादी लोगो ने जागृत होकर, अपने आप को जीत लिया है (मन को वश मे कर लिया है) तथा प्रियतम (परमात्मा) को पूर्ण जानकर (प्रेम रूपी) प्याले को लबालब भरकर पी लिया है ॥ ४०५ ॥

कूडा कूड़ करे फाहे फासनि पाणही।
भोगिनि भोग नर्क जा, रोअनि रतु भरे।
सचारनि सटे विधो, पर्च्छिन्नु पिण्डु परे।
सामी ध्यानु धरे, माणिनि मौज मुक्ति जी ॥ ४०६ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) झूठे कार्य कर, स्वय ही अपने को (प्रपच रूपी) फाँसी मे फँसा देते हैं। वे खून के आँसू बहाते हुए (अति दुखी होकर) नरक के दु ख भोगते रहते हैं, किन्तु सत्य को जाननेवालो ने परिच्छिन्नता (भेदभाव) के पिण्ड को पटक दिया है और (परमात्मा का) ध्यान कर, मुक्ति का आनद मनाते रहते है ॥ ४०६ ॥

कूडा कूडाई, छद्रिनि कीन क्षण पलु हिकु।
पाएँ भवनि पाणही, छुज्ञ भरे छाई।
सामी सचारनि कई, समुझी सफाई।
सम थी सदाई, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ ४०७ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) एक क्षण भी झूठ से बाज नही आते हैं (सदैव झूठ ही बोलते रहते हैं) वे राख के सूप (Winnowing Basket) भरकर (अपना जीवन नष्ट कर) स्वय ही भटक रहे हैं। लेकिन सत्य-पुरुषो ने सोच-समझकर अपने हृदय को साफ कर लिया है (अज्ञान से किनारा कर लिया है)। वे सदैव सम-भाव होकर (परमात्मा के) स्वरूप का आनद भोगते रहते है ॥ ४०७ ॥

कूडा कूड़ाई, सोधी, रखनि साह्खो।
पाए भवनि पाणही, छल वल जी छाई।
सामी सचारनि कई, सची कमाई।
पंहिंजी पराई, तांति मेटे तद्रूप थिया ॥ ४०८ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोग (अज्ञानी) झूठ को प्राणो से भी ज्यादा सुरक्षित रखते हैं। वे स्वय ही छल-बल रूपी राख डालकर (अपने

को धोखा देकर) भटकते रहते है। लेकिन सत्यवादियों (ज्ञानियो) ने सत्य की कमाई की है अत वे अपने-पराये की भावना मिटाकर (परमात्मा के साथ) तद्रूप हो गये हैं ॥ ४०८ ॥

कूडा कूडी लार, लग्रा माया मोह जे।
खोहे मानुप देहि खे, रोअनि जारौ-जारु।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, सामी सन्त सचार।
जिते जीत न हार, तिते कयाऊ तक्यो ॥ ४०९ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोगो (अज्ञानियो) ने माया-मोह से झूठी प्रीति कर ली है। वे (माया-मोह मे) मानव शरीर नष्ट कर अश्रुधारा बहा रहे है। किन्तु सच्चे सन्त लोग स्वरूप-सुख का उपभोग करते रहते हैं। उन्होने वहाँ जाकर निवास किया है जहाँ न जीत है, न हार है ॥ ४०९ ॥

कूडा कूड करे, फाहीअ फासनि पाणही।
भवनि भौसागर मे, नाना रूप धरे।
सामी सचारनि खो, पीउ न रहे परे।
पीअनि पाकु भरे, प्यालो प्रेम अगम जो ॥ ४१० ॥

सामीजी कहते है कि झूठे (अज्ञानी) लोग झूठे (कार्य) कर स्वय ही अपने को (प्रपच रूपी) फाँसी मे फँसाते है। वे नाना प्रकार के रूप धारण कर ससार-सागर मे भटकते रहते है। लेकिन सत्यवादियो से प्रियतम (परमात्मा) दूर नही रहता है। वे अगम (परमात्मा) के पवित्र प्रेम-रूपी प्याले को भरकर पीते रहते है ॥ ४१० ॥

कूडा कूड करे, फाहे फासनि पाणही।
भवनि भौसागर मे, नाना रूप धरे।
सामी सचारनि सटियो, परिच्छिन्न पिण्डु परे।
दिसनि, नेण भरे; प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ॥ ४११ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोग (अज्ञानी) झूठे (कार्य) कर स्वय ही अपने को उलझाकर नष्ट कर देते है। वे नाना प्रकार के रूप धारण कर ससार-सागर मे भटकते रहते हैं। परन्तु सत्य-पुरुषो (ज्ञानवानो) ने परिच्छिन्नता (भेदभाव) के पिण्ड को पटक दिया है, अत वे प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा को जी भरकर देखते रहते हैं ॥ ४११ ॥

कूड़ा कूड़ करे, ब्रेडी ब्रोड़िनि पहिंजी।
भवनि भौसागर मे, नाना रूप धरे।
सामी सचारनि जो, सदा जहाजु तरे।
पति सॉं पूर भरे, पारि लघाइनि पातिणी ॥ ४१२ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे लोग (अज्ञानी) झूठे (कार्य) कर अपनी (जीवन-रूपी) नाव स्वय ही डुबोते हैं। वे नाना प्रकार के रूप धारण कर भव-सागर मे भटकते रहते हैं। लेकिन सत्य-पुरुषो का (जीवन-रूपी) जहाज सदैव तैरता रहता है, (तैर कर पार लगता है)। उसे (जहाज को) नाविक (सद्गुरु) विश्वास से खचाखच भरकर (अपने ज्ञान से परमात्मा के प्रति अटूट विश्वास उत्पन्न कर) पार लगा देता है ॥ ४१२ ॥

कूडा कूड़ु कुसति, ब्रोलिनि मति मर्म रे।
लाल विञाए अण-मुल्हा, खोहिनि पहिंजी पति।
सामी सचारनि जी, सची सभि सगति।
मेटे ममत्व मति, जुर्या ज्योति स्वरूप सॉं ॥ ४१३ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) बुद्धि हीन और निर्लज्ज होकर झूठ एव असत्य ही बोलते रहते है। वे (ईश्वर-रूपी) अमूल्य रत्न खोकर, अपनी मान-मर्यादा नष्ट कर रहे है। लेकिन सच्चे-पुरुष (ज्ञानी) सदैव सत्य (ज्ञान) का सग करते है। वे ममत्व-बुद्धि मिटाकर, परमात्मा की ज्योति से ही जुडे हुए रहते है ॥ ४१३ ॥

कूडा कुडु सति, करे कल्पनि पाणही।
मरी पाइनि मति रे, दुबारी दुर्गति।
सन्तनि सचारनि जो, सचो सारु सुमति।
रात्यूं डीहा रति, सामी रखनि स्वरूप सॉं ॥ ४१४ ॥

झूठे (अज्ञानी) लोग झूठे-सच्चे (कार्य) कर स्वय ही दुखी होते हैं। वे बुद्धिहीन (अज्ञानी) मर कर दुबारा दुर्गति पाते है। (अज्ञान के कारण उनका यह जन्म तो दुखमय है ही, अज्ञानवश बुरे कार्यों को करने के कारण उनका अगला जन्म भी दुखमय हो जाता है)। सामीजी कहते है कि सच्चे सन्तो के पास सुमति तथा सच्चा तत्त्व (ज्ञान) रहता है। वे दिन रात (परमात्मा के) स्वरूप से ही प्रीति लगाये हुए रहते है ॥ ४१४ ॥

कूड़ा कूडो माणु, करिनि मति मर्म रे।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, भर्यो बीठो ब्राणु।
सचा माणिनि सर्व सुखु, सचीअ समुझ साणु।
छद्रे पच्छिन्न पाणु, पूरणु, ज्ञाणनि पाणखे ॥ ४१५ ॥

झूठे (अज्ञानी) लोग निर्लज्ज एव बुद्धिहीन (ज्ञानहीन) होकर झूठी बडाई करते रहते है। वे अपने कन्धे पर तीर ताने खडे हुए काल को नही देख पाते हैं, किन्तु सच्चे (ज्ञानी) लोग सच्चे ज्ञान से सर्वत्र सुख का-ही उपभोग करते हैं। वे नश्वर शरीर को छोड़कर आत्मा को ही पूर्ण-मानते हैं ॥ ४१५ ॥

कूडा जीअ कर्म, कनि कल्पत कूड़ जा।
पाए भवनि पाणही, नाना जूणि जन्म।
सामी सचारनि जा, सचा कम कदम।
सभ मे ड्रिसनि सम, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ ४१६ ॥

सामीजी कहते है कि झूठे (अज्ञानी) जीव प्रपच के झूठे कर्म ही करते रहते हैं। वे स्वय ही नाना प्रकार की योनियो मे जन्म लेकर भटकते रहते हैं, लेकिन सत्य को जाननेवालो (ज्ञानी लोगो के) के कार्य तथा कदम सच्चे ही होते हैं (ज्ञानी सदैव सत्य के रास्ते पर ही चलते हैं)। वे सब मे, भीतर तथा बाहर एक ही आत्मा को समान रूप से व्यापक देखते है ॥ ४१६ ॥

कूडी कथ कथे, सामी लख लुढी विया।
मखणु कढियो मन मो, कहि महबतीअ मथे।
लेखे लथे पथे, सेषु ड्रिठाई सुप्री ॥ ४१७ ॥

सामीजी कहते हैं कि लाखो (लोग) झूठे कथन कह कर (अज्ञान-रूपी) प्रवाह मे वह गये, केवल किसी प्रेमी ने ही हृदय को मथ कर उससे (आत्मा-रूपी) मक्खन निकाला है (हृदय मे ही आत्मा का दर्शन किया है)। तथा सब प्रकार के लेखे (हिसाब-किताब) निपटाकर, प्रियतम को ही शेष देखा है। (सब प्रकार के नाते तोडकर, प्रियतम से नाता जोड़ लिया है) ॥ ४१७ ॥

कूड़ी पोषा पोष, मूर्ख कनि मर्म रें।
रहनि माया मध मे, सदाई बेहोश।
सामी माणिनि सान्ति सुखु, के नेही निर्दोष।
लंघे पजई कोश, चढिया चेतन चिटते ॥ ४१८ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख (अज्ञानी जीव) निर्लज्ज होकर झूठी (अज्ञान की) पोशाक ओढते है (झूठे अज्ञान की ओट लेते है)। वे सदैव माया के नशे मे बेहोश रहते हैं, लेकिन कुछ निर्दोष प्रेमी शान्ति-सुख का उपभोग करते है। वे पाँच कोस (का रास्ता) पार कर (पाँच विकारो से मुक्त होकर), ज्ञान के रास्ते पर अग्रसर होते है ॥ ४१८ ॥

कूडी बक वकी, लखे लोक लुढी विया।
कहि सुजागे सूर्मे, लधो थाउ थकी।
जहिखे ड्रिनी सतिगुरुअ, सामी प्रीति पकी।
ममत्व जी मटिकी, सटे विधाई सिर तो ॥ ४१९ ॥

सामीजी कहते है कि झूठी (अज्ञान पूर्ण) वकवास कर लाखो लोग (अज्ञान के) प्रवाह मे वह गये हैं, केवल उस जागृत शूरवीर (ज्ञानी) ने थक कर (परिश्रम कर) ठिकाना ढूंढ लिया है (परमात्मा का निवास स्थान ढूंढ लिया है), जिसे सद्गुरु ने (परमात्मा के प्रति) सच्चा प्रेम दिया है। अत उसने ममता-रूपी मटकी को सिर से पटक दिया है (अज्ञान एव प्रपच से मुख मोड कर हृदय मे स्थित आत्मा को देख लिया है) ॥ ४१९ ॥

कूड़े खे को थाउ, ड्रिए न वाट वेहण जो।
कहिखे भावे कीन की, जीए कारो काउ।
सचे खे सामी चए, सड्डे सभु गाउ।
नारायण जो नाउं मुखि रखी मौजा करे ॥ ४२० ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (अज्ञानी जीव) को कोई बैठने के लिए जगह तक नही देता है, वह काले कौए की तरह किसी को भी नही भाता है, किन्तु सच्चे (ज्ञानी) को सारा गाँव अपने पास बुलाता है (सभी उसे आदर देते हैं) वह नारायण का नाम लेकर तथा उसकी ओर अपना मुख कर आनन्द मनाता रहता है ॥ ४२० ॥

कूडो करे करारु, कड्डहि विहे कीन की।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपी थिए खोआरु।
इस्थति रहे आकास जाँ, सामी सन्तु सचारु।
अन्दरि ब्राहरि यारु, प्रत्क्षु ड्रिसे पहिंजो ॥ ४२१ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठा (अज्ञानी जीव) कभी भी शान्त होकर नही वैठता है। वह ससार को सत्य मान कर, उसमे ही अपने को खपाकर, वदनाम होता है। किन्तु सच्चा सन्त आकाश की भाँति स्थिर रहता है एव अपने मित्र (परमात्मा) को वाहर तथा भीतर प्रत्यक्ष देखता है ॥ ४२१ ॥

कूड़ो कमीनो, सचु सुञाणे कीन को।
खाए नितु खोआरीअ साँ, रुले रोज़ीनो।
सामी मिल्यो स्वरूप साँ, को प्रेमी प्रवीनो।
कटे किवरु कीनो, माणे मौज मुक्ति जी ॥ ४२२ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठा (अज्ञानी जीव) नीच स्वभाववाला है, क्योंकि वह सत्य को नहीं पहचानता है। वह सदैव भटक कर एव वदनाम होकर एक समय का भोजन प्राप्त करके खाता है, किन्तु प्रवीण प्रेमी अहकार और कलुषता मिटाकर, स्वरूप से मिलकर, मुक्ति का आनद लूटता है ॥ ४२२ ॥

कोट जन्म कपटी, पाण मिलनि न पीअ साँ।
सामी सचारनि जी, सहजे ममत्व मिटी।
पहिजे अख्यें पाण खे, डिठाऊँ उल्टी।
करे फोल फिटी, इस्थति थिया आकास जाँ ॥ ४२३ ॥

सामीजी कहते हैं कि कपटी (अज्ञानी जीव) करोडो जन्म पाकर भी प्रियतम से नहीं मिल पाते हैं, किन्तु सच्चे लोगो (ज्ञानी जीवो) की ममता सहज ही मिट जाती है। वे (ससार से) विरक्त होकर, दर-दर भटकना छोड़ कर, अपनी ही आँखो से परमात्मा का दर्शन पा जाते है अत: वे आकाश की भाँति स्थिर हो जाते है ॥ ४२३ ॥

कोट जन्म कूड़ो, पाए मिले न पीअ साँ।
सदा रहे सामी चए, माया मे मूड़ो।
चढ़ियो चेतन चिट ते, को गौरो ऐं गूड़ो।
ब्रन्धी जँहि बूडो, मनु मुनायो पहिजो ॥ ४२४ ॥

सामीजी कहते है कि झूठा (अज्ञानी जीव) करोडो जन्म पाकर भी प्रियतम से नही मिल पाता है क्योकि वह सदैव माया मे ही खोया हुआ (भटका) रहता है। केवल वही गभीर एव (ज्ञान के वोझ से) भारी (ज्ञानवान) व्यक्ति ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो पाता है, जो (अज्ञान-रूपी) भूसे को हटा कर अपने हृदय को साफ कर लेता है ॥ ४२४ ॥

अज्ञान

तहिखे लखु लानत, विझनि सुजाग्रा सन्त जन ।
जो सामी सचु छद्दे द्रे, करे कूडी कहवत ।
ब्रोड़े मानुष्य देहिखे, लुड़ मे द्रेई लत ।
छद्दे मोहु ममत्व, सूर्य द्रिसे न सभ मे ।। ४२५ ।।

सामीजी कहते है कि जागृत (ज्ञानी) सन्तजन उन (अज्ञानी) लोगो को लाख-लाख लानत देते है (वहुत ही फटकारते एव धिक्कारते है), जो सत्य को छोडकर झूठा वादविवाद करते रहते एव (ससार रूपी) प्रवाह मे फँसकर अपना मानव शरीर नष्ट कर देते है, तथा जो मोह-ममता को छोड़कर (परमात्मा-रूपी) सूर्य को सव मे नही देखते है ।। ४२५ ।।

तहिखे लखु लानत, सन्त विझनि सामी चए ।
जो पण्डतु ज्राणी पाण खे, रखे हिर्स हुजत ।
ब्रोडे मानुष्य देहि दिव, लुड मे द्रेई लत ।
करे मनु उपरन्तु, सूर्य द्रिसे न सभ मे ।। ४२६ ।।

सामीजी कहते है कि सन्त पुरुष उस (अज्ञानी) जीव को लाख लानते देते हैं, (धिक्कारते एव फटकारते है), जो अपने आप को विद्वान् मान कर भी इच्छाओ तथा तमन्नाओ को धारण करता है तथा (ससार-रूपी) प्रवाह मे फँसकर अपने दिव्य मानव-शरीर को डुबो देता है और अपने मन को (मोह माया से) मुक्त कर (परमात्मा रूपी) सूर्य को सव मे नही देखता है ।। ४२६ ।।

द्वेत सभि दुखी, कया जीअ जहान जा ।
शाह वजीर अमीर पीर, महाजन मुखी ।
सदा रहनि सामी चए, समतावान सुखी ।
बिना रस रुखी, कद्री बोलिनि कीन की ।। ४२७ ।।

सामीजी कहते हैं कि द्वैत (अज्ञान के कारण आत्मा एव परमात्मा को अलग-अलग समझने की भावना) ने ससार के सभी राजाओ, मंत्रियो, धनवानो, सन्तो, महाजनो तथा मुखिया लोगो को दुखी वना दिया है, किन्तु समतावान् (आत्मा एव परमात्मा को एक समझनेवाले) सदैव सुखी

रहते है। वे कभी भी नीरस एव शुष्क (अज्ञान की) वाते नही करते हैं ॥ ४२७ ॥

द्वैत सभि दुखी, कया जीअ जहान जा।
शाह वजीर अमीर पीर, महाजन मुखी।
सदा रहनि सामी चए, सम्तावान सुखी।
विना रस रुखी, ग़ाल्हि न करिनि ग़ुझजी ॥ ४२८ ॥

सामीजी कहते है कि द्वैत ने ससार के सभी राजाओ, मन्त्रियो, धनवानो, सन्तो, महाजनो तथा मुखिया लोगो को दुखी बना दिया है, परन्तु समतावान् सदैव सुखी रहते हैं। वे रहस्यमय (परमात्मा से सबधित) के विषय मे कभी भी नीरस तथा शुष्क (अज्ञानपूर्ण) वाते नही करते है ॥ ४२८ ॥

देवियू ऐ देवा, मूर्ख पूजिनि मति रे।
लाइनि भोग भ्रात जा, खीर खडू मेवा।
विरले को साधू करे, सामी शुधु सेवा।
अलखु अभेवा, पूरणु डिसे प्रेम साँ ॥ ४२९ ॥

मूर्ख (अज्ञानी जीव) बुद्धिहीन होकर देवी-देवताओ की पूजा करते है तथा भ्रमवश होकर उन्हे दूध-शक्कर तया फलो के भोग लगाते है। सामीजी कहते है कोई विरल साधु ही प्रेमपूर्ण शुद्ध सेवा करता है (और अन्तर्मुख होकर) अलख, अभेद एव पूर्ण (परमात्मा) को देखता है ॥ ४२९ ॥

नीह विना नादान, वेद पढी वादी थिया।
प्रत्क्षु डिसनि न पीअ खे, अन्धा कनि उन्मान।
इस्थति थिया अन्दर मे, के नेही निरवाण।
रहनि मझि जहान, सामी अलेपु आकास जाँ ॥ ४३० ॥

सामीजी कहते हैं कि प्रेम-रहित नादान जीव (अज्ञानी जीव) वेदो का अध्ययन कर वादी वन गये हैं। वे अन्धे, प्रियतम को प्रत्यक्ष न देखकर उसके सवध मे केवल अनुमान ही करते हैं, किन्तु कुछ निर्वाण-प्रेमी आत्मा मे स्थित होकर, ससार मे रहकर भी आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते है ॥ ४३० ॥

नीहु बिना नादान, वेद पढी वादी थिया ।
पाणु पछाणनि कीनकी, सभ जी कनि गिलान ।
पीअनि पीआरिनि प्रेम रसु, के साधूजन सुजान ।
सदा निराभिमान, सामी रहनि स्वभाव मे ॥ ४३१ ॥

सामीजी कहते है कि प्रेम-रहित नादान (अज्ञानी) जीव वेदो का अध्ययन कर वादी वन गये है । वे अपने आप को तो पहचानते नही हैं, किन्तु सव की निंदा करते रहते है । परन्तु कुछ सज्जन साधु-पुरुष खुद तो प्रेम-रस का पान करते ही है और दूसरो को भी (प्रेम-रस का पान) कराते हैं । वे सदैव अभिमान-रहित होकर अपने ही भावो मे डूवे रहते है (आत्मानद मे ही लीन रहते है) ॥ ४३१ ॥

नीहु बिना नादान, वेद पढी वादी थिया ।
ब्राभण कनि ड्याईअ साँ, जप तप दान इस्नान ।
नेही नारायण रे, ब्री सुधि रखनि कान ।
रहनि मझि जहान, निर्पक्षु न्यारा नभ जाँ ॥ ४३२ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते है कि प्रेम-रहित नादान (अज्ञानी) जीव केवल वेदो का अध्ययन कर वादी वन गये हैं । वे द्वैत के वश होकर जप, तप, दान, तथा स्नान करते है । किन्तु सच्चे स्नेही नारायण के सिवा दूसरे किसी की सुध भी नही रखते है । वे ससार मे रहकर भी आकाश की भाँति निर्लिप्त एव निष्पक्ष रहते है ॥ ४३२ ॥

पढियल पलाली, जग्र मे घुमनि केतिरा ।
कथन्दा वतनि एकता, दृढता खो खाली ।
लधी लख्य अलख जी, नेहिनि निराली ।
सदा सान्ति साली, सामी रहनि स्वभाव मे ॥ ४३३ ॥

सामीजी कहते है कि ससार मे कितने ही खोखले विद्वान् (अज्ञानी जीव जो केवल अध्ययन करते है, पर उस पर आचरण नही करते है) घूमते रहते है । वे दृढता-विहीन होकर एकता के विषय मे वकवास करते फिरते है । किन्तु सच्चे प्रमियो ने निराले अलख (परमात्मा) का पता ढूँढ निकाला है, अतएव वे सदैव शान्ति धारण कर अपने ही भावो मे लीन रहते है (आत्मानद मे ही मस्त रहते है) ॥ ४३३ ॥

पढी पुझाए, स्याणो वणी समझे।
माया कारणि मन खे, दहदिस दौराए।
पेही द्रिसे न पाणखे, मुहु मढीअ पाए।
जाग्यो जाग्राए, त सुखी थे सामी चए ॥ ४३४ ॥

(अज्ञानी जीव) बुद्धिमान् बनकर (वेदो का) पाठ कर दूसरो को भी समझाता है किन्तु माया के वशीभूत होकर अपने मन को दशो दिशाओ मे दौडाता रहता है, वह अपने भीतर झाँककर, हृदय मे स्थित आत्मा को नही देखता है। सामीजी कहते है यदि कोई जागृत (ज्ञानवान्) उसे जागृत करे (ज्ञान दे) तभी वह सुखी हो सकता है ॥ ४३४ ॥

पण्डत चवनि परे, मन वाणीअ खो आत्मा।
तहिंखे ज्राणनि कीन की, जो समझे सद्र करे।
चीटीअ ऐ कुन्चर मे, बेहद ज्योति ब्ररे।
सामी द्रिसी ठरे, पहिंजे अख्ये पाणखे ॥ ४३५ ॥

अपने को पण्डित समझने वाले (अज्ञानी) कहते है कि आत्मा मन तथा वाणी से दूर है। वे उस आत्मा को नही जानते हैं जो वास्तव मे सब मे ही व्याप्त है। सामीजी कहते है कि चीटी से लेकर हाथी तक सब मे वह अनत ज्योति (आत्म-प्रकाश) ही जलती रहती है, जिसे अपनी ही आँखो से देखकर मनुष्य शीतल हो जाता है ॥ ४३५ ॥

पण्डतु पुकारे, सारु ब्रुधाए सभखे।
सामी पहिंजे मन जी, ममत्व न मारे।
रखी द्वेत अन्दर मे, समता द्रेखारे।
हल्यो सो हारे, मानुष्य देहि अमोल्य खे ॥ ४३६ ॥

सामीजी कहते हैं कि अपने आप को पण्डित कहलाने वाला (अज्ञानी जीव) सबसे तत्व की (आत्मा-सबधी) बाते करता रहता है, किन्तु अपने मन की ममता को नही मिटा पाता है। वह हृदय मे द्वैत भाव रखकर केवल बाहर से ही समता दर्साता है, अतएव वह अपने अमूल्य मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर (इस ससार से) चला जाता है ॥ ४३६ ॥

पथर पूजा कनि, देउ न द्रिसनि देहि मे।
पण्डतु ज्राणी पाणखे, कर्मनि मझि ब्रझनि।
साखा सन्तनि जूं ब्रुधी, मर्मु न रखनि मनि।
से कीअं रंगि रचनि, सामी सुपिर्युनि जे ॥ ४३७ ॥

सामीजी कहते है कि (अज्ञानी जीव) पत्थरो की पूजा करते है किन्तु अपने ही शरीर मे स्थित आत्मा को नही देखते है। वे अपने को पण्डित समझकर (पूजा, पाठ आदि) कर्मो मे उलझे रहते है। सन्तो की दी हुई साक्षी सुनकर भी वे हृदय मे किसी प्रकार की लाज-शर्म नही रखते है। भला ऐसे (अज्ञानी) जीव प्रियतम के (प्रेम-रूपी) रग मे किस प्रकार रग सकते हैं? (ऐसे अज्ञानी जीवो मे परमात्मा के प्रति प्रेम हो ही नही सकता है) ॥ ४३७ ॥

पन्ना कुझु पढी, पण्डतु समुझनि पाण खे।
सामी चए सन्सार मे, चर्चा कनि चढी।
द्रिसनि न अन्भय आत्मा, पर्ची पाउ घडी।
रात्यू डीह रड़ी, मुआ रहनि था ममत्व मे ॥ ४३८ ॥

सामीजी कहते है कि (अज्ञानी जीव) थोडे से पृष्ठ पढकर अपने आप को पण्डित मान लेते है और फिर ससार मे घूमकर उसकी चर्चा करते रहते है, परन्तु एक क्षण भी शान्त होकर अन्तर-स्थित आत्मा को नही देखते है, अत दिन रात ममता मे रो-रोकर मरते रहते है ॥ ४३८ ॥

पन्ना ढेर पढ़ी, वादि कनि वेदान्त जी।
सारु न लहनि लिव सॉ, वाकयनि मझि वडी।
सामी वियो को सूर्मो, चेतन चिट चढी।
भञी भर्म भडी, सदा माणे सेज सुखु ॥ ४३९ ॥

(अज्ञानी जीव) पोथे पढकर वेदान्त पर वाद-विवाद करते है। वे वाक्यो मे उलझ जाते है, अत. प्रेम से (आत्मा-रूपी) सार को प्राप्त नही करते है। सामीजी कहते है कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही भ्रम-रूपी गठरी को पटक कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है एव सदैव शय्या-सुख का उपभोग करता है (परमात्मा के साथ विलास करता है) ॥ ४३९ ॥

परमेश्वरु पधरि, अन्धा द्रिसनि कीन की।
भुली भवनि पाणही, ओलहि ऐ ओभरि।
सामी सुजाणनि खे, नेडे अचे नजरि।
अन्दरि ऐ ब्राहरि, द्रिसनि सदा आकास जॉ ॥ ४४० ॥

सामीजी कहते है कि यद्यपि परमात्मा प्रत्यक्ष है, फिर भी अन्धे (अज्ञानी जीव) उसे नही देख पाते है। वे भ्रमित होकर पूर्व तथा

पश्चिम मे (परमात्मा को पाने के लिए) भटकते रहते है। किन्तु जागृतो को परमात्मा अपनी आँखो के सामने दिखाई देता है, अत वे सदैव ही उसे आकाश की तरह भीतर एव वाहर (सव जगह) देखते रहते है ॥ ४४० ॥

परमेश्वरु प्रत्क्षु, सामी सूर्य जॉ रहे।
अन्धा डिसनि कीन की, पटे पहिजी अखि।
तहिखे तद्रूप थी लिव सचीअ सॉ लखि।
कोहु करे जखि जखि, दरि दरि देवाननि जॉ ॥ ४४१ ॥

परमात्मा सूर्य की तरह प्रत्यक्ष है, पर अन्धे (अज्ञानी जीव) अपनी ऑख खोलकर उने नही देख पाते। अत सामीजी उन्हे उपदेश देते हुए कहते हैं कि तुम लोग पागलो की तरह क्यो द्वार-द्वार वकवास करते फिरते हो? तुम लोग उसे सच्चे प्रेम से देखो एव उसके साथ तद्रूप हो जाओ ॥ ४४१ ॥

परमेश्वरु प्रत्पालु, साणु सदाई थी रहे।
मूर्ख भवनि मति रे, खणी खामु ख्यालु।
माणे मौज मुक्ति जी, को रहितवानु रसालु।
जहिखे नजर निहालु, सामी कयो सतिगुरुअ ॥ ४४२ ॥

परमात्मा सवका प्रतिपालक है, वह सदैव ही सव के साथ रहता है। किन्तु मूर्ख (अजानी जीव) वुद्धिहीन होकर, व्यर्थ के विचारो को ग्रहण कर भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, वही पहुँचा हुआ प्रेमी जिसे सद्गुरु ने अपनी नज़र से निहाल कर दिया है (प्रसन्न होकर आत्म-ज्ञान दिया है), मुक्ति का आनद लूटता है ॥ ४४२ ॥

परमेश्वरु परे, मूर्ख ज्ञाणनि मति रे।
तहिखे डिसनि कीन की, जो सभखे सिधि करे।
कोर्युनि में को हिकिडो, समुझी अजरु जरे।
जहिते हथु धरे, सामी पूरो सतिगुरु ॥ ४४३ ॥

सामीजी कहते है कि जो परमात्मा सव (कार्यो) को सिद्ध करता है, उसे वुद्धिहीन मूर्ख (अजानी) नही देख पाते, अत उसे (अपने से) दूर वताते है। करोडो मे मे वही एक अपने को दृढ रखता है जिस पर पूर्ण सद्गुरु ने अपना हाथ धरा है (कृपा की है) ॥ ४४३ ॥

प्रत्क्षु प्रकासे, अन्दरि ब्राहरि आतमा ।
अन्धनि अज्ञान्युनि खे, भोरी न भासे ।
सामी डिठो साध संगि, कहिं नेहीअ निरासे ।
पलक न थिए पासे, पाणु वराए पाणखो ॥ ४४४ ॥

सामीजी कहते है कि यद्यपि आतमा भीतर एवं बाहर, प्रत्यक्ष प्रकाशमान है, फिर भी अन्धो तथा अज्ञानी जीवो को वह (आतमा) रचमात्र भी दिखाई नही देता । किसी विरल निराश प्रेमी ने ही उसे (आतमा को) साधुओ के संग से देखा है, अत वह एक पल के लिए भी अपने स्वरूप से अलग नही होता है ॥ ४४४ ॥

प्रत्क्षु प्रकासे, सामी सूर्य अन्भई ।
विरले वडभागीअ खे, भ्रम रे भासे ।
जहिंजो कयो सतिगुरू, पटु पर्दो पासे ।
फिरी न फासे, अणहून्दे अज्ञान मे ॥ ४४५ ॥

सामीजी कहते है कि यद्यपि आतमा सूर्य की भाँति प्रत्यक्ष प्रकाशमान है, फिर भी किसी भाग्यशाली को ही वह भ्रम-रहित दिखाई देता है । जिस (व्यक्ति) का सद्गुरु ने अज्ञान रूपी आवरण हटा दिया है, केवल वही फिर से मिथ्या अज्ञान मे नही फँसता है ॥ ४४५ ॥

प्रत्क्षु परमेश्वरु, अन्धा डिसनि कीनकी ।
हणनि कर्म धर्म मे, कल्पे नितु टकरु ।
सुजाणनि सही कयो, पर्चो पहिंजो घरु ।
मेटे डुखु डमरु, सीतलु थियो सामी चए ॥ ४४६ ॥

सामीजी कहते है कि परमेश्वर प्रत्यक्ष है पर अन्धे (अज्ञानी) उसे नही देख पाते है, अत वे सदैव ही कल्पित धार्मिक क्रिया-कर्मो मे माथापच्ची करते रहते है । किन्तु जागृतो ने प्रेम से अपना (आत्म-रूपी) घर जान लिया है, अत वे दु:ख दर्द मिटाकर शीतल हो गए हैं ॥ ४४६ ॥

प्रत्क्षु पहिंजो पाणु, वियो विसनि खो विसरी ।
भुली भौसागर मे, फोलिनि फुर्ने साणु ।
कडहीं थिए कीनकी, नानत खो निरवाणु ।
मिले सन्तु सुजाणु, त सुत्ह डिसनि सामी चए ॥ ४४७ ॥

यद्यपि परमात्मा प्रत्यक्ष है, फिर भी (अज्ञान मे) खोये हुए लोग उसे भूल बैठे है । वे अपने आप को भूलकर भवसागर मे उसे (परमात्मा को)

ढूँढते रहते है तथा कभी भी द्वैत भाव से मुक्त नही होते है। सामीजी कहते हैं, यदि सज्जन सन्त-पुरुष उन्हे मिल जाएँ, तभी वे अपने स्वरूप (आत्मा) को स्वय देख सकेंगे ॥ ४४७ ॥

पवनि पहिंजो पाण, अन्धा जीव अज्ञान में।
गोता खाइनि गैब जा, करे खिन्चाताण।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, सुजाग्रा सुज्ञाण।
सदाई निरबाण, सामी रहनि स्वभाव मे ॥ ४४८ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी) जीव स्वय ही अज्ञान-रूपी समुद्र मे कूद पडते है। वे व्यर्थ ही खीचातानी कर गैब के गोते खाते रहते हैं। किन्तु जाग्रत अनुभवी (ज्ञानी जीव) स्वरूप-सुख का उपभोग करते रहते है तथा सदैव ही (अज्ञान से) मुक्त होकर अपने ही भावो मे (आत्मानद मे) लीन रहते है ॥ ४४८ ॥

पश्चम खे पूर्व, मूर्ख ज्ञाणनि मति रे।
वेठा पीर फकीर थी, करे कूड कस्बु।
समुझे को सामी चए, महबति मतिलबु।
ढोल मिलण जो डवु, जहिखे ढ्स्यो सतिगुरूअ ॥ ४४९ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख बुद्धिहीन होकर पश्चिम को पूरब मान वैठे है (सत्य को असत्य एव असत्य को सत्य मान वैठे हैं) तथा झूठे कर्म कर पीर-फकीर वन बैठे हैं। वही विरल प्रेमी सारयुक्त वाते समझ पाता है जिसे सद्गुरू ने परमात्मा से मिलने का रास्ता वता दिया है ॥ ४४९ ॥

पहिंजी पाड पटे, थो मूर्ख जीउ मर्म रे।
साखां सन्तनि जूं बुधी, हठ खो कीन हटे।
मानुष्य देहि अमूल्य खे, थो सागर मझि सटे।
वेठो कचु मटे, ढ्रेई लाल अणमुल्हा ॥ ४५० ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख जीव निर्लज्ज होकर अपनी जड़ उखाड रहा है। सन्तो की साक्षी (सच्ची वाते) सुनकर भी वह अपने हठ से नही हटता है। उसने अपने अमूल्य मानुष-शरीर को (अज्ञान-रूपी) समुद्र मे डाल दिया है और इस प्रकार वहुमूल्य रत्न देकर वह उसके वदले काँच के टुकड़े ले रहा है ॥ ४५० ॥

पहिंजो कीतो पाण, मूर्ख पाइनि मति रे ।
ड्रावर ज्यों देहि मे, ताणे फासनि ताण ।
सामी चढिया सीर ते, के नेही निरब्राण ।
जिनिखे प्रीति पछाण, सतिगुर ड्रिनी स्वरूपजी ॥ ४५१ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख बुद्धिहीन होकर (अज्ञानी बनकर) अपने किये हुए कर्मो का फल पाते हैं। वे मकडी की तरह अपने ही बनाए हुए जाल मे अपने को उलझा देते है। (जिस प्रकार मकडी अपने ही जाल मे उलझकर अपने को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव भी अज्ञान के जाल मे उलझ कर नष्ट होते है)। परन्तु (अज्ञान से) मुक्त प्रेमी, जिन्हे सद्गुरू ने स्व-रुप की पहचान कराई है, वे ज्ञान के ही मार्ग पर अग्रसर होते है ॥ ४५१ ॥

पहिंजो पाण पियो, भुली जीउ भर्म मे ।
न कंहि मेडि मिन्थ कई, न कंहि जोरु कियो ।
देहीअ जे धर्मनि सां, मिली देहि थियो ।
बांभणु चए ब्रियो, चेतन न ज्ञाणे ज्ञाण रे ॥ ४५२ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते है कि जीव स्वय ही (अपने स्वरूप को) भूल कर भ्रम मे पड गया है। उसे (भ्रम मे पडने के लिए) न किसी ने अनुनय-विनय की है, न ही किसी ने जोर-ज़बरदस्ती की है। बल्कि वह स्वय ही देह के धर्मो में आसक्त होकर देह बन गया है (शाश्वत आत्मा को भूलकर अपने को नश्वर शरीर मान बैठा है)। वह ज्ञान के अभाव के कारण चेतन (परमात्मा) को नही जान पाता है ॥ ४५२ ॥

पहिंजो पाण पवनि, भुली जीव भर्म मे ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, जन्मनि नितु मरनि ।
साधूजन समझी सची, सामी साख ड्रियनि ।
जाग्री ड्रिठो जिनि, हिकु हेकलो आत्मा ॥ ४५३ ॥

सामीजी कहते है कि जीव (अपने स्वरूप को) भूलकर स्वय ही भ्रमो मे पडकर भटकते रहते है। वे ससार को सत्य मानकर सदैव जन्मते एव मरते रहते है। किन्तु साधु पुरुष, जिन्होने जाग्रत होकर (आत्मज्ञान प्राप्त कर) एक ही आत्मा को सब मे देखा है, वे उसे समझकर सत्य की ही साक्षी देते है ॥ ४५३ ॥

पहिंजो पाण मरे, थो मूर्खु जीउ मनन मे ।
जीए भोलो भर्म मे, फाथो मुठि भरे ।
जाग्री अविद्या निन्ड मो, करे न पटु परे ।
सतिगुरु महिर करे, त सामी छुटे दुख खों ॥ ४५४ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख जीव ने मन के सकल्प-विकल्प मे स्वय ही अपने को उसी प्रकार उलझा दिया है, जिस प्रकार मूर्ख वन्दर ने भ्रमवश मुट्ठी वन्द कर अपने को फसा दिया था । (दृष्टान्त के तौर पर कहा जाता है कि एक वन्दर ने एक छोटे मुँह वाली सुराही मे कुछ चमकीली चीज़े देखी और उन्हे पाने के लिए उसने अपना हाथ उस मे डाला तथा मुट्ठी भरकर वह ज्यो ही अपने हाथ को निकालने लगा, त्यो ही वह (हाथ) छोटे मुँह मे फँस गया । भोले वन्दर ने लाख प्रयत्न किये, लेकिन सव व्यर्थ । वह मुट्ठी किसी भी प्रकार सुराही से न निकल सकी । वन्दर हाय-हाय करने लगा । अज्ञान के कारण वह यह न जान सका कि मुट्ठी खोलकर हाथ निकाला जा सकता है । वन्दर की तरह अज्ञानी जीव भी माया-जाल मे फँसकर नाना प्रकार के सकल्प-विकल्प मे उलझे रहते है । ज्ञान के अभाव के कारण वे भी वन्दर की तरह लाख प्रयत्न करने पर भी उनसे मुक्त नही हो पाते है ।) वह अविद्या-रूपी नीद से जाग्रत होकर, अज्ञान-रूपी आवरण को नही हटाता है, किन्तु यदि सद्गुरु उस पर कृपा करे, तभी वह दुखो से मुक्त हो सकेगा । ॥ ४५४ ॥

पहिंजो पाण मले, थो मूर्खु मिटी मूह खे ।
छड्डे साधु सगति खे, कुसग साणु रले ।
ड्रेई लाल अणमुल्हा, ब्रन्धे कचु पले ।
कढी खोटि हले, थो समुझ वराए सखिणो ॥ ४५५ ॥

मूर्ख जीव स्वय ही अपने मुँह मे मिट्टी मल रहा है (अपने को धोखा दे नष्टकर रहा है) । वह साधुओ का सग छोडकर कुसग मे ही मस्त रहता है, तथा अमूल्य रत्न देकर काँच के टुकडे लेकर अपने आँचल मे वाँधता रहता है (अमूल्य मानव-शरीर पाकर, वुरे कर्मो द्वारा नष्ट करता रहता है ।) इस प्रकार वह खोखला (ज्ञानहीन) वुद्धिहीन होकर, वुरे कर्मो का वोझ उठाता फिरता है ॥ ४५५ ॥

पहिंजो पाण रुले, चोरासीअ मे जीउ हे ।
जीए मृघी जल खे, ड्रिसी मृगु भुले ।
तड्डी गन्ढि खुले, जड्डी सामी मिले सतिगुरु ॥ ४५६ ॥

सामीजी कहते है कि यह जीव स्वय ही चौरासी (लाख योनियो) मे उसी प्रकार भटक रहा है जिस प्रकार मृग, मृगतृष्णा के जल को देख कर भटकता रहता है। उसकी (अज्ञान-रूपी) गाँठ केवल सद्गुरु के मिलने से ही खुल सकती है ॥ ४५६ ॥

पहिंजो पाण वहे, ख़लिक पहिंजे ख़्याल मे ।
मिली माया मोह सॉ, सूर अपार सहे ।
गोता खाए गैब जा, को गुर्मुखु अलखु लहे ।
सामी सदा रहे, ऐनु अलेपु आकास जाँ ॥ ४५७ ॥

सामीजी कहते है कि लोग अपने ही विचारो मे स्वय ही (अज्ञान-रूपी) प्रवाह मे बहते जाते है। वे माया तथा मोह मे पड़कर नाना प्रकार के दुख सहते है। कोई विरला गुरु-भक्त ही रहस्यमय गोते खाकर अलख (परमात्मा) को ढूंढ लेता है, फिर तो वह सदैव आकाश की भाँति शुद्ध एव निर्लिप्त रहता है ॥ ४५७ ॥

पहिंजो पाण हणे, थो मूर्खु ज्ञुग्रो मति रे ।
हीरा लाल फिटा करे, थो कक्कुरु कचु खणे ।
सामी द्रिसे कीन की, नफो नुकसानु ग्रणे ।
ताणे मंझिं तणे, थो द्रावर ज्यॉ पाणखे ॥ ४५८ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख जीव बुद्धिहीन होकर अपने आप ही (मनुष्य जीव-रूपी) खजाने को नष्ट करता है। वह (श्वास-रूपी) हीरे व लाल फेंककर, (कर्म-रूपी) पत्थर व कीचड इकट्ठा करता है (अमूल्य मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट करता है)। वह लाभ तथा हानि को नही देखता है, एव मकड़ी की तरह स्वय ही अपने आप को (अज्ञान-रूपी जाल मे) उलझा देता है ॥ ४५८ ॥

पहिंजो पाण हवालु, मूर्खु जीअ मदो कयो ।
रखी चाह अन्दर मे, दरि दरि करे सोआलु ।
साणु रहे प्रतिपालु, तहिंखे द्रिसे कीन को ॥ ४५९ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख जीव ने स्वय ही अपनी बुरी हालत कर दी है। वह हृदय मे इच्छा रखकर द्वार-द्वार भीख माँगता रहता है, पर सबकी पालना करनेवाले (परमात्मा) को, जो उसके ही साथ रहता है, नही देखता है ॥ ४५९ ॥

पाइनि पहिंजो पाण, मिटी मेड़े मूहं मे ।
गोता खाइनि गैब जा, करे खिन्चाताण ।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, के साधूजन सुञाण ।
सदा रहनि निरबाण, सामी सहज अनद में ॥ ४६० ॥

सामीजी कहते है कि (अज्ञानी जीव) स्वय ही अपने मुँह मे धूल झोकते है (अपने आपको धोखा देते है), वे व्यर्थ की खीचातानी मे रहस्यमय गोते खाते है; किन्तु अनुभवी साधु-पुरुष सदैव ही मुक्त रहते एव सहजानद का उपभोग करते हैं ॥ ४६० ॥

पोथिर पलाली, कोड़ें घुमनि केतिरा ।
ग्राल्हियू कनि जबान साँ, खिल्वत जूँ ख़ाली ।
जाग्री ड्रिसनि कीन को, ख़ावन्दु ख़्याली ।
लूअं लूअ मझि लाली, सामी तहिं स्वरूप जी ॥ ४६१ ॥

सामीजी कहते हैं कि कितने ही पोथी पढनेवाले खोखले जीव बन-ठन कर घूमते रहते है। वे केवल मुख से ही ईश्वर-चर्चा करते है, पर जाग्रत होकर रोम-रोम मे समाई हुई ईश्वरीय सत्ता-रूपी लालिमा को नही देखते है ॥ ४६१ ॥

ब्राभणु ब्रुध ज्ञानी, कूडा घुमनि केतिरा ।
ग्राल्हियू कनि जबान साँ, अन्भइ आसानी ।
रहनि रस -कस लोभ मे, उर्झा अभिमानी ।
ज्ञाणनि न फानी, पुतिलो पंजनि तत्वनि जो ॥ ४६२ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते है कि कितने ही झूठे ज्ञानी घूमते रहते है। वे अभिमानी मूर्ख सरलता से ज्ञान-सवधी बाते करते रहते है, किन्तु वास्तव मे मोह, झूठ तथा लालच मे उलझे हुए रहते हैं। वे यह भी नही जानते हैं कि यह पाँच तत्वो का बना हुआ शरीर नश्वर है ॥ ४६२ ॥

विना दुख दु.खी, मूर्खु रहनि मति रे ।
परिच्छिन्न ज्ञाणी पाणखे, ज्ञमनि मरनि जुखी ।
मिली वियो महवूव साँ, को सामी सन्तु सुखी ।
गहरी गुरमुखी, मुखि रखी मौजा करे ॥ ४६३ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख (अज्ञानी) लोग बुद्धिहीन होकर झूठे दु:खो मे दुखी रहते है। वे अपने को नश्वर समझकर व्याकुल होकर जन्मते

तथा मरते रहते हैं। किन्तु सन्त पुरुष प्रियतम से मिलकर सुखी हो गये है। वे गहन गुरुभक्त, परमात्मा की ओर मुखकर आनन्द लूटते रहते है ॥४६३॥

बिना वेसाह विसा, भुली पिया भर्म मे।
पच्छिन्न ज्ञाणी पाणखे, कूड़ा कनि किस्सा।
सामी श्रोधे सिधि कई, महबत्युनि मन्सा।
दोस्तु दह दिसा, भयसाँ द्रिसनि पहिंजो ॥ ४६४ ॥

सामीजी कहते हैं कि (अज्ञान मे) खोये हुए जीव विश्वास के अभाव के कारण भ्रमो मे भ्रमित हो गये हैं। वे अपने (आत्मा) को नश्वर समझकर झूठे किस्से कहते रहते है। किन्तु प्रेमियो ने (आत्मा को) ढूँढ कर अपनी इच्छा पूरी कर ली है, अत वे प्रेम से दसो दिशाओ मे अपने दोस्त (परमात्मा) का ही दीदार (दर्शन) करते रहते हैं ॥ ४६४ ॥

बिना वेसाह विसा, भुली पिया भर्म मे।
पुठी द्रेई पाणखे, कूड़ा कनि किस्सा।
को आशिकु चढ़ियो अछ्ते, मेटे मन सन्सा।
सामी सर्व दिसां, पूरणु द्रिसे पीअ खे ॥ ४६५ ॥

सामीजी कहते है कि अज्ञान मे खोये हुए जीव विश्वास के अभाव के कारण भ्रमो मे भ्रमित हो गये हैं। वे अपने (स्वरूप से मुख मोडकर, झूठे किस्से कहते रहते हैं। किन्तु कोई विरला प्रेमी ही मन के भ्रमो को मिटा कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है, एव समस्त दिशाओ मे पूर्ण प्रियतम को ही देखता है ॥ ४६५ ॥

बिना वेसाह विसा, भुली पिया भर्म मे।
पुठी द्रेई पाणखे, कूड़ा कनि किस्सा।
सामी शोधे सिधि कई, महबत्युनि मन्सा।
दोस्त दह दिसा, पूरणु द्रिसनि पधिरो ॥ ४६६ ॥

सामीजी कहते है कि अज्ञान मे खोये हुए जीव विश्वास के अभाव के कारण भ्रमो में भ्रमित हो गए हैं। वे अपने (स्वरूप) से मुख मोडकर, झूठे क़िस्से कहते रहते है, किन्तु प्रेमियो ने अपने स्वरूप को पहचानकर अपनी इच्छा पूरी कर ली है, अत. वे दसो दिशाओ मे पूर्ण प्रियतम को प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ४६६ ॥

बिना समुझ जखे, थो कुतो कच मदर मे ।
ब्रालकु बुधि पर्छाव खों, भुली भौ रखे ।
ज्ञानी पाणु लखे, सुखी थे सामी चए ॥ ४६७ ॥

सामीजी कहते है जिस प्रकार श्वान (कुत्ता) कांच के घर मे अपनी परछाई देखकर, उसे दूसरा कुत्ता समझकर भौंकता (और दुखी होता) तथा जिस प्रकार बालक अल्प बुद्धि के कारण भ्रमित होकर अपनी परछाई से भयभीत होता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव भी अपने वास्तविक स्वरूप को न पहचानकर दुखी होता है, किन्तु ज्ञानी अपने स्वरूप को देखकर प्रसन्न होता है ॥ ४६७ ॥

भवण सभि भई, मूर्ख मुठा मति रे ।
सामी सुखु स्वरूप जो, पातो कीन कही ।
इस्थति रहे आकाश जाँ, को आशिकु अग्रुही ।
जाग्री डि्ठो जही, पहिंजे अख्यें पाणखे ॥ ४६८ ॥

मूर्ख लोग बुद्धिहीन होकर सब प्रकार के जन्म पाकर भटक रहे है, परन्तु किसी ने भी स्वरूप-सुख नही प्राप्त किया है । सामीजी कहते है, वही ज्ञानवान् प्रेमी आकाश की भाँति स्थिर रहता है, जिसने जाग्रत होकर अपने स्वरूप को अपनी ही आँखो से देख लिया है ॥ ४६८ ॥

भवण सभि भवी, थको जीउ थधो थियो ।
ममत्व पिण्ड मथे तो, लाथी कीन कही ।
सामी डसी सतिगुरूअ, सुल्ह ग्राल्हि सई ।
वेई वेल तही, खपित खोआरी निकिरी ॥ ४६९ ॥

जीव सब प्रकार के जन्मो मे भटककर, थककर ठण्डे हो गये है, किन्तु किसी ने भी अपने सिर से ममत्व-रूपी गठरी नही उतारी है । सामीजी कहते हैं, किन्तु जिस क्षण सद्गुरु ने अन्तर्ज्ञान की सीधी बात बताई, उसी क्षण (हृदय से) प्रपच तथा झझट निकल गया है ॥ ४६९ ॥

भारी भर्मु पियो, जुदाईअ जो जग्र मे ।
मारे तहिं माणुहुनि जो, अकुलु गुमु कयो ।
सामी वची को साध सगि, वर्हामु वियो ।
विना ब्रोध व्रियो, दिसे कीन अख्युनिसाँ ॥ ४७० ॥

ससार मे द्वैत का भयानक भ्रम आ पड़ा है । इस भ्रम ने लोगो को भटका-भटका कर, उनकी बुद्धि ही नष्ट कर दी है । सामीजी कहते है कि

कोई वीर (ज्ञानी) ही साधुओ के सग से इस (द्वैत भाव) से बच सका है। अतः वह अपनी आँखो से अपने सिवा (आत्मा के सिवा) दूसरा कुछ भी नही देखता है ॥ ४७० ॥

मर्मु न रखनि मनि, मूर्ख मानुष्य देहिजो।
भुली भौसागर मे, पहिजो पाण भवनि।
ड्रिनी साख सुमति साँ, सामी सचारनि।
जाग्री ड्रिठो जिनि, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ ४७१ ॥

सामीजी कहते है कि वे सत्यव्रती लोग, जिन्होने जाग्रत होकर भीतर-बाहर एक ही आत्मा देखी है, उन्होने अपनी सद्बुद्धि से यही साक्षी दी है कि मूर्ख लोग अपने हृदय मे मानव-शरीर के मर्म को नही समझते है। अतएव वे स्वय ही भवसागर मे भटकते रहते है ॥ ४७१ ॥

मूर्ख करे ममत्वु, भवनि भौसागर मे।
पच्छिनु ज्ञाणी पाणखे, रोअन्दा वतनि रतु।
उल्टी कहि आशिक ड्रिठो, तन मे तुर्या तत्व।
वारे खातो खतु, सामी माणे सान्ति सुखु ॥ ४७२ ॥

मूर्ख लोग ममतावश ससार-सागर मे भटकते रहते है। वे अपने आप को नश्वर समझकर खून के आँसू वहाते रहते है (अत्यन्त ही दुखी होते है)। सामीजी कहते हैं, किसी प्रेमी ने (ससार से) विरक्त होकर शरीर मे ही तुरीय-तत्व (चौथी-अवस्थावाला आत्मतत्व) देख लिया है, अत. वह (कर्मरूपी) वहीखाता मिटाकर शान्ति-सुख का उपभोग कर रहा है ॥ ४७२ ॥

मूर्ख कनि वादि, बिना समुझ स्वरूप जे।
ग्राल्हियू वेदनि जूँ बुधी, सामी रखनि न यादि।
पर्ची लहनि कीन की, आत्म पदु अगाधि।
बिना सुख समाधि, पण्डतु ज्ञाणनि पाणखे ॥ ४७३ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख लोग स्वरूप-ज्ञान को प्राप्त किये विना ही वाद-विवाद करते रहते है। वे वेदो की बाते सुनते तो है, किन्तु उन्हे याद नही रखते है। अतएव वे आत्म-तुष्ट होकर अगाध आत्मपद प्राप्त नही कर पाते है। वे विना समाधि-सुख का अनुभव किये ही अपने आपको पण्डित (ज्ञानी) मानते है ॥ ४७३ ॥

मूर्ख कर्म करे, भुली भोग्निनि पाणही ।
भवनि भौसागर मे, नाना रूप धरे ।
कटी फास फुर्ने जी, कंहि गुर्मुख गहरे ।
सामी डि्सी ठरे, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ ४७४ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख लोग भ्रमित होकर अपने ही कर्मो का फल भोगते है। वे नाना रूप धारण कर ससार-सागर मे भटकते रहते हैं। किसी गभीर गुरुभक्त ने ही भ्रम की फॉसी काट ली है। अत. वह भीतर एव बाहर (एक ही) आत्मा देखकर, शीतल होता है ॥ ४७४ ॥

मूर्ख कीन ड्रिसनि, सन्मुख सुपिर्युनि खे ।
अविद्या जीअ अन्धा कया, ड्रिनो पटु प्रियनि ।
भर्म मझि भुली करे, था पन्ना नितु पढनि ।
तप तीर्थ व्रत नेम जग्र, जहदु कयो जुग्रानि ।
गुफा बर्न पहाड़ मे, भुख उञ दुख सहनि ।
नाना भेष धरे करे, था देहि अमोल्य दहनि ।
विना साध सगति जे, वहण मझि वहनि ।
के लखाया लहनि, सामी सुपिर्युनि खे ॥ ४७५ ॥

मूर्ख लोग अपने सन्मुख प्रियतम को नही देखते है। अविद्या ने जीवो को अन्धा बना दिया है तथा आत्मा के आगे (अज्ञान का) आवरण डाल दिया है, अत· भ्रमो मे भ्रमित होकर सदैव पन्ने पढते रहते है, एव तप, तीर्थ, व्रत, तथा नियम धारण कर, कष्ट सहन कर पीड़ित होते रहते हैं। वे गुफा, वन तथा पर्वत पर निवास कर, भूख-प्यास और दुख सहते रहते हैं और नाना प्रकार के वेश धारण कर अमूल्य (मानव-) शरीर को नष्ट करते है, व साधुओ का सग न कर (अज्ञान के) प्रवाह मे बहते रहते है। सामीजी कहते हैं केवल कुछ अनुभवी (ज्ञानी) ही प्रियतम को ढूंढ पाते है ॥ ४७५ ॥

मूर्ख छिके छिक, फाहीअ फासनि पाणही ।
भोग्निनि भोग्रनि सॉ मिली, नाना भाइ नरक ।
डि्ठो अन्भय आत्मा, उल्टी कहि आशिक ।
महिर कई मालिक, सामी जहि ते साध सगि ॥ ४७६ ॥

मूर्ख लोग खीचतानी कर स्वय ही (अज्ञान-रूपी) फॉसी मे फंस जाते है। वे भोगो मे मग्न होकर नाना प्रकार के नरक (के दुख) भोगते हैं। सामीजी कहते हैं, जिस प्रेमी पर मालिक ने साधु-सगति की कृपा की है

(जिसे परमात्मा की कृपा से साधुओ का सग मिला है), वही (ससार से) विरक्त होकर अन्तरात्मा को देख सका है ॥ ४७६ ॥

मूर्ख ज्ञाणनि दूरि, नारायण नैननि खों।
भवनि नितु भुलनि जाँ, दु:खनि जे दस्तूरि।
सामी आशिक अन्भइ, हरदम रहनि हजूरि।
जहिखे पहले पूरि, पारि लगायो पातिणीअ ॥ ४७७ ॥

मूर्ख लोग नारायण को अपनी आँखो से दूर समझते है, अत. वे सदैव ही भूले हुए लोगो की तरह दु खो मे भटकते रहते है। सामीजी कहते है कि अन्तर्मुखी प्रेमी को (सद्गुरु-रूपी) नाविक ने पहले से ही ज्ञान का रास्ता सुझाकर, भवसागर से पार लगा दिया है ॥ ४७७ ॥

मूर्ख जीअ खराबु, कया कल्पत पहिंजीअ।
जन्मी मरी जमखे, हर हर ड्रियनि हिसाबु।
कोर्युनि मों को हिकिडो, करे खुशीअ साँ खाबु।
जहिंखे शौकु शराबु, सामी ड्रिनो सतिगुरूअ ॥ ४७८ ॥

मूर्ख जीवो ने अपने आपको (मनकी) कल्पनाओ मे खराब (नष्ट) कर दिया है। वे बार-बार जन्म एव मृत्यु को प्राप्तकर यम को हिसाब देते रहते है। सामीजी कहते है करोडो मे से वही एक प्रसन्नता से (ससार को) स्वप्न मानता है, जिसे सद्गुरु ने प्रेम की मदिरा पिलाई है ॥ ४७८ ॥

मूर्ख जीअ जुखी, जग मे रहनि मति रे।
चाल चलनि अज्ञान जी, बिना रस रुखी।
मिली थियो महबूब साँ, को सामी सन्तु सुखी।
गहिरी गुर्मुखी, मुखि रखी मौजाँ करे ॥ ४७९ ॥

मूर्ख जीव बुद्धिहीन बनकर ससार मे दुखी होते रहते हैं। वे ज्ञान-रूपी रस के अभाव मे अज्ञान की शुष्क व नीरस चाल चलते है (ज्ञान के अभाव मे अज्ञान-पूर्ण व्यवहार करते है)। सामीजी कहते है कोई सन्त ही प्रियतम से मिलकर सुखी हुआ है। वह गहन गुरुभक्त (परमात्मा की ओर) मुख कर आनद मनाता रहता है ॥ ४७९ ॥

मूर्ख थिया गुलाम, बिना ज्ञाति गुरूअ जे।
हर्दमि हथ ब्रधी करे, सामी कनि सलाम।
रहनि अलेपु आकास जाँ, के नेही निष्काम।
जिनिखे रम्ता राम, पाणु लखायो पाण मे ॥ ४८० ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख जीव गुरु-ज्ञान के सिवा गुलाम बन गये है, वे सदैव हाथ बाँधकर सलाम करते रहते है। केवल कुछ निष्काम स्नेही, जिन्हे व्यापक राम ने अपने आप को दिखा दिया है, आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते है ॥ ४८० ॥

मूर्ख ड्रे आई, माया बणी ममत्व जी।
फुरे कयाई फोक सब, ड्रेई वड़ाई।
सामी सुजाग्रनि खो, भजी भउ खाई।
महतामी साई, करिनि गुमु ज्ञाति सॉ ॥ ४८१ ॥

माया, ममता का रूप धारण कर मूर्खों के पास जाती है तथा उनकी प्रशसा कर उन्हे लूटकर खोखला बना देती है। सामीजी कहते है जाग्रतो (ज्ञानवानो)से वह भयभीत होकर भाग जाती है, क्योकि जाग्रत जन कुहराम मचानेवाली (माया को) ज्ञान के बल पर गायब कर देते हैं (उसकी हस्ती मिटा देते है ॥ ४८१ ॥

मूर्खनि मेडे, कागर कोट कठा कया।
सामी लोभ लहरि न्या, रहति बिना रेढ़े।
आशिक चढ़िया अछ ते, वर्क सभि वेढ़े।
सुर्ग खो नेडे, सुत्ह ड्रिठाई सुप्री ॥ ४८२ ॥

सामीजी कहते हैं मूर्खो ने कागजो के ढेर सग्रहीत किये किन्तु प्रेम (ज्ञान) के अभाव के कारण लोभ-रूपी लहर ने उन कागजो को बहा दिया (ज्ञान के अभाव मे ज्ञान-ग्रन्थो से उन्हे कुछ भी लाभ प्राप्त नही हुआ)। किन्तु सच्चे प्रेमी समस्त पृष्ठ बन्द कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होते हैं तथा प्रियतम को अत्यन्त ही समीप साक्षात् देख लेते है ॥ ४८२ ॥

मूर्ख पूजा कनि, था पर्चेरीअ पथर जी।
मन मे मैलु रखी करे, देही नितु धोअनि।
लाए भोग भ्रान्ति जा, बिना प्रेम नचनि।
से कीअ प्री पसनि, अविद्या जिनि जे अग मे ॥ ४८३ ॥

मूर्ख लोग बिना ज्ञान प्राप्त किए पत्यर की पूजा करते रहते है। वे मन मे तो मैल रखते है किन्तु शरीर को सदैव ही धोते रहते हैं। वे भ्रमो के भोग लगाकर प्रेमरहित बनकर नाचते रहते है। सामीजी कहते हैं जिनके आगे अविद्या है, भला वे कैसे प्रियतम को देख सकेगे ? ॥ ४८३ ॥

मूर्ख विना मति, भुली पिया भर्म में ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपनि मझि खपति ।
आशिक चढ़िया अछ ते, करे श्रुधि सम्बति ।
निन्दा ऐं उस्तति, सामी ज्ञाणनि सम थी ॥ ४८४ ॥

सामीजी कहते है मूर्ख लोग बुद्धिहीन होकर भ्रमो मे अपने आपको भूल वैठे हैं। वे संसार को सत्य मानकर उसके झझट मे फँसे हुए हैं, किन्तु प्रेमीजन निन्दा एव स्तुति को सम समझकर, शुद्ध आचरण द्वारा ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होते है ॥ ४८४ ॥

मूर्ख भोगे भोग, रजनि न रतीअ जेतिरो ।
तोड़े पाइनि अन्ति मे, सामी नाना रोग ।
रहनि अलेपु आकास जाँ, के औधूत असोग ।
जप तप साधन जोग, साधे जिनि सिधि कया ॥ ४८५ ॥

सामीजी कहते है यद्यपि मूर्ख लोग भोग भोगकर अन्त मे नाना प्रकार के रोगो को प्राप्त करते हैं, फिर भी वे (उन भोगो से) रत्ती भर भी तृप्त नही होते है। किन्तु वे शोक-रहित अवधूत (प्रेमी भक्त) जिन्होने जप, तप एव योग साधनाकर अपने आपको पूर्ण वना दिया है—आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते है ॥ ४८५ ॥

मूर्ख मति मलीन, पिटिनि कारण पेट जे ।
मानुष्य देह अमोल्य जो, कदुरु ज्ञाणनि कीन ।
उल्टी अन्तरि मुखु थिया, के प्रेमी प्रवीन ।
सदा साणु सगीन, सामी रहनि सुमेर जाँ ॥ ४८६ ॥

मलीन वुद्धि वाले मूर्ख लोग पेट के कारण भटकते रहते हैं। वे अमूल्य मानुप-देह की कद्र (मूल्य) नही करते है। सामीजी कहते हैं—किन्तु प्रवीण प्रेमी (ससार से विरक्त हो), अन्तर्मुख होकर सदैव ही सुमेरु पर्वत की तरह परमात्मा के साथ (अटल) रहते है ॥ ४८६ ॥

मूर्ख मनु लाए, भोगिनि भोग भर्म जा ।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, जो खर्चु थो खाए ।
सामी वचियो को सूर्मो, साधूअ जे साए ।
चित्त चौको पाए, इस्थति थियो आकास जाँ ॥ ४८७ ॥

मूर्ख लोग मन लगाकर भ्रमो के भोग भोगते रहते है। वे जिन्दगी को खानेवाले (नष्ट करनेवाले) काल को अपने कन्धे पर सवार नही देखते हैं।

सामीजी कहते है कोई शूरवीर ही साधुओ की कृपा से (काल से) बच सका है तथा चित्त को समेटकर आकाश की भाँति स्थिर हो सका है ॥४८७॥

मूर्ख मवासी, सचु सुञाणनि कीनकी।
सामी पिया सन्सार जे, फुर्ने मे फासी।
जाग्री कहि जोग्रीअ कई, क्षण मे खलासी।
अलखु अविनासी, डि्ठो जहि अख्युनि साँ ॥ ४८८ ॥

सामीजी कहते हैं—अहकारी मूर्ख सत्य को नही पहचानते है, अतः वे ससार के भ्रमो मे उलझ गये हैं। किन्तु वह जाग्रत जोगी जिसने अपनी आँखो से अलख अविनाशी (आत्मा) को देख लिया है, एक ही क्षण मे (ससार के भ्रमो) को खत्म कर देता है ॥ ४८८ ॥

मूर्ख मुल्हि ग्रिधो, भुलो भूत भर्म जो।
जन्म मरण जे दु.ख मे, ब्रधी पाणु विधो।
ईहो इशारो अन्भई, कहि प्रेमीअ पुर्धो।
समता मझि सिधो, सूक्षमु थी सामी चए ॥ ४८९ ॥

सामीजी कहते हैं मूर्ख जीव ने भ्रमित होकर भ्रम-रूपी भूत को मूल्य देकर (सहर्ष) ले लिया है और इस प्रकार अपने आपको जन्म-मरण के दु खो से बाँध लिया है, किन्तु जिस प्रेमी ने अन्तर्ज्ञान के इशारे को समझ लिया है, वह समता को अपनाकर सूक्ष्म (आत्म-पद) को प्राप्त कर बैठा है ॥ ४८९ ॥

मूर्ख मूर्खाई, छ्डि्नि कीन क्षण भरि।
पुठी ड्रेई पाण खे, छाणिनि नितु छाई।
दानाहनि जे दिलि मे, सुत्ह सफाई।
अन्भय मे आई, सामी - तिनि खे समता ॥ ४९० ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख लोग एक पल भी मूर्खता को नही छोडते है। वे अपने स्वरूप से मुख मोडकर, सदैव ही खाक छानते रहते है (मानव-जीवन नष्ट करते रहते है) किन्तु जिन बुद्धिमानो के हृदय साफ है (जो अज्ञान-रूपी कीचड से मुक्त है) वे भीतर स्थिर एक ही आत्मा को देख लेते है ॥ ४९० ॥

मूर्ख मैं मेरी, मिठी ज्ञाणनि मन मे।
प्रीति न कनि प्रतीति साँ, पर्ची पकेरी।
कालु न डि्सनि कन्ध ते, वञे थो वेरी।
भस्म जी ढेरी, सामी कयो जंहि सभखे ॥ ४९१ ॥

सामीजी कहते है मूर्ख लोग मैं-मेरी की भावना को मधुर मानते हैं। वे आत्मतुष्ट होकर पूर्ण विश्वास के साथ (परमात्मा से) प्रेम भी नही करते है। तथा जिस वैरी काल ने सबको जलाकर राख का ढेर बना दिया है, उसे भी अपने कन्धे पर सवार हुआ नही देखते है। ४९१ ॥

मूर्ख वादि कई, पण्डतु ज्ञाणी पाण खे।
बुधायाई सभखे, चारई वेद चई।
सामी सार स्वरूप खे, कयाई कीन सही।
व्यरो पाण वही, डेई हथ ब्यनि खे ॥ ४९२ ॥

सामीजी कहते हैं मूर्ख अपने को पण्डित मानकर वाद-विवाद करता है, तथा सब लोगो को चारो वेद सुनाता है किन्तु स्वरूप-ज्ञान से स्वय भी अनभिज्ञ रहता है। अत. दूसरो को सहारा (उपदेश) देकर भी खुद (अज्ञान के) प्रवाह मे वह जाता है ॥ ४९२ ॥

मूर्ख सभि मुझी, पिया वेदनि जे वाच मे।
सामी लख्य स्वरूप जी, कंहि स्याणे समुझी।
जंहिखे डिनी कुन्जी, सतिगुर ऐन आकास जी ॥ ४९३ ॥

सामीजी कहते है मूर्ख लोग वेदो के प्रावह मे ही उलझ जाते है, किन्तु वह बुद्धिमान् जिसे सदगुरू ने ज्ञान की कुजी दे दी है, आत्मा के स्वरूप को पहचानता तथा समझ पाता है ॥४९३ ॥

रहिया सभि रुझी, जप तप साधन योग मे।
सुत्ह शुधि स्वरूपजी, कहिखे कीन मुझी।
कोर्युनि मो कहि हिकिडे, ब्याईअ बिना बुझी।
जंहिखे ग्राल्हि गुझी, सामी सली सीतगुरुअ ॥ ४९४ ॥

सामीजी कहते हैं कि सब लोग जप तप तथा योग-साधना मे ही उलझे हुए है। किसी ने भी विशुद्ध स्वरूप की जानकारी प्राप्त नही की है। करोडो मे से उसी एक (व्यक्ति) ने द्वैत-रहित होकर उसे (आत्मा के स्वरूप को) समझा है, जिसे सद्गुरू ने रहस्यमयी (आत्मज्ञान-सबधी) बात बता दी है ॥ ४९४ ॥

रहे सदाई साणु, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ।
अन्धो ड्रिसे कीन की, कढी ममत्व माणु ।
भवे सदाई भर्म मे, दरि दरि थी हैरानु ।
सामी थिए सुज़ाणु, पाए ड्राति गुरूअजी ॥ ४९५ ॥

सामीजी कहते है कि यद्यपि प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा सदैव ही साथ रहती है, फिर भी अन्धा (अज्ञानी) जीव ममता एव वडप्पन को छोडकर उसे नही देख पाता है अत वह भ्रम से परेशान होकर सदैव द्वार-द्वार भटकता रहता है। किन्तु जब उसे गुरु (आत्मज्ञान का उपदेश रूपी) उपहार देता है, तब वह पूर्ण ज्ञानी बन जाता है ॥ ४९५ ॥

रहे सदाई साणु, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ।
तहिखे ड्रिसे कीनकी, अन्धो जीउ अज्ञाणु ।
भवे भवसागर मे, करे ममत्व माणु ।
जे प्री लखाए पाण, त सुखी थिए सामी चए ॥ ४९६ ॥

सामीजी कहते है कि यद्यपि प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा सदैव ही साथ रहती है, फिर भी अज्ञानी अन्धा जीव उसे नही देख पाता है। अत वह ममता एव प्रशसा मे पडकर ससार-रूपी सागर मे भटकता रहता है। किन्तु यदि प्रियतम उसे अपने आप को दिखा देता है (परमात्मा कृपा करता है) तो वह सुखी होता है ॥ ४९६ ॥

रहे होतु हजूरि, सामी सभ कहीजे ।
भर्म मझि भुली करे, मूर्ख ज्ञाणनि दूरि ।
रात्यू ड्रीह मर्म रे, मरनि सन्से सूरि ।
चढ़ी पके पूरि, थिया मुकाबिल महबती ॥ ४९७ ॥

सामीजी कहते हैं यद्यपि प्रियतम सबके अत्यन्त ही निकट रहता है, फिर भी भ्रमो मे भ्रमित होकर, मूर्ख लोग उसे अपने से अत्यन्त दूर जानते है। अत वे निर्लज्जता-पूर्वक दिन-रात भ्रमो मे दुखी होकर मरते (नष्ट होते) रहते है, किन्तु पूर्ण प्रेमी ज्ञान के मार्ग पर चढकर पूर्ण पद को प्राप्त कर लेते है ॥ ४९७ ॥

रात्यू ड्रीह पिटे, थो मूर्खु जीउ भर्म रे ।
मिली चाह चमारि साँ, पहिंजो पाण भिटे ।
विना साध संगति जे, ममत्व कीन मिटे ।
सामी तड्डी छुटे, जड्डी जागी जुड़े पाण मे ॥ ४९८ ॥

मूर्ख जीव निर्लज्जतापूर्वक दिन-रात भटकते रहते है। वे चाह-रूपी चमारिन से मिलकर (बुरी इच्छाओ मे फँसकर) स्वय ही भटकते रहते है। सामीजी कहते है कि साधुओ के सग के सिवा उनकी ममता मिटनेवाली नही है। वे तब ही (अज्ञान से) मुक्त होते है जब जाग्रत होकर (आत्मज्ञान प्राप्त कर) अपने आप(स्वरूप)से जुड़ जाते है ॥४९८॥

रात्यू द्वीह राखी, मूर्ख कनि माया जी।
कालु न द्रिसनि कन्ध ते, कर्डो कटाखी।
समुझी सटी सिरतो, कहिं हरिजन हलाखी।
सामी थी साक्षी वर्ते, विधि वीचार साँ ॥ ४९९ ॥

मूर्ख दिन-रात माया की रखवाली करते रहते है। वे अपने कन्धे पर तीक्ष्ण कटाक्ष करनेवाली मृत्यु को नही देखते है। सामीजी कहते है, किन्तु हरि के भक्तो ने (माया को) दुखदायी समझकर, उसे अपने सिर से उतार कर फेक दिया है, अत वे आत्मा का साक्षात्कार कर सब के साथ नियम एव विचार-पूर्ण वर्ताव करते है ॥ ४९९ ॥

लखे जीअ लुडहनि, था अण-हून्दे दर्याह मे।
चडो ज्ञाणी चित्त मे, मूर्ख कीनि मुड़नि।
सामी कीअ छुडनि, जे ब्रधा कल्पत पाणही ॥ ५०० ॥

लाखो जीव (अज्ञान-रूपी) मिथ्या समुद्र मे बहते रहते है। सामीजी कहते है, इन मूर्खो ने अज्ञान के प्रवाह मे बहते रहने मे ही अपनी भलाई मान ली है, अत वे इस प्रवाह से दूर नही हो पाते (अज्ञान से बचने की कोशिश नही करते है)। भला जिन्होने स्वय ही अपने आप को प्रपच मे बाँध लिया है, वे उससे कैसे मुक्त हो सकते है ? ५०० ॥

लखे लबाडी, गाल्हियू कनि अगम जूँ।
सामी कूडाए साधू थिया, मथो ऐ डाढी।
गलि पोइनि कपट जी, कातो कोहाडी।
भाड़ि खई भारी, वहन्दा वञनि वह मे ॥ ५०१ ॥

सामीजी कहते है लाखो झूठी बकवास करनेवाले अगम की बातें करते रहते हैं। वे अपना सिर एव दाढी मुडवाकर साधू बन जाते हैं तथा अपने गले मे झूठे प्रपच की तलवार एव कुल्हाड़ी लटकाकर (अपना अहित कर) सासारिक प्रपच के भारी बोझ को उठाकर अज्ञान के प्रवाह मे बहते जाते हैं ॥ ५०१ ॥

लखे लेखा कनि, पछाणू को हिकिड़ो ।
लेखो छदे अलेख मे, के गुर्मुख गर्कु रहनि ।
ड्या सभि वादि वकनि, स्वप्न मे सामी चए ।। ५०२ ।।

सामीजी कहते है, लाखो लोग (परमात्मा सबधी) वाते तथा वादो पर वाद-विवाद करते रहते हैं । किन्तु कुछ विरल गुरुमुख ही वातो को छोड़ कर अलख परमात्मा को पहचानते हैं, एव (उसके प्रेम मे) डूवे रहते हैं ।। ५०२ ।।

लखे लेखारी, लेखे मझि लुढ़ी विया ।
गोता खाइनि गैव जा, भर्म करे भारी ।
चढियो चेतन चिट ते, को व्रिलो वीचारी ।
सामी विश्व सारी, जाणी डिठी जहि ज्योति मे ।। ५०३ ।।

सामीजी कहते है—लाखो वकवास करनेवाले वक-वक मे ही वह गये हैं । वे भ्रमो मे भ्रमित होकर गैव के गोते खाते रहते है । उस विरल विचारवान् ने ही ज्ञान के मार्ग को अपनाया है, जिसने जाग्रत होकर एक ही आत्मा के प्रकाश को सारे विश्व मे देखा है ।। ५०३ ।।

लखे लेखारी, लेखे मंझि लुढी विया ।
जीए पसू घुमनि घाणे मे, पाए पांजारी ।
सामी माणे सान्ति सुखु, को व्रिले वीचारी ।
भौसागरु भारी, लघे चढियो लख्य ते ।। ५०४ ।।

लाखो बकवास करनेवाले जीव, व्यर्थ की वक-वक मे वह गये हैं । जिस प्रकार तेल की चक्की चलानेवाला पशु आँखो पर पट्टी चढवाकर तथा गले मे रस्सी से बँधकर चक्की के चारो तरफ चकर लगाता रहता है, उसी प्रकार जीव, अज्ञान-रूपी पट्टे से बँधा हुआ ससार-रूपी चक्की के चारो ओर चक्कर काटता रहता है । सामीजी कहते हैं, कोई विरल विचारवान् ही भारी भवसागर पार कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होकर शान्ति-सुख का आनन्द लूटता है ।। ५०४ ।।

लखे लेखारी, लेखे मझि लुढ़ी विया ।
लघे चढियो लख्य ते, को उतमु अधिकारी ।
जहिखे डिनो सतिगुरुअ, भर्वसो भारी ।
सामी सचारी, मुखि रखी मौजा करे ।। ५०५ ।।

सामीजी कहते हैं लाखो झूठी वकवास करनेवाले वक-वक मे ही

वह गये है। केवल वही उत्तम अधिकारी ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, जिसे सद्गुरु ने पूर्ण विश्वास दिया है, अत वह सत्यवादी परमात्मा की ओर मुख कर आनन्द मनाता रहता है ॥ ५०५ ॥

लखे लेखारू, लेखे मंझि लुढी विया।
लघे चढियो लख्य ते, को तमा रे तारू।
जहिखे पातो सतिगुरुअ, दिव अजन दारू।
सामी मल्हारु मारू, आवन्द वते गोठ में ॥ ५०६ ॥

सामीजी कहते हैं—लाखो झूठी बकवास करनेवाले बक-बक के प्रवाह मे बह गये है, केवल वही इच्छा-रहित तैराक लक्ष्य की ओर अग्रसर हुआ है जिसे सद्गुरु ने ज्ञान-रूपी अजन तथा प्रेम-रूपी शराव दी है, अत वह मल्हार (प्रसन्नता से परिपूर्ण गीत) एव मारू (दुख से परिपूर्ण गीत) राग ससार-रूपी गाँव मे गाता फिरता है, अर्थात् सुख एव दुख मे समान भाव से रहता है ॥ ५०६ ॥

लखे लेखारी, वहनि वाच वहण मे।
लघे चढियो लख्य ते, को भाग्यवानु भारी।
सटी जहि सामी चए, पर्च्छिन पिण्ड सारी।
समता सच्यारी, मुखि रखी मौजा करे ॥ ५०७ ॥

सामीजी कहते है—लाखो झूठी बकवास करनेवाले अज्ञान के तेज प्रवाह मे वहते रहते है। वही महाभाग्यशाली ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, जिसने समस्त परिच्छिन्नता के पिण्ड को पटक दिया है तथा सच्चाई एव समता को अपनाकर परमात्मा की ओर मुखकर आनद मनाता रहता है ॥ ५०७ ॥

लखे लोक लाफी, लाफा हणनि लख्य रे।
स्वप्न मे साहिव थी, मुलिक डियन माफी।
जागी कहि योधे कई, सामी चए साफी।
जहिखे सराफी, सतिगुरु दसी स्वरूप जी ॥ ५०८ ॥

लाखो झूठे लोग लक्ष्य-रहित (ज्ञान-रहति) होकर झूठी वडाई करते रहते है। वे सपने मे साहव (राजा) वनकर देश को माफी देते हैं। अर्थात् अज्ञानवश दूसरो को ज्ञान का उपदेश देते है। सामीजी कहते है, वही विरल-योद्धा जाग्रत होकर अज्ञान-रूपी कीचड साफ करता है, जिसे सद्गुरु रूपी महाजन (Banker) ने स्वरूप का सच्चा खजाना दिखाया है ॥ ५०८ ॥

लखे हज़ारे, ग़ाल्हियू कनि वेदान्त जूँ।
दि्से सिक सचीअ साँ, को वि्रलो वीचारी।
लहे लालु अन्दर मों, गैबी गोतो मारे।
नानत निवारे, सुखी थे सामी चए॥ ५०९॥

सामीजी कहते है हजारो-लाखो लोग वेदान्त की वाते करते रहते हैं, किन्तु केवल विरल-विचारवान् ही सच्चे प्रेम से परमात्मा को देखता है। वह हृदय के भीतर रहस्यमय गोता लगाकर (आत्मा-रूपी) लाल ढूंढ लेता है; अर्थात् हृदय मे स्थित आत्मा-रूपी लाल को ज्ञान की डुबकी द्वारा निकाल लेता है तथा द्वैत त्यागकर सुखी वन जाता है॥ ५०९॥

लखे हजारे, ग़ाल्हियू कनि वेदान्त जूँ।
सामी सौदो प्रेम जो, वि्रलो को धारे।
जे विहे अन्भय हट ते, नानत निवारे।
पर्ची पीआरे, प्यालो भेद भर्म रे॥ ५१०॥

सामीजी कहते है—हज़ारो-लाखो लोग वेदान्त की वाते करते रहते है, किन्तु कोई विरल-पुरुप ही द्वैत त्यागकर आत्मज्ञान-रूपी दुकान पर बैठकर प्रेम का सौदा करता है तथा आत्म-तुप्ट होकर भेद एवं भ्रम से रहित, प्रेम या ज्ञान-रूपी प्याला पिलाता है अर्थात् दूसरो को भेद व भ्रम से मुक्तकर आत्मज्ञान से सन्तुष्ट करता है॥ ५१०॥

लखे हजारे, वेद पढी वादी थिया।
वि्रले को विधि साँ बुझे, विधि साँ वीचारे।
आणे मन पवन खे, अन्दरि आतारे।
नानत निवारे, सीतलु थियो सामी चए॥ ५११॥

सामीजी कहते है—हजारो-लाखो लोग वेद पढकर विवादी बन गये है। उनमे से कोई विरल-व्यक्ति ही विधिपूर्वक उस पर विचार करता है तथा विधिपूर्वक उसे समझता है। वह वायु के समान वहनेवाले मन को सासारिक विषयो से हटाकर अन्तर्मुखी वनाता है अर्थात् मन को हृदय मे स्थित आत्मा मे लीन करता है एव द्वैत मिटाकर शीतल वनता है॥५११॥

लाफ़ाँ लख हणनि, पण्डतु ज्ञाणी पाणखे।
ग़ाल्हियू वेदनि जूँ बुधी, मर्मु न न रखनि मनि।
ठाकुर वसे घर मे, सो अन्धा कीन दि्सनि।
लखाया लहनि, सामी सुपिर्युनि खे॥ ५१२॥

सामीजी कहते है अज्ञानी जीव अपने को पण्डित समझ कर अपनी लाख-लाख प्रशसा करते रहते है। वे वेदो की बाते सुनते तो है किन्तु मन मे लाज-शर्म नही रखते है। वे अन्धे हृदय-रूपी घर मे विराजमान आत्मा रूपी ठाकुर को नही देखते हैं। किन्तु ज्ञानवान्, प्रियतम-परमात्मा को ढूँढ ही लेते हैं ॥ ५१२ ॥

लिकनि लोक लजा, कूडा छद्रिनि कीन की।
सभे माया मोह मे, सहनि नितु सजा।
आशिक चढ़िया अछ ते, मने रब रजा।
करे नितु मजा, सामी सफाईअ जा ॥ ५१३ ॥

सामीजी कहते है—झूठे (अज्ञानी) जीव लोक-लज्जा नही छोड पाते, बल्कि उसमे ही फँसे रहते है, अर्थात् सासारिक लोगो तथा बातो का ही ज्यादा ख्याल करते है, अत सदैव ही वे मोह-माया मे कष्ट भोगते रहते हैं (दु ख सहन करते है)। किन्तु प्रेमी-व्यक्ति मन मे परमात्मा की रजा पर राज़ी होकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होते है एव सदैव ही पवित्रता का आनद लूटते है ॥ ५१३ ॥

लिकनि लोक लजा, कूडा जीअ जहान जा।
अस्थिरु ज्ञाणी पाण खे, सहनि नितु सजा।
के आशिक ज्ञाणी अकु सभु, सन्सारी मजा।
रहनि सदा रज़ा, आतमसुख अपार मे ॥ ५१४ ॥

सामाजी कहते है—संसार के झूठे जीव लोक-लज्जा मे छिपते हैं अर्थात् सासारिक लोगो तथा उनकी बातो से डरते है। वे अपने को नश्वर मानकर सदैव ही कष्ट भोगते रहते है। किन्तु प्रेमी लोग ससार के मौज-मजो को आक के समान (कडुवा) समझते है, तथा सदैव ही अपार आत्मानन्द मे लीन रहते है ॥ ५१४ ॥

लेखे मंझि आहीनि, सभे जीअ जहान जा।
गुर्मुखु लेखे खे छद्दे, पेरु अग्गे पाईनि।
सामी लिव लाईनि, वञी अन्भय जे आकास मे ॥ ५१५ ॥

सामीजी कहते है—ससार के सब जीव बातो मे उलझे हुए है, किन्तु गुरुभक्त बातो को छोडकर ज्ञान के मार्ग पर आगे कदम बढाते है तथा अन्तर्ज्ञान के आकाश मे प्रेम लगाकर बैठते है ॥ ५१५ ॥

लेखे मंझि लटिक्या, कई जीअ जहान जा ।
फसी माया मोह जे, फन्दे मझि फथिक्या ।
दरि दरि थी भिटिक्या सामी शुधि स्वरूप खो ॥ ५१६ ॥

सामीजी कहते है—ससार के कई जीव व्यर्थ की वातो में ही उलझ गये है। वे मोह-माया के फन्दे मे फँसकर तडप रहे है तथा शुद्ध आत्म स्वरूप से विमुख होलर द्वार-द्वार भटक रहे है ॥ ५१६ ॥

लेखे मझि लुढी, विया जीअ जहान जा ।
अन्दरि ड्रिठो अलेख खे, कहिं महवतीअ मुडी ।
सामी जहिजी साध सङ्गि, अविद्या गन्धि छुडी ।
जागी रह्यो जुडी, पाण वराए पाण साँ ॥ ५१७ ॥

सामीजी कहते है ससार के जीव व्यर्थ की वातो के प्रवाह मे वह गये है, किन्तु साधुओ के सग से जिस प्रेमी की अविधा-रूपी गाठ खुल गई, उसने अन्तर्मुखी होकर अपने ही भीतर अलेख (जिसका लेखा न किया जा सके) परमात्मा को देखा है, तथा जाग्रत होकर अपने अह से मुख मोड़कर अपने आत्मा-स्वरूप से जुड गया है ॥ ५१७ ॥

लेखे लुडु विधो, सखिणो हिन सन्सार सें ।
इशारो अलेख जो, कहिं प्रेमीअ पुधो ।
सदा रहे सामी चए, समुझ मझि सिधो ।
मरी मुरिह ग्रिधो, परमेश्वर खे प्रीति साँ ॥ ५१८ ॥

सामीजी कहते है, झूठी वातो ने ससार मे मिथ्या शोर-गुल मचाया है। किसी प्रेमी ने ही अलेख का इशारा समझा है, अत वह सदैव ही विचारयुक्त रहता है। उसने अपने आपको मार कर (अह नष्ट कर) परमात्मा को प्रेम से खरीद लिया है ॥ ५१८ ॥

लेखे विधो लुडु, सामी चए सन्सार मे ।
आशिक चढ़िया अछते, करे पंजई पुडु ।
सन्मुखु सुपिर्युनि जे, लाए वेठा झुडु ।
जीए गूंगो खाए गुडु, मुशिके कुशिके कीनकी ॥ ५१९ ॥

सामीजी कहते है कि झूठो वातो ने ससार मे वहुत शोर मचाया है, किन्तु प्रेमी लोग पाँच विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह एव अहकार) को वश मे कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुए हैं। वे प्रियतम के सन्मुख इकट्ठे होकर वैठे हैं। उनकी स्थिति उस गूँगे जैसी है जो गुड खाकर उसके स्वाद का अनुभव तो करता है, किन्तु उसके सवध मे कुछ कह नही पाता।

है। उसी प्रकार ये प्रेमी आत्मानद का अनुभव करते है किन्तु उस आनद का वर्णन कर सकने मे बिल्कुल असमर्थ है ॥ ५१९ ॥

लोभ लहरि लोड़े, कोड़े न्या केतिरा।
सामी रख्यो सुखान खे, काँहि महबतीअ मोड़े।
ब्रन्धन सभि ड्वाईअ जा, छड़ियाई छोड़े।
वेठो जी जोड़े, लघे पारि प्रियनि साँ ॥ ५२० ॥

सामीजी कहते हैं लोभ-रूपी लहर ने कितने ही अज्ञानी जीवो को वहाकर नष्ट कर दिया है, किन्तु प्रेमी ने मन-रूपी पतवार को भीतर की ओर मोड दिया है, अर्थात् मन को सासारिक वातो से हटाकर हृदय मे स्थित आत्मा मे लीन कर दिया है, तथा द्वैत के सब वन्धन खोल दिये है। वह भवसागर से पार होकर, प्रियतम के साथ हृदय जोड़ कर वैठा है ॥५२०॥

लोभी ए लालिची, वाटु न लहनि घर जो।
मरनि माया मोह मे, पाँहिजो पाण पची।
उल्टी को आशिकु रहे, आतम रगि रची।
जंहिखे समुझ सची, सामी ड्रिनी सतिगुरूअ ॥ ५२१ ॥

लोभी तथा लालची जीव घर का रास्ता नही ढूँढ पाते है, अर्थात् हृदय-रूपी घर मे स्थित आत्मा को नही देख पाते है। वे स्वय ही माया-मोह मे पच-पचकर मरते रहते है। सामीजी कहते है, किन्तु जिस प्रेमी को सद्गुरु ने सच्चा ज्ञान दे दिया है, वह ससार से विरक्त होकर आत्म-रग मे रगा रहता है ॥ ५२१ ॥

लोभी ए लालिची, सचु सुञाणनि कीन की।
काया माया कुल मे, मरनि पाण पची।
सामी रह्यो को सूर्मो, आतम रगि रची।
जंहिखे समुझ सच्ची, शोधे ड्रिनी सतिगुरूअ ॥ ५२२ ॥

लोभी तथा लालची जीव सत्य को नही पहचानते हैं, वे काया-माया एवं कुल (सवधी वातो) मे पच-पचकर स्वय ही नष्ट होते रहते है। सामीजी कहते हैं, किन्तु जिस शूरवीर (ज्ञानी) को सद्गुरु ने खोज कर सच्चा ज्ञान दिया है वह आत्म-रग मे रगा रहता है ॥ ५२२ ॥

लोड़े लोभ लहरि, न्या जीअ जहान जा।
भुली भवनि पाण ही, दीनु वणी दरि दरि।
को प्रेमी पूरणु थियो, पर्ची परीअं भरि।
जंहिखे स्वतन्तरि, सामी कयो सतिगुरूअ ॥ ५२३ ॥

लोभ रूपी लहर ने ससार के (अज्ञानी) जीवों को प्रवाह मे डाल कर नष्ट कर दिया है। वे स्वय ही अपने आप (स्वरूप) को भूलकर, दीन बनकर द्वार-द्वार भटकते रहते है। सामीजी कहते हैं, किन्तु वह विरल-प्रेमी, जिसे सद्गुरु ने अज्ञान, लोभ एव लालच से मुक्त कर दिया है, वह आत्मतुष्ट हो, ससार-सागर के उस ओर जाकर (ससार-सागर से पार होकर) पूर्ण बन गया है॥ ५२३॥

लोडे लोभ लहरि, मूर्ख मोहिया केतिरा।
भुली भवन पाणही, कूडा ब्रधा कमरि।
के प्रेमी प्रतीति साँ, पर्ची पहुता घरि।
अचे कीन नजरि, सामी सुपिर्युनि रे॥ ५२४॥

लोभ रूपी लहर ने कितने ही मूर्खो (अज्ञानी जीवो) को आकर्पित कर नष्ट कर दिया है। वे झूठे भ्रमित होकर, स्वय ही अपनी कमर को अज्ञान-रूपी बोझ से बाँधकर भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं, कुछ प्रेमी ही पूर्ण विश्वास से आत्म तुष्ट होकर हृदय-रूपी घर मे पहुँच पाये हैं, (अपने भीतर ही आत्मा को देख पाये हैं), अत उन्हे प्रियतम के सिवा कुछ भी दिखाई नही देता है॥ ५२४॥

लघे लोक लज्रा, कूडा सघनि कीनकी।
जन्मी मरी जम जी, खाइनि सदा सजा।
सचा रहनि सामी चए, राजी मझि रजा।
मिली कनि मजा, पर्ची पहिजे पीअ साँ॥ ५२५॥

झूठे जीव ससार की लाज-शर्म को नही छोड सकते है (वे ससार के लोगो से डरते रहते है)। अत वे जन्म एवं मृत्यु को प्राप्त कर सदैव यम की सजा भोगते रहते है। सामीजी कहते है, किन्तु सच्चे जीव परमेश्वर की रजा मे राजी रहते है तथा आत्मतुष्ट हो, प्रियतम से मिलकर आनन्द मनाते रहते हैं॥ ५२५॥

लंघे लोक लज्रा, कूडा सघनि कीन की।
जन्मी मरी जम जी, सहनि नितु सजा।
सचा रहनि सामी चए, राजी मझि रज्रा।
मिली कनि मजा, सुत्ह साध सगति साँ॥ ५२६॥

झूठे जीव ससार की लाज-शर्म को नही छोड सकते है, (ससार के लोगो तथा उनकी बातो से डरते रहते है) अत वे जन्म एव मृत्यु को प्राप्त कर सदैव ही यम की सज़ा भोगते रहते है। सामीजी कहते हैं, किन्तु

सभ्ये ज्ञानवान् परमात्मा की रजा मे राजी रहते है तथा शुद्ध साधु-सगति का लाभ उठाकर मजे मनाते रहते है ॥ ५२६ ॥

वञे विस्व वहन्दी, सन्से जे सागर मे ।
कई लोभ लहरि साँ, अविद्या सभ अन्धी ।
व्रिले कहिं गुर्मुख लधी, कृपा साणु कन्धी ।
व्रांभण जंहिं व्रन्धी, पजई कया वसि पहिजे ॥ ५२७ ॥

सारा विश्व भ्रम रूपी सागर मे वह रहा है । अविद्या ने लोभ-रूपी लहर से सबको अन्धा बना दिया है । सामीजी कहते है उसी विरल-गुरु-भक्त ने गुरु की कृपा से ससार-रूपी सागर का किनारा पा लिया है, जिसने पाँच विकारो को बाँधकर वश मे कर लिया है ॥ ५२७ ॥

वहे बिना वीचार, ख़लिक खाम ख्याल मे ।
परिच्छिन्न ज्राणी पाण खे, रोए जारों जार ।
रहनि अलेपु आकास जाँ, के नेही निराधार ।
लाथी जिनि लिव तार, सामी सुपिर्युनि साँ ॥ ५२८ ॥

सभी लोग बुद्धिहीन होकर व्यर्थ के विचार-प्रवाह मे बहते रहते हैं । वे अपने को नश्वर समझकर खून के आँसू वहाते रहते है । सामीजी कहते हैं, किन्तु अज्ञान से मुक्त प्रेमी जिन्होने प्रियतम के साथ स्नेह किया है, वे आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते है ॥ ५२८ ॥

वाई वड़ाई, कूडा भुली कनि केतिरा ।
रखनि न रतीअ जेतिरी, समुझ सफाई ।
व्रिले कहिं गुर्मुख खे, सामी सान्ति आई ।
सम थी सदाई, माणे मौज मुक्ति जी ॥ ५२९ ॥

कितने ही झूठे लोग भ्रमित होकर मुख से अपनी बड़ाई करते रहते है, किन्तु रत्तीभर भी वुद्धि तथा पवित्रता नही रखते है । सामीजी कहते हैं, विरल-गुरुभक्त को ही शान्ति प्राप्त होती है अतएव वह समता अपनाकर सदैव ही मुक्ति का आनन्द लूटता है ॥ ५२९ ॥

वाई वड़ाई, मूर्ख कनि मर्म रे ।
सति ज्राणी सन्सार खे, छाणिनि नितु छाई ।
स्याणनि सची सामी चए, हरि साँ लिव लाई ।
कल्पना काई, रखनि न रतीअ जेतिरी ॥ ५३० ॥

मूर्ख, निर्लज्ज होकर अपने मुख से अपनी प्रशसा करते रहते है । वे

ससार को सत्य मानकर, सदैव ही धूल छानते रहते हैं अर्थात् अपने को धोखा देकर, मानव-जीवन नष्ट करते रहते है। सामीजी कहते हैं, किन्तु ज्ञानी, परमात्मा से सच्चा नेह लगाते हैं। वे रत्ती भर भी किसी प्रकार की कल्पना नही करते हैं ॥ ५३० ॥

वादि विवादि वकी, मूर्ख मरनि मर्म रे।
छदे सुखु स्वरूप जो, पीहनि चाह चकी।
कोर्युनि मों कंहि हिकिड़े, लधो थाउ थकी।
जहिखे प्रीति पकी, सामी ड्रिनी सतिगुरुअ ॥ ५३१ ॥

मूर्ख बुद्धिहीन होकर वाद-विवाद तथा वक-वक कर नष्ट होते रहते हैं। वे स्वरूप-सुख को छोड़कर चाह-रूपी चक्की पीसते रहते हैं अर्थात् नाना प्रकार की इच्छाएँ करते रहते है। सामीजी कहते हैं, करोड़ो मे से उसी एक ने ही थक कर (प्रयत्न कर) ठिकाना प्राप्त कर लिया है, जिसे सद्गुरु ने पक्की प्रीति दी है ॥ ५३१ ॥

वादी उपाधी, कोडे घुमनि केतिरा।
कनु कहि खे कीन ड्रिए, सुत्ह समाधी।
सामी जहि साधी, मन्सा गुरु मर्याद सॉ ॥ ५३२ ॥

कितने ही उत्पाती-वादी नष्ट होकर घूमते रहते है। सामीजी कहते है किन्तु पूर्ण समाधिस्थ (सन्त), जिसने गुरु की मर्यादा से अपनी मनसा (इच्छा) वश मे कर ली है, किसी की भी बात पर कान नही देता है (किसी की नही सुनता है) ॥ ५३२ ॥

वादी ऐ विषई, सचु सुञाणनि कीनकी।
भवनि भौसागर मे, पाहिजो पाण पई।
ईएं विया अभिमान रे, सामी सन्त चई।
अन्भय अण मई, हुई जिनि जे हथ मे ॥ ५३३ ॥

सामीजी कहते हैं, वे अभिमान-रहित सन्त, जिनके पास अपार ज्ञान या यही कह गये हैं कि वादी एवं विषयी सत्य को नही पहचानते है; अत वे स्वय ही भवसागर मे पडकर भटकते रहते हैं ॥ ५३३ ॥

वादी विवादी, सचु सुञाणनि कीन की।
सदा रहनि सन्सार मे, पछिन प्रमादी।
माणे सुखु स्वरूप जो, आशिकु अगाधी।
मूड़ी मुरादी, सामी डिठी जहिं समता ॥ ५३४ ॥

वादी तथा विवादी सत्य को नही पहचानते है। वे नश्वर ससार मे सदैव ही प्रमाद करते रहते है। सामीजी कहते है, किन्तु अगाध-प्रेमी, जिसने समता-रूपी पूँजी प्राप्त कर ली है, वह स्वरूप-सुख का ही उपभोग करता रहता है ॥ ५३४ ॥

विञायो विसे, पाणु पहिंजो पाण मों।
देवाननि जाॅ देस मे, फोले ऐं फिसे।
ड्रीओ ब्रारे घर मे, सामी कीन ड्रिसे।
अचे सन्तु हिसे, त तपति मिटेई मन जी ॥ ५३५ ॥

अज्ञान मे खोये हुए जीव ने स्वय ही अपने स्वरूप को अपने से अलग समझकर गँवा दिया है (अपने मे स्थित आत्मा को भुला दिया है), अत अब वह पागलो की तरह उसे ससार मे ढूँढ़ता रहता है तथा ठोकरे खाता रहता है। सामीजी कहते हैं वह हृदय-रूपी घर मे ज्ञान का दीपक जला कर उसे (आत्मा को) नही देखता है। किन्तु यदि उसे सौभाग्यवश कोई सन्त मिल जाए तो उसके मन की तपन मिट जाए ॥ ५३५ ॥

विसनि खे वाहणु, वाहे वियो वाच मे।
मिली मलाहनि खाॅ, पुछीन कीन पतणु।
लधे चढियो लख्य ते, को प्रेमी पूरणु।
जंहिंजो भोलु भवणु, सामी लाथो सअिगुरूअ ॥ ५३६ ॥

अज्ञान मे खोये हुए जीवो की जीवन-नौका को अज्ञान के तेज़ प्रवाह ने धकेल दिया हैं। वे सन्तरूपी मल्लाहो से मिलकर किनारा नही पूछते हैं। (सन्तो का सग कर ससार-सागर से पार नही होते है)। सामाजी कहते है किन्तु जिस पूर्ण-प्रेमी के अज्ञान रूपी पर्दे को सद्गुरु ने उतार दिया है, उसकी जीवन-नौका भवसागर पार कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुई है। ५३६ ॥

विसनि खो विसिरी, वियो आदि घरु पहिंजो।
सामी पिया सन्सार जे, कल्पति मझि किरी।
व्रिले कहिं वेसाह साॅ, लधो घाटु घिरी।
अचे कीन फिरी, जन्म मरण जे दुख मे ॥ ५३७ ॥

सामाजी कहते है, अज्ञान मे खोये हुए जीवो को अपना आदि-घर विसर गया है, अत वे संसार के झूठे प्रपच मे फँस गये है। किसी विरल-पुरुष ने ही विश्वास से अन्तर्मुख होकर किनारा ढूँढ लिया है, अत वह फिर से जन्म-मरण के दुखो मे नही आता है ॥ ५३७ ॥

विसनि खों विसिरी, वियो आदी घर पहिंजो ।
सामी पिया सन्सार जे, कल्पति मझि किरी ।
सुजाग्ननि सही लधो, पूरणु पाकु प्री ।
जीए जवाहरी, लालु पछाणे लख्य सॉ ॥ ५३८ ॥

सामीजी कहते है, अज्ञान मे खोये हुए जीवो को अपना आदि घर विसर गया है, अतएव वे ससार के झूठे प्रपच मे फँस गये है। किन्तु जाग्रत ज्ञानियो ने पूर्ण पवित्र प्रियतम को अपने ज्ञान से उसी प्रकार पहचान लिया है, जिस प्रकार जौहरी अपने ज्ञान से लाल पहचानता है ॥ ५३८ ॥

विसनि विञायो, घर जो धणी घर मों ।
उल्टी ड्रिसनि कीन की, जहिं जगु उपायो ।
सामी सुजाग्ननि खे अन्भय मे आयो ।
पहिंजो परायो, ख्यालु मेटे खामोशु थियो ॥ ५३९ ॥

अज्ञान मे खोये हुए जीवो ने घर के मालिक को घर से गवा दिया है (आत्मज्ञान को भुला दिया है)। वे ससार से विरक्त होकर ससार के उत्पन्न करनेवाले परमात्मा को नही देखते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु जाग्रतो को वह परमात्मा अर्न्तदृष्टि मे आता है, अत वे अपने-पराये की भावना मिटाकर शान्त होकर बैठे है ॥ ५३९ ॥

विसनि विञायो, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ।
जंहिंसाँ सभि कार्ज सरे, पंहिंजो परायो ।
विरले कहिं गुर्मुख खे, अन्भय मे आयो ।
सामी समायो, अन्भय मे आकास जाँ ॥ ५४० ॥

जिस प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा से अपने तथा दूसरो के सभी कार्य सिद्ध होते हैं, उसे अज्ञान मे खोये हुए लोगो ने गवा (भुला) दिया है। सामीजी कहते हैं, किसी विरल गुरु-भक्त को ही वह अर्न्तदृष्टि मे आता है अतः वह आकाश की भाँति निर्लिप्त होकर आत्मज्ञान मे लीन रहता है ॥ ५४० ॥

विसनि विञायो, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ।
जंहिं साँ सभुकी सिधि थियो, पहिंजो परायो ।
विरले कहिं गुर्मुख खे, अन्भय मे आयो ।
रमी रंग लायो, सामी सन्से भर्म रे ॥ ५४१ ॥

जिस प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा से अपने तथा दूसरो के सभी कार्य सिद्ध होते है, उसे अज्ञान मे खोये हुए लोगो ने भुला दिया है।

सामीजी कहते है, किसी विरल गुरुमुख को ही वह अन्तर्दृष्टि मे आता है, अत वह भ्रम-रहित होकर आत्मरंग मे रँगा रहता है (आत्मानन्द मे लीन रहता है) ॥ ५४१ ॥

विसनि विञायो, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ।
देही ज्ञाणी पाण खे, फाहे फासायो ।
व्रिले कहि गुर्मुख खे, अन्भय मे आयो ।
पहिजो परायो, ख्यालु छदे ख़ामोशु थियो ॥ ५४२ ॥

सामीजी कहते हैं अज्ञान मे खोये हुए लोगो ने प्रत्यक्ष पूर्ण-आत्मा को भुला दिया है। उन्होने अपने को शरीर मानकर अज्ञान की फाँसी में अपने को फंसा रखा है। किसी विरल गुरुमुख को ही वह अन्तर्दृष्टि मे आता है, अत वह अपने-पराये की भावना मिटाकर शान्त हो बैठता है ॥ ५४२ ॥

विसनि विञायो, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ।
देही मने पाणखे, फाहीअ फासायो ।
व्रिले कहि गुर्मुख खे, अन्भय मे आयो ।
सामी समायो, जर्ल पपोटो जल मे ॥ ५४३ ॥

अज्ञान में खोये हुए लोगो ने प्रत्यक्ष पूर्ण-आत्मा को भुला दिया है। उन्होने अपने को शरीर मानकर अज्ञान की फाँसी मे फँसा रखा है। सामीजी कहते हैं, किसी विरल गुरुमुख को ही वह अन्तर्दृष्टि मे आता है, अतः वह जल के बुदबुदे की तरह जल मे समा जाता है, अर्थात् जिस प्रकार जल का बुदबुदा पानी से मिलकर अपना अस्तित्व मिटा देता है उसी प्रकार गुरुभक्त भी अपना अस्तित्व परमात्मा मे विलीन कर देता है ॥ ५४३ ॥

विसनि विसारे, छद्वियो अन्भय आत्मा ।
दरि दरि देवाननि जॉ, पुछनि पुकारे ।
मिटी पाए मूह मे, भवनि भेष धारे ।
सामी सम्भारे, प्रत्क्षु द्विसनि न पाण मे ॥ ५४४ ॥

अज्ञान मे खोये हुए लोगो ने अन्त स्थित आत्मा को भुला दिया है, अत वे पागलो की तरह द्वार-द्वार (आत्मा के सबध मे) पूछते एव पुकारते रहते हैं। वे अपने मुख मे धूल झोककर नाना प्रकार के वेश धारण कर भटकते रहते है। सामीजी कहते है, किन्तु वे सँभलकर अपने मे ही स्थित, प्रत्यक्ष आत्मा को नही देखते है ॥ ५४४ ॥

विसनि विसारे, छद्रियो अन्भय आत्मा।
भवनि भौसागर मे, नाना रूप धारे।
त्रिले कहिं गुर्मुख लधो, विधि साँ वीचारे।
नानत निवारे, सामी माणे सान्ति सुखु ॥ ५४५ ॥

अज्ञान मे खोये हुए जीवो ने अन्त स्थित आत्मा को भुला दिया है, अत. वे नाना प्रकार के रूप धारण कर भव-सागर मे भटकते रहते हैं। सामीजी कहते है, जिस विरल गुरुभक्त ने विधिपूर्वक विचार कर उस आत्मा को ढूंढ लिया है, वही द्वैत मिटाकर शान्ति-सुख का उपभोग करता है ॥ ५४५ ॥

विसनि विसारे, द्रिनो अन्भय आत्मा।
दरि दरि देवाननि जाँ, पुछनि पुकारे।
प्रत्क्षु द्रिसनि न पाण खे, सामी सम्भारे।
द्रिठो द्रेखारे, त इस्थिति थिए आराम मे ॥ ५४६ ॥

अज्ञान मे भ्रमित लोगो ने अन्त स्थित आत्मा को भुला दिया है, अतः वे दीवानो की तरह द्वार-द्वार (आत्मा के विषय मे) पूछते एवं पुकारते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, वे सँभलकर आत्मा को प्रत्यक्ष नही देखते हैं, किन्तु यदि कोई आत्म-द्रष्टा (जिसने आत्मा को देखा है) उन्हे दिखा दे, तो वे शान्ति से रह सकते है ॥ ५४६ ॥

विसनि विसारे, द्रिनो अन्भय आत्मा।
भवनि भौसागर में, हीरो जन्म हारे।
त्रिले कहिं गुर्मुख द्रिठो, नानत निवारे।
सदा सम्भारे, सामी सुपिर्युनि खे ॥ ५४७ ॥

अज्ञान मे भ्रमित लोग अन्त स्थित आत्मा को भूल गये है। वे हीरे के समान अपने अमूल्य मानव-जन्म को नष्ट कर ससार-सागर मे भटकते रहते हैं।' सामीजी कहते हैं कोई विरल गुरुभक्त ही द्वैप मिटाकर उस आत्मा को देख सका है; अतएव अब वह सदैव ही सँभलकर प्रियतम को देखता है ॥ ५४७ ॥

विसनि विसारे, द्रिनो अन्भय आत्मा।
लुढ़ी लहवारा थिया, हीरो जन्मु हारे।
उल्टी कहिं आशिक द्रिठो, सामी सम्भारे।
चढी चौवारे, सैल करे सन्सार जा ॥ ५४८ ॥

अज्ञान मे भ्रमित लोग अन्त.स्थित आत्मा को भुला बैठे है। वे हीरे के समान अमूल्य जन्म नष्ट कर ससार-रूपी सागर के प्रवाह मे बह रहे है। सामीजी कहते है, किसी प्रेमी ने ही विरक्त होकर तथा अज्ञान से सँभलकर उसे देखा है, अतः वह दसवे द्वार मे स्थित होकर ससार की सैर करता है अर्थात् ससार मे रहकर भी आत्मानद मे लीन रहता है॥ ५४८ ॥

विसा बिना वीचार, भवनि भौसागर मे।
गोता खाइनि गैब जा, रोअनि ज़ारौ-जार।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, के नेही निराधार।
सदा रहनि हिक तार, सामी सम स्वभाव मे ॥ ५४९ ॥

अज्ञान मे खोये हुए लोग बिना सोच-विचार के भवसागर मे भटकते रहते है। वे गैब के गोते खाकर खून के आँसू बहाते रहते है। सामीजी कहते हैं, कुछ अज्ञान से मुक्त प्रेमी ही स्वरूप-सुख का उपभोग करते है तथा वे सम-भाव अपनाकर परमात्मा से एकाकार हो जाते है ॥ ५४९ ॥

विसारे वालिसु, मुठा जीअ मनन मे।
जाग्री द्रिसनि न पाण खे, अन्धा करे आलिसु।
को आशिकु चढियो अछ ते, खुलासी खालिसु।
सामी थी सालिसु, वर्ते विधि वीचार साँ ॥ ५५० ॥

जीव अपने वारिस (आत्मा) को भूलकर मन के सकल्प-विकल्पो मे नष्ट हो गये है। वे अन्धे आलस्य-वश अज्ञान की नीद से जाग्रत होकर अपने स्वरूप को नही देखते है। सामीजी कहते हैं, किन्तु विरला विशुद्ध-प्रेमी अज्ञान से मुक्त होकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है तथा निष्पक्ष होकर विधि तथा विचार से वर्ताव करता है ॥ ५५० ॥

विसा वरी वरी, फाहे फासनि पाण ही।
सामी सघनि कीन की, तमां सिन्धु तरी।
को प्रेमी लघे पारि पियो, सटे भ्रम भरी।
वेठो अजरु जरी, आदि अन्भय घर मे ॥ ५५१ ॥

सामीजी कहते है, अज्ञान मे खोये जीव बार-बार अपने आपको अज्ञान-रूपी फाँसी मे फँसाकर नष्ट होते है। वे कामना-रूपी सागर को पार नही कर सकते हैं। किन्तु प्रेमी भ्रम-रूपी गठरी पटक कर कामना-रूपी सागर से पार हो गया है, एव अन्त स्थित आदि-घर मे दृढ होकर बैठा है॥ ५५१ ॥

विसा विञाए, फोलिनि अन्भय आत्मा ।
उपजे निपजे जहिं मे, सभु जगु समाए ।
सामी सुजाग्नि डि्ठो, मूहु मढीअ पाए ।
लिव सच्ची लाए, सदा माणिनि सान्ति-सुख ।। ५५२ ।।

अन्त स्थित आत्मा जो ससार को उत्पन्न उसका पालन एव लय करता है, उसे अज्ञान मे खोये जीव बाहर ढूँढते रहते है । सामीजी कहते है, किन्तु जाग्रतो ने भीतर पैठकर उसे प्राप्त कर लिया है और उससे सच्चा स्नेह कर नित्य शान्ति व सुख का उपभोग करते है ।। ५५२ ।।

विसा विञाए, वेठा अन्भय आत्मा ।
रोअनि रतु अख्युनि मो, पुछनि पछुताए ।
सामी सुजाग्नि डि्ठो, मूह, मढीअ पाए ।
ममत्व मिटाए, सदा रहनि सतोष मे ।। ५५३ ।।

अज्ञान मे खोये हुए लोग अन्त स्थित आत्मा को गवाँ बैठे है । वे आँखो से खून के आँसू बहाकर तथा पश्चाताप कर आत्मा के संबध मे पूछते रहते है । सामीजी कहते है, किन्तु जाग्रतो ने भीतर पैठकर उसे देख लिया है, अतएव वे ममता मिटाकर, सदैव ही सतोष से रहते है ।। ५५३ ।।

विसा विसारे पाणु, भवनि भौसागर मे ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, छाणिनि छाण्यो छाणु ।
माणे सुख स्वरूप जो, को साधू जनु सुज्ञाण ।
सदाई निरब्राणु, सामी रहे स्वभाव मे ।। ५५४ ।।

अज्ञान मे खोये हुए जीव अपने आत्म-स्वरूप को भूलकर वे ससार-सागर मे भटकते रहते है, वे ससार को सत्य मानकर खाक छानते फिरते हैं (व्यर्थ ही परिश्रम करते रहते है) । सामीजी कहते है, किन्तु सज्जन साधु-पुरुष स्वरूप-सुख का उपभोग करता है तथा मुक्त होकर अपने ही भावो मे सदैव लीन रहता है ।। ५५४ ।।

विसो विसारे, वेठो अन्भय आत्मा ।
दरि दरि देवाननि जाँ, पुछे पुकारे ।
प्रत्क्षु डि्से न पाण खे, सामी सम्भारे ।
डि्ठो डे्खारे, त करे आराम अन्दर मे ।। ५५५ ।।

सामीजी कहते है अज्ञान मे खोया हुआ जीव अन्त स्थित आत्मा को भुला बैठा है । वह पागलो की तरह द्वार-द्वार पुकार कर आत्मा के विषय मे पूछता रहता है, परन्तु सँभलकर अपने स्वरूप को प्रत्यक्ष नही देखता है ।

यदि कोई आत्मद्रष्टा उसे साक्षात्कार करा दे तो उसे आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता है ॥ ५५५ ॥

विसो विसारे, वेठो अन्भय आतमा।
दरि दरि देवाननि जाँ, पुछे पुकारे।
पेही द्रिसे न पाण खे, साबितु सम्भारे।
द्रिठो द्रेखारे, त सुखी थिए सामी चए ॥ ५५६ ॥

अज्ञान मे भ्रमित जीव अन्त स्थित आत्मा को भुला बैठा है। वह पागलो की तरह द्वार-द्वार पुकारता एव आत्मा के सबध मे पूछता रहता है, किन्तु सँभलकर, अपने भीतर पैठकर, अपने प्रत्यक्ष स्वरूप को नही देखता है। सामीजी कहते है; यदि कोई आत्मद्रष्टा उसे दिखा दे, तो वह सुखी हो जाता है ॥ ५५६ ॥

वेठो पाणु मञे, मूर्ख माया मन में।
तप तीर्थ साधन करे, भोलो कीन भञे।
सामी कीन वञे, बिना सिक स्वरूप जे ॥ ५५७ ॥

मूर्ख व्यक्ति मायावश मन मे अपने आप को ही सब कुछ समझ बैठता है। वह तप-तीर्थ एव अन्य साधन तो करता है किन्तु भ्रम को नही दूर कर पाता है। सामीजी कहते हैं यह अज्ञान-स्वरूप, प्रेम के अनुभव के बिना दूर नही हो सकता ॥ ५५७ ॥

वेठो मूढु करे, माया कया पहिंजी।
ब्रई थियनि न कहिं जूँ, नाहकु जीउ जरे।
करे द्रिसे कीन की, अविद्या पटु परे।
तद्री वर्कु वरे, जद्री सामी मिले सतिगुरू ॥ ५५८ ॥

मूर्ख मनुष्य माया एव काया को ही अपना मान बैठता है। यद्यपि ये दोनो (माया-काया) किसी की भी नही होती है, फिर भी जीव व्यर्थ ही उसमे जल रहा है। सामीजी कहते है—वह अविद्या के आवरण को हटाकर नही देखता है, परन्तु जब उसे सद्गुरु मिल जाता है, तब उसका जीवन-पृष्ठ बदल जाता है (उसके जीवन मे परिवर्तन आ जाता है) ॥ ५५८ ॥

वेदनि जा वादी, कोडे घुमनि केतिरा।
ग्राल्हाइनि ग्राल्हियू बुधी, स्याणप उस्तादी।
व्रिले कहिं गुर्मुख लधो, अन्भय सुख आदी।
जो गगन मे गादी, पाए वेठो प्रेम साँ ॥ ५५९ ॥

कितने ही वेदो के वादी भ्रमित होकर भटकते रहते हैं। वे विद्वत्ता एव बुद्धिमता की बाते सुनकर, दूसरो को सुनाते हैं, किन्तु कोई विरल-गुरमुख ही आदि आत्मसुख प्राप्त करता है तथा प्रेम से आकाश में गद्दी बनाकर बैठता है आत्मज्ञान मे लीन रहता है ॥ ५५९ ॥

वेदनि विग्राड़े, कोड़े छद्रिया केतिरा ।
पहुतो चाह चमार मे, करे गद्हु भारे ।
को आशिकु आयो घर मे, लिव सा मनु लारे ।
अख्यू उघारे, प्रत्क्षु द्रिसे पीअ खे ॥ ५६० ॥

वेदो ने कितने ही अज्ञानी जीवो को उलझाकर भ्रमित कर दिया है। वे गधे की तरह चमार-चाह (बुरी इच्छाओ) मे फँसकर, उसके बोझ को ढोते रहते हैं। कोई प्रेमी ही मन को प्रेम से परिपूर्ण कर हृदय-रूपी घर मे आता है (अपने भीतर ही आत्मा को देखता है) तथा आँखे खोलकर प्रत्यक्ष प्रियतम को देखता है ॥ ५६० ॥

वेद पढ़ी वादी, मूर्ख थिया मर्म रे ।
जाग्री जाचिन कीन को, मूड़ी मुरादी ।
लधी लख्य अलख जी, कहि आशिक आलादी ।
सदा समाधी, सामी रहनि स्वभाव मे ॥ ५६१ ॥

विचार-रहित मूर्ख मनुष्य वेदो को पढकर वादी बन गये हैं। वे जागृत होकर सच्ची पूँजी (आत्मारूपी खजाने) को नही परखते हैं किसी निराले प्रेमी ने ही अलख परमात्मा का लक्ष्य ढूंढ लिया है। अतः वह सदैव ही उन्ही भावो मे समाधिस्थ रहता है ॥ ५६१ ॥

वेद पढ़ी वादी, मूर्ख थिया मर्म रे ।
सामी द्रिखारिनि न कहिखे, मूड़ी मुरादी ।
व्रिले कहि गुर्मुख लधो, अन्भय घर आदी ।
गमी ऐ शादी, सटे सीतलु थियो ॥ ५६२ ॥

सामीजी कहते हैं—विचार-रहित मूर्ख लोग वेद पढकर वादी तो बन गये हैं, किन्तु किसी को भी सच्ची पूँजी (आत्मारूपी खजाना) नही दिखा पाये हैं। परन्तु, विरल-गुरमुख ने अन्त स्थित आदि घर ढूंढ लिया है। अत. वह सुख-दुख को भुलाकर समदर्शी तथा शीतल बन गया है ॥ ५६२ ॥

वेद पढी वादी, मूर्ख थिया मर्म रे।
सामी सम्भारिनि कीन की, मूड़ी मुरादी।
पर्चो रहे पीअ साँ, माइलु मुतादी।
अन्भय आबादी, सुन्ह ड्रिठी सुञमें ॥ ५६३ ॥

सामीजी कहते है विचार-रहित मूर्ख लोग वेद पढ़कर वादी तो बन गये है, परन्तु वे सच्ची पूंजी (आत्म-खज़ाने) की रक्षा नही करते हैं। किन्तु, जो परमात्मा से मिलकर उसके साथ तद्रूप हो गये है, वे आत्मतुष्ट होकर, अपनी अन्तर्दृष्टि से, सुनसान जगह को भी आबाद समझते हैं अर्थात् सर्वत्र परमात्मा के दर्शन होने के कारण उन्हे कही भी अकेलापन अनुभव नही होता है ॥ ५६३ ॥

वेद पुराण पढी, मैलु न मिटी मन जी।
तीर्थ तप साधन करे, ड्रिठो गुफा मझि वड़ी।
समुझ रे सामी चए, उल्टी मैलु चढ़ी।
भञी भर्म भडी, मिली महद जनन साँ ॥ ५६४ ॥

सामाजी कहते हैं विचार-रहित होकर वेद-पुराण पढने से तप-तीर्थ एव साधना करने से तथा ससार से मुख मोडकर गुफा मे रहने से मन की मैल मिटती तो नही है, बल्कि और भी बढ जाती है, किन्तु सन्त पुरुषो का संग करने से भ्रमरूपी गठरी चूर-चूर (नष्ट) हो जाती है ॥ ५६४ ॥

सभखे ठग्रिनि ठग, पज पहिंजा प्रीतम बणी।
सामी समुझनि कीन की, अन्धा जीअ अलग।
रहनि अलेपु आकास जाँ, के साधू सर्वग्य।
जिनिखे टोपी पग, नजरि अचे राम रे ॥ ५६५ ॥

सामीजी कहते हैं पाँच धूर्त (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार) सबके प्रीतम बनकर उन्हे ठगते रहते है, पर अन्धे जीव उनकी धूर्तता को न समझने के कारण उनसे अलग नही होते है, किन्तु वे सर्वज्ञ साधु, जिन्हे राम के सिवा ऊँच-नीच कुछ भी दिखायी नही देता है, आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते है ॥ ५६५ ॥

सभु जगु मन रचो, कल्पत जे कलंक साँ।
मछ वेठो पाण में, अणहून्दो मर्मु सचो।
पाए नोड़ु ग्रिचीअ मे, रात्या ड्रीह नचो।
बला खों बचो, जड्री सामी मिल्यो स्वरूप साँ ॥ ५६६ ॥

मन ने माया के प्रभाव से अपना सारा ससार रच डाला है। अत: जीव हृदय मे झूठे भ्रम को सत्य मान बैठा है। वह गले मे प्रपचरूपी रस्सी बाँधकर दिन-रात नाचता रहता है। सामीजी कहते है वह माया रूपी नागिन से तभी मुक्त हो पाता है, जब वह परमात्मा के स्वरूप मे तद्रूप हो जाता है ॥ ५६६ ॥

स्वप्न जो सन्सारु, मूर्ख ज्ञाणनि सति सभु।
काया माया कुल सॉ, पर्चो कनि प्यारु।
सामी ड्रिसनि न सम थी, साक्षी स्रजणहारु।
नाहकु थियनि ख्वोआरु, था भुली पाण भर्म मे ॥ ५६७ ॥

मूर्ख लोग स्वप्नवत् ससार को बिल्कुल सत्य मान बैठे है। वे सन्तुष्ट होकर काया-माया एव कुल से प्रेम करते हैं। सामीजी कहते है वे सम होकर साक्षात् जगत्कर्ता को नही देखते हैं तथा व्यर्थ ही भ्रमो मे भ्रमित होकर नष्ट होते रहते है ॥ ५६७ ॥

सामी कनि सलाह, कूडा मिडी केतिरा।
लहनि न अशिक अभेदरे, रामनगर जी राह।
वञी पेई पाण ते, कहिं नेहीअ जी निगाह।
मेटे चिन्ता चाह, चढी वेठो चौड्रोल मे ॥ ५६८ ॥

सामीजी कहते हैं कितने ही झूठे इकट्ठे होकर आपस मे सलाह (परमात्मा को पाने लिए आपस मे वाद-विवाद) करते रहते हैं, किन्तु अभेद प्रेम के अभाव मे राम-नगर (आत्म ज्ञान) की राह नही ढूंढ पाते हैं। परन्तु जिस प्रेमी की दृष्टि अपने आप (स्वरूप) पर जा पडी, वह चिन्ता एवं इच्छा मिटाकर आत्मानन्द मे मस्त होकर बैठा है ॥ ५६८ ॥

सामी कल्पति कालु, मूर्ख मञ्यो पाणही।
न कहिं मेड मिनथ कई, न कहिं जोर जवालु।
भुली सार स्वरूप खो, दरि दरि करे सोआलु।
सदा रहे वेहालु, जाग्री ड्रिसे न पाण खे ॥ ५६९ ॥

सामीजी कहते है—मूर्ख कल्पित काल को स्वय ही सत्य मान बैठा है। उसे काल को सत्य मानने के लिए न तो किसी ने अनुनय-विनय की है और न किसी ने जोर-जबर्दस्ती की है, अज्ञान के ही कारण वह झूठे काल को सत्य मान बैठा है। वह स्वरूप-तत्व को भूलकर द्वार-द्वार (हाथ) फैलाता रहता है। यद्यपि वह सदैव ही बेचैन रहता है, फिर भी जागृत होकर अपने आप (स्वरूप) को नही देखता है ॥ ५६९ ॥

सामी सभि दुखी, मूर्ख रहनि मति रे।
चाल चलनि अज्ञान जी, बिना रस रुखी।
मिली थियो महबूब साँ, को साधूजनु सुखी।
गहरी गुरमुखी, मुखि रखी मौजा करे ॥ ५७० ॥

सामीजी कहते हैं समस्त ज्ञानहीन मूर्ख लोग दुखी रहते है। वे ज्ञान-रूपी रस से रहित शुष्क अज्ञान की चाल चलते है (ज्ञान के अभाव मे अज्ञानपूर्ण व्यवहार करते है)। कोई गहन गुरमुख साधु जन ही प्रियतम से मिलकर सुखी हुआ है तथा उसकी ओर ही मुख कर मौज मनाता रहता है ॥ ५७० ॥

हर हर हथ हणनि, मूर्ख मन खेन्हूअ खे।
उथारे अविद्या जे, भंवण मझि भवनि।
समुझी के जन सूर्मा, सामी सुखि सुम्हनि।
जागी डिठो जिनि, पहिंजे अख्ये पाण खे ॥ ५७१ ॥

मूर्ख मनरूपी गेद को बार-बार हाथ लगाते रहते है (जिस प्रकार गेद को हाथ लगाने से वह नीचे-ऊपर होता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव अपने मनरूपी गेद को अस्थिर बनाते है)। वे अविद्या को अपना कर, भ्रमो मे भटकते रहते है। सामीजी कहते है—किन्तु, कुछ शूरवीर (ज्ञानी), जिन्होने जागृत होकर अपनी आँखो से अपने स्वरूप को देख लिया है, वे सुखी होकर सोते है (आत्मानन्द मे बेसुध रहते है) ॥ ५७१ ॥

हर हर हथ हणे, मूर्खु मन खेन्हूअ खे।
भुली लोक परलोक जूँ, ग्गाल्हियू नितु ग्गणे।
ड्रावर ज्यॉ पाण खे, ताणे मझि तणे।
जाग्गी हथु खणे, त सुखी थिए सामीचए ॥ ५७२ ॥

मूर्ख बार-बार मन-रूपी गेद को हाथ लगाता रहता है (मन को विचलित करता रहता है)। वह भ्रमित होकर सदैव लोक एव परलोक की बाते करता रहता है तथा मकडी की तरह अपने ही बनाये हुए जाल मे अपने आपको उलझा देता है। सामीजी कहते है—यदि वह जागृत होकर मन-रूपी गेद से हाथ उठा ले (मन को स्थिर कर दे), तो सुखी हो जाए ॥ ५७२ ॥

हून्दे धन खोआरु, मूर्ख थियनि मर्म रे।
पटे ड्रिसनि न प्रेम साँ, सामी दस्वो द्वारा।
जहिंमे अखुट भण्डारु, रहे सदाई सहज जो ॥ ५७३ ॥

सामीजी कहते है मूर्ख ज्ञानहीन होकर आत्मरूपी खजाने के होते हुए भी मानव जीवन को बदनाम करते रहते है। वे प्रेम से दसवां द्वार, जिसमे सदैव ही अक्षय सहजानन्द का भण्डार भरा हुआ है, खोलकर नही देखते हैं ॥ ५७३ ॥

तृष्णा जीअ अनेक, विधा वाच वहण मे।
टुब्यूँ खाइनि नर्क जूँ, विना वैराग्य विवेक।
सामी समझू सूर्मो, करे अन्भय विवेक।
हृदय रखी टेक, माणे मौज मुक्ति जी ॥ ५७४ ॥

तृष्णा (सासारिक सुख भोग की इच्छा) ने अनेक जीवो को अज्ञान के तेज तूफानी प्रवाह मे धकेल दिया है। वे वैराग्य तथा विवेक के अभाव मे नरक मे गोते खा रहे हैं (नारकीय दु ख भोग रहे हैं)। सामीजी कहते है किन्तु बुद्धिमान शूरवीर आत्मज्ञान की चर्चा के सिवा कुछ नही करते हैं तथा हृदय मे दृढ विश्वास धारण कर मुक्ति का आनद लूटते हैं ॥ ५७४ ॥

दु.खी करे द्रोटी, माया मोहे सभ खे।
कहिं खे छदे कीनकी, खलि खलि रे खोटी।
सामी हयसि सम जी, कहिं साधूजन सोटी।
मुंहुं मोड़े मोटी, तके न तहिं तदरूप खे ॥ ५७५ ॥

माया सबको आकर्षित कर दु.खी बना देती है। यह कपटिनी किसी को भी नही छोडती। सामीजी कहते है किन्तु, जिस साधु ने इसे समता का डडा लगाया है, उस एकाग्रचित वाले से यह मुख मोड लेती है और कभी भी उसकी ओर नही देखती है ॥ ५७५ ॥

नाना निहारे, मूर्खु मन जे भाइ थो।
चई हिकु जबान सॉं, सभखे द्रेखारे।
घरु पहिंजो न द्रिसे, सामी सम्भारे।
हफत थो हारे, हीरो जन्मु हयनि मो ॥ ५७६ ॥

यद्यपि मूर्ख मनुष्य मुख से सबको कहकर दिखाता है कि परमात्मा एक है, परन्तु मन के वश होकर वह नाना प्रकार के देवताओ की ओर देखता है। सामीजी कहते है—वह सँभलकर हृदय-रूपी घर मे झाँककर नही देखता है और व्यर्थ ही हीरे के समान अमूल्य जीवन को अपने ही हाथो से गँवाता है ॥ ५७६ ॥

पण्डतु पुकारे, वेद बुधाए विधि सॉं।
साखा डेई समुझ जूँ, सभ जो मनु ठारे।
रखी चाह अन्दर मे, पाणु न सम्भारे।
वेठो सो हारे, हीरो जन्मु हथनि मो ॥ ५७७ ॥

अज्ञानी जीव अपने को पण्डित कहलाकर, सबको विधिपूर्वक वेद सुनाता है। वह ज्ञानपूर्ण साक्षियाँ (अच्छे दृष्टान्त) देकर सबके मनको शीतल करता है, किन्तु स्वय हृदय मे अनेक इच्छाएँ लिये रहता है तथा सचेत नही होता है। इस प्रकार हीरे के समान अमूल्य मानव-जीवन को अपने ही हाथो से गँवाता है ॥ ५७७ ॥

बिना ज्ञाति ज्ञानु, कूडा कथिनि केतिरा।
ग़ाल्हियू वेदनि जूँ बुधी, कनि अन्दर मे उन्मानु।
डिसनि कीन अख्युनि रे, अन्धा अन्भय भानु।
सदा रहनि ग़ल्तानु, सामी माया मोह में ॥ ५७८ ॥

कितने ही झूठे लोग ज्ञान का अनुभव किये बिना बकवास करते रहते हैं। वे वेदो की बाते सुनकर ही भीतर (हृदय में) अनेक अनुमान लगाते रहते है। सामीजी कहते हैं—वे अन्धे अन्तर्दृष्टि के अभाव मे आत्मा-रूपी सूर्य को नही देख पाते है। अत: नित्य ही मोह-माया मे डूबे रहते है ॥ ५७८ ॥

बिना ज्ञाति ज्ञान, कूडी कथ कल्पत जी।
जीए सुबो स्वप्न मे, सामी थे सुल्तानु।
अणहून्दो अभिमानु, जाग़ये रहे न जीअ मे ॥ ५७९ ॥

ज्ञान की जानकारी के सिवा प्रपच की समस्त बाते उसी प्रकार झूठी है, जिस प्रकार कृपण का सपने मे राजा बनना झूठा है, पर जागृत होने पर यह मिथ्या अभिमान हृदय मे नही रहता है ॥ ५७९ ॥

बिना ज्ञान गवस, जतनु कनि था जोग़जो।
पुछनि न पेराठ्युनि खो, डेह अगम जो डसु।
जिते डीहु न राति को, नको सूर्य ससु।
सुत्ह अन्भय रसु, वॉभण ब्याईअ रे वसे ॥ ५८० ॥

अज्ञानी जीव बिना ज्ञान-विचार के योग-साधन करते रहते है। वे सन्तो से अगम देश का पता-ठिकाना नही पूछते है। सामीजी कहते है

इस (अगम) देश मे न रात होती है, न दिन, न सूर्य है, न चन्द्रमा, किन्तु केवल द्वैत-रहित आत्मसुख का निवास है ॥ ५८० ॥

विना वेसाह विसा, भुली पिया भर्म मे ।
पुठी डेई पाणखे, कूडा कनि किस्सा ।
उल्टी डिसे को अन्भई, वेहद जी वर्षा ।
सामी सभि दसा, भरे जहि भर्पूरि कई ॥ ५८१ ॥

विश्वास के अभाव मे अज्ञान मे खोये हुए जीव भ्रमित होकर भ्रम मे पड़ गये है । वे अपने स्वरूप से मुख मोडकर, झूठे किस्से कहते रहते हैं । सामीजी कहते है—कोई अन्तर्मुखी ही (ससार से) विरक्त होकर, समस्त दिशाओ को (आत्मानद से) परिपूर्ण कर देनेवाली अनन्त वर्षा को देखता है ॥ ५८१ ॥

विना वेसाह विसे, पुठी डिनी पाण खे ।
तहिं खे डिसे कीन की, जहिंसाँ डेहु डिसे ।
अस्ताचल अउले जाँ, को प्रेमी पर्से ।
सामी सन्त हिस्रो, आया जहिंजे अन्भई ॥ ५८२ ॥

विश्वास के अभाव मे अज्ञान मे खोये हुए जीव ने अपने स्वरूप को पीठ दी है (मुख मोड लिया है) । जिस (आत्मा) से वह (जीव) सारा ससार देखता है, उसे ही वह स्वय नही देख पाता है । सामीजी कहते है किन्तु वह प्रेमी, अस्ताचल की परछाईं की भाँति उसे देख सकता है, जिसके भाग्य मे आत्मज्ञानी सन्तो का सग है । (जिस प्रकार सूर्य की परछाईं अस्ताचल पर्वत पर साक्षात् दिखायी देती है उसी प्रकार उसे (प्रेमी को) भी परमात्मा का स्वरूप साक्षात् दिखायी देता है ॥ ५८२ ॥

वेहदि भुख भछी, माया मूर्खनि खे
सामी सधनि कीन की, भरे पेट पछी
खाए सम सतोष जो, को साधू सतरछी
अन्भय लख्य अछी जहिखे डिनी सतिगुरूअ ॥ ५८३ ॥

सामीजी कहते हैं—माया ने मूर्खो की अनंत (विषय-वासना-रूपी) भूख को प्रज्वलित कर दिया है । वे पिण्ड न छोडने वाली (माया) द्वारा उकसायी भूख को तृप्त नही कर सकते है । वही विरल साधु ही समता और सतोष के व्यजन-पकवान खाता है, जिसे सद्गुरु ने आत्मज्ञान की दृष्टि दी है ॥ ५८३ ॥

भग्रिवतु भुलाए, मूर्ख मुठा केतिरा ।
भवनि भौसागर मे, कोट जन्म पाए ।
सामी बचियो को सूर्मो, साधुअ जे साए ।
ममत्व मिटाए, इस्थति थियो आकास जाँ ॥ ५८४ ॥

कितने ही मूर्ख भगवत-नाम भूलकर नष्ट हो गये है। वे करोड़ों जन्म प्राप्त कर ससार सागर मे भटकते हैं। सामीजी कहते है—कोई विरल शूरवीर ही साधुओ की कृपा से (अज्ञान से) बच सका है तथा ममत्व मिटाकर आकाश की भाँति स्थित हुआ है ॥ ५८४ ॥

भुलनि खो भर्मु, मिटे कीन मरण जो ।
मभे वेठा पाण खे, रतु पुइ हद्रा चमु ।
को नेही निर्भय रहे, सामी सम सूक्षमु ।
जहि खे खातरि जमु, कई समुझाणी सतिगुरूअ ॥ ५८५ ॥

सामीजी कहते हैं कि अज्ञान मे भ्रमित जीव अपने को रक्त, मास, हड्डियाँ तथा त्वचा ही मान बैठे है। अत उनका मृत्यु का भ्रम मिटता ही नही हैं (मृत्यु का भय बना रहता है)। किन्तु प्रेमी, जिसे सद्गुरु ने मृत्यु के विषय मे सब कुछ समझा दिया है, वह (आत्मा की) समता तथा सूक्ष्मता को समझकर निडर रहता है ॥ ५८५ ॥

[माना जाता है कि आत्मा न मरता है, न जन्मता है, केवल शरीर ही जन्मता रहता है तथा मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। अतः इस रहस्य को समझनेवाला, अज्ञानी जीवो की तरह मृत्यु से न डरकर, निडर बना, रहता है।]

भुली धार्नि भेष, मूर्ख भेष असुल खो ।
उल्टी दिसनि कीन की, अन्दरि पुरुषु अलेख ।
जो सिधि करे थो सभखे, सुत्ह साक्षी सेपु ।
ज्ञाणिजि मीनु न मेषु, सप्त साँ सामी चए ॥ ५८६ ॥

सामीजी दृढता से कहते हैं कि इस बात मे जरा भी सदेह तथा झूठ नही है कि मूर्ख अपते मौलिक (आत्मिक) स्वरूप को भूलकर झूठे वेश धारण करते रहते है। वे अन्तर्मुखी होकर अपने भीतर उस अलख पुरुष को तथा साक्षात् आत्मिक सत्ता एव ईश्वर को, जो सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करता है, नही देखते है ॥ ५८६ ॥

भुली धारनि भेषु, मूर्ख भेष असुल खे ।
जागी डि्सनि कीन की, अन्दरि पुरुषु अलेख ।
जहि मे मीनु न मेषु, सामी आदि जुगादि जो ॥ ५८७ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख अपने मौलिक (आत्मिक) स्वरूप को भूल कर झूठे वेश धारण करते रहते हैं। वे जागृत होकर अपने भीतर उस अलख पुरुष को, जो युग के आदि से लेकर है तथा जिसके (अस्तित्व में) किसी-प्रकार का सदेह व शक नही है, उसे नही देखते हैं ॥ ५८७ ॥

भुली पाण भिटे, थो मूर्खु चुहुरीअ चाह साँ ।
घटि वधि ज्ञाणी पाण खे, रात्यूँ-डीह पिटे ।
तडी छोति मिटे, जडी सामी मिले स्वरूप साँ ॥ ५८८ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख बुरी इच्छाओ के वशीभूत होकर अपने (स्वरूप) को भूलकर भटकता रहता है। वह अपने आप को कम व ज्यादा जानकर दुखी होता रहता है; (वास्तव मे आत्मा न घटता है, न बढता है, पर शरीर घटता-बढता रहता है। अज्ञानी जीव अपने को शरीर मानकर उसके घटने व बढ़ने पर दुखी होता रहता है)। किन्तु जब वह स्वरूप से मिल जाता है, तब उसका यह भ्रम मिट जाता है ॥ ५८८ ॥

भुली भजनि चटू, भवनि भौसागर मे ।
खणी नितु खपित जो, सामी साणु टटू ।
खेप खटी घरि आयो, को प्रेमी पिण्ड सटू ।
लोई शाल पटु, ज्ञाणनि अन्भय उन जो ॥ ५८९ ॥

सामीजी कहते है कि अज्ञानी जीव भ्रम-वश सदैव ही प्रपच-रूपी चट्टाने तोड़कर, (उसे) शरीर-रूपी टट्टू पर रखकर भव-सागर मे भटकते रहते है, किन्तु प्रेमी, प्रपच-रूपी पिण्ड को फेककर, आत्मज्ञान प्राप्त कर अपने (हृदय-रूपी) घर मे पहुँच जाते है; अतएव वे कम्बल, शाल तथा रेशम सबको आत्मिक पशम (wool) ही जानते हैं (अर्थात् सबमें एक ही आत्मा देखते है) ॥ ५८९ ॥

भूतु लगो भारी, अणहून्दो अन्धनि खे ।
देही ज्ञाणी पाण खे, नचे नरु नारी ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को व्रिले वीचारी ।
सटे पिण्ड सारी, सामी मिल्यो स्वरूप साँ ॥ ५९० ॥

अन्धो को महा अज्ञान-रूपी भूत लग गया है । अत नर तथा नारी अपने को शरीर मानकर नाचते रहते है । सामीजी कहते है कोई विरल विचारवान् आकाश की भाँति निर्लिप्त रह पाया है तथा (अज्ञान के) पिण्ड को पटककर स्वरूप से जा मिला है ।। ५९० ।।

भूतु लग़ो भारी, सभ खे भेद भर्म जो ।
पाए भवनि पाणही, ग़िचीअ मे ग़ारो ।
सामी रहे को सूर्मो नभ जाँ न्यारो ।
जाग़ी जग़ु सारो, लइ डि़ठो जहिं लख्य मे ।। ५९१ ।।

सामीजी कहते है कि सब (जीवो) को भेद तथा भ्रम-रूपी भूत लग गया है । अत वे गले मे अज्ञान-रूपी रस्सी बाँधकर स्वय ही भटक रहे हैं; किन्तु जिस शूरवीर ने जागृत होकर ज्ञान प्राप्त कर सारे ससार को परमात्मा मे लय देखा है, वह आकाश की भाँति निराला (निर्लिप्त) रहता है ।। ५९१ ।।

महा छलु प्रबलु, माया महबूबनि जी ।
विधो जहिं जहान मे, नाना भाइ खललु ।
सामी चढ़ियो सभ खे, अणहून्दो मलु ।
पहिंजो पाण पटलु, डेई वेठो पाण खे ।। ५९२ ।।

सामीजी कहते है परमात्मा की माया अत्यन्त ही छल-प्रबल है । इस माया ने ससार मे नाना प्रकार के खलल मचा दिये हैं । सब पर झूठा (माया का) मैल चढ गया है, अत वे स्वय ही अपने सच्चे स्वरूप को अज्ञान-रूपी पर्दा देकर बैठे हैं ।। ५९२ ।।

मूढ डि़यनि आङुरि, था पहिंजे गोईअ पाण खे ।
अटलु राज़ु छडे करे, भीख कनि दरि-दरि ।
मिली साध सगत सॉं, तू सामी सही करि ।
बिना भजन हरि, मुठा जीअ मनन मे ।। ५९३ ।।

मूढ जीव स्वय ही अपनी (आँखो मे) ऊँगली डालकर अपने आप को धोखा देते रहते है । वे अटल राज्य (शाश्वत् आत्म-सुख) छोडकर द्वार-द्वार भीख माँगते फिरते है । सामीजी उपदेश देते हुए कहते है (ऐ मानव !) तू साधुओ का सग कर उसे (परमात्मा को) पहचान, क्योकि हरि के भजन के सिवा जीव मन के सकल्प-विकल्प मे ही नष्ट हो जाते है ।। ५९३ ।।

मूर्ख मन मती, वादि कनि वेदान्त जी ।
जीए खाए खाव दु खनि जा, स्वप्न मंझि सती ।
कोर्युनि मों कंहिं हिकिड़े, समुझी रमिज रती ।
प्रत्क्षु प्राण पती, सामी डि्ठी सम थियो ॥ ५९४ ॥

मूर्ख लोग अपने मन के अनुसार वेदान्त की चर्चा करते है। वे सती-नारी की तरह सपने मे दु.ख देखकर दु खी होते हैं। (सती-नारी का व्यवहार शुद्ध एव पवित्र होता है, पर फिर भी कभी-कभी बुरे सपने देखकर वह भयभीत हो जाती है, उसी प्रकार मानव, जो वास्तव मे आत्मा है, पर अज्ञान के कारण स्वप्नवत् ससार के दु.खो से दुखी हो जाते हैं।) सामीजी कहते हैं करोड़ो मे से किसी एक ने ही यह युक्ति समझी है, अतः वह प्राणपति (परमात्मा) को प्रत्यक्ष देखकर उसमे समा गया है (उसके साथ एक हो गया है) ॥ ५९४ ॥

मूर्ख है है कनि, माया कारण मन में ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, नाना दु.ख सहनि ।
कालु पहिंजे कध ते, अन्धा कीन डि्सनि ।
सामी हल्या वञनि, रोअन्दा रतु अख्युनि मों ॥ ५९५ ॥

मूर्ख मानव माया के कारण हाय-हाय करते है। वे ससार को सत्य मानकर नाना प्रकार के दुख भोगते रहते हैं। सामीजी कहते हैं वे अन्धे (अज्ञानी) अपने कन्धे पर सवार मृत्यु को भी नहीं देखते हैं, अत. अन्त मे आँखो से खून के आँसू बहाकर इस (असार ससार) से चले जाते है ॥ ५९५ ॥

मूर्खु कीन हटे, कूड कपट प्रपच खो ।
मानुष्य देहि अमोल खे, थो सागर मझि सटे ।
थूहरु लाए घर मे, थो सामी अम्ब पटे ।
मोत्युनि साणु मटे, वठे कचु कडूर जो ॥ ५९६ ॥

मूर्ख जीव झूठ कपट तथा प्रपच से (दूर) नहीं हटता है। वह अमूल्य मानव शरीर को (प्रपच-युक्त ससार-रूपी) सागर मे धकेल देता है। सामीजी कहते हैं वह मूर्ख (आत्मज्ञान-रूपी) आम के वृक्ष को उखाड़ कर (अज्ञान-रूपी) थूहर को (हृदय-रूपी) घर मे ले आता है तथा मोतियो के बदले में काँच के टुकडे लेता है ॥ ५९६ ॥

मूर्खु चौरासी, भुली वञे थो पाणही।
नको जमगणु धर्म गणु, नको फन्दु फासी।
ड्रिसी इन्हीअ ग्राल्हि खे, अचे मनि हासी।
सामी अविनासी, नासु मने थो निन्ड्र मे ॥ ५९७ ॥

मूर्ख व्यक्ति स्वय ही भ्रमित होकर चौरासी के चक्कर मे पड जाता है। वास्तव मे न तो यम के गण है, न धर्म के, और न ही किसी प्रकार का फन्द व फॉसी है (अर्थात् माया बिलकुल अस्तित्वहीन है)। सामीजी कहते है कि अविनाशी आत्मा (माया-रूपी) नीद मे पडकर अपने आप को नश्वर समझ बैठी है, इस बात पर हँसी आ रही है ॥ ५९७ ॥

मूर्खु थो मारे, पहिंजे हथे पाण खे।
लग्री माया मोह जे, कूड़े लिव लाड़े।
ड्रिसे न सार स्वरूप खे, सामी सम्भारे।
गपणि मँझि गारे, थो हीरा लाल अणमुल्हा ॥ ५९८ ॥

मूर्ख मनुष्य मोह-माया से झूठा प्रेमकर अपने ही हाथो अपना हनन करता है। सामीजी कहते हैं वह जागृत होकर सार-युक्त (आत्म-) स्वरूप को नही देखता है, बल्कि (माया-रूपी) दलदल मे अपने अमूल्य (श्वास-रूपी) हीरे व लाल डालता है (अर्थात् अमूल्य जीवन व्यर्थ ही नष्ट करता है) ॥ ५९८ ॥

मूर्खु पियो पाए, भाकुर पाण भर्म खे।
अविद्या सन्दे सीर मे, गोता नितु खाए।
पना नितु प्रतीति रे, वेठो वाझाए।
जड्री छुटो छद्राए, त सुखी थिए सामी चए ॥ ५९९ ॥

मूर्ख जीव स्वय ही भ्रम का आलिगन करता है (स्वय ही भ्रमित होता रहता है)। वह अविद्या-रूपी वीच समुद्र मे सदैव ही गोते खाता रहता है तथा विश्वास-रहित केवल (धार्मिक ग्रन्थो के) पन्ने उलटता रहता है। सामीजी कहते है कि वह सुखी तब होगा, जब (अज्ञान से) मुक्त व्यक्ति उसे इस (झूठे प्रपच) से मुक्त करेगा ॥ ५९९ ॥

मूर्खु पाण मरे, थो खोहे मानुष्य देहि खे।
मिले कीन महबूब साँ, सची सिक करे।
कालु तुंहिंजे कन्ध ते, बीठो ब्राणु भरे।
पौदे पोइ परे, सिज लथे सामी चए ॥ ६०० ॥

मूर्ख मनुष्य (अज्ञान-वश) अपने मानव शरीर को खोकर अपना ही हनन करता है। वह सच्चे प्रेम से (परमात्मा-रूपी) प्रियतम से नही मिलता है। सामीजी उसे उपदेश देते कहते हैं कि मृत्यु तुम्हारे सिर पर बाण तानकर खडी है, अत (जीवन-रूपी) सूर्य के अस्त होते ही तू (मोक्ष से) बहुत ही दूर चला जायगा। (क्योकि माना जाता है कि मानव-शरीर मे ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, पर अन्य योनियो मे मोक्ष प्राप्त करना संभव नही, इस कारण अमूल्य मानव-शरीर को नष्ट करने से मनुष्य मोक्ष से भी हाथ धो बैठता है) ॥ ६०० ॥

मूर्खु विञाए, थो हीरो जन्मु हथनि मो।
मिली साध सगति सॉ, लेखे न लाए।
ड्रॉवर ज्यॉ पाण खे, फन्द रे फासाए।
मूहु मढीअ पाए, सामी ड्रिसे कीन की ॥ ६०१ ॥

सामीजी कहते हैं मूर्ख व्यक्ति हीरे के समान अमूल्य मानव शरीर प्राप्त कर, उसे अपने ही हाथो से गँवाता है। वह साधुओ का सग कर (आत्म-संबधी बातो पर) सोच-विचार नही करता है, बल्कि मकडी की तरह (माया-रूपी) फन्द-रहित फाँसी मे अपने आप को फँसाता है और अपने भीतर कदापि झाँककर नही देखता है ॥ ६०१ ॥

मूर्खु विपु खाए, थो आत्म अमृत खे छद्दे।
हीरा लाल अण मुल्हा, थो रोले विञाए।
सामी ड्रिसे कीन की, मूहुं मढीअ पाए।
हठु कयो हाराए, थो मानुष्य देहि अमोल खे ॥ ६०२ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख (अज्ञानी जीव) आत्मा-रूपी अमृत का परित्याग कर (माया-रूपी) विप का सेवन करता है। वह अपने अमूल्य (श्वास-रूपी) हीरे व माणिक (माया के पीछे) भटक-भटक-कर गँवाता है, परन्तु अपने ही भीतर झाँककर नही देखता है। इस तरह वह हठ-वश अपने अमूल्य मानव-शरीर से हाथ धो बैठता है ॥ ६०२ ॥

मूर्खु सो आहे, जो सचु सुञाणे कीन की।
पाणु पंहिजो पाण मों, वेठो विञाए।
समुझ रे सामी चए, धिका नितु खाए।
झाती कीन पाए, धिरी पंहिजे घर मे ॥ ६०३ ॥

सामीजी कहते है कि जो मनुष्य सत्य को नही पहचानता है, वह मूर्ख

है, अत. वह अपने (आत्मा-रूपी) सच्चे स्वरूप को अपने ही पास होते हुए भी गँवा बैठता है। बुद्धिहीन होने के कारण वह सदैव ही धक्के खाता रहता है, पर अपने (हृदय-रूपी) घर मे प्रवेश कर झाँकता नही है ॥६०३॥

अन्भय बिना अपार, वेद पढ़ी वादी थिया।
जेकी चवनि मूँहँ साँ, कनि कीन की पाण।
कयो त्यागु तनीजो, हर्जन मञे हार।
ब्राभणु ज्ञाणी ब्रार, तुर्या मे तद्रूप थियो ॥ ६०४ ॥

सामीजी कहते है -अनेक (जीव) अन्तर्ज्ञान के सिवा केवल वेद पढ कर विवादी बन गये हैं। वे जो कुछ मुख से कहते है, वह करते नही हैं (उनकी कथनी और करनी मे अन्तर होता है)। किन्तु हरि का भक्त समस्त (प्रपच) पानी की तरह (तत्वहीन) जानकर अपनी हार स्वीकार कर (प्रपच का) त्यागकर चेतन मे तद्रूप हो जाता है ॥ ६०४ ॥

इच्छा कया अधीनु, सामी जीअ जहान जा।
भवनि भौसागर में, सदा मति मलीनु।
पर्चा रहनि पीअ साँ, के प्रेमी प्रब्रीनु।
जीए जल खो मीनु, पलक पराहूँ न थिए ॥ ६०५ ॥

सामीजी कहते है कि इच्छा ने ससार के जीवो को अपने आधीन कर दिया है, अत वे मलीन बुद्धिवाले (अज्ञानी लोग) सदैव ही भव-सागर मे भटकते रहते है, परन्तु विरल प्रवीण प्रेमी प्रियतम से उसी प्रकार जुडे रहते है, जिस प्रकार मीन एक क्षण भी पानी से अलग नही होती है ॥ ६०५ ॥

खपति मझि खपे, थो सारो जगु समुझ रे।
अजपा जापु जबान रे, को जोगेस्वरु जपे।
कटी जंहि गुरु ग्याति साँ, कल्पत सभ कपे।
सामी कीन तपे, ट्रिनि तापनि जे ताप मे ॥ ६०६ ॥

सामीजी कहते है कि सारा ससार (अज्ञान-वश) बुद्धिहीन होकर प्रपच मे नष्ट होता है। केवल वह विरल योगीश्वर, मुख से नही, बल्कि हृदय से (परमात्मा का) जाप करता है, जिसने गुरु के दिये ज्ञानानुसार समस्त मायावी प्रपच को काट लिया है। परिणामस्वरूप वह तीन प्रकार के तापो (आधि, व्याधि तथा उपाधि) मे नही तपता है ॥ ६०६ ॥

खुदीअ मझि खरावु, मूर्ख लोक अपार थिया ।
मञे वेठा सति सभु, जग्गत जो इस्बावु ।
अचयो काल कहार जो, सामी झलिनि न दावु ।
हर हर ड्रियनि हिसावु, समुझ वराए सखिणा ॥ ६०७ ॥

सामीजी कहते है कि अह मे ससार के अनेक मूर्ख मनुष्य नष्ट हो गये है । वे विश्व की समस्त वस्तुओ को सत्य मान बैठे है, परन्तु कठोर मृत्यु के दबाव के आगे ज़रा भी ठहर नही सकते है, अत. वे ज्ञान-हीन खोखले मनुष्य बार-बार (कर्मो का) हिसाव देते रहते है ॥ ६०७ ॥

खुदीअ मझि खुआरु, थिया भेप गृहस्ती लोक सभि ।
मने वेठा मन मे, विधि निषेध वहिवारु ।
जाग्गी ड्रिसनि कीन की, साक्षी सृजणहारु ।
सामी पाइनि छारु, था समुझ वराए सखिणा ॥ ६०८ ॥

सामीजी कहते हैं कि अह (की भावना) से गृहस्थी तथा अन्य वेशधारी जीव बदनाम हो गये है । वे विधि-निपेध-व्यवहार को ही हृदय मे (सत्य) मान बैठे है । वे ज्ञान-रहित खोखले लोग अपनी (आँखो मे) धूल झोकते रहते है (अपने आप को धोखा देते रहते है), परन्तु जागृत होकर साक्षात् सृजनहार को नही देखते हैं ॥ ६०८ ॥

खेतीअ मझि खसमु, अन्धा ड्रिसनि कीन की ।
भवनि भर्म मति रे, पूर्वु ए पश्चिमु ।
सामी लधो कहि साध सगि, सुजाग्ग सुगमु ।
मेटे भेदु भर्मु, इस्थति थिए आनद मे ॥ ६०९ ॥

सामीजी कहते है कि अन्धे (अज्ञानी जीव) अपने (हृदय-रूपी) खेत मे अपना भतार (परमात्मा) नही देखते है । वे भ्रमित एव ज्ञानहीन उसे (परमात्मा-रूपी पति को) पूर्व तथा पश्चिम मे (ढूँढने के लिए) भटकते रहते हैं; किन्तु जागृत व्यक्ति ने साधुओ के सग से उसे सुगमता से ढूँढ लिया है तथा भेद व भ्रम मिटाकर आनन्दावस्था मे स्थित हो गया है ॥ ६०९ ॥

गैरत मझि गर्कु, रहनि जीअ जहान जा ।
पूज्रिनि पीर फकीर खे, रखी फेरु फर्कु ।
आणिक चढिया अछ ते, लिवं साँ व्रधी लकु ।
अन्दरि ब्राहरि हिकु, सामी ड्रिसनि सुप्री ॥ ६१० ॥

सामीजी कहते है कि ससार के जीव मायावी प्रपच मे डूबे रहते है। वे द्वैत-भाव रखकर (आत्मा व परमात्मा मे भेद समझकर) पीर एव फकीरो को पूजते रहते हैं, किन्तु प्रेमी प्रेम से रास्ता बनाकर, ज्ञान-मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं तथा भीतर व बाहर एक ही प्रियतम को देखते हैं ॥ ६१० ॥

घर मे कीन अचे, मूर्खु साध सगति रे।
अविद्या नोरु ग्रिचीअ मे, पाए नितु नचे।
सहस्रनि मो सामी चए, को विरलो रंगि रचे।
जहि खे गुर सचे, बेध्यो बाणु हणी करे ॥ ६११ ॥

मूर्ख (अज्ञानी) साधु-सगत के सिवा (आत्मा-रूपी) घर मे प्रवेश नही करता है। वह अविद्या-रूपी रस्सी गले मे बाँधकर सदैव ही नाचता रहता है। सामीजी कहते हैं सहस्रो मे से वही विरल (आत्म) रग से रग जाता है, जिसे सच्चे गुरु ने (ज्ञान-रूपी) बाण से बेध दिया है ॥६११॥

घर मे घर धणी, विसे विसारे छिनो।
पुछी पुकारे पाणही पर्छिनु पिण्डु खणी।
सामी सावधानु थियो, साधूअ जे सरणी।
अनभय अणू खणी, पाए वेठो पाकु थी ॥ ६१२ ॥

अज्ञान से भ्रमित होकर (जीव ने) घर के मालिक को भुला दिया है। वह अपना नश्वर शरीर लेकर (अपने को नश्वर शरीर समझकर) (आत्मा के) सबध मे सबसे पूछता रहता है तथा उसे पुकारता रहता है। सामीजी कहते है, किन्तु साधुओ की शरण मे पडने से वह सचेत हो जाता है तथा (आत्मज्ञान-रूपी) अणु लेकर पवित्र हो बैठता है ॥ ६१२ ॥

घर मे रामु रहे, मूर्खु फोले दहदिसा।
जप तप साधन योग मे, सामी देहि दहे।
नाहकु दुख सहे, पुठी ड्रेई पाण खे ॥ ६१३ ॥

सामीजी कहते है यद्यपि (आत्मा-रूपी) राम (हृदय-रूपी) घर मे निवास करता है, फिर भी मूर्ख व्यक्ति उसे दसो दिशाओ मे ढूंढता रहता है तथा जप, तप व योग-साधना मे अपने शरीर को जलाता रहता है (कष्ट देता रहता है)। इस प्रकार अपने स्वरूप को पीठ देकर व्यर्थ ही दुख सहन करता रहता है ॥ ६१३ ॥

घर मे रामु वसे, ब्राहरि ढून्ढे जीउ नितु ।
पाए मूहु महिराण मे, सामी कीन पसे ।
पंहिजो पाण फसे. थो मूर्खु अविद्या फास मे ॥ ६१४ ॥

सामीजी कहते है—यद्यपि (आत्मा-रूपी) राम (हृदय-रूपी) घर मे निवास करता है, फिर भी मूर्ख मनुष्य उसे सदैव ही बाहर ढूँढता रहता है; इस प्रकार वह अविद्या-रूपी फाँस मे स्वय ही फँस जाता है; परन्तु (हृदय-रूपी) समुद्र मे झाँक कर आत्मावलोकन नही करता है ॥ ६१४ ॥

चर्या से चइजनि, जे पाणु पछाणनि कीन की ।
ग्गाल्हियू भलनि जूँ ब्रुधी, मर्मु न रखनि मनि ।
काणि न कढनि कहिजी, सूरी सठी जनि ।
सदा गर्कु रहनि, सामी सुपिर्युनि साँ ॥ ६१५ ॥

सामीजी कहते है—जो (जीव) स्वय को नही पहचानते है, वे पागल कहलाते हैं। वे सज्जनो की वाते सुनकर भी हृदय मे लाज-शर्म नही रखते हैं, किन्तु जो (प्रेम-रूपी) शूली पर चढ गये हैं, वे किसी की परवाह न कर सदैव ही अपने प्रियतम (के प्रेम मे) डूबे रहते है ॥ ६१५ ॥

चर्या से चइजनि, जे पाणु पछाणनि कीन की ।
ग्गाल्हियू भलनि जूँ ब्रुधी, मर्मु न रखनि मनि ।
पंहिजे ग्निचीअ पाणही, जोड़े सेल्ह विझनि ।
सामी कीन ड्रिसनि, झाती पाए घर मे ॥ ६१६ ॥

सामीजी कहते है—जो (जीव) स्वय को नही पहचानते हैं; वे पागल कहलाते है। वे सज्जनो (ज्ञानवान) की बाते सुनकर भी हृदय मे लाजशर्म नही रखते हैं। वे अपने गले मे स्वय ही (मुसीबत-रूपी) काँटे पिरोकर डालते है, परन्तु (हृदय-रूपी) घर मे आत्मावलोकन नही करते हैं ॥ ६१६ ॥

चर्या से चइजनि, जे मर्मु न रखनि मन में ।
ग्गाल्हियूँ वेदनि जूँ ब्रुधी, दरि दरि वक वकनि ।
नाना जुगत्युनि साँ करे, दिव दृष्टान्त ड्रियनि ।
सामी कीन ड्रिसनि, जाग्गी ज्योति स्वरूप खे ॥ ६१७ ॥

सामीजी कहते है—जो (जीव) हृदय मे लाज-शर्म नही रखते है, वे पागल कहलाते है। वे वेदो की वातें सुनकर द्वार-द्वार पर वकवास करते

रहते है तथा नाना प्रकार की युक्तियो से दिव्य दृष्टान्त देते रहते है, किन्तु जागृत होकर (ज्ञान प्राप्त कर) स्वरूप-प्रकाश को नही देखते हैं ।। ६१७ ।।

जग मे जीअ जुखी, मूर्ख मरनि मति रे ।
चाल चलनि अज्ञान जी, बिना रस रुखी ।
मिलो थिए महबूब साँ, को सामी सन्तु सुखी ।
गहिड़ी गुर्मुखी, मुखि रखी मौजा करे ।। ६१८ ।।

सामीजी कहते है कि बुद्धिहीन (मूर्ख मनुष्य) ससार मे दु.खी होकर मरते है। वे रसहीन व्यक्ति अज्ञान की चाल चलते हैं (अज्ञानपूर्ण व्यवहार करते हैं); किन्तु गहन गुरुमुखी सन्त प्रियतम (परमात्मा) से मिलकर सुखी होता है एव उसकी ओर मुख कर आनन्द लूटता रहता है ।। ६१८ ।।

जग में वसनि ठग, भारी पज भर्म जा ।
मोहे मारे मति खसे, सभ खे कनि डगमग ।
के सुजागा सूर्मा, रहनि ऐन अलग ।
सामी थी सर्वग्य, माणिनि मौज मुक्ति जी ।। ६१९ ।।

सामीजी कहते है कि ससार मे भ्रम-रूपी पाँच महा कपटी निवास करते हैं। वे सब (जीवो) को अपनी ओर आकर्षित कर तथा उनकी बुद्धि छीनकर उन्हे विचलित करते रहते है, किन्तु कुछ जागृत शूरवीर उन (पाँच धूर्तों) से मुक्त व अलग रहते हैं तथा सर्वज्ञ बनकर मुक्ति का आनन्द लूटते हैं ।। ६१९ ।।

जन्मे ऐं मरे, थो भुली जीउ भर्म में ।
जीए पाछाओ पहिजो, डि्सी ब्राए डरे ।
स्वप्न मे सामी चए नाना रूप धरे ।
वेठो सिधि करे, मृग तृष्णा जे जल खे ।। ६२० ।।

सामीजी कहते है—जिस प्रकार (अज्ञानी) बालक अपना प्रतिबिम्ब देखकर उससे डरता है। उसी प्रकार (अज्ञानी) जीव भ्रम मे अपने सच्चे स्वरूप को भूलकर जन्मता एव मरता रहता है। वह सपने मे ही अनेक रूप धारण करता है तथा झूठी मृगतृष्णा को सफल बनाता रहता है ।। ६२० ।।

जन्मे मरे जीउ, पछिन जाणी पाण खे।
सामी डि्से न सम थी, प्रत्क्षु पूरणु पीउ।
विरले कंहि गुर्मुख जो, मिटयो सन्सो सीउ।
सन्मुखु रहे सदैव, घटाकास महाकास जाँ॥ ६२१॥

सामीजी कहते है कि जीव अपने को नश्वर समझकर, जन्मता एवं मरता रहता है। वह समता अपना कर पूर्ण प्रियतम को प्रत्यक्ष नही देखता है। किसी विरल गुरुभक्त का ही भ्रम-रूपी भय मिट जाता है तथा उसे घटाकाश (जीवात्मा) मे ही महाकाश (परमात्मा) सदैव ही सन्मुख दिखायी देता है (समस्त जीवो मे परमात्मा की ही सत्ता देखता है)॥६२१॥

जीउ करे जखि जखि, रात्यू डी्हा निंढ में।
पटे डि्से न प्रेम साँ, सामी अन्भय अखि।
परमेश्वर प्रत्क्षु, व्यापी रहियो विश्व में॥ ६२२॥

सामीजी कहते है कि जीव दिन-रात (अज्ञान की) नीद मे बक-बक करता है, किन्तु ज्ञान के लोचन खोलकर प्रेम से विश्व मे व्यापक प्रत्यक्ष परमेश्वर को नही देखता है॥ ६२२॥

जीउ करे थो जुठि, भुली पहिंजो पाण साँ।
जीए फाहीअ मे फसे, भोलो भरे मुठि।
डे्ई वेठो पुठि सामी सचए स्वरूप खे॥ ६२३॥

जिस प्रकार बन्दर (अज्ञान-वश) मुट्ठी बन्द कर अपने को फन्दे मे फँसा देता है। उसी प्रकार जीव भ्रम-वश अपने सच्चे (आत्म-) स्वरूप को पीठ देकर अपने आप को मुसीबत मे डाल देता है॥ ६२३॥

कूड़ा कूड करे, फाहे फासनि पाण ही।
भोगिनि भोग नर्क जा, रोअनि रतु भरे।
सच्यारनि सटे विधी, पछित पिण्ड परे।
सामी ध्यानु धरे, माणिनि मौज मुक्ति जी॥ ६२४॥

सामीजी कहते है कि झूठे (जीव) झूठा व्यवहार कर स्वय ही (अज्ञान-रूपी) फन्दे मे फँस जाते है। वे नरक के दुख भोग कर, खून के आँसू बहाते हैं, किन्तु सत्य का व्यवहार करने वालो ने नश्वर पिण्ड को दूर पटक दिया है तथा ध्यान धारण कर मुक्तावस्था का आनन्द भोगते है॥ ६२४॥

कूडी कथ कथे, सामी सभि लुढी विया ।
रखनि सिक समुझ रे, कागज कोट सथे ।
मखणु कढियो मन मों, कहिं महबतीअ मथे ।
लेखे लथे पथे, सेष द्रिठाई सुप्री ।। ६२५ ।।

सामीजी कहते हैं कि सब (जीव) झूठे कथन कहकर (अज्ञान-रूपी समुद्र मे) वह गये है। वे प्रेम के सिवा मात्र कागज ही इकट्ठे करते है, किन्तु प्रेमी हृदय को मथकर (आत्मज्ञान-रूपी) नवनीत निकाल लेते है तथा (सासारिक) लेखे उतार कर प्रियतम को ही शेष देखते है ।। ६२५ ।।

खणी पछिनु पिण्डु, मूर्ख मुठा केतिरा ।
जग्रोती जमराइ जा, भर्नि द्रिहारी ड्रण्ड ।
दानाहनि दिलि मे द्रिठी, अन्भय ज्योति अखण्ड ।
सामी सभि ब्रह्मण्ड, आहिनि जहिं जे असिरे ।। ६२६ ।।

सामीजी कहते है कि कितने ही मूर्ख मनुष्य नश्वर (शरीर-रूपी) बोझ उठाकर नष्ट हो गये है। वे प्रतिदिन यमराज के दुखदायी दण्ड भरते हैं (दुख सहन करते है)। किन्तु बुद्धिमानो ने अपने ही हृदय मे उस (आत्मज्ञान-रूपी) अखण्ड ज्योति को देखा है, जिसके सहारे ही सारा ब्रह्माण्ड स्थित है ।। ६२६ ।।

अन्धो पियो आणे, भवसागर जे भीड़ में ।
तारि ब्रुधी तुरहो ब्रधो, कर्मनि जो काणे ।
सामी आभासु सूर्य जो, को सज्रो सुञाणे ।
मौज मिली माणे, प्रत्क्षु पूरण पहिंजी ।। ६२७ ।।

(अज्ञान-वश) नेत्रहीन (व्यक्ति) भवसागर के बीच स्वय को लाता रहता है। वह कर्म-रूपी तुम्बा (जिसके सहारे पानी मे तैरा जा सकता है) बांधकर (इस पानी-रहित झूठे ससार-रूपी समुद्र मे) तैरता है। अर्थात् अज्ञान-वश ससार को सत्य मानकर, नाना प्रकार के कर्म कर जन्मता एव मरता रहता है। सामीजी कहते है—कोई विरल नेत्रयुक्त व्यक्ति ही (आत्मा-रूपी) सूर्य का प्रकाश पहचानता है और अपने प्रत्यक्ष पूर्ण (स्वरूप) से मिलकर आनन्द मनाता है ।। ६२७ ।।

अन्धो पियो आणे, बुडी ब्रारि सुकीअ में।
तारि ज्ञाणी तुरहो ब्रधो, कर्मनि जो काणे।
सामी आभासु सूर्य जो, को सञो सुञाणे।
मौज मिली माणे, पाणु वराए पाण सॉ॥ ६२८॥

सामीजी कहते है अन्धा (अज्ञानी जीव) सूखे ससार को गहरे पानी से युक्त मानकर उसमे आता रहता है। (झूठे ससार मे अज्ञानी जीव को केवल पानी का आभास होता है, किन्तु वास्तव मे उसमे पानी है ही नही। ऐसे ससार-रूपी समुद्र मे वह हाथ पछाड़-पछाड कर अपने को दुखी बनाता है)। वह इस सागर से पार होने की युक्ति जानते हुए भी, (अज्ञान-वश) कर्म-रूपी तुम्बा बाँधकर इस सागर मे तैरता रहता है, किन्तु नेत्रयुक्त (व्यक्ति) आत्मा-रूपी सूर्य का आभास पहचानता है तथा अपने अह को त्यागकर अपने आप (स्वरूप) से मिलकर मौज मनाता है॥ ६२८॥

अन्धो पियो आणे, भुली भवसागर मे।
अबुद्धि ब्रधो तुरहो, कर्मनि जो काणे।
सुजागो सामी चए, सफा सभु ड्राणे।
मौज मिली माणे, पाणु वराए पाण में॥ ६२९॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धा व्यक्ति भ्रमित होकर बुद्धिहीन कर्मो-रूपी तुम्बा बाँधकर इस भवसागर मे आता रहता है (भटकता रहता है), किन्तु जागृत मनुष्य सब कुछ साफ देखता है (उसे इस ससार मे किसी भी प्रकार का भ्रम नही होता है)। वह अन्तर्मुखी बनकर अपने (स्वरूप) से मिलकर आनन्द लूटता है॥ ६२९॥

अन्धो पियो आणे, भुली भवसागर मे।
ब्रांभिण ब्रधो तुरहो, कर्मनि जो काणे।
चिमत्कारु चेतन जो, को सञो सुञाणे।
मौज मिली माणे, पाणु वराए पाण मे॥ ६३०॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि अन्धा (व्यक्ति) भ्रमित होकर कर्म-रूपी तुम्बा बाँधकर इस (झूठे) ससार-रूपी सागर मे आता रहता है। कोई विरला नेत्रवान व्यक्ति ही चेतन के चमत्कार को पहचानता है तथा अन्तर्मुखी होकर अपने (स्वरूप) से मिलकर मौज मनाता है। ६३०॥

चुहुरी चमारी, चाह चपल चिन्ता भरी।
सामी ख़से ममत्व, सुखु ड्रेई ड्रेखारी।
रहे अलेपु आकाश जाँ, को व्रिले वीचारी।
सटे पिण्ड सारी, मिल्या सार स्वरूप साँ॥ ६३१॥

सामीजी कहते हैं कि चाह अत्यन्त ही चपल, चिन्ता से युक्त तथा चर्म की भाँति बुरी है। वह ममत्व से सुख दिखाकर (अज्ञानी जीव का) सर्वस्व छीन लेती है, किन्तु विरल विचारवान् आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है तथा (प्रपच का) बोझ पटककर सच्चे स्वरूप से जा मिलता है॥ ६३१॥

चोड्रह लोक चब्रे, माया खाधा मोह साँ।
जोरु तही ते जीव जो, फाथे कीन फब्रे।
हथुसि धर्टु गिचीअ मे, कहि दर्दवन्द दब्रे।
सामी सज्रे खब्रे, पूरणु ड्रिसे पीअ खे॥ ६३२॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने मोह से चौदह लोको को चबाकर खा लिया है, अत (अज्ञानी) जीव उस पर दबाव रखकर, उसे कस कर फँसा नही सकता है किन्तु दर्दमन्द ने उसे दबाकर, उसके गले मे फाँसी डाल दी है (अपने वश मे कर लिया है), अत वह दाये व वाये (चारो तरफ) पूर्ण प्रियतम को ही देखता है॥ ६३२॥

छल वल करे छली, फाहे फासनि पाणही।
मरनि मति मर्म रे, जीअ मे नितु जली।
माणे सुखु स्वरूप जो, को ब्रुद्धीवानु ब्रली।
सभ खे मति भली, सामी ड्रिए सालिसु थी॥ ६३३॥

सामीजी कहते है कपटी (जीव) छल-वल कर स्वय ही अपने आप को फन्दे मे (माया के फन्दे मे) फँसा लेते है। निर्लज्ज व बुद्धिहीन लोग सदैव ही हृदय मे जलकर मरते हैं (नष्ट होते है)। किन्तु बुद्धिमान-वलवान् (ज्ञानी मनुष्य) स्वरूप-सुख का उपभोग करता है एव दयालु बन कर सबको अच्छी मति (सलाह) देता है॥ ६३३॥

चाह कया चर्या, मोहे जीअ जहान जा।
पछिनु ज्ञाणी पाण खे, पाइनि नितु फेरा।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, के प्रेमी पकेरा।
निर्मलु, निर्वैरा, सामी रहनि स्वभाव मे॥ ६३४॥

सामीजी कहते है कि चाह ने ससार के जीवो को मोहित कर पागल बना दिया हैं। वे अपने को नश्वर समझकर (ससार मे) सदैव ही चक्कर लगाते है, किन्तु दृढ प्रेमी स्वरूप-सुख का उपभोग करते हैं। वे निर्मल तथा निरवैरी अपने ही भावो (आत्मानद) मे लीन रहते हैं ॥ ६३४ ॥

अन्धो पियो आणे, भुली भवसागर मे।
ब्राभण ब्रधो तुरहो, कर्मनि जो काणे।
सुत्ह सिधि स्वरूप खे, को सञो सुञाणे।
ममत्व रे माणे, मौजा नितु मालिकु थी ॥ ६३५ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते है कि अन्धा (व्यक्ति) भ्रमित होकर कर्म-रूपी तुम्वा बाँधकर इस झूठे ससार-रूपी सागर मे आता रहता है। कोई नेत्रवान (ज्ञानी व्यक्ति) ही अपने सच्चे स्वरूप को पहचानता है तथा बिना ममत्व मालिक बनकर मौज मनाता रहता है ॥ ६३५ ॥

उपदेश

अन्धा करे अन्याउ, खोहि न मानुष देहि खे।
मिली वञु महबूब साँ, छदे दुत्या भाउ।
कालु तुहिजे कन्ध ते, थो दमि-दमि तके दाउ।
सामी चए पीउ माउ, सगा साथी नाहि को ॥ ६३६ ॥

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते हुए कहते है—ऐ अन्धे (अज्ञानी)! अपने मानव-शरीर को नष्ट कर अपने साथ अन्याय मत कर बल्कि द्वैत भाव मिटाकर अपने प्रियतम से मिल ले, क्योकि मृत्यु तेरे कन्धे पर सवार होकर सदैव ही अपना दाँव तक रही है और (इस मृत्यु से बचाने के लिए) माँ-बाप तक साथ नही देते है ॥ ६३६ ॥

अन्धा करे अनाड, खोहि न मानुप देहि खे।
मिली वञु महबूब साँ, छदे लोभ लबाड।
अञु कल्ह अचे ओचिते, कालु पटीदुइ पाड़।
भवदे पोइ उजाड़, सिज लथे सामी चए ॥ ६३७ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं—ऐ अन्धे (अज्ञानी जीव)! अपनी मूर्खता मे अपने मानव-शरीर को नष्ट मत कर, बल्कि लालच एव झूठ-कपट छोड़कर परमात्मा से मिल ले, क्योकि मृत्यु, आज नही तो कल,

आकर तुझे जड़ से उखाड़ देगी। (जीवन-रूपी) सूर्यास्त होने पर तुझे वीरान होकर भटकना पड़ेगा ॥ ६३७ ॥

अन्धा छद्रि अभिमानु, काया माया कुल जो।
मिली वञु महबूब साँ, धरे निर्मलु ध्यानु।
कालु तुहिंजे कन्ध ते, कशे बीठो बाणु।
सामी सभु जहानु, मारे जहिं मिटी कयो ॥ ६३८ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं—ऐ अज्ञानी जीव ! काया-माया तथा कुल का घमड छोड़कर, निर्मल ध्यान धारण कर प्रियतम से मिल ले, क्योकि जिस मृत्यु ने सारे ससार को मिट्टी मे मिला दिया है, वह तेरे सिर पर भी बाण ताने खड़ी है ॥ ६३८ ॥

अन्धा छद्रि अहकार, काया माया कुल जो।
मिली वञु महबूब साँ, हिकदमि करे करारु।
मतां अचे ओचिते, कुहेई कालु कहारु।
सामी सभु सन्सारु, मारे जहिं मिटी कयो ॥ ६३९ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते है—ऐ अन्धे जीव ! काया-माया एव कुल के झूठे अभिमान को त्यागकर, दृढ-निश्चयी वनकर प्रियतम से मिल ले; क्योकि कठोर काल, जिसने सारे विश्व को धूल मे मिला दिया है, अचानक ही आकर तुझे कत्ल (नष्ट) कर देगा ॥ ६३९ ॥

अन्धा छद्रि अहकारु, कूडो माया मोह जो।
मिली वञु महबूब साँ, करे विधि वीचारु।
मतां अचे ओचितो, कुहेई कालु कहारु।
सामी सभु सन्सारु, मारे जहिं मिटी कयो ॥ ६४० ॥

सामीजी कहते है ऐ अज्ञानी अन्धे, तू मिथ्या मोह-माया का अहकार त्यागकर, विधिपूर्वक सोच-विचार कर प्रियतम से मिल ले, क्योकि कही ऐसा न हो कि कठोर काल, जिसने सारे विश्व को मार कर मिट्टी कर दिया है, तुझे भी अचानक आकर कत्ल कर दे (नष्ट कर दे) ॥ ६४० ॥

अन्धा छद्रि अहकारु, कूडो माया मोह जो।
मिली वञु महबूब साँ, करे विधि वीचारु।
मोटी ईंदुइ कीन को, अहिडो समो सारु।
थीदे पोइ खुआर, सिज लथे सामी चए ॥ ६४१ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं "ऐ अन्धे ! तू झूठी-माया तथा मोह का घमंड छोड़कर, विधिपूर्वक सोच-समझकर प्रियतम से मिल ले; क्योंकि यह सारयुक्त समय (अमूल्य मानव-जीवन) फिर लौटकर नही आयगा। कही ऐसा न हो कि (जीवन-रूपी) सूर्य के अस्त होने से तुझे व्यर्थ ही बदनाम होना पडे" ॥ ६४१ ॥

अन्धा छदि इगमाजु, कूड़ो माया मोह जो।
मिली वठु महबूब सॉ, करे सन्त समाजु।
मोटी ईंदुइ कीन की, अहिड़ो समो साजु।
थीदे पोइ मोथाजु, सिज लथे सामी चए ॥ ६४२ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं "ऐ अज्ञानी ! तू झूठी माया तथा मोह की मस्ती छोड़कर, साधुओ के सम्पर्क से प्रियतम से मिल ले, क्योकि ऐसा सुन्दर समय (मानव जीवन) तुम्हे फिर से नही मिलेगा। (आयु-रूपी) सूर्य के अस्त होने पर तुझे पराधीन (कर्मों के आधीन) होना पड़ेगा" ॥ ६४२ ॥

अन्धा छदि इगमाजु, कूड़ो माया मोह जो।
सोधे लहु सुतत मे, रामनगर जो राजु।
मोटी मिलदुइ कीन की, अहिड़ो सुन्दर साजु।
थीदे पोइ मोथाजु, सिज लथे सामी चए ॥ ६४३ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते है, ऐ अन्धे (अज्ञानी) ! तू झूठी माया एव मोह की मस्ती का परित्याग कर शीघ्रातिशीघ्र अपने भीतर राम-नगर के राज्य को ढूँढ ले (बिना समय नष्ट किये हृदय मे स्थित आत्मा को पहचान ले), क्योकि यह सुन्दर समय (मानव-जीवन) तुझे फिर से नही मिलेगा। कही ऐसा न हो कि (आयु-रूपी) सूर्य के अस्त होने पर तुझे दूसरो (कर्मों) के अधीन होना पडे ॥ ६४३ ॥

करे कोहु हिर्स, काया माया कुल जो।
इनीहं अविद्या भर्म मे, भुली सारी विसु।
सटि स्वप्न जे सुख खे, छदे ऊंघ आलिसु।
गुर्मुख जाग्री द्रिसु, सामी पहिंजो पाण खे ॥ ६४४ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते है (ऐ जीव !) तू काया, माया तथा कुल पर व्यर्थ ही घमण्ड क्यो कर रहे हो ? वास्तव मे अविद्या के इस भ्रम मे ही सारा ससार भ्रमित हुआ है। ऐ गुरुमुख, अब भी

(अज्ञान-रूपी) नीद तथा आलस्य का परित्याग कर, (माया-रूपी) स्वप्नवत् सुख को पटक कर, जागृत होकर, अपने आप (आत्मा) को देख। (अपने सच्चे आत्म-स्वरूप को पहचान) ॥ ६४४ ॥

करे ठाहु ठगी, मूर्ख खोहि न तनु रतनु।
मिली वञु महबूब सॉं, साधूअ संगि लगी।
अजु कल्ह अचे ओचिते, वठन्दुइ काल खगी।
रोअदे पोइ तगी, सिज लथे सामी चए ॥ ६४५ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते है, ऐ मूर्ख! तू झूठ कपट कर अपने मानव-शरीर-रूपी रत्न को नष्ट मत कर, बल्कि साधुओ के सम्पर्क मे रहकर, प्रियतम से मिल ले, क्योकि आज नही तो कल काल-रूपी बाज अचानक ही आकर तुझ पर झपटेगा। ऐ (माया पर) विश्वास रखने वाले, (आयु-रूपी) सूर्य के अस्त होते ही तुझे रोना पडेगा ॥ ६४५ ॥

करे पुरुषार्थ, मिली महद जननि सॉं।
ममत्व विञाए मन जी, सामी थीउ समर्थ।
आत्म पदु अकथु, लोडे लहु घर मों ॥ ६४६ ॥

सामीजी जीव को उपदेश देते हुए कहते हैं, तू पुरुषार्थ से, महात्माओ का संगकर, मन की ममता को मिटाकर, अपने आप को शक्तिशाली बना तथा अकथनीय आत्म-ज्ञान को (हृदय-रूपी) घर मे ही ढूंढ निकाल ॥ ६४६ ॥

करे पोलु पलालु, मूर्ख खोहि न तनु रतनु।
मिली वञु महबूब सॉं, छदे खाम ख्यालु।
मता अचे ओचिते, कन्धु भञेई कालु।
बेहदि बुरो हालु, सामी कयो जहि सभजो ॥ ६४७ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते है, ऐ मूर्ख! तू अपने आप को सूखे घास की तरह खोखला बनाकर (आत्म-ज्ञान से विहीन होकर) मानव-शरीर-रूपी रत्न को नष्ट मत कर। तू व्यर्थ के विचारो का परित्याग कर प्रियतम से अभिसार कर ले। कही ऐसा न हो कि काल, जिसने सबकी बुरी हालत कर दी है, अचानक आकर तेरी भी गरदन तोड़ दे ॥ ६४७ ॥

करे भाउ भगति, सामी तरु सन्सारु तू।
बेडी करि वेसाह जी, चपो महबत मति।
सतिगुरु पुरुष मलाहु करि, पतणु कढु कुमति।
साक्षी ज्ञाणी सति, पंहुचे पारि भर्म खो ॥ ६४८ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं, (ऐ जीव !) हृदय से कुमति निकाल कर, भक्ति-भाव से विश्वास-रूपी नौका पर, प्रेम-रूपी पतवार लेकर तथा सद्गुरु को उस (जीवन-रूपी नौका) का केवट बना ले, तो तू भ्रमों से मुक्त हो जायगा। एवं सत्य को प्रत्यक्ष जानकर, संसार-रूपी सागर से पार उतर ले ॥ ६४८ ॥

करे मानु मणी, मूर्ख खोहि न तन रतनु ।
सोधे लहु सुततु मे, घर में घर-धणी ।
मता अचेई ओचिते, वञेई कालु खणी ।
भवे भूतु वणी, सिज लथे सामी चए ॥ ६४९ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं, ऐ मूर्ख ! तू झूठे बड़प्पन को अपनाकर अपने मानव-शरीर-रूपी रत्न को नष्ट मत कर; बल्कि शीघ्राति-शीघ्र (हृदय-रूपी) घर मे घर-मालिक (आत्मा) को ढूंढ ले, क्योंकि कही ऐसा न हो कि अचानक ही मृत्यु आकर तुझे ले जाये तथा (आयु-रूपी) सूर्य के अस्त होने पर तुझे भूत बनकर भटकना पड़े ॥ ६४९ ॥

करे मोहु-मालिसु, मूर्ख खोहि न तनु रतनु ।
मिली वञु महबूब सॉ, छदे ऊंघ आलिसु ।
मोटी ईंदुइ कीन की, अहिड़ो समो ससु ।
पोइ थीदें परवसु, सिज लथे सामी चए ॥ ६५० ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते है, ऐ मूर्ख ! तू मोह-ममता की मालिश कर (मोह-ममता मे उलझकर) मानव-शरीर-रूपी अमूल्य रत्न को नष्ट मत कर, वल्कि (अज्ञान-रूपी) नीद और आलस्य छोडकर प्रियतम से अभिसार करले, क्योंकि ऐसा सुअवसर (मानव-शरीर) तुझे नही मिलेगा। (आयु-रूपी) सूर्य के अस्त होने पर तू पराधीन (कर्मो के आधीन) बन जायगा ॥ ६५० ॥

करे वञु उपाउ, अविद्या रोग असार जो ।
मोटी ईंदुइ कीन की, अहिड़ो उतमु दाउ ।
मिली साध संगति सॉ, अन्भय औषधु खाउ ।
सामी नाना भाउ, मिटी वञेई मन मो ॥ ६५१ ॥

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते हुए कहते है, तू अविद्या-रूपी असार रोग का इलाज कर ले (सारहीन अज्ञान से अपने आप को मुक्त कर ले), क्योकि ऐसा सुन्दर दाँव (मानव-शरीर-रूपी सुअवसर) तुझे फिर नही मिलेगा। तू साधुओ की सगत से आत्मज्ञान-रूपी औषध का सेवन कर, जिससे तेरे मन के नाना प्रकार के विकार मिट जायें ॥ ६५१ ॥

करे सम सिदिकु, मिली साध सगति सॉ।
जे तोखे प्यास पसण जी, त सिप चात्रक जाँ सिकु।
पाए बून्द अन्भई, करि लोकनि खो लिकु।
त अन्दरि ब्राहरि हिकु, सामी ड्रिसे सुप्री ॥ ६५२ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं कि यदि तू (परमात्मा के) दीदार का प्यासा है तो साधुओ का सग कर, समता एव स्नेह को अपनाकर, सीप तथा चातक की तरह (परमात्मा-रूपी) स्वाति-बूँद के लिए तडप (सीप और चातक की-सी सच्ची तडप को हृदय मे उत्पन्न कर)। आत्मज्ञान-रूपी बूंद के पाने के पश्चात् ससार से छिप (एकान्त मे बैठ) तो तुझे बाहर एव भीतर एक ही प्रियतम दिखायी दे ॥ ६५२ ॥

कहिंजो कोन्हे कोइ, जे तो भाउर भाइयॉ।
प्यारी प्रियनि खो करे, जा तो मञी पहिजी जोइ।
जडहिं वेदइ प्राण पिन्डीअ मों, प्रेतु चवदइ सोइ।
संगी थीदुइ सोइ, जेकी जपीदे जगदीस्वर खे ॥ ६५३ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते है—(ऐ जीव!) जिन लोगो को तू ने अपना बन्धु माना तथा जिस प्राणो से प्रिय (नारी को) तू ने अपनी पत्नी समझा, वे वास्तव मे किसी के भी नही, क्योकि जिस समय तेरे शरीर से प्राण निकलेगे, उस समय वे ही लोग तुझे प्रेत कहेगे। तुम्हारा साथ केवल जगदीश का नाम (जो तूने जपा होगा) देगा ॥ ६५३ ॥

काठीअ खे कीए, खाई जीअं खलासु कयो।
कोड़े कढु कल्पना, अन्दर मों ईंए।
प्यालो अगम जो, पुरु करे पीए।
जीए जो तीए, सामी ड्रिसी सुप्री ॥ ६५४ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार कीडा (घुन) लकडी को भीतर से काट कर नष्ट कर देता है, उसी प्रकार (ऐ जीव!) तू (ज्ञान-

रूपी कीडे से) अपने भीतर के विषय-वासना को काट कर नष्ट कर दे। यदि तू अपने (हृदय-रूपी) प्याले को अगम परमात्मा के प्रेम से लबालब भर कर पियेगा तो तुझे प्रियतम ज्यो का त्यो दिखायी देगा ॥ ६५४ ॥

काथे कूडु न करि, कहिंसाँ कण जेतिरो।
ईहो वाक्य वेसाह जो, हरिदमि हृदय धरि।
त पर्ची नियेई पल मे, घोटु पहिंजे घरि।
करे सभिनी खाँ सरि, सामी लई सम सुखु ॥ ६५५ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते है (ऐ जीव!) कही भी, किसी से भी रत्ती-मात्र झूठ मत बोल। उक्त वाक्य पर पूर्ण विश्वास कर, यदि तू इसे हृदय मे धारण कर लेगा तो तेरा कान्त शीघ्र ही प्रसन्न होकर, तुझे सब प्रकार के प्रपच से मुक्त कर अपने घर मे बुला लेगा, जहाँ तुझे सदैव ही समता-सुख का ही अनुभव होगा ॥ ६५५ ॥

कृपा बिना कल्याणु, कंहिजो थियो कीन को।
इंए करनि या आदि जो, वेद पुराण वखाणु।
समुझी ड्रिसु सामी चए, तू कढी पहिंजो पाणु।
रहु सावूतीअ साणु, त सुत्ह मिलनी सुप्री ॥ ६५६ ॥

आदि काल से वेद-पुराण यही कहते हैं कि (परमात्मा की) कृपा के सिवा किसी का भी कल्याण नही हुआ है, अत सामीजी उपदेश देते हुए कहते है, (ऐ जीव!) जरा सोचकर देख तथा अह निकाल कर, ज्ञानियो का सग कर तो तुझे शीघ्र ही प्रियतम मिल जाय ॥ ६५६ ॥

कूके कोहु चरी, त को लिको नाहि लकनि मे।
फिटी करि सामी चए, ईहा भर्म भरी।
मोटी ड्रिसु महल मे, त वबनी ठप ठरी।
त दौलत जी दरी, प्री पटे ड्रियनी पाणही ॥ ६५७ ॥

सामीजी जीवात्मा को सबोधित करते हुए कहते है -ऐ पगली! तेरा प्रियतम गुफाओ मे छिपा हुआ तो है नही, फिर क्यो इस प्रकार चिल्ला रही हो? तू इस भ्रम-रूपी गठरी को (आत्मा और परमात्मा में भेद समझने का भ्रम) फेंक दे तथा अपने (हृदय-रूपी) महल मे पैठकर देख, तो तेरा रोम-रोम शीतल हो जायगा, क्योकि (परमात्मा को अपने हृदय में झाँक-कर देखने-मात्र से ही) प्रियतम (आत्मज्ञान-रूपी) कोष-गृह की खिड़की स्वय ही खोल देंगे ॥ ६५७ ॥

कूड़ा कम करे, खोहि न मानुष देहि खे ।
मिली वठु महबूब साँ, सची सिक धरे ।
काल तुहिंजे कन्ध ते, बीठो बाण भरे ।
पवंदे पोइ परे, सिज लथे सामी चए ।। ६५८ ।।

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते हुए कहते है कि झूठे कर्म कर अपने मानव-शरीर को नष्ट मत कर, बल्कि सच्चे स्नेह को धारण कर, प्रियतम से अभिसार कर ले, क्योकि काल तेरे कन्धे पर बाण ताने खडा है । अतएव (आयु-रूपी) सूर्य के अस्त होते ही तू दूर जा पड़ोगे (मानव-शरीर से दूर अन्य योनियो मे जा भटकोगे) ।। ६५८ ।।

कूडा कम न करि, मूर्ख मन जे भाइ तू ।
अथी अविद्या सिन्धु जी, डाढी लोभ लहरि ।
वचनु सापुरुषनि जो, जाग्री हृदय धरि ।
त हाजुरु डिसे हरि, सामी चए सभ मे ।। ६५९ ।।

सामीजी जीव को उपदेश देते हुए कहते है कि माया-रूपी ससार-सागर की लोभ-लालच-रूपी लहरें अत्यन्त ही तेज़ है, अत (ऐ जीव!) तू मन के वशीभूत होकर झूठे कर्म मत कर, बल्कि जागृत होकर, सन्तो के वचनो (उपदेश) को हृदय मे धारण कर, तो तुझे सब मे परमात्मा उपस्थित दिखायी दे ।। ६५९ ।।

कूड़ा कम न करि, मूर्ख मन जे भाइ तू ।
वड्रा वीर वर्याम नर, लोढिया हिन लहरि ।
लेखा छड्डे लोभ जा, गुर्झम अची घरि ।
त दोस्तु तुहिंजे दरि, पेही अचे पाणही ।। ६६० ।।

सामीजी उपदेश देते हुए कहते है—ऐ मूर्ख! माया-रूपी लहर ने श्रेष्ठ वीरो (ज्ञानियो) को अपने तेज़ प्रवाह मे बहा दिया है । अतएव तू मन के वशीभूत होकर झूठे कर्म मतकर, बल्कि लोभ-लालच को छोडकर, प्रेमी बनकर (हृदय-रूपी) घर में झाँककर देख, तो तुझे तेरा दोस्त (परमात्मा) तेरे (हृदय-रूपी घर के) द्वार से प्रवेश करता हुआ दिखायी देगा ।। ६६० ।।

कूडा घरि म घाट, मूर्ख मन जे भाइ तू ।
मिली साध सगति साँ, वठु वेसाही वाट ।
त खोले वज्र कपाट, कामिल कियनी कल साँ ।। ६६१ ।।

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते हुए कहते हैं, ऐ मूर्ख ! तू मन के वश मे होकर काल्पनिक महल मत बना, बल्कि साधुओं का सगकर, विश्वास के रास्ते को अपना ले, ताकि परमात्मा युक्ति से वज्र के समान कठोर (माया-रूपी) द्वार खोल दे (माया के कठोर आवरण को हटाकर तुझे आत्मा के दर्शन करा दे) ॥ ६६१ ॥

कूड़ा ताण म ताणि, मूर्ख माया मोह जा ।
सामी चए स्वरूप साँ, मिली मौजाँ माणि ।
अज्ञु कल्ह नीदुइ ओचिते, मारे कालु मसाणि ।
समुझी पाणु पछाणि, मता पवे पोइ ड्रुखनि मे ॥ ६६२ ॥

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते हुए कहते हैं, "ऐ मूर्ख ! माया एव मोह के झूठे सकल्प-विकल्प मत कर, परन्तु अपने स्वरूप से मिल कर आनद लूट, क्योंकि आज नहीं तो कल अचानक ही मृत्यु आकर तुझे श्मशान-भूमि मे ले जायगी । अतएव सोच-समझकर अपने आप (आत्मा) को पहचान ले, कहीं ऐसा न हो कि बाद मे तुम्हे दुःख उठाने पड़े ॥६६२॥

कूड़ा ताण म ताणि, सामी चए सन्सार में ।
दर ते थो दाहूँ करे, कालु तुहिंजे काणि ।
अज्ञु कल्ह नीदुइ ओचिते, मारे मझि मसाणि ।
साझुरि पाणु सुञाणि, मता पवे पोइ ड्रुखनि मे ॥ ६६३ ॥

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते हुए कहते है कि ससार मे रह कर झूठे सकल्प मत कर (झूठे हवाई-महल मत बना); क्योंकि तेरे (जीवन-रूपी) दरवाजे पर मृत्यु खड़ी, तुझे पुकार रही है। यह मृत्यु, आज नहीं तो कल, अचानक ही तुझे मारकर श्मशान-भूमि मे ले जायगी, इसलिए (जीवन-रूपी) प्रभात मे ही (जीवन के आरम्भ से ही) अपने आप को पहचान ले, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि बाद मे तुझे दुःख उठाने पड़ें ॥ ६६३ ॥

कूडा भेख म पाइ, पसण काणि प्रियनि जे ।
अथयो पाण सराफु थी, तू हुनिर कीम हलाइ ।
मिली साध सगति साँ, सामी चाह चुकाइ ।
अचे भोले भाइ, त सहज मिलनो सुप्रीं ॥ ६६४ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते है कि प्रियतम का दीदार करने के लिए झूठे वेश मत धारण कर, किन्तु जौहरी बनकर अपनी कला का उपयोग

कर (अर्थात् जिस प्रकार जौहरी अपनी कला से जवाहर परखता है, उसी प्रकार तू भी अपने ज्ञान से आत्मा-रूपी जवाहर को परख), तथा साधुओ का सग कर, इच्छाओ का परित्याग कर। इस प्रकार जब तुम भ्रम-रहित बन जाओगे, तो तुम्हे सहज ही प्रियतम मिल जायेगे ॥ ६६४ ॥

कूडा लेख म लिखु, अन्दरि डिसु अलेख खे।
अथी वाच वहण जो, महा तीब्ररु तिखु।
लोढ़े नीदुइ लोभ साँ, सामी सोगु हर्खु।
थी सतिगुर जो सिषु, वचनु मञे करि मुन्सफी ॥ ६६५ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते है कि (ऐ जीव !) तू झूठे लेख मत लिख, बल्कि अपने भीतर ही लेखो से परे (परमात्मा) को देख; क्योकि (अज्ञान-रूपी सागर का) बहाव अत्यन्त ही तेज एव तीव्र है। इस (सागर) मे (सासारिक) हर्ष-शोक, तुझे लालच से, बहाकर नष्ट कर देगे। अतः तू गुरु के ज्ञानपूर्ण वचन मानकर उसका शिष्य बन जा ॥ ६६५ ॥

कूड़ा लेख म लिखु, मूर्ख मन जे भाइ तू।
अविद्या जे आराह जो, अथी तीब्ररु तिखु।
जाग्री कढु अन्दर मों, सभु वीचारे विषु।
थीउ गुरूअ जो सिषु, त सीतलु थिए सामी चए ॥ ६६६ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते है, ऐ मूर्ख ! मन के वश मे होकर झूठे प्रपच के लेख मत लिख, क्योकि यह अविद्या-रूपी सागर का प्रवाह अत्यन्त ही तेज एव तीव्र है, अत तू जागृत होकर (ज्ञान को अपनाकर) भीतर से (विकार-रूपी) विष सोच-समझकर निकाल ले तथा गुरु का शिष्य बन जा, ताकि तू शीतल बन जाय ॥ ६६६ ॥

कूड़ीअ लुझ म लुझु, लुझे तां लुझु लिव साँ।
ज्राणी झूठि जग्रत खे, गुर्गम घर मे रुझु।
ईहा ब्रूझ बुझी करे, सामी थीउ अब्रुझु।
कहिखे सलि म ग्रुझु, अजगैबी इसरार जो ॥ ६६७ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं—(ऐ जीव !) तू (ससार की) झूठी बातो मे अपने को व्याकुल मत कर, यदि तुझे अपने को व्याकुल बनाना ही है तो (परमात्मा के) सच्चे प्रेम से ही बेचैन बन। ससार को झूठ समझ कर तू गुरु के उपदेशानुसार अपने (हृदय-रूपी) घर मे (आत्म-ज्ञान मे) ही मस्त रह, इस प्रकार आत्मज्ञान अपना कर तू अन्य (ससार

की वातों से) अनजान वन जा तथा इस अजगैव इसरार (अदृष्ट रहस्य) का वर्णन किसी से भी मत कर ॥ ६६७ ॥

कूडी कल्प न करि, सति ज्ञाणी सन्सार खे ।
सामी आणि सुर्ति खे, उल्टाए अन्तरि ।
जाग्री द्रिसु अख्युनि सॉ, हाजुरि पहिंजो हरि ।
मेट भोलाओ धरि, त मुक्तो ममत्व खों थिएं ॥ ६६८ ॥

सामीजी जीव को उपदेश देते कहते है कि ससार को सत्य मानकर तू उसके झूठे प्रपच मे मत पड़, वलिक अपनी दृष्टि को (सासारिकता से) हटाकर भीतर की ओर कर, एव भ्रम को मिटाकर (स्वय को) धारण कर (पहचान) तो तू ममता से मुक्त हो जायगा । और जाग्रत होकर अपने परमात्मा को अपनी आँखो से अपने ही सामने देख लेगा ॥ ६६८ ॥

कूड़ो ज्ञाणु सनेहु, सामी हिन सन्सार जो ।
अची ठग्र वाजीअ में, करे वेसाहु न वेहु ।
द्रीदइ आत्म धन खे, सभि छल वल सा छेहु ।
द्रोरे लहु सो द्रेहु, जिसे तुहिंजो सुप्री ॥ ६६९ ॥

सामीजी मनुष्य को उपदेश देते हुए कहते है कि इस ससार के स्नेह को झूठा समझ । इसकी कपटवाजी मे आकर इस पर विश्वास मत कर वैठ, क्योकि यह अपने छल-वल से तेरी आत्मा-रूपी सम्पत्ति को हानि पहुंचायेगा, अत जिस देश में तेरा प्रियतम है, उसे ढूंढ़ ले ॥ ६६९ ॥

कूड़ो वखेड़ो, अथी माया मोह जो ।
समुझी कढु सामी चए, झुगे मों झेडो ।
करि कृपा सॉ मोकिरो, वेसासी वेड़ो ।
त नेडे खों नेड़ो, सन्मुख द्रिसे सुप्री ॥ ६७० ॥

सामीजी मनुष्य को उपदेश देते कहते है कि इस माया-मोह का प्रपच सर्व झूठा है, अत तू सोच-विचार कर अपने (हृदय-रूपी) घर से द्वैत निकाल, अपने (सद्गुरु की) की कृपा से उसे (हृदय-रूपी घर को) विश्वास से विशाल वना ले तो तुझे अपना प्रियतम समीप से भी समीप (अत्यन्त ही निकट) दिखायी दे ॥ ६७० ॥

कूडी कथ म कथि, दरि दरि देवाननि जॉ ।
मिली साध संगति सॉ, मन पहिंजे खे मथि ।
अहिडो वेलो हथि, मोटी डेंदुइ कीन की ॥ ६७१ ॥

सामीजी जीव को उपदेश देते हुए कहते है कि तू पागलो की तरह द्वार-द्वार भटक कर झूठी बकवास मत कर, बल्कि साधुओ के सग से अपने मन का मन्थन कर (आत्मा-रूपी मक्खन प्राप्त कर), क्योकि यह समय (मानव-शरीर) फिर लौट कर नही आयगा ॥ ६७१ ॥

कूडी कल्प करे, थो वहे कूड़े वहण मे ।
जीएं सुम्हियो स्वप्न जो नाना रूप धरे ।
जाग्रये बिना न थिए, अविद्या पटु परे ।
सामी तद्धी ठरे, जद्धी पर्चो द्रिसे पाणखे ॥ ६७२ ॥

सामीजी मनुष्य को उपदेश देते हुए कहते है कि तू झूठी माया के झूठे प्रवाह मे अपने को बहाकर नष्ट हो रहा है। जिस प्रकार सोया हुआ व्यक्ति सपने मे नाना प्रकार के रूप धारण करता है, उसी प्रकार अज्ञान की नीद मे तू भी नाना प्रकार के रूप धारण कर भटक रहा है। (ऐ जीव !) जागृत होने के सिवा (ज्ञान प्राप्त किये बिना) तुम्हारी अविद्या का आवरण नही हटेगा। तुझे शीतलता तब मिलेगी, जब तू सतुष्ट होकर अपने स्वरूप को देखेगा ॥ ६७२ ॥

कूड़ो मोहु म करि, मता लहर मझि लुढी वञे ।
नाना ख्याल फिटा करे, हिकु ख्यालु खसम जोधरि।
बिना भजन हरि, ब्या सभि ब्रन्धन जीअ जा ॥ ६७३ ॥

(सामीजी उपदेश देते है कि ऐ जीव) तू झूठे मोह मे मत पड, कही ऐसा न हो कि तू (माया-रूपी) प्रवाह मे बह जाए। तू नाना प्रकार के अन्य विचार छोडकर, केवल परमात्मा-सम्बन्धी विचार धारण कर, क्योकि परमात्मा के भजन के सिवा अन्य सभी प्रकार के विचार जीव के लिए बन्धन ही है। ॥६७३॥

कोहु करे अभिमानु, काया माया कुल जो ।
इस्थित रह्यो कोन को, मीरु मलकु सुल्तानु ।
समुझी द्रिसु सामी चए, अथी फानी समु जहानु ।
पाए आतम ज्ञानु, कल्पत कढु अन्दर मों ॥ ६७४ ॥

सामीजी उपदेश करते हैं—(ऐ जीव) तू काया, माया तथा कुल पर व्यर्थ ही गर्व क्यो कर रहा है? ज़रा सोच-समझकर देख कि यह ससार क्षणभगुर है, यहाँ मीर, मलक (राजा) तथा सुल्तान तक भी स्थिर नही रह पाये हैं, अत तू भी हृदय से प्रपंच निकाल कर आत्मज्ञान प्राप्त कर ले ॥६७४॥

कोहु करे अभ्यासु, मूर्ख माया मोह जो।
सामी सभेई कथा, जहि रण मे रोले नासु।
मिली साधसंगति सॉं, करि ब्रारीअ मझि निवासु।
त चेतनु चिदाकासु, द्रिसे पंहिजे घर मे ॥ ६७५ ॥

सामीजी जीव को उपदेश देते कहते है कि ऐ मूर्ख, इस माया ने सर्व (जीवो) को (ससार-रूपी) वन मे भटका कर नष्ट कर दिया है, फिर भी तू इस मोह एव माया का अभ्यास क्यो कर रहा है ? तू तो साधुओ का सग कर तथा अपने भीतर ही निवास कर (अन्तर्मुखी बन कर आत्मावलोकन कर) तो तुझे अपने (हृदय-रूपी) घर मे ही चेतन चिदाकाश दिखाई देगा ॥६७५॥

कोहु करे कूडी, हार सींगार सुहाग्र रे।
रोलि न मानुष्य देहि खे, ममत्व मझि मूढ़ी।
जाग्री कढु अन्दर मो, अविद्या अरूड़ी।
लाए लिव गूड़ी, सामी चए मिलु शाह सॉं ॥ ६७६ ॥

सामीजी जीवात्मा को सबोधित करते कहते है : ऐ झूठी, तू (आत्मज्ञान-रूपी) सुहाग से वचित होकर झूठे हार-श्रृगार क्यों कर रही है ? (अर्थात् आत्मज्ञान से वचित होकर झूठी माया मे अपने आप को क्यो भुलाये बैठी हो ?) । ऐ मूर्ख ! तू ममता मे पड़कर अपने मानव-शरीर को मत भटका (भ्रमित कर), वल्कि जागृत होकर अपने हृदय से अप्रिय-अविद्या निकाल ले तथा गभीर स्नेह से अपने (आत्मज्ञान रूपी) राजा से मिल ले ॥६७६॥

कोहु करे वलु छलु, मूर्ख मन जे भांइ तू।
दोसाणीअ दर्ब्रारि मे, थीदुइ सभु अदलु।
रोअदे रतु अख्युनि मो, पाए पंहिजो फलु।
सामी समुझी हलु, दीख्या वठी गुरखों ॥ ६७७ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है ऐ मूर्ख तू मन के वश मे होकर छल-वल क्यो कर रहा है ? क्योकि परमात्मा के दरबार मे तेरा पूरा-पूरा न्याय होगा तथा अपने (वुरे) कर्मो के फल को प्राप्त कर तू खून के आँसू वहाने लगेगा । अत अब से ही गुरु से दीक्षा (उपदेश) लेकर सोच-समझकर आचरण कर ॥६७७॥

कोहु करे हैं-हैं, मूर्ख मन जे भाइ तू ।
जगतु सभु झूठो अथी, करे द्रिसु अन्भय ।
जीए लहर समुद्र जी, रूप धरेथी लय ।
तीएं साक्षीअ रे शै, सामी अथी कान का ।। ६७८ ।।

सामीजी उपदेश देते कहते हैं ऐ मूर्ख, मन के वशीभूत होकर तू व्यर्थ ही हाय-हाय क्यो कर रहा है ? ज़रा अर्न्तमुखी बन कर देख ले कि यह सारा ससार झूठा है । जिस प्रकार समुद्र की लहर, रूप धारण कर उसी मे लय हो जाती है, उसी प्रकार परमात्मा के सिवा किसी भी वस्तु का अस्तित्व नही है ।।६७८।।

खपति मझि खुही, रोलि न पहिंजो पाण खे ।
मोटी ईंदुइ कीन की, अहिंडी मौज मुई ।
मिली वठु महबूब साॅ, दिलि मों कढी दुई ।
मतां कालु कुही, अचे विझेई ओचितो ।। ६७९ ।।

सामीजी जीवात्मा को उपदेश देते कहते है कि प्रपच मे पडकर अपने आप को मत भटका । ऐ भाग्यहीना ! यह मौज व आनन्द (मानव-शरीर) तुझे फिर नही मिलेगा । अत हृदय से द्वैत निकाल कर अपने प्रियतम से मिल ले, कही ऐसा न हो कि मृत्यु आकर अचानक ही तुझे कत्ल कर दे ।।६७९।।

खुही करि म खोटु, कहिं साँ कण जेतिरो ।
जाणी मौतु मथे ते, मन्दाईअ खों मोटु ।
भेटे वठु भर्म रे, घूँघट खोले घोटु ।
त फिरी तोखे फोटु, जम जगाती न डिए ।। ६८० ।।

सामीजी जीवात्मा को उपदेश देते कहते है · ऐ भाग्यहीना तू किसी के साथ रत्तीमात्र भी कपट मत कर । अपने सिर पर मृत्यु को उपस्थित जानकर, बुराई से बच एव भ्रमरहित होकर (अज्ञान-रूपी) घूंघट हटा-कर अपने प्रियतम से मिल ले, तो तुझे फिर कभी करालकाल यातनाएं न देगा ।।६८०।।

गणित्यूं कोह गण, थो मूर्ख पहिंजे मन मे ।
घटि वधि थीदुइ कीन की, तोडे मूहं ते हथ हणे ।
ब्रजे जी ब्रांभणु चए, सभुको ब्रारि खणे ।
जे तोखे वाक्यु वणे, त इस्थति रहु अन्दर मे ।। ६८१ ।।

सामीजी उपदेश देते कहते हैं ' ऐ मूर्ख, तू अपने मन मे अव क्यो चिन्ता कर रहा है ? अव चाहे तू कितना भी पश्चाताप करेगा, पर तेरी (यातनाएँ) कम-ज्यादा नही होगी, क्योकि कहा जाता है कि जो जैसा बोयेगा वैसा ही पायेगा। यदि यह वात तुझे ठीक लगे, तो अपने भीतर ही स्थित रह ॥६८१॥

ॻणिती करि फिटी, अन्दरि ड्रिसु अॻणत खे ।
सामी सन्तनि साँ मिली, समुझु ग़ाल्हि चिटी ।
जिनजी ममत्व मिटी, से राजा रावल देसजा ॥ ६८२ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है (ऐ जीव) तु चिन्ता त्यागकर अपने भीतर चिन्तारहित (परमात्मा) को देख तथा सन्तो से मिलकर यह वात अच्छी तरह से समझ ले कि जिन (जीवो) की ममता मिट जाती है वे ही रावल (अनन्त) नगर के शासक बन जाते हैं ॥६८२॥

गुजरी सा गुजरी, बाकी रखु रहति साँ ।
वञी साध सगति मे, सामी पउ किरी ।
त पर्ची पाण प्री, खणी वठनी हथ साँ ॥ ६८३ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं (ऐ जीव) बीती को बिसार कर आगे की सुध ले तथा साधुओ के पास जाकर उनके (पैरो पर) गिर जा, तो परमात्मा प्रसन्न होकर तुझे अपने ही हाथो से उठा लेंगे ॥६८३॥

गैरत गन्दु म विझु, मूर्ख मेड़े घर मे ।
जन्मनि जे जन्जाल जो ईहा ड्याई अथी ब्रिजु ।
समुझी करि सामी चए, तू दौड़णु खों धीजु ।
त सिर ते साक्षी सिजु, प्रघटु थिएई पाणही ॥ ६८४ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है ऐ मूर्ख, द्वैत-रूपी कीचड़ (हृदय रूपी) घर मे इकट्ठी मत कर, क्योकि यह द्वैत ही (आत्मा और परमात्मा को भिन्न समझने की भावना) जन्म-जन्मान्तरो के झझटो का बीज (कारण) है, अतएव इस वात को समझकर तू (योनियो मे) भटकने से मुक्ति पा ले। द्वैत के नाश होते ही (ज्ञान-रूपी) सूर्य स्वयं ही प्रगट हो जायगा ॥६८४॥

घुरे कोहु धणी, मूर्ख माया राम खों ।
विया पिटीदा केतिरा, मुहं ते हथ हणी ।
तू भी नीदे कीन की, कोढ्री साणु खणी ।
सारि सम्भारि धणी, त सुखी थिए सामी चए ॥ ६८५ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं- ऐ मूर्ख, तू परमात्मा से अपार धन-सम्पत्ति की माँग क्यों करता है। कितने ही (वैभवशाली) यहाँ से पश्चाताप करते खाली हाथ चले गये है। तू भी अपने साथ एक फूटी कौड़ी तक नही ले जायगा, अत शीघ्र ही परमात्मा का स्मरण कर ले ताकि तू सुखी बन जाए ॥६८५॥

चकुमकु चलाए, जीए जड लोहे खे।
तीएं आत्मा देहि खो, कार्य कराए।
समुझी द्रिसु सामी चए, मुहुं मढीअ पाए।
ममत्व मिटाए, सदा माणे सान्ति सुखु ॥ ६८६ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है कि जिस प्रकार चकमक जड़ लोहे को चलायमान करता है उसी प्रकार ही (चैतन्य) आत्मा (जड़) शरीर से सभी कार्य कराती है। अत (ऐ जीव) इस बात को समझकर ममता मिटाकर, आत्मावलोकन कर, जिस से तू सदैव ही शान्ति-सुख का आनन्द मना सके ॥६८६॥

चकुमकु चलाए, जीए जड़ लोहे खे।
तीए चेतन सभ खो, क्रिया कराए।
समुझी द्रिसु सामी चए, मुहु मढीअ पाए।
ड्रीओ जग्राए, कढु अन्धेरो अन्दर मो ॥ ६८७ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि जिस प्रकार चुम्बक जड लोहे को चलाता है उसी प्रकार चेतन (आत्मा) (जड शरीर से) सभी कार्य कराता है। (ऐ जीव) इस बात को सोच-समझकर आत्मावलोकन कर तथा (ज्ञान का) दीपक जलाकर भीतर से (अज्ञान-रूपी) अन्धकार निकाल दे ॥६८७॥

चर्या छड्रि चवणु, दमु मारे रहु दम मे।
सहजे करि सामी चए, साक्षीअ जो सुमिरणु।
कढी वठु कल्पत रे, महबत साणु मखणु।
भौंकणु ऐ भवण, अथी कम कुतनि जो ॥ ६८८ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है कि ऐ मूर्ख, बकवास छोड़ दे। शान्त होकर अपने आप मे ही स्थित रह। शीघ्र ही परमात्मा का स्मरण कर तथा प्रेम से द्वैत-रहित, (आत्मज्ञान-रूपी) नवनीत निकाल, क्योकि बकना एव भटकना तो कुत्तो का ही काम है ॥६८८॥

चर्या थी चन्चलु, खोहि न मानुष्य देहि खे ।
मिली वठु महबूब साँ, छड्डे सभु छलु-वलु ।
अञु कल्ह अचे ओचिते, कन्दुइ कालु कतलु ।
पवदुइ पोइ पटलु, सिज लथे सामी चए ॥ ६८९ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि ऐ पागल, तू चंचल बनकर अपने मानव-शरीर को नष्ट मत कर, बल्कि सब प्रकार के छल-कपट त्यागकर प्रियतम से अभिसार कर ले, क्योंकि आज नही तो कल मृत्यु आकर तुझे अचानक ही नष्ट कर देगी। जब तेरा (जीवन-रूपी) सूर्य अस्त हो जायगा तब तुझे (मानव-शरीर के महत्व) का पता चलेगा ॥६८९॥

चर्या नितु चोटी, कोहु पटाए काल खाँ ।
हून्दे ब्रलु निब्रलु थिए, ख्वाहिश रखी खोटी ।
खाई थीउ खावन्द जी, रुखी-सुखी रोटी ।
ईन्दुइ कोन मोटी, समय हे सामी चए ॥ ६९० ॥

सामीजी कहते हैं-ऐ मूर्ख, तू नित्य ही मृत्यु से अपनी चोटी क्यो खिचवाता है ? (बार-बार मृत्यु का शिकार क्यो बनता है) तू झूठी इच्छाओ को धारण कर बल होते हुए भी निर्बल बन रहा है। तू तो रूखा-सूखा खाकर परमात्मा का बन जा क्योकि यह समय (मानव शरीर) लौटकर नही आयेगा ॥६९०॥

चरी कोहु चए, थी दरि दरि हालु हबीब जो ।
जे तोखे प्यास पसण जी, त धन्धा कीअ धए ।
सामी सुपिर्युनि सां, छड्डे ठाह ठहे ।
पंहिजीअ मझि पए, त लहे सुखु सुहाग जो ॥ ६९१ ॥

सामीजी जीवात्मा को उपदेश देते कहते है, ऐ पगली, तू द्वार-द्वार अपने प्रियतम का हाल क्यो पूछ रही है ? यदि वास्तव मे तुझे प्रियतम-दर्शन की प्यास है, तो फिर (सासारिक) व्यवसाय क्यो कर रही है ? जब तू बाह्याडम्बर छोडकर, अपने ही भीतर पैठकर देखेगी तब ही तुझे प्रियतम से सुहाग का आनन्द प्राप्त होगा ॥६९१॥

छ अठारह चारि ग्रालिह चवनि था हिकिडी ।
दरि दरि देवाननि ज्याँ, नीहकु कोन निहारि ।
गुर्गाम पंहिजे वर मे, गैबी गोतो मारि ।
त पूरणु पारि उर्वारि सामी डि्से सुप्री ॥ ६९२ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि छ. शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते है कि (आत्मा को पाने के लिए) पागलो की तरह द्वार-द्वार व्यर्थ ही मत भटकते रहो, वल्कि ऐ गुरुमुख, अपने (हृदय-रूपी) घर मे रहस्यमयी डुबकी लगाकर देख तो तुझे ससार-रूपी समुद्र से पार लगानेवाले पूर्ण प्रियतम दिखाई देगे ॥६९२॥

छ अठारह चारि, ग्गाल्हि चवनि था हिकिडी ।
दरि दरि देवानिनि ज्याँ, नाहकु कीम निहारि ।
मिली साध सगति साँ, बेहदि ड्रीओ ब्रारि ।
त बीठे मंझि बजारि, सामी ड्रिसे सुप्री ॥ ६९३ ॥

सामीजी कहते हैं कि छ शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते है कि (आत्मा को पाने के लिए) पागलो की भाँति द्वार-द्वार मत देख, बल्कि साधुओ के सम्पर्क से अनन्त (ज्ञान-रूपी) दीपक जला ले तो तुझे (ससार-रूपी) बाजार मे खडे रहने पर भी प्रियतम दिखाई देंगे ॥६९३॥

छ अठारह चारि, गाल्हि चवनि था हिकिडी ।
पुठी ड्रेई पाण खे, पलि पलि कीन पुकारि ।
सामी साध संगति जी, दीख्या हृदय धारि ।
वाच सभोई वारि, लेखणि वठी लख्य जी ॥ ६९४ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं—(ऐ जीव) छ शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक वात कहते है, कि तू अपने भीतर स्थित स्वरूप से मुख मोड़कर, उसे ही बार-बार बाहर मत पुकार, बल्कि सन्तो का सगकर, उनके दिये उपदेश को हृदय मे धारण कर तथा भटकना छोड़कर ज्ञान का रास्ता अपना ॥६९४॥

छ. अठारह चारि, ग्गाल्हि चवनि था हिकड़ी ।
पूरणु ज्ञाणु परमात्मा, नाना भर्मु निवारि ।
मिली माया मोह साँ, हीरो जन्मु न हारि ।
साझुरि पाण सम्भारि, मता पवे पोइ ड्रुखनि मे ॥ ६९५ ॥

छः शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते है कि परमात्मा को पूर्ण जानकर, नाना प्रकार के भ्रमो का निवारण कर ले। मोह एव माया से प्रेम कर हीरे के समान (मानव) जीवन मत नष्ट कर। शीघ्र ही अपने आपको सम्भाल ले क्योकि कही ऐसा न हो कि वाद मे तुझे दु ख उठाने पड़े ॥६९५॥

छः अठारह चारि, गाल्हि चवनि था हिकिड़ी ।
भग़ति करे भग़िवन्त जी, नाना भर्मु निवारि ।
मिली माया मोह सॉ, हीरो जन्मु न हारि ।
साञुरि पाणु सम्भारि, मता पवे पोइ दुखनि मे ॥ ६९६ ॥

छ शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही वात कहते है कि (ऐ मनुष्य) नाना प्रकार के भ्रमो का निवारण कर, भगवान की भक्ति कर। मोह-माया मे पड़कर हीरे के समान अमूल्य मानव-जीवन को मत गँवा, वल्कि शीघ्र ही अपने स्वरूप को सम्भाल (पहचान) ले, कही ऐसा न हो कि वाद मे तू दु.खो मे पड़ जाए ॥६९६॥

छ. अठारह चारि, गाल्हि चवनि था हिकिड़ी ।
सामी वसे सुप्री, पछिनता खो पारि ।
हेड्डे होड्डे हथिरा, विना मर्म न मारि ।
निर्मलु नेण निहारि, त घर मे ड्रिसे सोझिरो ॥ ६९७ ॥

सामीजी कहते है—छ शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही वात कहते है कि प्रियतम (परमात्मा) नश्वरता से परे तथा सर्वव्यापक है, अतएव (ऐ मनुष्य) तू विना सोच-समझ के उसे यहाँ-वहाँ मत ढूंढ, वल्कि अपने निर्मल नेत्रो से आत्मावलोकन कर तो तुझे हृदय-रूपी घर मे वह प्रकाशमान दिखाई देगा ॥६९७॥

छः अठारह चारि, गाल्हि चवनि था हिकिड़ी ।
सामी सुञ वसव जे, वेही ड्रिसु विच कारि ।
केरु करे सिधि सभ खे, आहे कहिं आधारि ।
समुझी मामत्व मारि, त माणे सुखु स्वरूप जो ॥ ६९८ ॥

सामीजी कहते हैं कि छ शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही वात कहते हैं -(ऐ जीव) तू एकान्त तथा वस्ती के वीच वैठकर देख कि कौन समस्त कार्य सिद्ध करता है तथा (यह ससार) किसके आधार पर स्थित है। ये समस्त वाते समझकर, ममता मिटा, तो तुझे स्वरूप-सुख का अनुभव होगा ॥६९८॥

छ. अठारह चारि, गाल्हि चवनि था हिकिडी ।
सामी हिन सन्सार जो, ड्रिठो सभु विसारि ।
दीख्या ड्राति गुरूअजी, हर्दमि हृदय धारि ।
दोस्त जे दर्वारि, पहुचे पूरणु पाकु थी ॥ ६९९ ॥

सामीजी कहते हैं कि छ शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते हैं,(ऐ जीव) तूने जो कुछ इस ससार मे देखा है, उसे भूल जा तथा हरदम गुरु की दी हुई दीक्षा (उपदेश) को हृदय मे धारण कर तो पूर्ण एवं पवित्र होकर अपने प्रियतम के दरबार मे पहुँच सकेगा ॥६९९॥

छः अठारह चारि, शाल्हि चवनि था हिकिड़ी ।
हेड्रे होड्रे हथिरा, बिना मर्म न मारि ।
सामी सन्तनि साँ मिली, मन मे ड्रिसु मुरारि ।
शहरु बहरु बाजारि, आहे जहिंजे आसिरे ॥ ७०० ॥

सामाजी कहते है कि छ शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते हैं (ऐ जीव) तू बिना सोच विचार के परमात्मा को यहाँ-वहाँ मत ढूंढ, बल्कि सन्तो का सग कर, उस मुरारी को हृदय मे ही देख जिसके आसरे ही शहर, समुद्र, बाजार (सब कुछ) स्थित है ॥ ७०० ॥

छड्रि ब्राहर जी ब्राणि, सामी चयो सतिगुरूअ ।
ड्रांवण ज्याँ पाण खे, ताणे मझि न ताणि ।
उल्टी लहु अन्दर मो, खिम्या खुशीअ जी खाणि ।
मिली मौजा माणि, सुरह सिधि स्वरूप साँ ॥ ७०१ ॥

सामीजी कहते हैं, (ऐ जीव) सद्गुरु ने कहा है कि तू बाह्य-प्रपच छोड दे । मकडी की भाँति स्वय ही अपने आप को (माया-रूपी) जाल मे डालकर बेचैन मत बन, बल्कि अन्तर्मुखी होकर प्रसन्नता एव आनन्द की खान (आत्मानन्द) ढूंढ ले तथा साक्षात् स्वरूप से मिलकर आनन्द का उपभोग कर ॥ ७०१ ॥

छड्रि वड्राई वाउ, काया माया कुल जी ।
सामी थीदुइ कोन को, हरि बिना हमिराउ ।
मिली साध सगति साँ, साझुरि करि समाउ ।
अहिड़ो दिलबरु दाउ, मोटी ईंदुइ कीन की ॥ ७०२ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है, (ऐ जीव) तू काया, माया तथा कुल की प्रशसा (बडप्पन) छोड दे क्योकि प्रभु के सिवा तेरा कोई भी हमसफ़र नही होगा । अतएव तू साधुओ से मिलकर शीघ्रातिशीघ्र उसका (प्रभो का) स्मरण कर ले, क्योकि ऐ दिलबर ! ऐसा सुन्दर अवकाश (मानव शरीर) तुझे फिर नही मिलेगा ॥ ७०२ ॥

छड्रि वरु वकरु वाउ, कूडो माया मोह जो ।
सामी सिक सचीअ सॉ, सरणि गुरूअ जे आउ ।
अथी मुहबु मिलण जो, ईहो ऐनु उपाउ ।
मतां पोइ पछिताउ, करे जूणि भवण मे ॥ ७०३ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है (ऐ जीव) झूठी माया-मोह के झूठे दांव-पेच छोडकर, सच्चे स्नेह से युक्त होकर गुरु की शरण मे आ, क्योकि प्रियतम से मिलने का यही शुद्ध साधन है। कही ऐसा न हो कि अन्य योनियो मे भटकने पर तुझे पश्चाताप करना पडे ॥ ७०३ ॥

छड्रे खुदीअ जो ख्यालु, हलु हेठाहीअं हलीमु थी ।
हिन खुदीअ सभि खराबु कया,अथी किवरु वड्रो कालु।
निउतु मझो निहालु, थीदे अल्वति आदिमी ॥ ७०४ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है-(ऐ जीव)तू अह (अहकार अभिमान) त्यागकर सबके साथ नम्रतापूर्वक व्यवहार कर क्योकि अभिमान ही महाकाल है जिसने सबको नष्ट कर दिया है। परन्तु नम्रता से तुझे आनन्द प्राप्त होगा और तू मानव बनेगा ॥ ७०४ ॥

छड्रे वरु वकडु, खणे पेरु प्रियनि ड्रे ।
त सहजे मुपिर्यनि जो, सामी लहे तडु ।
मोटी तोखे मूड्रु, जमु जझाती न करे ॥ ७०५ ॥

सामीजी कहते है (ऐ जीव) तू वक्रगति को त्याग कर, प्रियतम की ओर अपने चरणो को अग्रसर कर तो तुझे सहज ही प्रियतम मिल जायगा तथा फिर यम तुझे कदापि यातनाएँ न देगा ॥ ७०५ ॥

छड्रे हठु हई, ब्राभणु चए ब्रधु तुरहो ।
पहुँची पारि प्रियनि खे, सुल्ह करि सही ।
वेर्युनि जे वेहे मे, कंदीअ कोहु रही ।
वेढ्रुइ ड्रीहु लही, पोइ कुटीदइ कोप्री ॥ ७०६ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) जीवात्मा को उपदेश देते कहते हैं कि तू घमण्ड छोड़कर (दृढता-रूपी) तुरहा बाँधकर (ससारसागर के उस) पार पहुँचकर शीघ्र ही अपने प्रियतम (परमात्मा) को प्राप्त कर ले। ससार-रूपी वैरी के पडोस मे रहकर तू क्या करेगी? (संसार को वैरी कहा गया है क्योकि वह उसे माया मे उलझाकर नष्ट कर देता है)। आयु-रूपी दिन के अस्त होते ही कठोर काल आकर तुझे मारेगा ॥ ७०६ ॥

छद्रे हठु हंई, मिली वठु महबूब सॉ।
फिटी करि फुर्सत खे, वेदुइ द्रींहु लही।
जाग्री जग्रु स्वप्न जो, सामी करि सही।
मता पोइ रही, पए वसि वेर्युनि जे ॥ ७०७ ॥

सामीजी जीवात्मा से कहते है कि तू हठ त्यागकर प्रियतम से अभिसार कर ले। तेरा जीवन-रूपी दिन अस्त हो जायगा, अत तू व्यर्थ समय मत गँवा (आलस्य त्याग दे) जागृत होकर स्वप्नवत् ससार की वास्तविकता को जान ले। कही ऐसा न हो कि बाद मे तू दुश्मन (ससार की विषय वासनाओ) के हाथ मे पड़ जाए ॥ ७०७ ॥

छाखों मेडे मालु, तू पाधेरू पन्ध जो।
कही न्यो कीन को, मणनि मो मिशकालु।
बुरो तनी जो हालु, जंहिजो लेखो प्यो लखनि सॉं॥ ७०८ ॥

सामीजी कहते है,(ऐ जीव) तू इस (ससार) से जानेवाला है, फिर क्यो इतनी वस्तुएँ एकत्र कर रहा है? कोई भी अपने इकट्ठे किये हुए ढेर-मे से रत्ती मात्र भी नही ले जाता है। जिन लोगो को (सासारिक वस्तुओ का) हिसाब करना पडता है, उनकी दशा अत्यन्त ही बुरी होती है, अर्थात् जो सासारिक प्रपच मे लीन रहते है उन्हे अन्त समय मे अनेक कष्ट उठाने पड़ते है ॥ ७०८ ॥

छाखों मेड़े मालु, साणु हलदुइ कीन की।
बिना नाले नाम जे, अथी जग्रु सभु जन्जालु।
छद्रे खामु ख्यालु, जाग्री जपि हरि नाम खे ॥ ७०९ ॥

सामीजी कहते है (ऐ जीव) तू (सासारिक) वस्तुएँ क्यो एकत्र कर रहा है? ये सभी तेरे साथ तो चलेगी ही नही। प्रभो के नाम के सिवा सारा जगत मात्र झझट ही है, अतएव तू व्यर्थ के विचार त्यागकर, जागृत होकर हरि नाम का जाप कर ॥ ७०९ ॥

छाखों थो सोरे, सिमर्णयूं समुझ रे।
साधन सुपिर्युनि रे, अथी सभि ओरे।
मिली साध सगति सॉ, कल्पत कढु कोरे।
त झूले हिन्दोरे, सामी अन्भय सार जे ॥ ७१० ॥

सामीजी जीव को उपदेश देते कहते है कि तू विना सोच विचार के (आत्मज्ञान-रहित) मालाएँ क्यो फेर रहा है। (सद्गुरु रूपी) प्रियतम के सिवा और सभी साधन तुझे उलझन मे डालनेवाले हैं, अत तू साधुओ

का सग कर (हृदय से) माया की मलीनता निकाल दे और आत्मतत्त्व-रूपी झूले मे झूल अर्थात् आत्मानन्द मे मस्त रह ॥ ७१० ॥

छोथो ड्रुक पाए, पई माया मोह मे ।
मिली वञु महबूब साँ, सामी लिव लाए ।
कालु तुहिजे कन्ध ते, खर्चु थो खाए ।
मता विञाए, हीरो वञी हथनि मो ॥ ७११ ॥

सामीजी जीव को उपदेश देते कहते है कि तू मोह-माया के वशीभूत होकर इतनी दौड-धूप क्यो कर रहा है ? तू सच्ची लगन से अपने प्रियतम से अभिसार कर ले क्यो कि तेरे कन्धे पर सवार मृत्यु तेरे (जीवन रूपी) खर्चे को खा रही है, अत कही ऐसा न हो कि तू (मानवजीवन-रूपी) हीरा हाथ से गँवाकर जाए ॥ ७११ ॥

रचियो मन जग़तु, अणहून्दो अविद्या करे ।
समुझी ड्रिसु सामी चए, तू कढी ममत्व मतु ।
त अन्भय आत्म तत्वु, हाजुरु ड्रिसे हय ते ॥ ७१२ ॥

मन ने अविद्यावश मिथ्या ससार की रचना की है। सामीजी उपदेश देते कहते है, (ऐ जीव) तू ममता निकाल, सोच-विचार कर देख तो तुझे अन्त स्थित आत्मा प्रत्यक्ष दिखाई दे ॥ ७१२ ॥

रचियो मन जग़तु, अणहून्दो सन्सारु सभु ।
समुझी ड्रिसु सामी चए, तू कढी ममत्व मतु ।
मिली महद जननि साँ, कढु कूडो कल्पतु ।
त अन्भय आत्म तत्वु, प्रतक्षु ड्रिसे पाण मे ॥ ७१३ ॥

मन ने ही इस मिथ्या ससार की रचना की है, अत. सामीजी उपदेश देते कहते हैं, (ऐ जीव) तू ममता मिटाकर सोच-विचार कर देख तथा महात्माओ से मिलकर झूठे भ्रमो का परित्याग कर ले, तो तुझे स्वय मे ही स्थित आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष दिखाई दे ॥ ७१३ ॥

लेखा लिखणु छड्रि, अन्दरि ड्रिसु अलेख खे ।
जीअन्दे हिन जहान मो, सामी समुझी लड्रि ।
अनल जाँ आकास मे, केवल कुटी अड्रि ।
पाणु तनी साँ गड्रि, नीह जनी जो नाथ साँ ॥ ७१४ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है कि (ऐ जीव) तू (सासारिक) लेखे लिखना छोड दे (अर्थात् मायावी प्रपच का त्याग कर) । लेखो से परे

परमात्मा को अपने ही भीतर देख। जिन्दा रहते हुए ही इस ससार का परित्याग कर ले (सासारिक बन्धनो से अपने को मुक्त कर ले)। अनल पक्षी की तरह आकाश मे ही अपनी कुटिया बना (आत्मज्ञान मे ही लीन रह) तथा जिन लोगो का परमात्मा से प्रेम है, उन्ही के साथ समागम कर ॥ ७१४ ॥

लेखा लिखण छद्रि, कूड़ा माया मोह जा।
खणी विझन्दइ ओचिते, द्राइणि पहिंजे खद्रि।
मिली साध सगति साँ, प्रेम पीघोरा अद्रि।
पाणु तनी साँ गद्रि, नीहु जनीजो नाथ साँ ॥ ७१५ ॥

सामीजी कहते हैं (ऐ जीव) तू झूठी माया एव मोह के लेखे लिखना छोड दे क्योकि यह (माया-रूपी) डायन तुझे अचानक ही गर्त मे डाल देगी, अत तू साधुओ से मिलकर, उनके सग से प्रेम-रूपी झूले की रचना कर (परमात्मा के प्रेम-रूपी झूले मे झूल) तथा उन लोगो के साथ जा मिल जिनका परमात्मा से ही प्रेम है ॥ ७१५ ॥

लेखा सभि विसारि, अन्दरि द्रिसु अलेख खे।
देही दिब पाए करे, हिर्फत साणु न हारि।
ज्ञाण विञाए पहिंजी, सामी सारु सम्भारि।
निर्मल नैन निहारि, त पसणु थेई पिर जो ॥ ७१६ ॥

सामीजी कहते है, (ऐ जीव) तू समस्त (सासारिक) लेखे भूलकर अपने ही भीतर स्थित लेखो से परे (परमात्मा) को देख। दिव्य (मानव) शरीर प्राप्तकर इसे यो ही मत गँवा। बल्कि तू अपनी पहचान कर (अह मिटा कर) तत्त्व (आत्मा) को सम्हाल एव अपने उज्जवल नेत्रो से देख तो तुझे प्रियतम का दीदार होगा ॥ ७१६ ॥

लेखा सभि विसारि, जीअन्दे हिन जहान मो।
मिली साध संगति साँ, पहिंजो पाण सम्भारि।
देही मने पाण खे, हीरो जन्मु न हारि।
निर्मलु नैन निहारि, त सुखी थिए सामी चए ॥ ७१७ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है, (ऐ जीव) जिन्दा रहते ही तू ससार के समस्त लेखे भुला दे तथा साधुओ से मिलकर अपने आपको सम्हाल ले। अपने को शरीर मानकर हीरे (के समान मानव) जीवन को मत नष्टकर वल्कि निर्मल नेत्रो से अवलोक ताकि तू सुखी हो जाय ॥ ७१७ ॥

वञी पउ किरी, सामी सरणि गुरूअ जे।
त पर्चो कनी पंहिंजो, ड्रेई ज्ञान गिरी।
सहजे जगु स्वप्न जो, वञेई विसिरी।
अचे कीन फिरी, जन्म मरण जे चक्रमें ॥ ७१८ ॥

सामीजी जीव को उपदेश करते है कि तू गुरु की शरण मे जा गिर, ताकि वह (गुरु) सन्तुष्ट होकर, ज्ञान का उपदेश देकर तुझे अपना बना ले, जिससे स्वप्नवत् ससार को तू सहज मे ही भूल जाए तथा जन्म-मृत्यु के चक्कर मे तुझे आना ही न पड़े ॥ ७१८ ॥

वञी पउ किरी, सामी साध संगति मे।
दीक्षा वठी दिलि सॉं, लंघे पउ घिरी।
त जन्म मरण जे ज्ञार मे, अचे कीन फिरी।
सहजे कनी प्री, लाए पंहिंजो पाण सॉं ॥ ७१९ ॥

सामीजी कहते है (ऐ जीव) तू साधुओ की शरण मे जा पड तथा हृदय से दीक्षा (उपदेश) ग्रहण कर (आत्मज्ञान के मार्ग मे) प्रवेश कर। ऐसा करने से तुझे जन्म-मृत्युरूपी जाल मे न आना पडेगा तथा प्रियतम तुझे अपने हृदय से लगाकर सहज ही अपना बना लेगा ॥ ७१९ ॥

वञी पउ किरी, सामी साध सगति मे।
दीक्षा वठी दिलि सॉं, लंघे घाटु घिरी।
त सहजे जगु स्वप्न जो, वञेई विसिरी।
अचे कीन फिरी, जन्म मरण जे दु.ख मे ॥ ७२० ॥

सामीजी कहते है (ऐ जीव) तू साधुओ की शरण मे जा पड तथा हृदय से दीक्षा (उपदेश) ग्रहण कर एव (ससार को) लाँघकर (आत्मज्ञान के मार्ग मे) प्रवेश कर तो तुझे स्वप्न का ससार सहज में ही भूल जाए तथा तुझे जन्म-मृत्यु के दुखो मे फिर न आना पड़े ॥ ७२० ॥

वञी बुधु ब्राणी, त भला चवनि कोहु था।
कढी वठु मखणु तू, विझी मांधाणी।
फुर्सत छडि सामी चए, थी वञे वेहाणी।
फुटे घट पाणी, जीए रेती मुठि मे ॥ ७२१ ॥

सामीजी कहते हैं (ऐ जीव) तू सज्जन पुरुषो की वाणी जा कर मुन कि वे क्या कहते हैं। हृदय से (विचार-रूपी) मथानी द्वारा (आत्मतत्व-रूपी) मक्खन निकाल ले। आलस्य छोड दे क्योकि

जिस तरह फूटे हुए घड़े से पानी तथा मुठी मे से रेत वह जाती है, उसी प्रकार ही यह जीवन भी वीत रहा है ॥ ७२१ ॥

वञे थी गुजिरी, आर्जा हिननि हथनि मो ।
समुझी द्रिसु सामी चए, तू करे दिलि उजिरी ।
मौतु कन्दुइ मुजिरी, अची करे ओचितो ॥ ७२२ ॥

सामीजी कहते है (ऐ जीव) मन को उज्वल बना तथा (ज्ञान द्वारा) सोचकर देख कि यह आयु तेरे हाथो से गुजरती जा रही है एव अचानक ही मौत आकर तेरा बुरा हाल कर देगी ॥ ७२२ ॥

वञे थी गुज़िरी, आर्जा हिननि हथनि मो ।
सम द्रिसु सामी चए, तू करे वीचारु वरी ।
मौतु ईन्दुइ कन्ध ते, वठन्दुइ ख़बर खरी ।
जलिदी ब्रधु भरी, न त पवदे पोइ द्रुखनि मे ॥ ७२३ ॥

सामीजी कहते है (ऐ जीव) तेरी आयु तेरे हाथो से गुजरती चली जा रही है । ज़रा तू फिर से सोच-विचारकर देख, क्योकि मृत्यु तेरे कन्धे पर आकर तेरी ठीक-ठीक ख़बर लेगी । अत तू शीघ्र ही (ज्ञान तथा अच्छे कर्मों की) गठरी बाँध ले, अन्यथा तू दु खो मे जा पड़ेगा ॥ ७२३ ॥

वञे थी वहन्दी, आर्जा हिननि हथनि मो ।
जीएं जल अथाह जी, सामी वेगु नन्दी ।
तू सारि सम्भारि तही खे, आहे जही सन्दी ।
मता पोइ अन्धी, जमु करेई जुठियू ॥ ७२४ ॥

सामीजी जीवात्मा को उपदेश देते कहते है कि जिस तरह से अथाह पानी की नदी तेज़ गति से बहती रहती है उसी तरह तेरे हाथो से आयु बहती चली जा रही है । ऐ नेत्रहीना, तू जिसकी है उसे शीघ्र ही यादकर क्योकि कही ऐसा न हो कि वाद मे यम तेरे साथ बहुत बुरा व्यवहार करे ॥ ७२४ ॥

वञे थी वहन्दी, आर्जा हिननि हथनि मो ।
वेई विसारे करे, बाकी रखु रहन्दी ।
पउ प्रिया जे पेचिरे, लिव साँ लकु ब्रन्धी ।
सामी चडी मन्दी, ग्रणे कान अन्दर मे ॥ ७२५ ॥

सामीजी कहते है (ऐ जीव) तेरे हाथो तेरी आयु वहती चली जा रही है । जो आयु वीत चुकी है, उसे भूल जा, पर जो बाकी है उसका

ध्यान रख (उसे नष्ट होने मत दे) क्योंकि प्रियतम (परमात्मा) तेरी अच्छाइयों और बुराइयों की गिनती नहीं करते है, अतः तू प्रेम से प्रियतम के रास्ते पर अग्रसर हो जा ॥ ७२५ ॥

वञे थी वही, आर्जा हिननि हथनि मों ।
इस्थिरि ज्ञाणी पाण खे, तू वेठें कोहु रही ।
समुझी ड्रिसु सामी चए, करे ग्आल्हि सही ।
वेन्दुइ ड्रीहुं लही, पोइ हणन्दे हथिड़ा ॥ ७२६ ॥

सामीजी जीवात्मा को संबोधित करते रहते है कि तू अपने को स्थिर जानकर क्यों बैठ गई हो ? तेरी आयु तो तेरे हाथों से बहती चली जा रही है अतएव तू ज़रा सोचकर इस बात को ठीक तरह से जान ले क्योंकि जीवन-रूपी दिन के अस्त होते ही तू पश्चाताप करेगी ॥ ७२६॥

वञे थी वही, आर्जा हिननि हथनि मों ।
समुझी ड्रिसु सामी चए, करे ग्आल्हि सही ।
वेठें कोहु रही, इस्थिर ज्ञाणी पाण खे ॥ ७२७ ॥

सामीजी जीवात्मा को उपदेश देते कहते हैं कि तू अपने को स्थिर समझकर क्यों बैठ गई है ? जरा सोचकर इस बात को जान ले कि तेरी आयु तेरे हाथों से बहती जा रही है ॥ २२७ ॥

वञे नितु वही, थी आर्जा हिननि हथनि मों ।
समुझी ड्रिसु सामी चए, करे ग्आल्हि सही ।
मिली वञु महबूब साँ, पजई दूत दही ।
वेन्दुइ सिजु लहीं, पोइ हणन्दे हथिरा ॥ ७२८ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है, (ऐ जीव) ज़रा सोच-समझकर इस बात को जान ले कि तेरी आयु तेरे हाथों से सदैव ही बहती जा रही है। अत तू (काम, क्रोध, लोभ, मोह एव अहकार-रूपी) पाँच दूतों को मार कर प्रियतम से मिल ले, क्योंकि (जीवन-रूपी) सूर्य के अस्त होने के पश्चात् तुझे हाथ मलने पड़ेंगे ॥ ७२८ ॥

विझी माधाणी, जहिं मखणु कढियो मन मों ।
तहिंजी सुर्ति स्वरूप मे, सहजे समाणी ।
मौज तनी माणी, आत्म पद अपार जी ॥ ७२९ ॥

सामीजी कहते हैं कि जिसने (विचार रूपी) मथानी से हृदय में से (आत्मतत्व-रूपी) नवनीत निकाला है, उसका चित्त सहज ही (परमात्मा

के) स्वरूप मे समा जाता है तथा वह आत्मपद का अनन्त आनन्द लूटता है ॥ ७२९ ॥

विसा कीन विञाइ, मानुष्य देहि ममत्व मे ।
मिली वठु महबूब साँ, छद्दे हिर्सु हवाइ ।
मता अचे ओचिते, द्रेई कालु सजाइ ।
पोइ करे है है हाइ, पियो पिटीन्दे पाणही ॥ ७३० ॥

सामीजी अज्ञानीजीव को उपदेश देते कहते हैं ऐ भ्रमित, तू ममता मे पड़कर मानव-जीवन को हाथ से मत गँवा, बल्कि व्यर्थ की तमन्नाओ को त्यागकर परमात्मा से मिल ले । क्योकि कही ऐसा न हो कि अचानक ही मौत आकर तुझे सजा दे और तू हाय-हाय करने लगे तथा तुझे अपने आप को पीटना पडे (पश्चाताप करना पडे) ॥ ७३० ॥

विसा कीन विञाइ, मानुष्य देहि मर्म रे ।
मिली वठु महबूब साँ, सुतत भोले भांइ ।
अज्ञु कल्ह अचे ओचिते द्रीन्दुइ काल सजाइ ।
पोइ भवन्दे वे जाइ, समुझ रे सामी चए ॥ ७३१ ॥

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते करते है—ऐ भ्रमित, तू मर्म-हीन (विचारहीन) बन मानुष-देह को मत गँवा, बल्कि शीघ्र ही भ्रम मिटाकर परमात्मा से मिल ले। क्योकि आज नही तो कल अचानक ही कही काल आकर तुझे सजा देगा और तुझे बिना विचार के यहाँ-वहाँ भटकना पडेगा ॥ ७३१ ॥

विहाणी वञे थी, मिली वठु महबूब साँ ।
छद्दे आलिस ऊघ खे, ईहा भ्रान्हि मञे ।
जाग्री भोलु भञे, न त पोइ हणन्दे हथिरा ॥ ७३२ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है—(ऐ जीव) समय गुजरता जा रहा है, यह बात मानकर, तू नीद एव आलस्य को त्यागकर, भ्रम का नाश कर तथा जागृत होकर प्रियतम परमात्मा से मिल ले, अन्यथा तुझे हाथ मलने पडेगे ॥ ७३२ ॥

वेई सा वेई, बाकी रखु रहति साँ ।
सामी सुपिर्युनि खे, अन्दरि पसु पेही ।
मानुष्य देही, मोटी ईन्दइ कीन की ॥ ७३३ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है—(ऐ जीव) गुजरी हुई आयु की चिन्ता त्यागकर बाकी बची हुई (आयु) को सुरक्षित रख (अर्थात् आज तक यदि

तूने परमात्मा का स्मरण नही किया है तो अब से उसे पाने के लिए साधना कर) तथा अपने भीतर बैठकर (आत्मावलोकन द्वारा) प्रियतम को देख ले, क्योकि यह मानव-शरीर तुझे फिर नही मिलेगा ।। ७३३ ।।

सभ खे कालु कहारु, मारे अचे ओचिते ।
खयो वञे क्षण मे, जुआनु ब्रुढो ऐ ब्रारु ।
छदु तमा तन धन जी, तू भी थीउ त्यारु ।
मता करे इतिबारु, सामी वेहे स्वास ते ।। ७३४ ।।

सामीजी कहते हैं कि कठोर काल अचानक ही आकर सबको मारता है । यह बालक, जवान अथवा वृद्ध को एक ही क्षण मे उठाकर ले जाता है । अत (ऐ जीव) तू भी अपने इन श्वासो पर विश्वास मत कर तथा तन-धन की इच्छा त्यागकर जाने की तैयारी कर ले ।। ७३४ ।।

सामी अलखु अपारु, मन, वुद्धि वाणीअ खो परे ।
व्यापी रहियो विश्व में, साक्षी सृजणहारु ।
मिली साध सङ्गति सॉं, तू करि गुसे खे गारु ।
त दोस्त जो दीदारु, ड्रिसे हिननि अख्युनि सॉं ।। ७३५ ।।

सामीजी कहते हैं कि प्रत्यक्ष सृजनहार (परमात्मा) अलख व अनन्त है, वह मन, वुद्धि और वाणी से परे है एव ससार भर मे व्याप्त है । अत (ऐ जीव) तू क्रोध को नष्टकर, साधुओ का सगकर इन्ही नेत्रो से उसका दीदार कर ले ।। ७३५ ।।

सामी कीन सड्राइ, ज्ञानी पण्डतु पाण खे ।
इन्हीअ ममत्व मुठा केतिरा, तूं समुझी पाणु पचाइ।
आज्ञा मने अगस्त जॉं, अविद्या सिन्धु सुकाइ ।
झाती झरोके पाइ, त सन्मुख ड्रिसे सुप्ती ।। ७३६ ।।

सामीजी जीव को उपदेश देते कहते है कि तू अपने को ज्ञानी व पण्डित मत कहला, क्योकि इसी मोह ने कितने ही (लोगो) को नष्ट कर दिया है। अत तू सोच-समझकर अपने (ज्ञान) को पचा तया अगस्त्यऋषि की भाँति अविद्या-रूपी समुद्र को सोख कर अपने (हृदय-रूपी) झरोखे मे झाँककर देख तो तुझे प्रियतम सन्मुख दिखाई देगा ।। ७३६ ।।

सामी कोहु मनन, करे थो कल्पति जो ।
दु.खी ज्राणी पाण खे, घुमे घर दर बनु ।
अविद्या अन्दर मे रखी, सिधि करे साधनु ।
जिए अलेपु गगनु, तिएं तू साक्षी सदा ।। ७३७ ।।

सामीजी उपदेश देते कहते है (ऐ जीव) तू आकाश की भाँति सदैव ही निर्लिप्त एव प्रत्यक्ष है, फिर भी अपने भीतर अविद्या रखकर तू (सासारिक) प्रपच का मनन क्यो करता है। और अपने को दुखी मानकर घर-घर, द्वार-द्वार और वन मे साधन कर क्यो भटकता है ॥ ७३७ ॥

सामी चए सुतनु, जपे वठु जगदीस खे ।
मोटी ईन्दुइ कीन की, अहिड़ो हथि वत्तु ।
ज्ञाणी जूठि जगत्त खे, करि सतीअ सॉ सतु ।
पोइ रोइन्दे रतु, अख्युनि मो आजजु थी ॥ ७३८ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं, (ऐ जीव) तू शीघ्र ही जगदीश्वर का जप कर ले क्योकि ऐसा समय (मानव-शरीर) फिर लौटकर नही आएगा । ससार को झूठा समझकर तू सती स्त्री की भाँति (सच्चे परमात्मा रूपी पति से) प्रेमकर, अन्यथा दुखी होकर आँखो से खून के आँसू बहायेगा ॥ ७३८ ॥

सामी छड़ि सम्बधि, जपे वठु जगदीस खे ।
मोटी ईन्दुइ कीन की, अहिड़ो दाउ हथि ।
करे कालु कल्पना, पोइ लाहीदुइ पति ।
वठी वेदुइ तिति, जिते कंहिजी कान चले ॥ ७३९ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि (ऐ जीव) समस्त सम्बन्धो को छोड़कर जगदीश्वर का स्मरण कर ले क्योकि तुझे ऐसा अवकाश (मानव-शरीर) फिर लौटकर नही मिलेगा । काल (समय) तुझे प्रथम प्रपच मे डाल कर बाद मे अपमानित करेगा तथा तुझे वहाँ ले जायगा, जहाँ किसी की भी नही चलती है ॥ ७३९ ॥

सामी ज्ञाणु असति, जगतु हे जगदीस जो ।
सन्तनि सापुरुषनि जी, अथी ईहा मति ।
समुझी प्रेम प्रतीति साँ, करे शुधु सम्बधि ।
पहुँची द्रिसे तिति, जिते साक्षीअ जो सोझिरो ॥ ७४० ।

सामीजी उपदेश देते कहते है, (ऐ जीव) सन्त-महात्माओ का यही विचार है कि जगदीश्वर के इस ससार को तू असत्य जान एव सोच-समझकर प्रेम और विश्वास से पवित्र सम्बन्ध कर, वहाँ पहुँच जहाँ प्रत्यक्ष उजाला है ॥ ७४० ॥

सामी सभि विसारि, लेखा चोखा जीअ मों।
मिली साध सङ्गति सां, पंहिंजो पाणु सम्भारि।
त दोसाणीअ दर्बारि, खासो खिल्वतुदार थिएं ॥ ७४१ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते है, (ऐ जीव) अपने हृदय से सब प्रकार के (सासारिक) लेखे भुला दे तथा साधुओ से मिलकर आप को सम्हाल तो परमात्मा के दरबार मे तुझे सम्मान प्राप्त हो ॥ ७४१ ॥

सामी सभु दीदारु, अथी अजीबनि जो।
ड्रिसे बुधे पाण थो, ब्रोले ब्रोलण हारु।
निराकारु आकारु, धारे आयो जग्र मे ॥ ७४२ ॥

सामीजी कहते हैं, (ऐ जीव) यह समस्त दीदार उसी अनोखे (परमात्मा) का है। वही देखता, सुनता तथा बोलता है (तात्पर्य यह कि आत्मा ही परमात्मा है और उसी के होने से ही मनुष्य, बोलता, देखता और सुनता है।) वह निराकार होते हुए भी आकार धारण कर इस ससार में आया है ॥ ७४२ ॥

हंई हठु निवारि, मतां ड्रिसे ड्रुखु ड्रोहाग्र जो।
छड्रे ख्यालु खलिक जो, घर पंहिंजे में घारि।
करि सींगारु मिलण जो, पुछी जेड्रियूं चारि।
त दोसु अचे दर्बारि, ड्रियेई सुखु सोहाग्र जो ॥ ७४३ ॥

सामीजी जीवात्मा को सम्बोधित करते हैं ऐ अभिमानिनी तू अभिमान त्याग दे, कही ऐसा न हो कि (इस अभिमान के कारण) तुझे (परमात्मारूपी पति के) बिछोह का दुख सहना पडे। तू सांसारिक विचार छोड कर अपने (हृदयरूपी) घर मे ही अपना समय बिता (हृदय मे स्थित आत्मा मे लीन हो।) तू अपनी समवयस स्त्रियो से (वे जीवात्माएँ जो परमात्मा से मिल चुकी हैं) पूछ कर मिलन का शृंगार कर ले तो प्रियतम तेरे (हृदयरूपी) दरबार मे आकर तुझे सुहाग का सुख दे ॥ ७४३ ॥

हंई हठु विञाइ, मतां ड्रिसे ड्रुखु ड्रोहाग्र जो।
करि अदब सां आजजी, पान्दु ग्रिचीअ मे पाइ।
खलिक सां खल्कत मे, खावन्द खे रीझाइ।
निउडी नाथु निवाइ, मता कुलजि थिएं कतार मे। ७४४ ॥

सामीजी जीवात्मा को सम्बोधित करते कहते है—ऐ अभिमानिनी, तू अभिमान त्याग दे। कही ऐसा न हो कि (इसी अभिमान के कारण) तुझे (परमात्मा-रूपी पति के) बिछोह का दुख सहना पड़े। तू अपने गले

में कपडा डाल कर (अर्थात् अत्यन्त ही दीन बनकर) सम्मान-सहित निवेदन कर। सृष्टि मे सृष्टि के जीवो (की सेवा) द्वारा सृष्टि के कर्ता को प्रसन्न कर। अत्यन्त ही दीन बनकर प्रियतम को वश मे कर। कही ऐसा न हो कि दूसरी (जीवात्माओ) की पंक्ति मे तुझे अपमानित होना पड़े ॥ ७४४ ॥

हई हठु विआइ, मतां ड्रिसे दुःखु ड्रोहाग्र जो ।
करि अदब सां आजजी, पान्दु ग्रिचीअ मे पाइ ।
मन मती छद्रे करे, चितु चर्ननि सां लाइ ।
प्रियनि खे पर्चाइ, त सामी पाए सहज सुखु ॥ ७४५ ॥

सामीजी जीवात्मा को सम्बोधित करते कहते है—ऐ अभिमानिनी, तू अभिमान त्याग दे। कही ऐसा न हो कि (इस अभिमान के कारण) तुझे (प्रियतम के) विछोह का दु:ख सहना पड़े। तू अपने गले में कपडा डाल कर (अर्थात् अत्यन्त ही दीन बनकर) सम्मान सहित निवेदन कर। तू मन की न मानकर (मन के अनुसार कार्य न कर) परमात्मा के चरणो में चित्त लगाकर उसे सन्तुष्ट कर, तो तुझे सहज-सुख प्राप्त होवे ॥ ७४५ ॥

हई हठु विआइ, साझुरि समझी पहिजो ।
दासनि जी दासी थी, शेवा सभु कमाइ ।
ब्राभणु चए ब्र्याइअ रे, चितु चर्ननि सां लाइ ।
प्रियनि के पर्चाइ, मतां रुठाई रहिजी वञे ॥ ७४६ ॥

सामीजी जीवात्मा को उपदेश देते कहते हैं ऐ अभिमानिनी तू अभिमान त्यागकर शीघ्र ही अपना (हित) सोच ले तथा (परमात्मा के) दासो की दासी बन कर उनकी सेवा का फल कमा ले (सेवा का फल प्राप्त कर)। द्वैत-रहित होकर (परमात्मा के) चरणो मे अपना चित्त लगा और उन्हे राजीकर, कही ऐसा न हो कि वे (परमात्मा) तुझसे रूठे ही रहे ॥ ७४६ ॥

हज़ारनि जी हिक, ग्राल्हि ब्रुधाई सतिगुरूअ ।
खलिक अथी खालिक मे, खालिकु मझि खलिक।
तंहिखे ड्रिसु तद्रूप थी, सामी रखी सिक ।
कोहु चटे थो चिक, छद्रे सुखु सागर खे ॥ ७४७ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि सद्गुरु ने हजार बातो की एक बात बता दी है कि सारी सृष्टि परमात्मा मे व्याप्त है तथा परमात्मा पूर्णसृष्टि मे व्याप्त है। अत (ऐ जीव) तू तद्रूप होकर सच्चे स्नेह से

उसे (सृष्टि के कण-कण मे) देख। तू क्यो व्यर्थ ही सुख के सागर (आत्मानन्द) को छोड़कर (विषय-वासनारूपी) कीचड़ चाट रहा है ? ॥ ७४७ ॥

हज़ारनि जी हिक, ग़ाल्हि बुधाइ सतिगुरूअ ।
खलिक वसे खालिक मे, खालिक मंझि खलिक ।
उल्टी ड्रिसु अख्युनि सॉं, सामी रखी सिक ।
कोहु चटे यो चिक, दरि दरि देवाननि जॉं ॥ ७४८ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि सद्गुरु ने हज़ार बातो की एक बात बता दी है कि सारी सृष्टि परमात्मा मे व्याप्त है, तथा परमात्मा पूर्ण सृष्टि मे व्याप्त है। अत: (ऐ जीव) तू आँखे उलटकर (अन्तर्मुखी होकर) सच्चे स्नेह से उसे देख, तू व्यर्थ ही पागलो की भाँति द्वार-द्वार (विषयवासना रूपी) कीचड क्यो चाट रहा है ? ॥ ७४८ ॥

शाह जो रसालो

शाह अब्दुल्लतीफ़ का जीवन और काव्य

सिन्ध आध्यात्मिक कवियो का आशियाना माना जाता है। सिन्ध के सन्त-कवियो के काव्य मे अनोखी सुन्दरता, सरसता एव मधुरता है। इन सन्त-कवियो मे शाह अब्दुल लतीफ, सचल तथा सामी साहित्य-कोष के अमूल्य रत्न माने जाते हैं। इन्हे सिन्धी काव्य की 'त्रिवेणी' व 'त्रिमूर्ति' भी कहा जाता है। इससे पूर्व 'सामी के सलोकों' का आनन्द आप ले चुके है।

शाह अब्दुल्लतीफ भटाई का जन्म सन् १६८९ ई० मे हैदराबाद जिले के हाला तालुके मे हाला-हवेली नामक गाँव मे हुआ। कहा जाता है कि उनके पिता शाह हबीब ने उन्हे वाई नामक गाँव के प्रसिद्ध विद्वान् आलम आखवन्द नूर मुहम्मद भटीअ के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा था। परन्तु शाह साहब ने 'अलिफ' उच्चारने के पश्चात् 'बे' कहने से साफ इन्कार कर दिया। भिन्न-भिन्न विद्वान् शाह साहब की शिक्षा-दीक्षा पर अलग-अलग मत रखते हैं। कुछ विद्वानो का कहना है कि वे अपने युग के महान् विद्वान् थे, तो कुछ कहते हैं कि वे अनपढ थे पर परमात्मा की ओर से उन्हे अनोखी प्रतिभा प्राप्त हुई थी। शाह साहब जब मस्ती मे आ जाते थे तब कलाम (रचना) गाते थे और उनके शिष्य वे कलाम लिख लेते थे। वे ही कलाम 'शाह जो रसालो' मे सग्रहीत किये गये हैं।

माना जाता है कि बीस वर्ष की आयु मे शाह साहब सासारिक प्रेम के शिकार हुए। कोटिड़ी के मिर्ज़ा मुगल बेग का शाह के पिता शाह हबीब पर अटूट विश्वास था। जब भी मिर्ज़ा के घर पर कोई बीमार पड़ता तो वे हबीब जी को अपने घर पर दुआ के लिए ले जाते थे। एक बार मिर्ज़ा हबीब की बेटी बीमार हुई। वे शाह हबीब को दुआ के लिए बुलाने गये किन्तु शाह हबीब भी उस समय बीमार थे अत उन्होने अपने बेटे शाह अब्दुल्लतीफ को भेजा। शाह ने जब मिर्ज़ा की बेटी को देखा तब अपनी सुध-बुध खो बैठे और उसका हाथ पकडकर कहा, 'जिसका हाथ सय्यद अपने हाथ मे लेते हैं, उसे किसी प्रकार की कोई हानि नही पहुँचती।' शाह का यह व्यवहार मिर्ज़ा को अच्छा नही लगा और उनके मन पर शाह के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। प्रेम का तीर लगने के पश्चात् शाह घर-बार छोड़कर कुछ वर्षों तक फकीरो के साथ भटकते रहे। जब

वापस घर आये तब शाह हबीब ने उन्हे शादी के बन्धन मे बाँधना चाहा। सौभाग्य से जिस मिर्जा बेग की लड़की के लिए शाह जगलो मे भटकते रहे उसी लडकी के साथ ही उनका विवाह हुआ। कहते हैं कि एक बार कुछ क्रूर अत्याचारी डाकुओ ने मिर्जा के घर पर आक्रमण किया और उनकी समस्त कीमती वस्तुएँ लेकर भाग गये। शाह ने अपनी जान की बाजी लगाकर अपने साथियो सहित डाकुओ पर वार किया, फिर भी मिर्जा का हृदय न पसीजा और वे शाह से घृणा करते रहे। इस पर शाह साहब दुखी हुए और उनके मुँह से बद्दुआ निकली, जिसके फल-स्वरूप मिर्जा किसी के हाथो मारे गये और बाद मे मिर्जा के घर की औरतो ने शाह साहब से माफी माँगी और मिर्जा की बेटी की शादी उनसे करा दी।

कहते है शाह के कोई सन्तान न थी, पर उसका उन्हे कोई दुख न था। वे कहते थे कि उनके शिष्य ही उनकी सन्तान हैं।

शाह साहब अपना काफी समय बन्दगी और कविता करने मे गुजारते थे। वे प्रकृति-प्रेमी थे। प्रकृति के सुन्दर दृश्य देखकर वे प्राय अपनी सुध-बुध खो बैठते थे। वे घटो एकान्त मे बैठकर "इन्सान क्या है ?" "ससार क्या है ?" तथा "सत्य क्या है ?", जैसे गभीर विषयो पर सोचते रहते थे। वे कोमल-हृदयी थे। पशु-पक्षियो के प्रति उनका हृदय द्रवित हो जाता था।

शाह का काव्य उनके गुणो का दर्पण माना जाता है। वे सादा जीवन व्यतीत करते थे। शाह काले धागे से सी हुई गेरुए रग की कफनी (ढीला कुर्ता) पहनते थे तथा हाथ मे एक लाठी और कमण्डल लेते थे। ये चीजें अब तक 'भट शरीफ' पर सुरक्षित रखी हुई हैं।

शाह सगीत-प्रेमी थे। वे सदैव सगीत-स्वरो मे मस्त रहते थे। कहते हैं कि सगीत सुनते-सुनते उन्होने देह त्यागी।

शाह वीतराग थे। उन्हे किसी भी वस्तु पाने की इच्छा नही रहती थी। कहते है कि उनका एक शिष्य प्रति वर्ष उनके दर्शनार्थ आता था और अपने साथ एक "खथा" (मोटा कम्बल) उपहार के तौर पर लाता था। एक बार दरिद्रता के कारण वह कम्बल न खरीद सका, अत शाह से मिलने भी नही गया। अगले वर्ष जब फिर वह शाह के दर्शनार्थ गया तब शाह ने उससे पिछले वर्ष न आने का कारण पूछा। कारण सुनकर शाह ने कहा—"वह कम्बल ही कुर्बान, जो दोस्त को दोस्त से तड़पाए।"

सिन्धी-साहित्य-शिरोमणी शाह अब्दुल्लतीफ अपनी रचनाओ मे लौकिकता से अलौकिकता की ओर प्रवृत्त दिखाई देते है। लोक-कथाओ को काव्य का रूप देकर, उन्होने न केवल लोगो का मन बहलाया है, किन्तु साथ ही साथ उन्हे आध्यात्मिक प्रेम की ओर उन्मुख किया है। शाह

साहब सूफी, रहस्यवादी और दुर्लभ आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि वाले कवि थे। उनका काव्य प्रतीकात्मक है। उनके "शाह जो रसालो" का एक-एक पद रहस्यात्मक प्रतीकवाद के ताने-वाने से बुना हुआ है। उनकी कथाओ की सांकेतिकता के दो प्रकार हैं मानव का ब्रह्मान्वेषण और ब्रह्म की किसी विशेष मानव के लिए चाह। इन दोनो प्रकारो का निर्वाह, उनकी अनेक सुन्दर उपमाओ, रूपको और दृष्टान्तो मे हुआ है। शाह ने अपने प्रेमाख्यानो मे आत्मा को नायिका के रूप मे और परमात्मा को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। ईश्वर मिलन को आतुर आत्मा लैला, मूमल, सोहिणी, समुई, नूरी और मारुई की भूमिकाओ मे उतरी है और परमात्मा क्रमश चनेसर, राणा, मेहार पुन्हुँ, तमाची और खेतसेन की भूमिकाओ मे प्रस्तुत हुआ है।

सिन्ध के सिरताज कवि शाह मे सिन्ध की सच्ची आभा तथा गरिमा दिखाई देती है। उनके काव्य के भीतरी तह मे भारत का ज्ञान, योग, भक्ति एव वैराग्य है, किन्तु बाह्य बनावट है सूफियो के प्रेम की। शाह ने अपनी जन्मभूमि की आकर्षक लोक-कथाओ को अमरत्व प्रदान किया है। सिन्ध के सूफी-कवियो मे शाह सर्वोच्च और सर्वाधिक लोकप्रिय है। वे विश्व के महानतम कवियो मे गिने जाने के योग्य हैं।

शाह द्रष्टा एव सिद्धपुरुष थे और उनके दोहे दिव्य सत्य के मुक्ता हैं। शाह को सिन्ध का 'हाफिज' कहा जाता है, क्योकि उनका 'रसालो' सिन्ध के लोगो के लिए अमूल्य निधि है, जिस प्रकार हाफिज का दीवान ईरान के लोगो के लिए रहा।

शाह चमत्कार से भरे तुकबन्द नही थे, वे सच्चे अर्थों मे एक कवि थे—एक यशस्वी तथा प्रतिभाशाली कवि। उनके रूप की झाँकी देखिये

सुहिणी-मेहार की गाथा तथा उसका आध्यात्मिक अर्थ

सुहिणी, तुला नामक एक कुम्हार की बेटी थी जो पंजाब के एक गाँव मे रहता था। मेहार का वास्तविक नाम इज्जतवेग था। वह बुखारा के एक धनी व्यापारी मिर्जा अली का बेटा था। उसका जन्म एक फकीर की आशीर्वाद से हुआ था तथा लालन-पालन वडे लाड-प्यार से हुआ था। जब इज्जतवेग बडा हुआ तब व्यापार के लिए दिल्ली गया। वहाँ पर उसने तुला कुम्हार की कला की प्रशसा सुनी। अत उसने अपने नौकर को वहाँ पर कुछ बर्तन खरीद करने के लिए भेजा। अचानक नौकर की दृष्टि वहाँ बैठी सुहिणी पर पडी। उसका सौन्दर्य देख वह हक्का-बक्का रह गया और अपने मालिक से आकर उसके सौन्दर्य की प्रशसा करने लगा। नौकर द्वारा सुहिणी के रूप का बखान सुन इज्जतवेग उसे

देखने के लिए वहाँ गया। और उसे देखकर अपनी सुध-बुध खो बैठा। उसने बुखारा जाने का विचार ही छोड़ दिया। धीरे-धीरे उसकी सारी सम्पत्ति भी खत्म हो गई। बाद मे उसने तुला कुम्हार से कुछ कर्ज लिया और कर्ज चुकाने के लिए उसके यहाँ नौकरी करने लगा।

एक दिन अवसर पाकर इज्जतबेग ने सुहिणी को अपने हृदय की बात बता दी। सुहिणी भी उस पर मोहित हो चुकी थी। इस तरह दोनो का प्रेम पनपने लगा। परन्तु सुहिणी की माता को इस बात का पता लग गया इसलिए उसने जल्दी से सुहिणी का विवाह उसके चचेरे भाई दम के साथ कर दिया। इस बात से इज्जतबेग के हृदय मे वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह जोगी बन चिनाब नदी की दूसरी ओर कुटिया बनाकर रहने लगा। शीघ्र ही उसके त्याग एव वैराग्य की प्रशसा चारो ओर फैल गई। एक दिन सुहिणी भी अपनी सहेलियो को साथ लिये उस जोगी के दर्शनार्थ गई। उसने शीघ्र ही अपने प्रियतम को पहचान लिया। अब वह हर रोज अर्द्ध-रात्रि के समय एक घडे के सहारे नदी तैरकर उससे मिलने के लिए जाती थी, और सुबह होने से पहले वापस आ जाती थी।

एक दिन जब सुहिणी अपने प्रियतम से मिलने के लिए जा रही थी, उसकी ननद ने उसे देख लिया। उसने सुहिणी को बहुत समझाया पर सुहिणी अपनी ही बात पर अटल रही। एक दिन सुहिणी की ननद ने उसका पक्का घड़ा चुरा लिया और उसकी जगह पर वैसा ही एक सुन्दर कच्चा घड़ा रख दिया। प्रेम की मस्ती मे सुहिणी को इस बात का पता तक न चला और हमेशा की तरह वह घडा लेकर नदी मे कूद पड़ी। कच्चा घड़ा पानी में पडते ही गल गया और सुहिणी बिना तुरहे (सहारे) के, लहरो के बीच डगमगाने लगी। उसने सहायता के लिए अपने मेहार को पुकारा। मेहार ने उसकी आवाज पहचानी और जिस नदी मे मल्लाह भी कूदने की हिम्मत नही कर रहे थे उसी नदी मे मेहार सुहिणी की सहायता करने के लिए प्राणो की बाजी लगाकर कूद पडा और बड़ी कठिनाई से सुहिणी से जा मिला। इस तरह सुहिणी और मेहार दोनो ही सागर मे समा गये और एक हो गये।

इस कहानी के माध्यम से बताया गया है कि प्रेम का प्रवाह समुद्र के प्रवाह से भी ज्यादा तेज होता है। सच्चा प्रेमी सदैव ही प्रेम की मस्ती मे डूबा रहता है। जो प्रेमी अहं को त्यागकर तथा सासारिक भरोसा छोडकर प्रेमसागर मे कूदता है, वह समुद्र के भँवर और मगरो से नही डरता है। (अर्थात् आध्यात्मिक रास्ते पर चलनेवाला व्यक्ति, दुःख और कष्टो से नही डरता।)

इन्सान का अस्तित्व कच्चे घड़े की तरह है, जो बाहर से बहुत ही सुन्दर है पर भीतर से तत्वहीन एव सारहीन है। मनुष्य का अहं ही उसके और परमात्मा के बीच की बाधा है। जब यह अहं रूपी घड़ा टूट जायगा तब सुहिणी रूपी जीवात्मा को ससार रूपी सागर मे परमात्मा रूपी सहायक आ मिलेगा। मनुष्य अपनी हस्ती को मिटाकर ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

वास्तव मे परमात्मा, जीव तथा सृष्टि मे कोई भेद नही है, जीव और सृष्टि दोनो परमात्मा से ही उत्पन्न हुए है। जिसे परमात्मा को पाने की उत्कण्ठा है, परमात्मा भी उससे मिलने के लिए बेचैन एव व्याकुल है।

वह तिख, वाहुड़ तिख, जिति नीहु, तिख निराली।
जिनि खे इश्कु अमीक़ जो, खिल्वत ख्याली।
वारिईं से, वाली! हियडो जिनि हथि कयो॥

समुद्र तथा नदी का प्रवाह तेज़ होता है, पर जहाँ प्रेम है, वहाँ के (प्रवाह की) तेजी कुछ निराली ही होती है। जिन्हे गहन प्रेम है, वे एकान्त मे (परमात्मा के) विचारो मे लीन रहते है। ऐ परमात्मा, मेरी यह तीव्र इच्छा है, कि जिन्होने मेरे हृदय को काबू कर रखा है, उन्हे तू मुझसे मिला दे।

वाहुड वहनि नवाँ, अबा वहु अग्रे थियो।
घर वेठियूँ घणा करियो, सरतियूँ! सङ्ग-सवाँ।
सूरत जा साहड जी, सा जे डिठी आँ।
हूंद न पलियो माँ, घिड़ो सभु घड़ा खणी॥

पानी के अनेक नये प्रवाह वह रहे हैं, पर तेज प्रवाह और भी आगे है। ऐ सखियो, तुम सब घर पर बैठकर प्रियतम के साथ सहज नाते का दम भर रही हो। यदि तुम लोगो ने उसकी सूरत देखी होती, तो मुझे कदापि वहाँ जाने से न रोकती बल्कि खुद भी घड़े लेकर (प्रेम के) समुद्र मे कूद पडती।

कन्धीअ उभियूँ केतिरियूँ, 'साहड़ु साहड़ु' कनि।
किन्ही साँगो साह जो; के 'घोरियसि' कयो घिडनि।
साहड़ु सन्दो तनि घाघाई धिडनि जे॥

अनेक (प्रेमिकाएँ प्रेम रूपी) सागर के किनारे पर खडी होकर 'प्रियतम प्रियतम' पुकार रही हैं, परन्तु उनमे से कुछ को अपने प्राणो की चिन्ता है तो कुछ "मैं मर गई तो कुर्बान हो गई" कहकर समुद्र मे कूद

पड़ती हैं। परमात्मा उन्ही के सहायक बनते है जो मुस्कराते हुए गहन समुद्र मे प्रवेश करती हैं।

बणनि वेठा कॉग, विची थी वेला करे।
घिड़ी घड़ो हथि करे, सुणी सांझीअ ब्रांग।
सेई ढूंढे सांग, जिते साहड़ु सुप्री ॥

सध्या हुई, वृक्षो पर कौए आराम करने के लिए बैठ गए। सुहिणी ने शाम की नमाज़ की बॉंग सुनी और घडा हाथ मे लेकर समुद्र मे कूद पड़ी। वह उस मार्ग को ढूंढ रही है, जिस पर उसका प्रियतम परमात्मा है।

घिड़ी घडो हथि करे, ब्रहूँ निहारे बँगु।
"सरदर कदमे यार फ़िदा शुद चि बजा शुद," वसल इहोई वँगु।
राति जनियन जो रँगु, अल्लाह ! से उकारिएं ॥

सुहिणी घड़ा लेकर समुन्दर के रुख को अच्छी तरह परख कर कूद पड़ी। "प्रियतम के कदमो पर सिर कुर्बान हुआ तो क्या हुआ ?" यही मिलन-सुख का आनन्द उठाने का रहस्य है। (कवि कहते हैं) ऐ परमात्मा, मेरी यह तीव्र अभिलाषा है कि जो रात के समय आनन्द उठाते हैं (जब ससार सोता है, तब जो जागते है) उन्हे तू पार उतार दे।

घड़ो भग्गो त घोरियो, पाणॉ हो हिजाबु।
वाजटु वज़े वुजूद मे, रहियो रूह रबाबु।
साहड रे सवाबु, आऊँ घणोईं घोरियॉं ॥

यदि घट टूट गया तो अच्छा ही हुआ, क्योकि वह मेरे लिए एक रुकावट ही था। मेरी हृदय-वीणा झकृत हो उठी है, मेरे चित्त मे (अनहद) नाद बज रहा है। सचमुच परमात्मा के (प्रेम के) सिवा मात्र बाह्य धार्मिक कर्तव्य कुछ भी महत्व नही रखते। (इस पद मे घट से तात्पर्य अहं की भावना से है। अह के नष्ट होने के बाद ही अनहद-नाद सुनाई देता है।)

घड़ो भग्गो, मुन्ध मुई, वसीला विया।
तिहॉं पोइ सुआ, सुहिणीअ सड मेहार जा ॥

जब घट टूट गया, समस्त साधन नष्ट हो गये और सुहिणी का अभिमान चूर-चूर हो गया, तब ही मेहार ने उसकी पुकार सुनी (साधक भी जब सब आशा-विश्वास छोडकर नम्र और एकनिष्ठ होकर परमात्मा को पुकारता है, तब ही उसकी पुकार परमात्मा सुनते हैं।)

पाणु न खणिजि पाण सीं, वसीला विसार।
लुड़ लँघाए सुहिणी ! पिरति विझंदीअ पारि।
से तुरतु लँघीन्दियूं तारि, उकन्ड आग्रहु जिनि सीं॥

(सुहिणी अपने आपसे कहती है) ऐ सुहिणी, तू अपने साथ अहं की भावना मत ले तथा समस्त बाहरी साधन त्याग दे, क्योंकि केवल सच्चा स्नेह ही तुझे इस गहरे समुन्दर से पारकर सकता है। वे (जीवात्माएँ) शीघ्र ही पार हो जायेंगी, जिनका सहारा, गहन प्रेम है।

कोन्हे आग्रहु अहिड़ो, जहिड़ी मुहबत मनि।
उभियूं ओरिए पार द्वे, कूडियूं कख पुछनि।
नदी तिनि नीड़ थिए, जे रीअ तुरहे तरनि।
सिक रसाणी, सुहिणी ! असलि ओशकनि।
से झलियूं कीन कुननि, पुछनि जे मेहार खे॥

(परमात्मा को प्राप्त करने के लिए) हृदय मे प्रेम के सिवा दूसरा कोई सहारा नही है (अर्थात् केवल सच्चे प्रेम से ही परमात्मा को पाया जा सकता है।) झूठी प्रेमिकाएं (ससार-प्रपच मे फँसी हुई जीवात्माएँ) इसी किनारे पर खड़ी होकर सागर पार करने के साधनों की पूछ-ताछ करती हैं, किन्तु जो प्रेमिकाएं बिना किसी साधन के कूद पड़ती हैं उनके लिए यह अथाह समुद्र एक छोटा सा नाला बन जाता है। ऐ सुहिणी, अनादि काल से लेकर प्रेमियो का सच्चा स्नेह ही उन्हे प्रियतम तक पहुँचाता रहा है। जिन्हे मेहार (परमात्मा) से मिलने की आतुरता है, उन्हे सागर के भँवर नही रोक पाते हैं।

पुछनि जे मेहार खे, पुछे से मेहार।
तुरहो तिनी बार, इश्कु जिनी खे आकिरो॥

जो (परमात्मा रूपी) मेहार के लिए तड़पते है, मेहार भी उनके लिए आतुर रहता है। जिनके पास प्रेम का मजबूत साधन है, उनके लिए तुरहा (अन्य साधन) बोझ स्वरूप हो जाते है।

साहड सा सुहिणी, साइरु पिणि सोई।
आहे निजोई गुझुः, गुझान्दर ग्राल्हडी॥

(शाह साहब कहते है) वास्तव मे जो परमात्मा है, वही सुहिणी है और वही समुद्र है अर्थात् ईश्वर, जीव और जगत् एक ही है, किन्तु यह बात गुह्य, गहन और रहस्यमयी ही है।

करग़ल कोच कुन घणा, जिति जर वाग़ू जियाईं।
पाणु उछली आव मे, वह सिरि विधाईं।
लहरियूँ लघियाई, लुत्फ़ साणु, लतीफ़ चए॥

जिस समुद्र मे कोलाहल तथा लहरो की गर्जन थी, जिसमे अनेक मगरमच्छ एव भँवर थे, उसी समुद्र मे सुहिणी स्वय कूद पड़ी, परन्तु परमात्मा की अनुकम्पा से वह उससे पार उतर गई।

दहशत दम दरियाह मे, जिति सटाणा सेसार।
बेहद वाग़ू बहर मे, हैबतनाकि हज़ार।
सारियाँ कान सरीर मे, ताक़त तव्हाँ धार।
साहड ज़ाम सतार, सिधो रसिजि सीर मे॥

जिस समुद्र की गर्जन हृदय को दहलाने वाली है, जिसमे सहस्रो शक्तिशाली मछलियाँ, तथा अनगिनत मगरमच्छ है, ऐ परमात्मा! वहाँ तेरे सिवा मैं अपने शरीर मे शक्ति अनुभव नही करती हूँ (वहाँ तेरे सिवा स्वय को हर तरह से निर्बल समझती हूँ।) अतएव ऐ लाज रखनेवाले सहायक, शीघ्र ही मुझे आकर बीच समुद्र मे मिलना।

दहशत दम दरियाह मे, जिति जायूँ जानारनि।
नको सन्दो सीर जो, मपु न मलाहनि।
दरन्दा दरियाह मे, वाका कयो वरनि।
सज़ा बेड़ा ब़ार मे, हलिया हेठ वञनि।
पुर्ज़ो पैदा न थिए, तख़्तो मझाँ तिनि।
को जो कहरु कुननि मे, विया कीन वरनि।
उते अणतारुनि, साहड! सीर लँघाइ तूँ॥

जिस समुद्र की गर्जन भय उत्पन्न करनेवाली है, जहाँ भयानक पशुओ का निवास है, जिसकी गहराई का कोई अन्त ही नही है, मल्लाह भी जिसकी गहराई को नही जानते हैं, जहाँ रक्त के प्यासे पशु चिल्ला रहे हैं, जिसमे बडे बडे बेडे (नौकाएँ) इस तरह डूब जाते है, कि उनका कोई पुर्जा तक भी नही मिलता है, जहाँ के भँवर इतने भयानक हैं कि उन मे फँसे हुए लोगो का पता तक नही चलता, वहाँ पर ऐ मददगार (परमात्मा!) तू ख़ुद आकर उन्हे पार उतार, जो तैरना नही जानते हैं (अर्थात् जो निर्बल है और जिन्हे केवल तेरा ही सहारा है)।

घेड़ा करे न घूर, तड़ु तकडि खाँ न लहे।
जंहिखे सिक साहड जी, पूरनि मथे पूर।

कारीअ राति कुननि मे, वहमनि की वहलूर।
जहिखे साणु प्रियाँ जा सूर, तंहिखे नदी नाहि निगाह में॥

सुहिणी समुद्र के बहाव को गौर से नही जांचती है। शीघ्रता के कारण वह सुरक्षा वाली जगह की परख नही करती। वास्तव में जिन्हे परमात्मा को प्राप्त करने की तीव्र उत्सुकता है, उन्हे नाना प्रकार के (परमात्मा सम्बन्धी) विचार आते रहते हैं। अन्धकारमयी रात्रि मे समुद्र के भँवर मे (परमात्मा सम्बन्धी) विचार आते रहते है। अन्धकारमयी रात्रि मे समुद्र के भँवर मे (परमात्मा सम्बन्धी) विचारो ने उसे हैरान कर दिया है (तात्पर्य यह कि परमात्मा के चिन्तन मे वह इतनी तल्लीन है कि उसे दूसरा कुछ सुझाई नही देता)। जिन्हे प्रियतम के लिए सच्ची तड़प है, उनकी दृष्टि मे समुद्र का कुछ अस्तित्व ही नही है।

जिताँ वहे, तिताँ वाट, कपर व पुछनि कूड़ियूं।
जिनखे सिक साहड जी, से घेड न पुछनि घाट।
जिन खे इश्क जी उसाट, से वाहुड भाईनि विखड़ी॥

समुद्र के जिस ओर से सुहिणी जाती है, वहाँ उसके लिए मानो मार्ग ही है। समुन्दर की गहराई की चिन्ता तो झूठा प्रेम करने वालियों, को ही होती है। जिन्हे प्रियतम से मिलने की तड़प (बेचैनी) है वे तो न बहाव देखती है, न किनारा। जिन्हे प्रेम की प्यास है, वे समुद्र को एक की ही छलांग से पार करनेवाली (नाली) ही मान लेती हैं।

कँहि जँहि घेड घिड़ी, जिअ अवतड़ान तड़ु थियोसि।
सालुम वेई सुहिणी, कुननि की न कयोसि।
उहिसु अखिड़ियुनि में, प्रियाँ जो पियोसि।
हकाँ हकु थियोसि, हुई तालिबि हक जी॥

सुहिणी ने जिस समुद्र मे प्रवेश किया, उसे पार करना वास्तव मे कठिन था, पर सुहिणी के लिए (सच्चे प्रेम के कारण) वह सरल हो गया। फलत सुहिणी सुरक्षा से पार उतर गई। समुन्दर के भँवर उसका कुछ भी बिगाड न सके। वह अपने प्रियतम के लिए तड़प रही थी, अत. प्रियतम की ओर से उसे न्याय प्राप्त हुआ और उसकी आँखो मे प्रियतम का नूर झलकने लगा।

तोड़ी तोडाईं, नीहं नवाजी सुहिणी।
ग्रिचीअ हाए हबीब जो, लाइकु लधाईं।
सो तडु सोठाईं, जेड्रांहि आलमु आसिरो॥

सुहिणी आदि से ही प्रेम की मारी हुई थी अतः उसने प्रियतम के गले का सुन्दर हार (मिलन का शृंगार) ढूंढकर, प्राप्त कर लिया। उसने वह रास्ता खोज निकाला, जहाँ संसार का सहारा (परमात्मा) है।

सारी सिखु सबकु, शरीअत संदो सुहिणी !
तरीकतां तिखो वहे, हकीकत जो हकु।
मअरिफत मरकु, असलु आशिकन खे॥

(शाह साहब कहते है) ऐ सुहिणी, तू सर्वप्रथम शरीअत (धार्मिक कर्तव्य) का पाठ पढ। तरीकत (आध्यात्मिक रास्ते) से हकीक़त (परमात्मा के स्वरूप) का ज्ञान जोरदार है। मअरिफत (आत्मा-परमात्मा का मिलन) प्राप्त करना आदि आशिको का कर्तव्य है।

नोट सूफी मतानुसार साधक को परमात्मा तक पहुँचने के लिए चार मंजिलें पार करनी पड़ती हैं. १. शरीअत यह पहली अवस्था है जिसमे साधक धार्मिक कर्त्तव्यो का पालन करता है। २. तरीकत यह साधना की दूसरी मंजिल है। इस मंजिल पर पहुँचकर साधक पढ़ी हुई धार्मिक बातो का आचरण करता है। ३. हकीकत इस मंजिल तक पहुँचने वाले साधक को हकीकत (सचाई) का पता चलता है अर्थात् उसे ब्रह्मस्वरूप का ज्ञान होता है। ४ मअरिफत यह अंतिम मंजिल है। इस मंजिल पर साधक परमात्मा से मिलकर एक हो जाता है।

सियारे सिह रात मे, जा घिड़ी वसन्दे मीहँ।
हलो त पुछू सुहिणी, जा कर ज्ञाणे नीहँ।
जंहि खे रातो-दीहँ, मेहारु ई मन में॥

विषम सर्दी के मौसम मे रात के समय, जोरदार वर्षा की परवाह न कर जिस सुहिणी ने समुद्र मे प्रवेश किया, चलो, उससे प्रेम के विषय मे पूछ-ताछ करें, क्योकि वही सच्चे प्रेम की ज्ञाता है। उसके मन मे दिन-रात मेहार (परमात्मा) का ही निवास है।

मुहब्बती मेहार जू, दिलि अन्दर दून्हियू।
आणियो विझे आर मे, लुहाणो लूहियू।
जे साहड़ जूं सूहियूं, सीर सिराडो तिनि खे॥

जिनके हृदय मे प्रियतम मेहार के लिए प्रेमाग्नि धधकती रहती है, उन्हे वह प्रेमाग्नि लाकर (प्रेम के) गहन समुद्र मे फेंकती है। जिन्हे परमात्मा का ज्ञान है, उनके लिए बीच समुद्र धरती सा बन जाता है।

अदियू ! सभ अन्दाम, चडनि मुहिंजा चोरिया ।
लारुनि जा लँव लाई, सा कीअँ आछियाँ आम ।
लग्रियस जँहिं जे लाम, सो दिलासा दोस्त मुजे ।।

ऐ सखियो, मेहार के (प्रेम रूपी) घटियोंने मेरे शरीर के समस्त अगो को स्पन्दित कर दिया है। इन घटियो ने जो प्रेम की भावना मेरे हृदय मे जागृत की है, उसका वर्णन मैं आम लोगो से किस तरह करूँ ? जिस (परमात्मा) का भरोसा मैं लिए हुए हूं, वह प्रियतम मुझे हर तरह से आश्वासन भेज (दे) रहा है।

कारा कुनकारी तुशी, जत कारेहर कडिका ।
मई मते महिराण मे, अचनि दुपारा दडिका ।
वीन्दे साहड साम्हाँ, झोल ड्रिनसि झड़िका ।
खरिकिनि जा खड़िका, सूहा थियड़सि सीर मे ।।

अंधकारमयी रात्रि मे, अंधकारमय भँवर मे, जहाँ वासुकी नाग की तरह दहकाने वाली भयानक गर्जन हो रही है, मस्त सागर मे जहाँ दोनो ओर से (आगे और पीछे से) खतरे दिखाई दे रहे है, ईश्वर की ओर जाती हुई सुहिणी को भयानक लहरे पटक रही हैं, वहाँ (प्रेम रूपी) घटियो की आवाज उसे बीच समुद्र मे सहायक हुई है। (तात्पर्य-प्रेम की घटियो की आवाज मे तल्लीन सुहिणी भयानकता का अनुभव तक नही करती)।

हुन भरि सुयमि होइ, सुते संभारनि जी ।
चितु चडनि चोरियो, जौक थियड़मि जोइ ।
मुहबती मेहार जी, बाल्लाह पियमि बोइ ।
वञी रूअबरूअ, देखियाँ दोस्त मेहार खे ।।

(सुहिणी कहती है) मैंने इस पार (ससार मे) सोते हुए अचानक प्रेम का शोर सुना। (प्रेम रूपी) घटियो ने मेरे चित्त को जागृत किया और स्नेह ने मेरे हृदय मे निवास किया। परमात्मा की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मुझे प्रियतम मेहार की सुगन्ध का अनुभव हुआ है, अतः मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मैं प्रत्यक्ष जाकर मेहार का दीदार करूं।

मेहाराँ मिरक, पीताईं प्रेम जी ।
तँहि मुन्ध मतवाली की, सन्दीअ साअ सुरिक ।
लग्रियसि काम किरिक, लोहाँ तिखी लतीफ़ चए ।।

शाह साहब फरमाते हैं सुहिणी ने मेहार से उस प्रेम-सुधा का पान किया है, जिसके स्वाद ने उसे मस्त बना दिया है। उसे लोहे से भी तेज़ प्रेमरूपी बाण लगा है।

घिडिया से चढिया, इंअ अथेई।
मए मते महिराण मे, पौ टिपो ड्रेई।
त मेहारु मिलेई, सभूड़ो सेणाह सी॥

देखा गया है कि जो (प्रेम रूपी) समुद्र मे कूद पड़ते हैं, वे ही पार उतरते हैं। अतः तू इस गहन सागर मे कूद पड़ तो तुझे भी मेहार, समुद्र पार करने के साधन (तुरहो) सहित उपस्थित मिलेगा। (अर्थात् जो जीवन की बाज़ी लगाकर परमात्मा से मिलने के लिए चल पड़ते हैं उन्हे परमात्मा आकर सहायता देता है।

अखियूं मुह मेहार डॅं, रखियूं जिनि जोड़े।
रे सन्ड, सब्बदु चए, तारि घिड़नि तोड़े।
तिन्ही खे ब्रोड़े, साअरु सघे कीन को॥

शाह कहते हैं जिन्होने अपनी आँखें मेहार (प्रियतम) से जोड रखी हैं, वे यद्यपि बिना तैरने के साधन के भी गहन सागर मे कूद पड़ती है, फिर भी सागर उन्हे डूबो नही सकता है, अर्थात् जिनका परमात्मा मे अटल विश्वास है, उनका ससार-सागर कुछ भी बिगाड नही सकता है।

जेहर लोकु झप करे, जरो जाग्र न होइ।
ओहीर अचियो, अदियूं! पहु प्रियाँ जा पोइ।
जे कचो चवनिमि कोइ, त मरकु भाँयाँ महिणो॥

(सुहिणी कहती है) ऐ सखियो, जिस समय लोग गहन निद्रा मे सोये रहते हैं, उस समय प्रियतम के विचार मुझे बेचैन बना देते हैं। यदि लोग मुझे ताने मारते हैं, तो उसमे भी मैं गर्व का अनुभव करती हूँ (अर्थात् सच्चे प्रेमी, समाज की निंदा एव आलोचना की परवाह तक नही करते।)

दाइमु जा दरियाह मे, सा मछी किनी कोहु?
आहिस ई अन्दोह, पाणी किथे त पियाँ॥

मछली जो सदैव ही समुद्र मे रहती है, फिर भी उसमे से दुर्गन्ध क्यों आती है? उसे चिन्ता है कि पानी कहाँ से पियूं। (मनुष्य अज्ञानी इसी कारण है कि वह हर जगह व्यापक परमात्मा के प्रकाश को पहचानता नही है और उसे पाने के लिए भटकता रहता है।)

अखियूँ पेर करे, वञिजे वो वञिजे।
सुप्रियाँ जी गाल्हड़ी, कहिं साँ कीन कजे।
लिकाए लोक खाँ, गुझड़ी गोठ निजे।
महबतीअ मेहार जो, सूरु न कहिं सलिजे॥

प्रियतम की ओर आँखो से चलकर जाना चाहिए। महबूब के प्रेम की चर्चा किसी से भी नही करनी चाहिए बल्कि उसे लोगो से छिपाकर अपने (हृदय रूपी) गाँव मे रखनी चाहिए। प्रियतम के प्रेम की पीड़ा का भेद किसी से न कहना चाहिए।

खामाँ, पचाँ, पज़ुराँ, लुछाँ ऐ लोचाँ।
तन मे तौस प्रियनु जी, पियाँ, न डापाँ।
जे समुड मुँह करियाँ, तोइ सुरक्याई न थिए॥

(सुहिणी विरह-व्यथा का वर्णन करती कहती है) मैं प्रियतम के लिए दुखी, व्यग्र और बेचैन हूँ, मैं तडप रही हूँ। मेरा अन्तर प्रियतम को पाने के लिए इतना प्यासा है कि यदि मैं पूरा समुद्र भी पी जाऊँ, तो वह मेरे लिए एक घूंट तुल्य भी न होगा।

कारी रात, कच्चो घडो, ऊणटीह ऊँदाही।
चण्ड नालो नाहि को, दरियाह दड लाई।
साहड़ कारण सुहिणी, आधीअ थी आई।
ए कमु इलाही, न त कुननि मे केरु घिड़े?

उनतीस (तारीख) की अधकारमयी रात्रि है, सुहिणी के पास कच्चा घडा है। चन्द्रमा का नामोनिशान नही है और समुद्र गरज रहा है। सुहिणी आधी रात के समय प्रियतम से मिलने के लिए समुद्र के किनारे आयी है। (शाह साहब फरमाते हैं) यह सब परमात्मा की दी हुई प्रेरणा से ही हुआ है, अन्यथा वह कैसे इस भयानक भँवर मे कूद पड़ने की हिम्मत करती।

ओरारि न परारि, वेचारी वह विच मे।
सुकोअ ड्रिनी सुप्री, ब्रियो मिड़ोई तारि।
तू घिड़ु, कीम निहारु, बूड्रन्दनि सीं ब्राझू करे॥

बिचारी सुहिणी न इस पार है, न उस पार, बल्कि बीच समुद्र मे गोते खा रही है। उसका प्रियतम उस पार किनारे पर खडा है किन्तु बीच मे केवल पानी ही पानी है। (कवि कहते हैं) ऐ सुहिणी तू यहाँ-वहाँ

साहड धारॉ सुहिणी, आहे मे आज़ार।
ड्रम पासे मे दुखन्दो, सिहत वटि संघार।
तोड्रीअ सन्दे तन जी, दवा मे दीदार।
जे पसे मुह मेहार, त सिघ्याई सघी थिए॥

(सुहिणी के प्रेम की प्रशसा करते हुए शाह साहब फर्माते है) प्रियतम के सिवा मानो सुहिणी अस्वस्थ है। ड्रम (सासारिक विषय वासनाओ) के समीप वह मानो रोगग्रस्त है किन्तु मेहार (परमात्मा) के समीप वह हर तरह से रोग-मुक्त (स्वस्थ) है। सुहिणी के शरीर की पुष्टि (शक्ति) प्रियतम का दीदार है, यदि वह उसका मुखड़ा देखे, तो शीघ्र ही स्वस्थ हो जाए।

जाँ जॉ हुई जीअरी, वेठी न वेसान्दि।
लुढी लहरिन पाँदि, मुयाई मेहार ड्रे॥

जब तक सुहिणी जीवित थी, तब तक वह चैन से नही बैठी अर्थात् प्रियतम को पाने का यत्न करती रही। मरने के समय भी वह लहरो के आँचल मे मेहार (परमात्मा) की ओर बढ़ती रही।

सुर यमन कल्याण

'यमन' का अर्थ है "मन को नियन्त्रित" करना। इस स्वर मे शाह साहब ने बताया है कि मन को वश मे किस प्रकार किया जा सकता है। उनका कहना है कि क्रोध दुख का मूल है और सतोष मे ही सुख समाया हुआ है। जिनके सम्पर्क से मन की कलुषिता बढती है, उनसे किनारा करना चाहिए, पर जिनके सम्पर्क से मन पवित्र होता है, उनके समीप कुटिया बनाकर रहना चाहिए।

इस स्वर मे शाह साहब ने सूफियो की विशेषताओ का भी वर्णन किया है। वे कहते हैं सच्चा सूफी ससार से दूर आध्यात्मिक मस्ती मे मस्त रहता है। वह धार्मिक बन्धनो से आज़ाद है तथा सदैव अपने मन पर सयम रखता है। सूफी बनने के लिए उसे ज़हर का लबालब प्याला पीना पड़ता है। उसकी दृष्टि मे यह ससार तिलिस्म का घर है, भ्रम एव धोखा है, परन्तु अह मे डूबे रहने के कारण जीव इस सत्य से अनजान ही रहते है।

तू हबीबु, तूं तबीबु, तू दर्द जी दवा।
जानिब! मुहिजे जीअ मे, आजर जा अनवा।
साहिब ड्रे शिफ़ा, मियाँ मरीज़नि खे॥

(शाह साहब परमात्मा से कहते हैं) तू ही मेरा प्रियतम है, तू ही मेरा वैद्य है, तथा तू ही मेरे दर्द की दवा है। ऐ प्राणाधार! मेरा मन अनेक प्रकार के (सांसारिक) दुखो से दुखी है। ऐ साहब! तू ही मुझे इस बीमारी से मुक्ति दे।

कानारिया कुणिकनि, जनी लोहु लिङनि मे।
मुहबत जे मैदान मे, पिया लाल लुछनि।
पाणही ब्रधनि पटियू, पाणही चिकिया कनि।
वटाँ वाङोड़ियनि, रही अचिजे रातिड़ो॥

जो (प्रेम रूपी) तीर से घायल हो गये है, जिनके हृदय मे (विरह रूपी) लोहे की नोक वाला तीर लगा है वे तड़पते रहते है। जो प्रेम के रंग मे रगे हुए प्रेम के मैदान मे बेचैन और व्यग्र होते रहते है, जो स्वय ही अपने घावो की मरहमपट्टी करते रहते है तथा अन्य इलाज करते रहते है, काश ऐसे प्रेम से घायल लोगो के पास एक रात जाकर रहे।

आयलि! उन न विसहाँ, हजू जे हारीनि।
आणियो आबु अख्युनि मे, ड्रेह खे ड्रेखारीनि।
सज्रणु जे सारीनि, से नको रुअनि, न चवनि की॥

(कवि सच्चे एव झूठे प्रेमियो के बीच का अतर बताते कहते है) ऐ माता, मैं उन (प्रेमियो) पर विश्वास नही करता जो प्रकट रूप से अश्रु-धारा बहाते हैं तथा आँखो मे आँसू भरकर ससार को दिखाते हैं, किन्तु प्रियतम को याद करनेवाले न तो रोते है, न मुख से उफ तक कहते है।

तन तबीब न तू, सुधि न लही सूर जी।
साँढ पहिंजा डबड़ा, खड्र खणी मे भून।
कान घुरिजे मूं, हयाती होतनि रे॥

(सच्चा प्रेमी सांसारिक वैद्य मे कहता है) ऐ वैद्य! मुझे जो बीमारी है, उसका इलाज तू नही कर सकेगा। तू मेरे दर्द को पहचान ही नही सकेगा, अतएव तू अपनी समस्त औषधियाँ एक गड्ढे मे दफना दे, क्योकि मुझे अपने प्रियतम के सिवा यह जीवन ही नही चाहिए।

आहे घणो अधनि जो, तर्सु तबीबनि।
कयो वसु ब्रेजनि, ताँ किरीअ रे कीन थिए॥

(सद्गुरु रूपी सच्चे वैद्यो का वर्णन करते कवि कहते हैं) वैद्यो को रोगियो (सासारिक रोगग्रस्त लोगो) पर दया आती है और वे नाना तरह के उपचार बताते हैं, पर परहेज न करने के कारण रोग नष्ट नही होता।

मत देख, वल्कि भीतर प्रवेश कर (अर्थात् अन्तर्मुखी हो) । परमात्मा डूबने वालो पर ही दया करता है ।

सुकीअ ब़ुड़नि जे, साहिड़ु साणी तिनि जो ।
लहरिन सिरि लतीफु चए, कुल्हनि चाढ़ियो ने ।
जे पुछनि पन्धु परे, तिनि उमाणे ओरहूँ ॥

जो साधक पृथ्वी पर ही डूबते हैं (अर्थात् समुद्र मे प्रवेश करने से पहले ही अपने शरीर का मोह त्याग देते हैं ।) उनका परमात्मा मददगार होता है । वह उन (साधको) को अपने कन्धे पर चढाकर लहरो से पार उतार देता है । जो उस पार के विषय मे पूछते हैं, उन्हे वह (परमात्मा) उस पार इतनी शीघ्रता से पहुँचाता है कि वे अनुभव करते हैं कि वह (मंज़िल) अत्यन्त ही समीप थी ।

सांभारा सड कयो, उभा चवनिमि : "आउ" ।
हिकु तिखो ई तारि वहे, ब़ियो, लुड लहरियू ऐ वाऊ ।
साणी जिनि अल्लाह, ब़ुड़ॉ से न ब़ुड़न्दियू ॥

(सुहिणी कहती है) मेरा महवूव उस पार खडा, मुझे पुकार कर कह रहा है, "यहाँ आ ।" पर एक तो गहन समुद्र तेज़ी से वह रहा है, तेज़ लहरो का शोर मचा हुआ है तथा तूफान ज़ोरो से लग रहा है किन्तु मैं समझती हूँ कि जिनके साथ प्रियतम (परमात्मा) है वे कदापि न डूबेगी ।

हारी ! हकु रखीजि, सांभारा साहिड़ जो ।
ख्वाब, ख्याल, खतिरा, तिनि खे तर्कु ड्रिईजि ।
अन्दर आईनो करे, परि मे सो पसीजि ।
इन्हीअ राह रमीजि, त मुशाहिदो माणी ॥

ऐ नादान ! उस पार खड़े प्रियतम की पहचान रखना । जो तेरे हृदय मे भ्रम, भुलावा एव भय हैं उन सबको त्याग दे । अपने हृदय को दर्पण की भाँति उज्ज्वल बना और उसी मे उसे (प्रियतम को) देख । जब तू यह रास्ता अपनाएगी तब ही तू उसके दर्शन का आनन्द उठाएगी ।

कच्चे साणु कही, पको पुछे न सुहिणी ।
लंघियो लुडु लतीफ चए, वछारनि वही ।
सा कीअँ नीह नहे ? जहिं खे नीह नधो खणी ॥

सुहिणी कच्चा घड़ा लेकर समुद्र की ओर जाती है, उसे पके घड़े की परवाह नही है । वह तेज़ सागर से गुज़र कर मेहार की ओर जा

रही है। भला जिसे ईश-प्रेम ने अपने वश मे कर लिया है, वह कैसे अन्य प्रेम के वश मे हो सकती है ?

कच्चो ताँ कोहु ? पको नजरु प्रीअ जो।
साहुडु मुहिंजो सुप्री, ड्रम ड्रिठेई ड्रोहु।
जे छटो जे छोहु, त पूरीन्दियसि पारि मणी॥

(सुहिणी कहती है) यह घट कच्चा है तो क्या हुआ ? प्रियतम की दृष्टि तो पक्की और मजबूत है (अर्थात् यदि साधक पर परमात्मा की कृपा-दृष्टि है, तो साधन चाहे कितना भी कमजोर हो, उसको उसे चिन्ता नही रहती) परमात्मा मेरा प्रियतम है, सासारिक बिषय वासनाओ को देखना भी गुनाह है। चाहे तेज आँधी चलती हो, या तेज सागर बहता हो, फिर भी मैं उस पार अवश्य जाऊँगी।

तन खे कढे तारि माँ, सुलहु साहड़ु जो।
उति आड्रो अचे कीन को, ब्रलीपो ब्रिअे जो।
मेहर ! कजि मुहिंजो, को ओकरु कन्ही आरताँ॥

प्रियतम की अनुकम्पा ही इस शरीर (जीव) को (ससार रूपी) सागर से पार कर सकती है। यहाँ दूसरे किसी का सहारा काम नही आता। अतएव ऐ मेहार ! तू ही मुझे इस सागर से मुक्ति दिला।

लहरिन लख लिबास, पाणी पसणु हेकिडो।
ऊन्हे तहिं अमीक जी, वारे छडु विमास।
जिति नाहि निहायत नीह जी, खोइ उत पहिंजी खास।
तडनि जी तलाश, लाहि त लालन लग्रि थिएं॥

यद्यपि पानी एक है किन्तु लहरो के लाखो रूप है (उसी तरह परमात्मा एक है पर उसके अनेक रूप और रग हैं)। अत (ऐ साधक) तू इस गहन सागर का सोच-विचार ही त्याग दे। जहाँ प्रेम का कोई अन्त नही है, वहाँ तू अपनी समस्त इच्छाओ को भी नष्ट कर दे। सुरक्षित स्थान की खोज करना छोड दे तो तू परमात्मा के समीप पहुँचेगा।

नको सन्धो सूर जो, नको सन्धो सिक।
अदद्रु नाहि इश्कु, पुज्राणी पाण लहे॥

न दर्द का कोई अन्त है, न स्नेह का ही कोई अन्त है। वास्तव मे स्नेह अकथ है, वह अपना अत स्वयं ही जानता है। (दूसरा कोई उसका अत नही पा सकता है)। (तात्पर्य यह कि प्रेम चाहे कितना भी गहन हो, फिर भी वह अपूर्ण ही है। वास्तव मे प्रेम का अन्त पाना असभव ही है, क्यो कि वह परमात्मा की तरह ही बेअन्त है।)

(तात्पर्य यह कि सच्चे पथ-प्रदर्शक सासारिक रोगग्रस्त जीवो पर दयाकर उन्हे उससे मुक्त होने के नाना प्रकार के साधन वतलाते हैं पर वे उन पर आचरण नही करते)।

पाडे वेॼ हुआमि, तॉं मूँ मूर न पुछिया।
तेलाही पियामि, मोरेसर अख्युनि मे॥

मेरे पडोस मे ही (आध्यात्मिक-पथ-प्रदर्शक रूपी) वैद्य थे, परन्तु उनसे मैने (परमात्मा के विषय मे) कुछ पूछ-ताछ नही की, यही कारण है कि मेरी आँखो मे मोतियाविन्द पड़ गए हैं (अर्थात् मुझे स्वरूप-ज्ञान नही है)।

वढे जिनि विधियासि, वरी वेॼ ई से थिया।
तुर्तु ॿधाऊँ पटियूँ, रोजि कयाऊँ रासि।
हीअडा तिन्ही पासि, घारि त घायलु न थिएं॥

जिन्होने मुझे घायल कर दिया था (अर्थात् जिन्होने मेरे हृदय मे प्रियतम के लिए प्रेम जागृत कर, तडप पैदा की थी) वे ही बाद मे मेरे वैद्य बन गए (परमात्मा से सयोग कराने मे सहायक हुए)। शीघ्र ही मेरी मरहम-पट्टी की (परमात्मा से मिलने का रास्ता वताया) और एक ही दिन मे मुझे ठीक कर दिया (ज्ञान की आँखे खोल दी)। ऐ दिल! तू अब उन्ही वैद्यो (सद्गुरुओ) के समीप रह, जिससे फिर तुझे किसी तरह का घाव न लगे।

सरु जो सवियो, सज्ञणिनि, ॿेहर ॿाणु भरे।
छिम्कियो सो छोह मॉं, कडि कडि कानु करे।
जेरा जिगरि बुकियू, लघे पियो परे।
लग्रो जीअ जड़े, ताणियाँ तीरु न निकिरे!

प्रियतम ने दुबारा (प्रेम रूपी) तीर ऐसा कस कर मारा कि वह तेजी से छम-छमकर मेरे जिगर, गुर्दा आदि को पार कर चला गया। वह तीर मेरे हृदय में ऐसे धँस गया है कि निकालने पर भी नही निकलता है।

पतगु चाई पाण खे, त अची आग्रि उझाइ।
पचण घणा पचाइया, तू पचण खे पचाइ।
वाकुफि थी विसाइ, आग्रि न ॾिजे आम खे॥

(शाह साहब प्रेमी से कहते हैं) यदि तू अपने को पतग कहलाता है तो आकर आग को वुझा (अर्थात् परमात्मा से मिलने का प्रयत्न कर विरह रूपी आग को बुझा दे।) इस आग ने अनेको को जलाया है पर तू इस

आग को आत्मसात् कर (अर्थात् विरहरूपी अग्नि को सहर्ष सहन कर) सावधान रह, इस (विरहाग्नि) को अपने नियन्त्रण मे रख, उसका भेद लोगों को मत दे।

जे ततो तनु तनूर जिअ, त छण्डे साणु छमाइ।
आणे आग्नि अदब जी, ब्रारे जानि जलाइ।
बुरकआँ अन्दरि बाज़ियूँ, पंहिजूँ सभु पचाइ।
लुछणु लंव, लतीफ़ चए, पधरि हद्रि म पाइ।
मतां लोक लखाइ, वसालान विच पए॥

लतीफ साहब (प्रेमी को परामर्श देते) कहते है, यदि तेरा हृदय भट्ठी की तरह तपा हुआ है, तो उसे सतोष का जल डालकर शीतल कर। सयम की आग जलाकर उसी मे अपने को जला। छिप-छिप कर (आध्यात्मिक) क्रीड़ा करता रह। अर्थात् आध्यात्मिक मजिलो को पार करता रह। अपनी व्याकुलता को कदापि प्रकट मतकर, कही ऐसा न हो कि लोगो को तेरे प्रेम का पता चल जाय जिससे तेरे (प्रियतम से) मिलने मे बाधा आ जाय।

सिरु ड्रेई सटि जोड, कंहि पर कलालनि सी।
काती करटु कपार मे, खजरु आणे खोडि।
मरणां मुंहं म मोड, वटी थी वधि लहे॥

(शाह साहब प्रेमी से कहते हैं) अपना सिर तक देकर साकी बाला से किसी भी तरह सौदा कर ले। अपने सिर मे तलवार, खजर, आरा आदि चुभा ले। मरने से मुख मत मोड क्योकि (प्रेम के) प्याले का मूल्य सिर से भी अधिक है अर्थात् सिर देने से भी यदि प्रेम मिलता है तो इस सौदे को सस्ता समझो।

सूफी सालिम से विया, जे अक्सर सी अड्रयार।
बाज़ी बाजिन्दनि खे, आहे अवेसार।
प्रियाँ सी पहकार, रिन्दीअ रसाणी कया॥

ससार से किनारा करनेवाले सूफी, सुरक्षा से पार हो गए। सूफ़ियों को प्रेम की क्रीडा कभी भूलती ही नही है। प्रेम की उस मस्ती ने उन्हे प्रियतम तक पहुँचा दिया है।

सूफी लाकोफी, कोन भांइयसि केरु।
मझियाँ ई मंझि विढे पधर नाहिस पेरु।
जिन्यनि साणुस वेरु, तिन्यनि जो वाहरु॥

(शाह साहब सूफियो की विशेषताएँ बताकर कहते हैं) सच्चा सूफी धार्मिक बाह्याडम्बरो से मुक्त रहता है अत कोई उसकी महानता को नही बूझता है (अर्थात् दिखावे से मुक्त होने के कारण लोग उसकी महानता से अनजान रहते हैं)। वह भीतर ही भीतर अपने मन से लडता रहता है, पर इस बात को रत्ती भर भी प्रकट होने नही देता है। जो उसके वैरी हैं, उनका भी वह समर्थक तथा सहायक होता है।

जे कुलाह रखी कन्ध ते, त सूफी सालमु थीउ।
विह वटी हथि करे, पुर प्यालो पीउ।
हन्धु तिन्यनि जो हीउ, जिनि हासुल कयो हाल खे॥

(ऐ सूफी) यदि तू सिर पर सूफियानी टोपी पहनता है, तो सही अर्थों मे सूफी बन। हाथ मे विष का प्याला पकड़, उसे पूरा पान कर ले। यह जगह उन्ही की है जिन्होने आध्यात्मिक मस्ती प्राप्त की है (अर्थात् आध्यात्मिक-मस्ती-प्राप्त लोग ही सूफी बन सकते है।)

आलम आऊँ साणु, भरियो थो भीर करे।
पाण न आहे ज्ञाणु, मान्डीअ मन्डु पखेडियो॥

सारा विश्व अहकार के नशे मे झूम रहा है। उसे यह ज्ञान तक नही कि यह समस्त माया उसी जादूगर (परमात्मा) की ही है।

पढ़ियो था पढ़नि, कढ़नि कीन कलूब मे।
पाणाँ ड्रोह चढनि, जीअ वरक वराईनि वितरा॥

मूर्ख जीव पृष्ठ पर पृष्ठ पढते रहते हैं, पर हृदय मे उन बातो का मनन नही करते (अर्थात् आचरण नही करते)। अत जैसे-जैसे वे पृष्ठ उलटते जाते है, वैसे-वैसे अपने पर ज्यादा अपराध (पाप) भी चढाते जाते हैं।

अखरु पढ अलफ, जो वरक सभि विसारि।
अन्दर तू उजारि, पन्ना पढ़ंदे केतिरा॥

(शाहलतीफ परामर्श देते हैं) ऐ जीव, केवल अलफ (अल्लाह) का अक्षर पढ, बाकी सभी पृष्ठ भुला दे। केवल अपने हृदय को उज्जवल कर क्योकि कितने पृष्ठ पढकर कितने पढता जायगा ?

जे हू पाईनि कानु कमान मे, त सीनो सिपर रखु।
मुंहं में माशूकनि जा, चाक चटिका चखु।
सूरीअ भाइ म शकु, आशिकु थीउ त उबहीं॥

(शाह साहब सूफी को संबोधित करते हैं) यदि वह (प्रियतम परमात्मा) धनुष पर तीर चढाता है तो तू अपने हृदय को ढाल बनाकर उसके सामने रख दे। महबूब के दिये हुए दुखो तथा यातनाओ को सहन कर। शहादत पर किसी प्रकार का सदेह मत कर (अर्थात् शहादत से निसदेह ही प्रियतम की प्राप्ति होती है)। तू सच्चा स्नेही बन तो तुझे सफलता तथा विजय मिले।

पाए कानु कमान मे मियाँ मार म मूँ।
मूँ मे आही तू, मतां तुहिंजो ई तोखे लगे॥

ऐ प्रियतम, धनुष पर वाण चढाकर मुझे मत मार, क्योकि मेरे अन्तर मे तेरा ही निवास है, अतएव कही ऐसा न हो कि तेरा तीर तुझे ही लगे।

मुहबत जे मैदान मे, सिर जो कर म सांगु।
सूरीअ सुप्रियनि जी, चढु त थिएं चागु।
इश्क़ु आहे नांगु, खबर खाधनि खे पवे॥

(शाह साहब सूफी से कहते हैं) प्रेम के मैदान मे तू अपने सिर की परवाह मत कर। प्रियतम के (प्रेम रूपी) शूली पर चढ जा तो तुझे सच्चा स्वास्थ्य प्राप्त हो (अर्थात् तेरा जीवन सफल हो)। वास्तव मे प्रेम, सर्प की भाँति है, जिसे वे ही जानते है, जिन्हे इसने डक मारा है।

अगा तो मंझाँ, कख छुते रतु निकिरे।
मुंह मे महबूबनि जा, कीअ झलीदीअ घाव।
सो तू कुर्ड़ाड़िया, सिकण जूँ सिधूँ करी॥

(ऐ सूफी) तेरे शरीर से तो मात्र तिनके के स्पर्श से ही खून निकलता है तो फिर प्रियतम द्वारा दिये दुखो को कैसे सहन कर सकेगा? क्यो व्यर्थ स्नेह की रट लगाए हुए हो?

जेकी सिकणु सिखु, नात पसु सिकन्दिए।
पासे तिनीन म लिकु, नीहुं न सुञाणनि जे॥

(ऐ सूफी) या तो स्नेह मे तडपना सीख या तो तडपने वालो को देख। परन्तु जो प्रेम की तडप से अपरिचित है, उनके समीप मत छिप।

आशिक़! माशुकनि जो, वठी वेहु दुकाणु।
पइजि पेशु प्रियुनि जे, पटीअ विझी पाणु।
त तू तनीनि साणु, सदा रही सुरखरो॥

ऐ प्रेमी ! तू महबूब के मार्ग को पकड़कर बैठ जा। प्रियतम के आगे गले में आँचल डालकर मस्तक झुका ले तो सदैव ही सम्मानित रहेगा।

सूर जिनीनि खे सरियो, सरी तिनि सिहत।
मिठी मुसीबत, आहे आशिकनि खे ॥

जिन्हें दुःख मिलते है, उनका ही बाद में हित होता है। यही कारण है कि प्रेमियो को मुसीबतें प्यारी लगती हैं।

नमी खमी निहारि तू, द्रुमस द्रोलाओ।
थीए साबाओ, जे उभिएं इन्हीअ पेर ते ॥

(ऐ सूफी) नम्रता और क्षमा को अपना कर चल, क्योकि क्रोध से दुःख और उलझने प्राप्त होती हैं। यदि तू इस व्यवहार पर दृढ रहे, तो तुझे वास्तविक पहचान प्राप्त हो जायगी।

खमु ! खमन्दनि खटियो, हारायो होड़नि।
चखियो न चून्दनि, हो जो साउ सबिर जो ॥

(ऐ सूफी) धैर्य धारणकर, क्योकि धैर्य धारण न करनेवालो ने बाजी हार दी है। बकवास करनेवालो ने तो धैर्य का स्वाद चखा तक नही है।

वेठे जिनीनि वटि, दुखन्दो द्राढो थिए।
सा मजिलस ई मटि, जे हासिलु होइ हजार जो ॥

(ऐ सूफी) जिनके सम्पर्क से दुःख बढ़ जाते हैं, उनसे दूर रह, चाहे तुझे हजारो रुपयो का भी फायदा हो।

वेठें जिनीनि वटि, दुखन्दो दूरि थिए।
तन ! तिनीनि सी कटि, ओढ़ा अढ़े पखड़ा ॥

ऐ मेरे शरीर (जीवात्मा!) जिनके सम्पर्क से दुःख दूर हो जाते है, उनके ही समीप कुटिया बनाकर तू अपना जीवन गुजार।

सुर खम्भात

'सुरखम्भात' को गुजरात के खम्भात शहर के मशहूर गवैये ने बनाया इसलिए इसे स्वर खम्भात कहा जाता है। इस स्वर मे शाह साहब ने अपने प्रियतम परमात्मा के सौंदर्य व उदारता का वर्णन किया है और बताया है कि इन्सान मे तो अनेक दोष व त्रुटियां हैं परन्तु परमात्मा दयालू एव सहनशील है। चाहे पूर्णिमा का चन्द्रमा सहस्र शृंगार कर ही उदय हो पर प्रियतम के सौंदर्य के सामने उसका सौंदर्य बिल्कुल फीका पड़ जाता है।

परमात्मा के अनुपम (अर्थात् जिसके सदृश उत्तम कोई नही) स्वरूप के वर्णन के अतिरिक्त शाह साहब ने इस स्वर मे इन्सान के मन का भी अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। शाह साहब ने मन की तुलना ऊँट से की है क्योकि दोनो मे बहुत ही साम्य है। जिस तरह ऊँट चन्दन, अगर आदि सुगन्धित पेड़ों की टहनियो से मुख मोड़कर आक के पत्ते और लाणी (निम्न कोटि की घास जो स्वाद मे नमकीन व कडुई होती है) ही खाता है, उसी तरह इन्सान का मन भी सुखदायी आध्यात्मिक बातो से दूर रहकर दुखदायी सासारिक विषय-वासनाओ की ओर ही भागता रहता है। ऊँट को चाहे मोतियों की माला, रेशम तथा स्वर्ण के जिरह ही क्यो न पहनाए जाएं, फिर भी वह अपनी आदत से बाज़ नही आता; इस कारण जजीर ही उसके लिए ठीक रहती है। ऊँट की तरह मानव-मन भी बड़ा कमीना है और वह तब ही सुधरता है जब निरतर उस पर अकुश रखा जाता है तथा उसे सयमित करने की कोशिश की जाती है। पर मन की एक विशेषता है कि यदि एक बार वह वश मे हो जाता है तब वह जीव को शीघ्र ही प्रियतम के पास पहुँचा देता है, फिर तो उसका मूल्य ही बढ जाता है। तात्पर्य यह कि स्वच्छन्द मन शैतान की तरह जीव को अधोगति के गर्त मे धकेल देता है; पर संयमित मन फिरिश्तो की तरह उसे आकाश की सैर कराता है।

भलाई आहीनि, प्रियनि भलाईअ पांहिजी।
सभ्राझा सिरि चढ़ियो, ड्रोरापा न ड्रियनि।
मां ड्रे मदियू थियनि, सज्रण सज्रायनि मे॥

(शाह साहब परमात्मा की महानता का वर्णन करते कहते है) प्रियतम अपनी श्रेष्ठता के कारण सम्पूर्ण रूप से महान है। वह इतना तो दयालू है कि कभी भी किसी तरह का मुझे उपालम्भ नही देता। मुझ मे तो समस्त बुराइयां ही हैं, किन्तु मेरा प्रियतम अच्छाइयो से ही परिपूर्ण है।

चोड्रहीअ चन्ड! तूं उभिरी, सहसे करिए सींगार।
पलक प्रियां जे न पडी, जे हीलनि करिएं हज़ार।
जहिड़ो तू सभ ज्रमार, तहिड़ो दमु दोस्त जो॥

ऐ चौदहवी के चांद! चाहे तू सहस्र शृगार कर उदय हो, फिर भी लाख प्रयत्न करने पर भी प्रियतम के सग के एक पल की भी बराबरी नही कर सकता है (अर्थात् प्रियतम के सौंदर्य की मात्र एक पल की झलक के सामने तेरा पूरा सौंदर्य फीका पड जाता है।) तेरी सारी आयु का प्रकाश प्रियतम के एक पल के प्रकाश-सदृश है।

सहसे सिजनि उभरी, चौरासी चन्डनि ।
वाल्लाह रे प्रियनि, सभ ऊन्दाही भाइयाँ ॥

(शाह साहब प्रियतम के सौंदर्य का वर्णन करते कहते हैं) खुदा की कसम ! यदि सहस्र सूर्य एव चौरासी चन्द्रमा उदय हो, फिर भी मैं प्रियतम के सिवा समस्त सृष्टि को अन्धकारमय ही समझूंगा ।

चन्ड ! तुहिंजी जाति, पाडियाँ न प्रियुनि सी ।
तू अछो मे राति, सज्रण नितु सोझिरा ॥

ऐ चन्द्रमा ! मैं तेरे सौंदर्य को प्रियतम के सौंदर्य के बराबर नही समझता हूँ क्योकि तू केवल रात्रि के समय ही चमकता है, किन्तु मेरा प्रियतम तो सदैव ही चमकता रहता है ।

चन्ड ! चवाएँ सचु, जे मठो न भाइएं ।
कद्रहिं उभिरी सन्हडो, कद्रहिं उभिरी ग्रचु ।
मुंह मे ब्ररेई मचु, तो मे नाहि पेशानी प्रीअ जी ॥

ऐ चन्द्रमा ! यदि तुझे बुरा न लगे तो मैं तुझे एक सच्ची बात कहूँ । तू कभी कम, तो कभी ज्यादा रहता है । तेरे चेहरे मे चमक तो है पर प्रियतम की सी चमक नही है (तात्पर्य यह कि प्रियतम के सौंदर्य के आगे चन्द्रमा का सौंदर्य हर तरह से तुच्छ है ।)

करहा ! कसर छडु, विख वधन्दी पाइ ।
मुंहिजो हलणु उतही, जिते जानिब जाइ ।
तोखे चन्दनु चारियाँ, ब्रियो वग्रु, लाणी खाइ ।
इंए ऊठ ! ऊठाए, जीअ हून्दीअ राति हुति मिडूं ॥

(शाह साहब अपने मन रूपी ऊँट से कहते हैं) ऐ (मनरूपी) ऊँट! आलस्य त्यागकर शीघ्रता से चल (अर्थात् प्रियतम को पाने के लिए साधन कर) । मैं तो वही जाना चाहता हूँ जहाँ प्रियतम का निवास है । मैं वहाँ चलकर तुझे चन्दन खिलाऊँगा जब कि दूसरे लाणी (कड़ुवी घास) ही खाते हैं (अर्थात् यदि मन जीव को परमात्मा से मिला देता है तब तो वह ससार मे रहकर भी शीतल सुगन्धित चन्दन (आनन्द) का उपभोग करता है, जबकि दूसरे विषयवासना रूपी कड़ुवी घास ही खाते रहते हैं ।) ऐ (मन रूपी) ऊँट ! तू मुझे इस तरह से उठाकर चल कि मैं आज की रात ही प्रियतम से जा मिलूं ।

कसर छद्रि कन्वाट ! विखू विझु वधन्दियू ।
सईं सुप्रियनु जी, विंगी भाइ म वाट ।
छद्रि झूरी, ड्रे झाट, त हून्दीअ रातु हुत मिड़ूं ॥

(शाह-साहब अपने मन रूपी ऊँट को सम्बोधित करते कहते हैं) ऐ जवान ऊंट, आलस्य त्याग और शीघ्रता से चल । प्रियतम के सरल-सीधे मार्ग को तू टेढ़ा-मेढ़ा व कठिन मत समझ । ढीलापन त्याग और इतनी शीघ्रता से चल (इतनी ज्यादा साधना कर) कि आज रात को ही जाकर मैं अपने प्रियतम से मिलूं ।

आणे ब्रधुमि वण जाइ, मान मुखरियूँ चरे ।
कुधातुरो करहो, लिकियो लाणी खाए ।
इन मए सन्दी, माड! मूंखे ग्राल्हड़ियनु ग्रोड़हा कयो ॥

(शाह साहब अपने मन रूपी ऊँट की ढिठाई का वर्णन करते कहते है) कि मैने अपने (मनरूपी) ऊँट को फूलो के वृक्षो से बाँध दिया ताकि वह फूल खाए (अर्थात् सुखदायी आध्यात्मिक परिवेश मे रखा ताकि आत्मानन्द रूपी फूलो का उपभोग करे ।) किन्तु यह दुष्ट छिप-छिपकर जाकर कड़ुवी घास (सासारिक विषय-वासना) ही खाता है । ऐ माता ! इस ऊँट के कृत्यो ने मुझे हर तरह से परेशान कर दिया है ।

ऊठ न वञे वग्र सी, चरे न चाँगो ।
लग्रेसि नाउक नीह जी, निहोडियो नाँगो ।
छडे सिर साँगो, रिढे रंदि प्रियनि जी ॥

शाह साहब अपने सयमित मन की प्रशसा करते कहते हैं) कि मेरा (मनरूपी) ऊँट अपने अन्य साथियो के साथ चरने नही जाता, (अर्थात् अन्य ऊँटो की तरह सासारिक विषय-वासनाओ की ओर नही जाता,) क्योकि उसे प्रेम का ऐसा तीर लगा है जिसने उसे (उसके अह को) नष्ट कर दिया है । अब वह अपनी जान की परवाह न कर प्रियतम की ओर ही जाता है ।

करहे खे कई, विधमि पँद पलण जा ।
लीडो लाणीअ खे चरे, नियर साण नईं ।
चाँगे सन्दी चित मे, साहबु ! विझु सईं ।
ओबाहियोसि अईं, लुतफ साणु लतीफु चए ॥

(शाह लतीफ कहते हैं मैने अपने मनरूपी ऊँट को वश मे करने के लिए अनेक तरह से बाँध दिया है, पर वह जंजीरो से बधा हुआ भी जाकर

लाणी (कड़वी घास) ही खाता है (अर्थात् मन को अनेक तरह के साधनों से परमात्मा की ओर लगाता हू किन्तु वह दुष्ट सांसारिक विषय-वासनाओं में ही मस्त रहता है)। ऐ परमात्मा! तू ही इस (मन रूपी) ऊँट को सुमति दे और अपनी अनुकम्पा से इसे सीधे रास्ते पर ला।

चांगे चई चुक्यासि, मथां अक न उल्हे।
जंहिं वलि घणा विहाटिया, उनसी आरि लड़्यासि।
चोधारी चन्दन वण, पची पूज्र प्यासि।
रुआरे रतु कयासि, हिन कुधातूरे करहे॥

मैं अपने (मन रूपी) ऊँट को समझा-समझाकर थक गया हूँ कि आक के पत्तो पर मत टूट (सासारिक विषय-वासनाओ मे मत फँस)। जिस (विषय-वासना रूपी) वल्लरी ने अनेको की सुध-बुध नष्ट कर दी है, उसी के साथ जाकर इस (ऊँट) का नेह लगा है। चारो तरफ चन्दन के वृक्ष विकसित हैं। इस दुष्ट (मनरूपी) ऊँट ने तो मुझे खून के आँसू बहाने पर मजबूर कर दिया है।

किनी कामण कयाइ? कीअं भम्भोलिए? करहा।
अख्युनि मथे अख्या, पिड़ मे पेर गंठाइ।
वञ कि विसरियाइ? ब्रधो जिएं घाणे वही॥

(शाह साहब अपने मन रूपी ऊँट से पूछते हैं) ऐ ऊँट, तुझपर किसने जादू-टोना कर दिया है कि तू खुद को भी भूल बैठा है? तेरी आँखो पर (अज्ञान के) पर्दे लगे हुए हैं तथा तेरे पैर (ससार रूपी) चक्की मे फँसे हुए हैं। तू अपने हितैपियो को भूलकर कैसे (सांसारिक) चक्की मे कोल्हू के बैल की तरह भटक रहा है?

खाए न खटणहार, चन्दन जा चूपा करे।
अगर ओड्रो न वञे, सिरखण्ड लहे न सार।
लाणीअ जी लगार, मयो मतारो कयो॥

(शाह साहब अपने दुष्ट मनरूपी ऊँट की दुष्टता का वर्णन करते कहते हैं) मेरा (मनरूपी) ऊँट, खटणहार (सफेद प्रकार के फूल) नही खाता तथा चन्दन मे से दोष निकालकर उसे थूक देता है। वह 'अगर' (सुगन्धित डाली) के समीप तक नही जाता तथा चन्दन को तो पूछता तक नहीं; पर लाणी (कड़वी घास) के चस्के ने इसे हर तरह से मस्त बना दिया है (तात्पर्य यह कि सुखदायी आध्यात्मिक बातो की ओर नही जाता, पर दुःखदायी सासारिक विषय-वासनाओ मे ही मस्त रहता है।)

चांगा चन्दनु न चरीं, मया ! पिएं न मोक ।
अगर ओड़ो न वञी, थुकियो छड़िए थूक ।
लाणी विचाँ लोक, तो कहिड़ी अखरि आछड़ी ?

(शाह साहब अपने मन रूपी ऊंट को सम्बोधित करते कहते हैं) ऐ ऊंट ! तू न चन्दन खाता है, न बहता हुआ पानी पीता है । अगरु जैसी सुगन्धित डाली) के तू समीप नही जाता तथा उच्चकोटि के पकवानो को तू थूक देता है । जरा बता कि किस कारण पूरी सृष्टि मे तुझे लाणी (कड़ुवी घास) ही अच्छी लगती है ?

सध्यनि सेण न हूनि, नीहु स्यापे न थिए ।
कारीअ राति रत फुडा, जाँ जाँ नेण न रूनि ।
मोटण जनी मीहणो, पिड़ ते सेई पूनि ॥

(शाह साहब कहते हैं) मात्र तमन्ना करने से प्रियतम नही मिलता । मात्र सदेश भेजने से ही प्रेम की पूर्ति नही होती । जब तक अंधेरी रात्रि मे नेत्र खून के आंसू नही बहाते (तब तक प्रियतम नही मिलता ।) प्रेम के रास्ते पर वे ही कदम रखें जो उस रास्ते से वापस लौट जाने मे हीनता का अनुभव करते हो ।

तोणे तड़िएँ तू, या अला ! तो दरु तोइ न छड़ियाँ ।
मू खे सो मुशाहिदो, जे मुँह न ड़िएं मू ।
मू ब्रिया दर घणा निहारिया, आहिईं तू ई तू ॥

ऐ परमात्मा ! चाहे तू मुझे अपने द्वार से धकेल दे फिर भी मैं तेरा द्वार न छोड़ूंगा । तेरी उपेक्षा भी मेरे लिए दीदार है । मैंने दूसरे बहुत से द्वार भेंटे हैं पर वास्तव मे केवल तू ही मेरा आधार है ।

"ससुई-पुन्हू की गाथा तथा उसका आध्यात्मिक अर्थ"

नाऊँ नामक एक ब्राह्मण था, जिसकी पत्नी का नाम था मुन्धर । बुढापे मे इस दम्पति के घर मे एक कन्या पैदा हुई, जिसके सौंदर्य के आगे चन्द्रमा भी शरमा जाता था । इतनी सुन्दर कन्या की प्राप्ति पर भी ब्राह्मण दम्पति को प्रसन्नता नही हुई क्योकि उसका विवाह किसी अजनबी से लिखा था । परिणामत ब्राह्मण दम्पति ने भविष्य मे होने वाली बदनामी से बचने के लिए, उस कन्या-रत्न को पेटी मे डालकर समुद्र मे बहा दिया । सौभाग्यवश वह पेटी तैरती हुई भभोर के समीप समुद्र के किनारे जा पहुंची, जहाँ वह, प्रसिद्ध तथा धनी महमुद नामक एक धोबी

को हाथ लगी। महमुद के अपनी सन्तान न थी, अत: वह उस सुन्दर बालिका को देखकर खुशी से झूम उठा और उसका नाम रखा ससुई जिसका अर्थ है चन्द्रमा। महमुद धोबी के पास अपार धन था अत. उसने अपनी लाडली बेटी ससुई के लिए एक भव्य महल बनाया, जहाँ ससुई अपनी सखियो सहित उछलती-कूदती रहती थी।

उस जमाने मे केच देश के काफिले व्यापार के लिए भभोर मे आते थे। एक बार पुन्हू नामक एक बड़ा सम्पन्न व्यापारी अपने भाई चनरे के साथ काफिला लेकर भभोर पहुँचा, जहाँ उसकी भेंट ससुई से हुई। प्रथम दृष्टि मे ही दोनो प्रेम के सूत्र मे बन्ध गए।

ससुई ने अपने हृदय की बात अपनी सखी से की, जिसने ससुई के पिता के पास जाकर, सब कुछ बता दिया। महमुद-धोबी ने आरम्भ मे अपनी लाडली बेटी का विवाह एक परदेशी तथा गैर-जाति वाले पुन्हू के साथ करने से इन्कार कर दिया, किन्तु समझाने-बुझाने पर, बाद मे वह राजी हो गया और बडी धूम-धाम से उसने ससुई की शादी पुन्हू से कर दी। शादी के पश्चात् पुन्हू ने अपने देश मे जाने का विचार ही त्याग दिया।

किन्तु पुन्हू के भाई चनरे ने अपने देश जाकर पुन्हू का समस्त हाल पिता को सुनाया। पिता पुत्र के वियोग में बेहाल हो गया। यह देख उनके अन्य तीन पुत्रो ने उसे सान्त्वना देकर कहा कि वे भभोर जाकर शीघ्रातिशीघ्र पुन्हू को किसी न किसी युक्ति से वापस ले आयेगे।

जब तीनो भाई भभोर पहुँचे, तब ससुई के पिता ने उनका हार्दिक स्वागत किया। उनके सत्कार मे रोज रात को महफिले सजने लगी। एक रात महफिल मे पुन्हू के भाइयो ने पुन्हू को खूब शराब पिलाई और बेसुधी की हालत मे उसे ऊँट पर लादकर अपने वतन के लिए प्रस्थान किया। नीद मे डूबी हुई ससुई को इस बात का पता तक न चला। सुबह जब उसे मालूम हुआ कि पुन्हू के भाई उसे ले गये हैं, तब वह अत्यन्त ही दुखी हुई और भभोर से अपने नाते तोडकर, मुसीबतो की चिन्ता न कर, अकेली ही पुन्हू को पर्वतो और जगलो मे ढूढने निकल पडी। रास्ते मे भूख-प्यास के मारे बेसुध हो जाती, किन्तु होश आते ही फिर चल पड़ती थी। कभी-कभी ऊँचे-ऊँचे पहाडो की चढाई देख वह भयभीत हो जाती, किन्तु दूसरे ही क्षण हिम्मत बाँधकर आगे चल पडती।

चलते-चलते ससुई को एक ऊँचे पहाड़ पर एक झोपडी दिखाई दी। वह पुन्हू के सम्बन्ध मे पूछ-ताछ करने के लिए शीघ्रता से वहाँ पहुँची, किन्तु उस झोपडी मे रहने वाले व्यक्ति ने ज्यो ही ससुई को देखा, त्यो ही उस पर मोहित हो गया। ससुई ने उसके मन के कुविचार को शीघ्र ही भाँप लिया, दूसरा कोई चारा न देखकर उसने अपने सतीत्व की रक्षा के

लिए परमात्मा को पुकारा। पुकार मे कुछ ऐसा जादू था कि उसी समय पहाड़ फट गया और ससुई उसके भीतर समा गई। यह घटना देखकर वह व्यक्ति डर गया, उसे अपने किये पर पश्चाताप हुआ; फिर वहाँ ससुई की क़ब्र बनाकर उसकी पूजा करने लगा।

वहाँ पुन्हू को जब होश आया और उसे पता चला कि उसके भाई उसे भगाकर ले जा रहे हैं, तब शीघ्र ही उसने भभोर की ओर प्रस्थान किया। रास्ते मे उसे वही कब्र दिखाई दी जिस पर ससुई का दुपट्टा बिछा हुआ था। पुन्हू ने वह पहचान लिया और पूछ-ताँछ करने के लिए वहाँ जा पहुँचा। कब्र की पूजा और देखभाल करनेवाले व्यक्ति ने उसे पूरा हाल बता दिया। सुनते ही पुन्हू ससुई के विरह मे बावला सा हो गया और कब्र पर सिर फोडकर परमात्मा से प्रार्थना करने लगा ऐ मालिक, बिछड़े हुओ को फिर से मिला। परमात्मा ने उसकी पुकार सुनी, पहाड फिर फट गया और पुन्हू भीतर समा गया तथा सदैव के लिए ससुई से एक हो गया।

इस गाथा के द्वारा शाहसाहब ने यह रहस्य प्रकट किया है कि जब जीव अपनी आत्मा मे झाँककर देखता है, तब वह स्वय परमात्मा हो जाता है। ससुई को भ्रम ने धोखा दिया था, अन्यथा वह खुद पुन्हू थी। वह इन्सान भी भ्रम मे है जो परमात्मा को ससुई की तरह जगलो और पहाडो मे ढूंढने के लिए जाता है। वास्तव मे ससुई-पुन्हू (आत्मा और परमात्मा) एक है, उनमे कोई दूरी नही है, अतः जुदाई भ्रम मात्र है।

शाहसाहब के अनुसार सच्चा जिज्ञासु ससुई की तरह दुखो, कष्टो, सकटो और बाधाओ मे ज़रा भी विचलित नही होता है। उसके प्रेम मे एक ऐसी शक्ति रहती है, जिससे वह जँगल और पहाडो तक को भस्म कर देता है। सच्चे जिज्ञासु को अपने प्रियतम के लिए सदैव ही सतर्क रहना चाहिए, वह यदि ससुई की भाँति सो जायेगा, तो उसका पुन्हू-परमात्मा उससे दूर चला जायगा। ससुई की राह की कठिनाइयो का वर्णन कर शाहसाहब यह सदेश देना चाहते हैं कि आशिको को आध्यात्मिक राह पर चलते हुए हृदय-विदारक मुसीबतो से डरना नही चाहिए, बल्कि हिम्मत से आगे बढना चाहिए। उन्हे अपनी खुदी नष्ट कर देनी चाहिये क्योकि पूर्ण सद्गुरु का पद अत्यन्त ही ऊँचा है। जिज्ञासु तब तक उसके पास नही पहुँच सकता है, जब तक वह अपने अह को नष्ट नही करता है।

शाहसाहब ने पुन्हू को शाही खानदान तथा ससुई को नाचीज़ धोबिन बताकर यह सिद्ध किया है कि पुन्हू-परमात्मा जिसके समान कोई दूसरा नही, जिज्ञासु के सौदर्य पर मस्त होता है, न कि उसके कुल और जाति पर, और सच्चा जिज्ञासु भी ससुई की तरह हर पल, हर क्षण परमात्मा की

अनुनय-विनय कर अपनी अयोग्यता का प्रदर्शन तथा प्रियतम के गुणों एवं उदारता का वखान करता रहता है।

ससुई-पुन्हू की गाथा द्वारा शाहसाहव ने एक ओर ससुई रूपी जीवात्मा की पुन्हू रूपी (परमात्मा) के लिए तड़प दिखाई है तो दूसरी ओर पुन्हू-परमात्मा की ससुई रूपी विशेष जीवात्मा के लिए चाह दिखाई है। पुन्हू का सर्वस्व त्यागकर ससुई के लिए भटकना, परमात्मा का विशेष जीवात्मा के लिए भटकना है। ससुई का निवासस्थान भभोर इस जहान का प्रतीक है, जिसमे सदैव ही धुआ उठा रहता है अर्थात् माया का भ्रम छाया हुआ रहता है। जिसने इस असत्य ससार को ससुई की तरह त्याग दिया उसने ही मुक्ति प्राप्त की, किन्तु जो इससे चिपक बैठा उसे दुखो के अतिरिक्त कुछ नही मिला।

शाहसाहव ने ससुई पुन्हू की गाथा पर पाँच स्वर लिखे है स्वर आवरी, स्वर मैजूरी, स्वर देसी, स्वर कोह्यारी और स्वर हुसेनी। सभी स्वरो मे ससुई के कष्टो तथा आध्यात्मिक मञ्जिल का वर्णन है।

"स्वर आवरी"

इस स्वर के आरम्भ मे शाहसाहव ने ससुई की प्रेम-पिपासा का वर्णन किया है। वास्तव मे प्रेम की पिपासा रहस्यमयी होती है पिपासा जो तृप्त होना नही जानती, चाहे सारा सागर ही वड़े-वडे घूंट करके क्यो न पिया जाय। ससुई की प्रेम पिपासा भी ऐसी है, जो पीने से और भी बढ जाती है, बुझती नही। इसी स्वर मे शाहसाहव ने ससुई की कमजोरी का भी वर्णन किया है। ससुई द्वैत की भावना मे भूली हुई है, यही कारण है कि वह पुन्हू को अपने भीतर झाँककर नही देखती, बल्कि उसे वन, पर्वतों मे ढूंढती रहती है।

पसी झाञ्ह जमाल जी, जिनी पीती पिक।
अपर अग्रानिझो थियो, सूरु उनीनि खे सिक।
हद्रि न भग्रियनि हिक, सदा साइर सीर मे॥

शाहसाहव ससुई की अमिट प्रेम-पिपासा देखकर कहते है— जिन्होने प्रियतम के अथाह सौंदर्य और प्रेमरूपी सागर से एक घूंट भी पी लिया है, उन्हे अनन्त तड़प और स्नेह घेर लेते है। यद्यपि वे सदैव ही उस प्रेम-सागर के बीच मे पड़े रहते है, फिर भी उनकी पिपासा कभी भी तृप्त नही होती।

मुहबत सन्दो मन मे, पुरु प्यालो जिनि।
पियण पर्चाऊ नाहि को, कंहि जंहि ड्राहि ड्रभनि।

तंहि निहायत नाहिका, जंहि सुञा सुञ वञनि ।
तेलां उञ मरनि, सदा साइर सीर मे ॥

जिनके (हृदय-रूपी) प्याले (प्रेम से) लबालब भरे हुए हैं, वे किसी ऐसी आग में जलते रहते है कि उन्हे चैन तक नही मिलता। जिस (प्रेम के) सुनसान रास्ते से वे (सच्चे आशिक) जा रहे हैं, उस रास्ते का कोई अन्त ही नही है। यद्यपि वे प्रेमरूपी सागर की बीच धारा मे पडे हुए हैं, फिर भी प्यास से मर रहे है; तात्पर्य यह कि प्रेम की प्यास अनोखी प्यास है जो बुझना नही जानती, बढना ही जानती है।

साजन कारणि सुञ, मरु कबूली ससुई ।
अन्दरि जिनी उञ, पाणी उञियो उन खे ॥

(शाह साहब ससुई के प्रेम की प्रशसा करते कहते है) ससुई जैसी प्रेमिका ही प्रियतम के लिए सुनसान सफर (कठिन यात्रा) कबूल करती है। वास्तव मे जिनके भीतर प्रेम पिपासा है, उनके लिए पानी को भी प्यास है तात्पर्य यह कि जो जीवात्मा परमात्मा के लिए तड़पती रहती है, प्रियतम-परमात्मा भी उसको पाने के लिए बेचैन रहता है। तभी तो कहा जाता है कि प्रेम दोनो ओर से होता है, एक ओर से नही।

पाणीअ मथे झूप्डा, मूरख उञ मरनि ।
साहाँ ओड्रो सुप्रियनि, लोचे ताँ न लहनि ।
दमु न सुञाणनि, दान्हूं कनि मुठनि जिए ॥

मूर्ख (अज्ञानी जीव) पानी के ऊपर झोपडे बनाकर भी प्यासे मरते हैं। यद्यपि प्रियतम उनके प्राणो से भी समीप है, फिर भी वे उसे ढूंढ नही पाते है। उन्हे अपने (चेतन) प्राणो तक का कुछ भी ज्ञान नही है, अत. वे पागलो की तरह केवल चिल्लाते रहते हैं।

लगे कोसो वाडउ, लोकु मिड़ोई लहसियो ।
अुभनि मंझाँ आयो, हय-हय जो हुञाउ ।
तेवरनि तव्वारियो, पुन्हू पुञाणाउ ।
रस्यो सूरु शबान खे, वहूशनि वटाउ ।
मिरुअनि मौतु कबूलियो, अपर अफसो साइ ।
वर पिणु कनि बुकाउ, उकण्ढिया आरीअ लइधणो ॥

ससुई पुन्हू की विरहाग्नि मे जल रही है, उसका प्रभाव प्रकृति पर भी पड रहा है। शाहसाहब उसी का वर्णन करते कहते है—) ऐसी (विरहरूपी) गर्म लू चली कि सारी सृष्टि मानो दग्ध हो उठी। आकाश से हाय-हाय की आवाज-सी आने लगी। पुन्हू के चले जाने के बाद पक्षी

तक विलाप करने लगे। भेड़िये अपनी भेड़-बकरियों को गर्मी के मारे बेचैन देखकर, दुखी हुए। पशुओं ने दुख के कारण मरना स्वीकारा; यहाँ तक कि मरुभूमि भी पुन्हू के लिए तड़पती हुई मानो रो रही थी।

पसी डून्गर ड्राहि, जिम हलण मे हीणी वही।
लान्चे लक लतीफ चए, पुठीअ केच्युन काहि।
पुछो पूरजि ससुई, वलोचाणी वाहि।
इन वडाइते वर जी, आसर हदि म लाहि।
जो अखिऊँ ओड्रो आहिं, सो प्रियनि परान्हूँ म चओ॥

शाहसाहब ससुई (सच्चे जिज्ञासु) से कहते हैं ऐ दासी, तू पर्वत देखकर पीछे मत लौटना, तू गुफाएँ पार कर केचियों (अर्थात् केच से आने वाले पुन्हू और उसके भाई) के पीछे दौडती जा। ऐ ससुई! पुन्हू की प्रेमाग्नि से भलीभाँति परिचित होकर आगे जा। उस गुणवान पति का विश्वास कदापि न त्याग। जो प्रियतम, आंखों से भी अधिक समीप है, उसे दूर मत कह। (तात्पर्य यह कि सच्चे जिज्ञासु को आध्यात्मिक रास्ते पर चलते समय दुख और कष्टों की परवाह नहीं करनी चाहिए, बल्कि परमात्मा पर निष्ठा और विश्वास रखकर साधना के रास्ते पर अग्रसर होना चाहिए।)

हिताँ खणी हुति, जिनि रखियो से रस्यू।
साजनु सुम्हँ सुर्त, विखाँई वेझी धणो॥

जिन (जीवात्माओं) ने अपना चित्त यहाँ (संसार) से लेकर वहाँ (परमात्मा की ओर) रख दिया, वास्तव में वे ही जाकर अपनी मंजिल पर पहुँचीं। प्रियतम जो पूर्ण सुन्दर तथा ज्ञान-रूप है, वह एक कदम से भी ज्यादा समीप है, अर्थात् परमात्मा इतने समीप है कि उसे पाने के लिए एक कदम तक उठाने की ज़रूरत नहीं है।

वाकुफु न वणिकारु जी, पाणी खन्युमि न पाउ।
जबलु जल्दायू करे, तिख ड्रेखारे ताउ।
लखों लुक लतीफ चए, मेजूरिनि मथाउ।
उते ओड्रो आउ, जिति होत हेकली आहियाँ॥

(ससुई कहती है—) मैं गहन वनों की जानकार नहीं हूँ। मैंने अपने साथ (रास्ते के लिए) पाव भर पानी तक नहीं उठाया है (अर्थात् मैंने अपने साथ किसी भी तरह का साधन नहीं लिया है।) पर्वत शीघ्रता से तप रहा है और अपना ताप मुझे दिखा रहा है। मुझ बिचारी अबला

के ऊपर लू बह रही है। ऐ प्रियतम, मैं अकेली हूँ, अतः तू शीघ्र ही आकर मुझसे मिल।

वेचारीअ वणिकारु, अग्रु न डि्ठो कडहीं।
महिर न हुई माड़ुहीनि, हो सभु हिन्दूकारु।
जतु कयाई यारु, सूरनि कारणि सतियूँ॥

(शाहसाहब ससुई के दुख का वर्णन करते कहते हैं बिचारी ससुई ने पहले कभी वह वन (आध्यात्मिक रास्ता तथा उसकी कठिनाइयाँ) आँखो से नही देखा था। मनुष्यों के हृदय मे दया नही थी, चारो तरफ केवल अधकार फैला था। ऐ सखियो, लगता है कि ससुई ने दुःख प्राप्त करने के लिए ही पुन्हू को अपना प्रियतम बनाया है।

पुन्हू छड्डियो पोइ, जानिबु जबलु ग्रोल्हीं।
तेलान्हीनि तन्नू करिएँ, जेलान्हीनि तू जोइ।
साजनु सुञ निहारिईं, दुखी ड्रोहु कयोइ।
हाडहो होतु न होइ, वरी पुछु वेठियुनि खे।
वरी पुछु वेठियुनि खे, सन्दा पुन्हूअ पार।
साजनु सभु ज्रमार, दुखी ड्रोरिजि ड्रील में॥

(शाहसाहब ससुई से कहते है—) ऐ ससुई, (जिज्ञासु) तू पुन्हू (परमात्मा) को पीछे छोडकर, अब पर्वतो मे उसे ढूँढ रही है? जिस हालत मे तू ने पुन्हू के साथ प्रेम भरी बाते की हैं, उस हालत में तुझे उसे सूने मे ढूढना शोभा नही देता। ऐ दुखो की मारी, तू जो अपने प्रियतम को सूने (वीराने) मे ढूढ रही है, वह महान् अपराध कर रही है। तेरा प्रियतम पर्वतो मे नहीं है, अत तू लौटकर उन लोगो से उनका पता पूछ जो एक ही जगह पर बैठे है। ऐ दुखिया, तू जीवनपर्यन्त अपने महबूब को अपने हृदय मे ही ढूंढ।

कोन्हे उति कोह्यारु, जिति तो, भोरी भांइयो।
पन्धु म करि पहाड ड्रे, वुजुदु ई वणिकारु।
धारिया भांइजि धार, पुछु प्रियाॅकर पाणु तूं॥

ऐ भोली ससुई, तेरा पुन्हू वहाँ नही है, जहाँ तू समझ रही है। पर्वत की ओर मत जा क्योकि (परमात्मा रूपी) हरियाली तेरे भीतर ही है। परायो को पराया ही समझ प्रियतम का समाचार अपने से ही पूछ।

सभेईं सारे ससुई, घर कुन्डूं तू धोरि।
वञी दूरि म ड्रोरि, दरा मझि दोस्तु थियो॥

ऐ ससुई, तू अपने (हृदय रूपी) घर के सब कोने अच्छी तरह जांच-परख कर देख। प्रियतम को दूर जाकर मत ढूंढ क्योंकि वह तो तेरे भीतर ही है।

वञीं छो वणिकारु? हिति न ओल्ई होत खे।
लिको कीन लतीफ़ चए, ॿारोचो ॿिए पारि।
थीउ सती, ब्रधु सन्दिरो, प्रिति पुन्हूअ सी पारि।
नान्ई नेण निहारि, तो में देरो दोस्त जो॥

शाहलतीफ कहते हैं, (ऐ ससुई) तू वन की ओर क्यों जा रही है? अरी यही नही अपने प्रियतम को ढूढती! तेरा बारोचल (पुन्हू) किसी दूसरी ओर छिपा हुआ नही है। तू सत्य पर दृढ़ रहेकर हिम्मत बांधकर पुन्हू से प्रेम निबाह। तू दृष्टि झुकाकर अपने अन्त.करण मे झाँककर देख (तब तुझे मालूम होगा) कि तेरे प्रियतम का निवास तुझमे ही है।

हलु हिए सी होत ड्रे, पेरे करि म पन्धु।
राई पुछु म रन्दु, रिड़िहु रूहानी ससुई॥

ऐ ससुई, केवल पैरो से नही बल्कि हृदय से प्रियतम की ओर चल। तू पर्वत की रेत मे से प्रियतम का रास्ता मत ढूंढ, पर हृदय के रास्ते से उसकी ओर चल।

सिधाइती सभका, बुख न बासे का।
जेहीअ तेहीअ ज्ञाति जी, जुम्बशि कान्हे जा।
मूँ सां हले सा, जा जी मिठू न करे॥

हरेक (जीवात्मा, परमात्मा को) पाने की इच्छुक है, पर भूखो मरना कोई नही स्वीकारती (अर्थात् परमात्मा को प्राप्त करना सभी चाहते हैं, पर कष्ट सहने के लिए तैयार नही होते)। ऐसे जिज्ञासु को इस रास्ते पर चलने की हिम्मत तक नही है। (ससुई सखियो से कहती है) मेरे साथ वही चल सकती है, जिसे प्राणो का मोह बिल्कुल नही है।

अजु मलीन्दियुसि माइ! धाजा कन्दियुसि कपड़ा।
जीजाँ! जोगियाणी थियाँ, मूँ खे झल म पाइ।
होत ॿरोची लाड, कने कुनरि पाइयाँ॥

(ससुई अपनी माँ से कहती है) ऐ माता, आज मैं अपने वस्त्र धोकर भगवे वस्त्र धारण करूँगी अर्थात् सासारिक बातें त्यागकर परमात्मा की प्रेमिका बन अपना जीवन सफल करूँगी। ऐ माँ, मुझे सन्यासिन बनने

से मत रोक। मैं अपने प्रियतम के लिए संन्यासियो की तरह कानो मे कुण्डल भी पहनूँगी (अर्थात् सभी तरह के कष्ट सहन करूँगी)।

पहरी तूँ पारेजि, पारणु पोइ पुन्हूअ ते।
ब्रोलु म विसारीजि, हू जो कयुइ होत सी॥

(ससुई अपने मन से कहती है) तू पहले अपने वचन का पालन कर फिर पुन्हू से उसके वचन पालने की आशा रख। जो प्रण तूने प्रियतम से किया है, उसे मत भूल।

सिज्ञ उल्थे ससुई, रत वरणो रोइ।
पहे न पाँधी को, जंहि कर पुछे लोइ।
मूडही वञे तोइ, मोटण जी कान करे॥

सूर्यास्त के समय ससुई खून के आँसू बहा रही है। उसे न कोई दूत और न कोई पथिक ही दिखाई दे रहा है कि जिससे वह पुन्हू के देश का पता पूछे। वह घबडा गई है, फिर भी पीछे लौटने के लिए तैयार नही है। (ससुई की तरह सच्चे साधक साधना के पथ पर निरन्तर चल कर कभी-कभी सोच मे पड जाते हैं पर फिर भी पीछे लौटने के लिए तैयार नही होते।)

मोटी मराँ न माइ! मोटण खाँ अगो मराँ।
लुछी लालन लाइ, शाल पवन्दियसि पेर ते॥

(ससुई माँ से कहती है) ऐ माता, मेरी यही अभिलाषा है कि मैं पीछे लौटने के बाद न मरूँ, बल्कि लौटने से पहले ही नष्ट हो जाऊँ (तात्पर्य यह कि सच्चा जिज्ञासु परमात्मा की खोज मे ही मृत्यु पाना चाहता हैं।) काश! मैं प्रियतम के लिए तडप-तड़पकर उसके पदचिह्नो पर ही प्राण दे दूँ।

पेही जाँ पाण में, कयमि रूह रहाणि।
त नको डूङ्गरि द्रेह में, न का केचियुनि काणि।
पुन्हू थियसि पाण; ससुई ताँ सूर हुआ॥

ससुई कहती है कि ज्यो ही मैंने अपने भीतर झाँककर आत्मा से प्रेम भरी बातें की, त्यो ही मुझे मालूम हुआ कि जहान मे न कोई पर्वत है, और न ही मुझे किसी केची (केच मे रहनेवाले) की अपेक्षा है। जब तक मैं ससुई थी (अर्थात् जब तक मुझमे द्वैत की भावना थी) तब

तक विरह का दर्द था, पर जब मैंने अपना अस्तित्व मिटा दिया, तब मैं खुद ही पुन्हू बन गयी।

पुन्हू थियसु पाणही, वियो ससुईअ जो शर्मु।
हेकलियूँ हलनि जे, भञे तिनि भर्मु।
जो वन्दुर में वर्मु, सो सोदा सरियसु हितही॥

(ससुई कहती है) जब मेरा ससुई वाला पर्दा दूर हट गया, तब मैं स्वय ही पुन्हू बन गयी (अर्थात् जब द्वैत मिट गया तब साधक को अनुभव हुआ कि वह खुद ही परमात्मा है।) जो (जीवात्माएँ) अकेली ही प्रियतम को पाने के लिए चल पड़ती हैं, उनका (माया का) पर्दा हट जाता है। ससुई, जो सौदा पर्वतो पर करने जा रही थी, वह सौदा उसे यही मिल गया।

वेई सुन्हँ ससुईअ जी, पुन्हू थियसु पाण।
सभनि जी सैयद चए, आहे उतु उमाण।
भम्भोर जा भाण, आड़ा अजीबनि खे॥

ससुई कहती है कि जब मुझमे ससुई का सौदर्य (अहं की भावना) नष्ट हुआ, तब मैं खुद ही पुन्हू बन गई। शाहसाहब फर्माते हैं कि सभी का अन्तिम रास्ता यही है। वास्तव मे भभोर (ससार) के रिश्ते-नाते ही महबूब के समीप जाने मे रुकावट डालते है।

वविड़यमि सभ वयाण, यार कारणि जत जे।
अल्लाह बिकुलि शै मुहीतु, ई आरियाणी उहञाण।
सभ मे पुन्हू पाण, कीन्हे ब्रियो ब्ररोच रे॥

प्रियतम पुन्हू के लिए मैंने सभी स्थान ढूढ लिये, (पर अब मुझे मालूम हुआ है कि) "अल्लाह ही समस्त वस्तुओ के पास है"। यही उसका लक्षण है। पुन्हू स्वय ही सब मे समाया हुआ है, उसके सिवा दूसरा कुछ भी नही है (अर्थात् पूरी सृष्टि मे परमात्मा की ही सत्ता समाई हुई है)।

अहुखी आग्रहु आहे, वो ! मूँखे ताँ न छद्रीन्दो तिख में।
पुछे पोइ-पियनि खे, लकनि में लद्रु लाहे।
आरी उधाड़नि खे, पुन्हू ज्ञामु पराही॥

ससुई अपने पुन्हू के गुणों का बखान करती कहती है कि वह (पुन्हू) मुसीबत के समय मे मेरा सहायक है, इसलिए वह मुझे इस भवसागर के

तेज़ बहाव मे छोड़ न देगा। वह गिरे हुए लोगो के (दु:ख-रूपी) बोझ गुप्त रूप से उतारकर उनकी सहायता करता है। वह नगो को वस्त्र पहनाता है अर्थात् गरीब व दुखियो की लाज रखता है।

हेकान्दीअ होई, उथी राति रवानि थियां।
साहु सग्रे मे सूर जे, पुन्हू वियो पोए।
रहु क़ज़ा ! दमु कोई, त हेकड हेकान्दी थियाँ॥

(ससुई पुन्हू के विरह मे विलाप कर कहती है) मेरा पुन्हू मिलन के पश्चात् रातो-रात चला गया। उसने मेरे प्राण दर्द के सूत्र मे पिरो लिए हैं। ऐ नियति, कुछ क्षण ठहर जा। (अर्थात् कुछ समय मुझे जीने दे) ताकि एक बार मैं अपने प्राणाधार से मिल लूँ।

हद्धि न साहु सुधीरु, दिलि दरमान्दी दोस रे।
पाए वियडा पिरति जो, जोरावर जजीरु।
जी जुसो, जागीरु, हाणे मिल्क होत जी॥

मेरे प्राण धैर्य धारण नही कर पाते, मेरा हृदय प्रियतम के सिवा व्याकुल-विह्वल है। प्रियतम ने मुझे ज़ोरदार प्रेम की ज़जीरो से ऐसा कसकर बाँधा है कि अब मेरा तन, मन, धन सर्वस्व उसी की सम्पत्ति है।

राई की रन्जूर, टकर तोड़ टाकियो चढे।
लान्घे लक, लतीफ चए, हले ड्राहिं हुज़ूर।
रहिया सभि रुअनि मे, ससुईअ जा सालूर।
साज़नु मेड़ियुसि सूर, सुख न मेड़ियुसि सुप्रीनि॥

शाहसाहब कहते है कि ससुई को पहाड़ो की रेत ने घायल कर दिया है, फिर भी वह चट्टाने चढ रही है और गुफाएँ लाँघ रही है। पुन्हू के समीप पहुँचने के लिए वह बडी तेज़ी से गुफाएँ लाँघती हुई जा रही है। मरुभूमि की रेत ने ससुई के रेशमी वस्त्रो तथा शृगार को भी मिटा दिया है। वास्तव मे उसे सुखो ने नही, बल्कि दु:खो ने ही प्रियतम से मिलाया है।

ब्रियाई त ब्रारि; फूकि त लग्रे अम्बरे।
हिते जे हुअण जूँ, वथूँ सभि विसारि।
समूरी सरिकारि, नेई रखिजि नाहि मे॥

(ऐ ससुई) यदि तेरे (हृदय मे) प्रेम की अग्नि जल रही है तो तू उसे जलाती रह। इस आग को इतना भड़का कि वह जाकर आकाश

को छूए। यहाँ की (संसार की) हस्तीवाली समस्त चीजें भूल जा, यहाँ का सम्पूर्ण काम-काज भी नावूदी के अलाव पर रख दे। (तात्पर्य यह कि सांसारिक बातों की चिन्ता छोड़कर परमात्मा के प्रति प्रेम को जागृत कर।)

ब्रिलरि लग्रो ब्राणु, पसो, जोइ जरा थिए।
सा मुन्ध मरे, न जिए, पेई पछाड़े पाणु।
ससुई सूरनि साणु, सम्भोड़ी सैयद चए॥

शाहसाहव कहते है कि देखो तो इस दुखिया (ससुई) को (प्रेम का) ऐसा तीर लगा है, जिसने इस अबला को चूर-चूर कर दिया है। यह बिचारी नारी न मर पाती है, न जी पाती है, केवल बेचैन-विह्वल होकर तड़प रही है। ससुई सदैव ही दुखो के लिए तैयार खड़ी है।

अधरि, निधरि अभरी, आहियाँ असून्ही।
परदेही प्रियनि कया, मरण लइ मून्ही।
ससुई खे, सैयद चए, तन्गुनि में तूँ ही।
हारी! किअं हून्हीं, रिइ समर सधू करीं?

ससुई कहती है, (ऐ पुन्हू,) मैं निराधार, निराश्रय तथा नि सहाय हूँ। मैंने मानो मौत पाने के लिए ही परदेसी को प्रियतम बनाया है। मुझे तो मुसीबतो के बीच तेरा ही विश्वास है। शाहसाहब ससुई से कहते हैं, ऐ मूर्खा, तू बिना सामान (साधना) के प्रियतम से मिलने की तमन्ना कैसे कर रही है?

अची इज़िराईल, सुती जाग्राई ससुई।
थी दोड़ाई दलील; त पुन्हू माड़हू मोकिल्यो॥

जब मौत ने प्रेम मे खोई हुई ससुई को सचेत किया, उस समय भी वह सोच रही थी, मानो पुन्हू ने किसी पथिक को उसकी सहायता के लिए भेज दिया है।

मुन्कर अँ नकीर खे जड़हिं ड्रिठाईं।
अग्रियाँ उथी उनि खे, पुन्हू पुछियाईं।
अदा, इताईं, को वियो साथु सज्ञण जो॥

ससुई ने जब कब्र मे लेखा पूछनेवाले मुन्कर और नकीर नामक फिरिश्तो को देखा, तब उठकर उनसे पुन्हू का हाल पूछने लगी। कहने लगी— "ऐ भय्या, क्या यहाँ से मेरे प्रियतम तथा उसके साथियो के काफ़िलो को गुजरते हुए तुम लोगो ने देखा?"

भायाणी थी भोरि, पुठीअ केचियुनि किरा।
राओ मिड़ियोई रत सी, कारणि कान्ध ककोरि।
लान्चे लक, लतीफ़ चए, उथी डूंगर ड्रोरि।
जतु वञे थो जोर, उपडु ताँ ओड़ी थिएँ॥

ऐ ससुई, केच के रहनेवाले (पुन्हू तथा उसके भाई) के पीछे बराबर की हिररोदार बनकर, पत्थरों को चूर-चूर कर दे और भतार के लिए पहाड़ को अपने रक्त से रंगकर लाल कर दे। तू उठकर गुफाओं तथा पहाड़ों मे उसे खोज (अर्थात् कठोर साधना द्वारा प्रियतम को पा)। शाहसाहब ससुई से कहते हैं कि समय बड़ी तेजी से जा रहा है, तू शीघ्रता से कदम उठा, ताकि तू उसके समीप पहुँच सके।

करि को वाको वसु, विहु म मुन्ध भंभोर में।
चढ़ी ड्राढियनि डूंगरे, पेरु पुन्हूअ जो पसु।
ड्रोरण मन्झाँ ड्रसु, पवन्दुइ होत पुन्हूअ जो॥

ऐ नारी, उठकर कुछ शोर मचा और कुछ उपाय कर। इस तरह (ससार रूपी) भभोर मे मत बैठ जा। कठिन पर्वतों पर चढकर, पुन्हू के पैरो के निशान ढूढ ले (अर्थात् कठोर साधना कर) ढूढने से ही तुझे प्रियतम पुन्हू का पता लगेगा।

सौ कोह करे सभका, तूं खुही ! खणिजि विख।
ताणिजि मन्झाँ तिख, त पन्धु पासे भर निबिरी॥

ऐ थकी हुई नारी, सौ कोस का रास्ता हरेक पार करता है, पर तू केवल एक ही कदम उठा (अर्थात् सासारिक प्रपंच मे तो सभी भटकते हैं, पर तू केवल परमात्मा को पाने के लिए कदम उठा।) पूर्ण उत्साह से कूद पड़ तो तेरा सफर क्षण मे ही पूरा हो जाए।

हेकिल्याईं हील, पोरीन्दियसि पुन्हूअ ड्रे।
आड्रा डूंगर लकियू, सूरियू सुञानि सील।
न कर ब्रेली आहिनि ब्रेल, जे सूर प्रियाँ जा साणु मू॥

(ससुई कहती है) अब अकेली ही पुन्हू के लिए सफर करूँगी (साधना करूँगी)। यद्यपि पर्वतो का रास्ता दुर्दम्य है तथा उनकी चोटियाँ ऊँचाई के कारण प्रसिद्ध हैं, पर यदि प्रियतम के दिए दर्द मेरे साथ हैं, तो वे ही मेरे सहायक हैं। तात्पर्य यह कि यदि प्रियतम की तड़प साधक के पास है तो वह साधना की कठिनाइयो की परवाह तक नही करता है।

दोस्त डि॒ठाईं दिलि सी, विर्ची ताँ न विहे।
लान्घे लक, लतीफ चए, पहणनि मझि पही।
सन्दे नीह निही, की सरफ़िराजु ससुई॥

शाहलतीफ कहते है कि ससुई ने अपने प्रियतम को हृदय की आँखो से देखा, यही कारण है कि उसने कभी भी तंग होकर चलने से मुख न मोडा (साधना नही छोडी); गुफाएँ पार कर वह पहाड़ों पर चढ़ गई। प्रेम के वैभव ने ही उसे ऊँचे पद पर पहुँचाया है।

हर्या हद्रि न छद्रियाँ, सबु शुकरानो।
जो॒क जमानो, मूँ वर! वियो विसरी।
नाहि जमियत जान खे, होत पुज॒राणाँ हाणि।
अल्लाह सेई आणि, जिनि साउ चखायमि सिकजो॥

(ससुई कहती है) मैं धैर्य और संतोष को कभी हाथ से जाने नही दूँगी। ऐ प्रियतम, मैं (सासारिक) मौज-शौक का ज़माना भूल गई हूँ। प्रियतम के सिवा, अब मेरे प्राणों को चैन नही। ऐ परमात्मा, तू उन्हे वापस ला, जिन्होने मुझे प्रेम का स्वाद चखाया है।

"स्वर मैंज़ूरी"

"मैंज़ूरी" शब्द का अर्थ है बेहाल तथा लाचार। इस स्वर मे शाह-साहब ने बेहाल ससुई का वर्णन किया है। वह पुन्हू के स्नेह मे मतवाली होकर सुनसान रास्ते से अकेली ही बड़ी तेजी से जा रही है। उसकी हालत अत्यन्त ही दयनीय है और मार्ग के कष्ट दिल दहकाने वाले हैं, उसे मन के विकार भी हैरान करते हैं, परन्तु वह अपने प्रियतम का ध्यान करती, मन के विकारो पर जीत प्राप्त करती, आगे बढती जाती है। कठिनाइयो का सामना करना ही मानो उसकी पूजा है। हर वस्तु मे उसे अपने दोस्त का दीदार होता है। इस स्वर मे लतीफ़ जी ने साधना के रास्ते पर सासारिक सुखो के त्याग पर भी बल दिया है। साधक जब अपनी सब इच्छाएँ मार देता है, तब ही उसे प्रियतम का दीदार नसीब होता है।

हलन्दे होत पुन्हूअ डे॒, खुहिजनि के खूटियू।
पहणु तिनी पटु थिए, जे लइ लालन लूठियू।
सभि सहेलियूँ सिक खे, चुन्जिहूँ अँ चूठियूँ।
ब॒ांभण! थीउ ब॒ूटियूँ, त कुता खोन्ई केच जा॥

शाहसाहब फ़र्माते है कि प्रियतम की ओर जाने मे झूठी प्रेमिकाएँ (जीवात्माएँ) ही थक जाती हैं, पर जो प्रियतम के लिए बेचैन हैं, उनके लिए, तो पर्वत भी मैदान बन जाते हैं। ऐ ब्राह्मणी (ससुई) सच्चे स्नेह के रास्ते पर तेरी सभी सहेलियाँ (अज्ञान मे खोई जीवात्माएँ) शिथिल और बेखबर दिखाई देती है, पर तू इस रास्ते पर चूर-चूर हो जा (अपने आप को मिटा दे) ताकि तेरा माँस केच के कुत्ते खा-खाकर उत्सव मनाएँ अर्थात् सभी तेरे बलिदान की प्रशसा करें।

सधर सी सड्‌ करे, परखन्डेनि पिय्यासि।
केरु ब्राह्मण ? किनि जी ? केरु ज्ञाणे केणासि।
हुन्द न सिन्धु सुयास, हिन पुरयेनि कयसि पधिरी॥

ससुई कहती है, शक्तिशाली प्रियतम से नाता जोड़कर मैं देश-विदेश मे प्रसिद्ध हो गई हूँ। वैसे किसे कैसे मालूम होता कि यह ब्राह्मणी कौन है ? और किस की है ? अर्थात् कोई भी मुझे न पहचानता। वैसे तो इस (ससुई) का नाम सिन्धप्रदेश ही सुन पाता, पर अब (प्रियतम से नाते जोडने के कारण) तो देश-विदेश मे उसका नाम प्रसिद्ध हो गया है।

खूबी मञ्झि खिफ़त, अे दोस्त दिकत आहे अब्दुल्लतीफ खे।
मदह मू खाँ न थिए, सन्दी सूर सिफत।
हिजी करियाँ हीज सी, मुत्तालुइ महबत।
हुजनु होत पुन्हूअ जो, रुह्याई राहत।
परियाँ जे पिस्तान जो, फाकूई फरहत॥

(शाहसाहब अपने को ससुई मानकर कहते हैं) ऐ प्रियतम, मेरे लिए दर्द और जफा (कठिनाइयो) मे बडी ही खूबी है, अत: दर्द की महानता की प्रशसा मैं कर ही नही पाता हूँ। मैं "मुहब्बत" शब्द का उच्चारण बड़े शौक से करूँ और लगन से पढूँ। पुन्हू का दर्द मेरे लिए राहत है। प्राणाधार के लिए प्रेमाग्नि मे जलने मे ही मुझे आनन्द है।

आदियू ! वरु उधाड, विहाँउ जहिं विसारियो।
जेड्रियू ! छड्‌ड्रे जाड, सभि नग्गियू थी निकिरो॥

ससुई अपनी सहेलियो से कहती है—ऐ सखियो, जिसने (प्रियतम के लिए) सासारिक हार-शृंगार भुला दिया है, उनका त्याग वास्तव मे महान् है। ऐ समवयस्काओ, तुम सब भी गफलत (अज्ञान) छोड कर नि:सकोच होकर (इस रास्ते पर) निकल पड़ो।

सभि नगियू थी निकिरो, लालच छदे लोभ।
सुप्रियाँ सी सोभ, निन्डू कन्दे न थिए॥

(ऐ सखियो) तुम सब हर तरह के लोभ लालच (तमन्नाएँ) त्याग कर, नि.सकोच हो, इस (प्रेम के) रास्ते पर निकल पड़ो क्योंकि परमात्मा को प्राप्त करानेवाली सिद्धि (अज्ञान की) नींद करने से प्राप्त नही होती।

हून्दियाँ होतु परे, ओद्रो आहिं अण हून्द खे।
साज़नु तिनि सरे, ला सी लद्रीनि जे॥

प्रियतम सम्पन्न पुरुषो से दूर तथा दरिद्रो के समीप है (अर्थात् सांसारिक लोगो से दूर और संसार को त्यागनेवालों के समीप है।) प्रियतम उन्हे प्राप्त होता है, जो अपने साथ कुछ भी नही लेते हैं।

लाए खन्जरु "ला" जो, हिय खचर खे हणु।
सधुनि जूं, सैय्यदु चए, वथूँ सभु विकणु।
पेरु परोड़ खणु, त हलण में होरी वहीं॥

(ऐ ससुई!) तू मन-रूपी खच्चर पर अल्लाह नाम की खन्जर चला तथा इच्छाओं का समस्त साज-सामान त्याग दे। आध्यात्मिक रास्ते पर सोच समझ कर क़दम उठा, ताकि रास्ते पर स्फूर्ति से आगे बढ़ सके।

होरिनि हाड़हो लन्घियो, थी जरीदी जोइ।
हून्द जिनीनि सी होइ, होतु न हून्दो तिनि सीं॥

ऐ नारी, तू हिम्मत बाँधकर अकेली ही आगे बढ़। हाड़हो पर्वत वे ही पार कर सकती है, जिनके साथ बोझ नही है, (तात्पर्य यह कि तरीक़त अथवा आध्यात्मिक रास्ते पर वे ही जीवात्माएँ सफलता से चल सकती है, जिन्होंने सांसारिक प्रपच रूपी बोझ त्याग दिया है), पर जिनके पास सांसारिक वस्तुएँ और विकार है, उनके साथ कभी भी प्रियम नही है।

वधो कीम वणाहु, ऊँचा डून्गर मथियो।
टिमो म नेणाहु, त पेरु निहारियाँ प्रियनि जो॥

(पुन्हू की खोज मे मतवाली ससुई वृक्षो, पर्वतो आदि से कहती है) ऐ वृक्षो, मेरे रास्ते मे तुम मत बढो, ऐ पर्वतो, तुम इतने ऊँचे मत बनो, ऐ मेरे नेत्रो, तुम अश्रुधारा मत बहाओ, ताकि मैं पुन्हू के पैरो के निशान साफ़-साफ़ देख सकूँ।

कन्डा मूं पेरनि में, तोणे लख लग्गनि।
आङुरि अङूठे न मिड़े, छिपू पेर छिननि।
वीन्दे ड्राह्नि प्रियनि, जुती जाति न पाइयाँ॥

(ससुई कहती है) चाहे मेरे पैरो मे लाखो काँटे चुभे और पहाड़ मेरे पैरो को इतना पथरीला (कठोर) बना दें, कि मेरी उंगलियाँ, अँगूठे की तरह न मरोड़ी जा सकें, फिर भी प्रियतम की ओर जाते मैं जूते कदापि नही पहनूंगी (अर्थात् अनेक तरह के कष्ट सहन करूँगी, किन्तु सांसारिक साधनों का सहारा नहीं लूंगी।)

जुतियू से पाईन्दियू, जिनीनि पेर प्री।
लथियू सभि परियिन, ससुई सुप्रियुनि खे॥

ससुई कहती है जूते वे (जीवात्माएं) पहनेंगी, जिन्हे (प्रियतम से ज्यादा) अपने पैर प्रिय हैं। मैंने तो प्रियतम के लिए (सांसारिक) सभी रीति-रिवाज छोड़ दिए हैं।

मरी, जीउ, त माणिइं, जानिब जो जमालु।
थिएं हून्द हलालु, जे पन्दि इहाई पारिइं॥

(ऐ ससुई!) अपने को जिन्दा ही मार दे (अर्थात् मरने से पहले ही अपनी इच्छाएं और विकारो को नष्ट कर दे) तो तू प्रियतम के हुस्न (सौन्दर्य) के दीदार का आनन्द मना सके। यदि तू इस आदेश के अनुसार आचरण करेगी, तो अवश्य ही अपने प्राणधार को भायेगी अर्थात प्रियतम को अच्छी लगेगी और वह तुझे अवश्य ही स्वीकार करेगा।)

मरु त मोचारी थिएं, अजलाँ अग्गे अज्रु।
जाँ की हुईं जीअरी, त मुन्ध भंभोराँ भज्रु।
पुन्हूअ साणु पहज्रु, त मलक अलमोतु माणिईं॥

(ऐ ससुई!) तू मरने से पहले ही मर (अर्थात् जिन्दा रहते ही इच्छाओ और विकारो को मार दे) ताकि तू कृतकृत्य हो जाए। ऐ नारी (जीवात्मा), जब तक तू जिन्दा है, तब तक इस (ससार रूपी) भभोर से दूर रह। पुन्हू के साथ सच्ची बनी रह, तो मृत्यु के सुन्दर पार्षदो का दीदार तुझे नसीब होगा।

हथे, पेरे, मूड़िइं, कहिजि भरि कपार।
मतां छोरी! छड्रिइं, प्रीतणी पचार।

तोखे सन्द ससुई! सन्दी लँव लगार।
जे हून्ऐ होत हज़ार, त बि पाड़िजि कोम पुन्हूअ सी ॥

ऐ ससुई, तू पुन्हू प्रियतम के पास, अपने हाथ, पैर, घुटने तथा सिर के बल दौड़ जा। ऐ औरत, तू भूल कर भी प्रेम का पीछा न छोड़ना। ऐ ससुई, तुझे प्रेम का सहारा है तथा लगन की चपेट भी लगी हुई है। यदि तेरे सहस्रो हितैषी हो, फिर भी उनमे से किसी को पुन्हू के बराबर मत समझ।

लिखियो जो निराडि, सो अंगु क्याड़ीअ न थिए।
पाड़ियो वेठी पाड़ि, जेकी लालन लिखियो लोह मे ॥

(ऐ ससुई!) जो भाग्य मे लिखा हुआ है, वह कदापि नही मिटता। अतः जो कुछ विधाता ने तेरे भाग्य मे लिख दिया है, वही प्रयत्नपूर्वक करती रह। (अर्थात् विधाता ने यदि तेरे भाग्य मे दुःख लिखे हैं, तो तू उन दुःखो का सामना करती रह।)

फर्दा मुन्ध फिटी कई, नकदु खन्यो नारि।
ही जा वाग विल्हीअ जी, वेरमि द्रे म वारि।
जांकी मुठीअ मारि, जांकी मेड़ु मुठीअ खे ॥

ससुई कहती है इस नारी (मैं) ने 'कल' को त्याग 'आज' को अपनाया है। (ऐ पुन्हू परमात्मा) मुझ गरीब की डोर जो तेरे ही हाथ है, उसे विलम्ब की ओर मत खीच। (अर्थात् मेरे मिलन मे विलम्ब मत करना) या तो इस भाग्यहीना को मार दे या अपने से मिला ले।

ड्रिसणु ड्रि खाँ अग्रिरो, ससुई आणि म शकु।
थी ब्रान्ही, भर ओइयूँ, लुडु म पसी लकु।
वरु पुन्हूअ सी पलकु, खोइ ब्रारहन वरह बियनि सी ॥

ऐ ससुई, इस बात पर कभी संदेह मत करना कि प्रियतम का दर्शन (सासारिक) हार-शृंगार से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। पुन्हू की दासी बनकर तू उसकी पानी की पखाले भर और पर्वतो तथा गुफाओ (राह की कठिनाइयो) को देख विचलित न हो। पुन्हू के साथ बिताये हुए एक पल पर, दूसरे के साथ बिताए गए बारह महीने भी कुर्बान हैं (अर्थात् दूसरो के साथ गुजारा हुआ लम्बा समय भी पुन्हू के मिलन के एक पल की बराबरी नही कर सकता है।

डुखी सन्दियूं डून्गरियनि, वण-टिण वायू कनि।
वटाँ वेही जिनि, वढे से वाढोड़िया ॥

(ससुई के दु ख से दुखी होकर पेड़, पौधे तक रो रहे हैं। उसी का वर्णन करते शाहसाहब कहते है—) पर्वतो के पेड-पौधे भी इस दुखिया की ही चर्चा कर रहे है। इस घायल ने, पेडो के पास बैठ, उन्हे अपने दु ख से मानो घायल कर दिया है।

> रुञुनि मे रेड़ थी, कर सारंगी साजु।
> ई इश्क जो आवाजु, माड़हो रखनि मुन्ध ते ॥

(शाह साहब कहते है—) मरुभूमि मे ससुई की पुकार सारंग की आवाज के समान (मधुर) लग रही है। यह स्नेह का आलाप है, पर साधारण लोग उसे एक दुखिया का विलाप समझ रहे है।

"स्वर देसी"

स्वर देसी एक रागिनी है, जो दिन के समय गायी जाती है। इस स्वर मे शाह साहब ने ससुई के दृढ निश्चय तथा राह की कठिनाइयो का वर्णन किया है एव उसे अज्ञान की नीद मे सो जाने के कारण अनेक तरह के उपालम्भ दिए है। शाह साहव ससुई से कहते हैं कि यदि तू सोयी हुई न होती, तो आज तुझे इस तरह भटकना न पडता। अरी बावली, यदि तूने पुन्हू के ऊँटो को जंजीरो से न बाँधकर अपने बालो से बाँधा होता, तो तुझे ये दु ख न देखने पड़ते। अब भी सर्वस्व त्याग कर, पुन्हू को पाने के लिए निकल पड, तो वह अवश्य ही तुझे मिलेगा।

> अङण मथे ओपिरा, जर्हिं ड्राघा ड्रिठइ ड्रीह।
> वठी सड़क ससुई, वेहु विहाणीअ सीअ।
> चोटी से चॉगनि खे, जडु जजीरुनि जीअं।
> त होतु तुहिंजो हीअ, हून्द पुन्हू न्याऊँ न पाण सी ॥

अरी ससुई, जिस दिन तूने अपने आँगन मे पराये ऊँट देखे, उस दिन यदि तू जागकर सुबह तक उनका रास्ता पकड बैठ जाती तथा तूने अपने बालो से उन ऊँटो को जजीरो की तरह बाँध लिया होता तो वे तेरे पुन्हू को इस तरह अपने साथ न ले गये होते (तात्पर्य यह कि यदि साधक सचेत रहता तो परमात्मा उससे कभी भी दूर न होता)।

> अङण मथे ओपिरा, जर्हिं ड्राघा ड्रीन्ह ड्रिठाइ।
> कुँजूं जे कुल्फनि जू, ताँ कहिं ललि लिकाइ।
> त सुभाणे सन्दियाइ, थिए सारूणी ससुई ॥

ऐ ससुई, जब तू ने अपने आँगन मे पराये ऊँट देखे, तब यदि तूने ताले की चाबियाँ छिपाकर रख ली होती, तो दूसरे दिन अवश्य ही तेरी

सार-सम्हाल ली गई होती; अर्थात् यदि साधक अपनी साधना जारी रखता है और मन ही मन अपने प्रियतम का चिन्तन करता रहता है, तो प्रियतम भी उसकी याद अवश्य करता है।

गह सिरि थिए म गुस, पणी पोइ म प्रियनि ते।
जहिं सिरि साजनु सुप्रियनु, तह उठ म लग्गे उस।
पुन्हू पाक पुरस, होत न कजनि हेड्रियू॥

(ससुई अपने पुन्हू के प्रति शुभकामनाएँ प्रकट करती कहती है कि) मेरी आकांक्षा है कि जिस रास्ते से पुन्हू जा रहा है, उस रास्ते पर धूल न उड़े, जिससे मेरे पुन्हू को कोई कष्ट पहुँचे। जिस ऊँट पर मेरा प्रियतम सवार हो, उसे धूप तक न लगे। ऐ पाक पुरुष प्रियतम, तुम्हे इस तरह का व्यवहार शोभा नही देता।

लड्डीदे लिबासु, जतनि जेड्डोई कयो।
अचे आरीअ ग्राम जो, वण वण मन्झाँ वासु।
मिरूँ खियन्मि मासु, हड्ड हलन्दा होत ड्रे॥

(ससुई कहती है)भभोर से जाते हुए जाटो ने (मुझसे) महान कपट किया है। मुझे तो प्रत्येक वृक्ष से पुन्हू की महक आ रही है। यदि मेरा मास पशु खाकर नष्ट करदे, फिर भी मेरी हड्डियाँ प्रियतम की ओर चलती जायेगी। (कितने ही कष्ट आयें, प्रियतम-प्रभु से मिलने की साधना चलती ही जायगी।)

उठ वेरी, ओठार वेरी, वेरी थियड़मि ड्रेर।
चोथो वेरी वाऊ थियो, जंहिं लटिया पुन्हू पेर।
पंजो वेरी सिजु थियो, जहि उल्ही की अवेर।
छहो वेरी छपर थियो, जहिं संवाँ कया न सेर।
सतों वेरी चन्डु थियो, खिडियो न वड्डीअ वेर।
वाहेरे जी वेर, छुलूं करियाँ छपरियनि॥

(ससुई अपने वैरियो का वखान करती कहती है) एक तो ऊँट मेरे शत्रु थे, दूसरे ऊँट चलानेवाले जाट और तीसरे मेरे देवर। मेरा चौथा वैरी पवन हुआ जिसने पुन्हू के पद चिह्न मिटा दिए। मेरा पाँचवा वैरी सूर्य हुआ, जिसने अस्त होने मे देर की, मेरा छठा वैरी पर्वत हुआ, जिसने अपने रास्ते टेढे मेढे वनाये है (टेढे मेढे रास्ते के कारण वह पुन्हू को दूर से जाता हुआ नही देख पाती) मेरा सातवाँ वैरी चन्द्रमा हुआ जो शीघ्र ही उदय नही हुआ अत. मैं सध्या के समय पर्वतो के मध्य अत्यन्त ही शीघ्रता से चली जा रही हूँ।

मिड़ी मुन्ध द्रे आइयूँ, साहिड़ियूँ सहजाँन।
अल्सफरु क़ितुह मिन अल्नारि, हारी मोटु हिताँ।
सड्डु सिरात अल्मस्तकीम जो, अथेई ताँ अग्रियाँ।
से केची नींन्दइ कियाँ ? तुहिंजो नीहँ निफाक़ सी॥

ससुई की सहेलियाँ उसके चारो ओर इकट्ठी होकर कहने लगी, "ऐ गाफिल! यह (प्रेम का) सफर दोज़ख की आग सदृश है, अतः तू इस रास्ते से लौट आ। आगे तो वह दोज़ख का पुल है जो तलवार से तेज़ तथा बाल से भी बारीक है। केची (अर्थात् केच के रहनेवाले पुन्हू और उसके भाई) तुझे अपने साथ कैसे ले जायेंगे, यदि तेरा प्रेम द्वैत-पूर्ण होगा ?

सबह स्याही, आरीअ ग्राम रे।
कद्रहिं पसे का न का, रिअ लालन लालाई।
द्वदु दिलि ताँ दूर करे, करि साजन सफाई।
मन ला शेख़ु लह फशीख़हु अल्शैतानु, इन रिअ ऊदांही।
होइ जा हली हेकली, सा ग़ैरब गमाई।
बिल्ला शेखिमन यम्शीफी अल्तरीकि अहिडी अवाई।
तँहि रिअ तवाई, कोड़े थियनि केतिरियूँ॥

(ससुई कहती है) पुन्हू के सिवा मेरे लिए चारो तरफ अन्धकार है। प्रियतम के सिवा किसी ओर कही पर प्रकाश देखने मे नही आता (तात्पर्य यह कि प्रियतम के सिवा जिज्ञासु के लिए चारो ओर अन्धेरा है) ऐ प्रियतम, मेरे हृदय की कालिमा (अज्ञान) मिटाकर उसे उज्जवल बना। (कहा जाता है) "जिसके कोई शेख़ (सद्गुरु) नही, उसका पथ-प्रदर्शक शैतान बनता है।" वास्तव मे सद्गुरु के सिवा सब कुछ अन्धकारमय है क्योकि जो अकेला (बिना गुरु के) इस (आध्यात्मिक) पथ पर चला उसे अह ने पथभ्रष्ट किया। जो साधक बिना सद्गुरु के आध्यात्मिक रास्ते पर चलता है, वह मानो बिना नौका के समुद्र मे कूदता है। उसके (सद्गुरु के) बिना करोडो लोग इस पथ पर उलझ जाते हैं।

अल्लाह कारणि ओठिया, लेडा न्यो म लुर।
न्यो निमाणी पाण सी, ब्रान्हीअ झले ब्रुर।
मूँ खे मारे मन्झि थी, सन्दो होतनि हुर।
कचो लायाँ कुर, केचाँ ओरे जे वराँ॥

(ससुई कहती है) ऐ ऊँट चरानेवालो, परमात्मा के लिए ऊँटो को इतना तेज़ दौडाकर मत ले जाओ। इस नम्र दासी को उसके वालो से

घसीटकर अपने साथ ले चलो। मुझे भीतर ही भीतर प्रियतम की याद सता रही है। यदि मैं केच (पुन्हू का निवास-स्थान) से वापस लौट आयी तो मानो अपने कुल को कलक लगाऊँगी।

केचाँ ओरे केतिरियूं, मैजूरियूं मुयूं।
वाथूं वीह थियूं, कुहु जाणा केहीं वियां॥

केच की ओर जाती कितनी ही अवलाएँ (जीवात्माएँ) मरकर नष्ट हो गईं। केच की ओर जाने के लिए बीसो मार्ग हैं, मुझे क्या पता कि वे किस रास्ते से गये हैं। तात्पर्य यह कि परमात्मा तक पहुँचते-पहुँचते कितने ही साधक अपनी साधना से भ्रष्ट हो जाते हैं, तथा परमात्मा को पाने के लिए अनेक रास्ते है, अतः विचारा साधक उलझ जाता है कि किस रास्ते को अपनाऊँ।

बिरह भणायसि वरु, ना त सुखी केर सधूं करे?
घणो ड्रोरियाइं ड्रुख सीं, ड्रेरनि लइ ड्रूंगर।
वरी आयुसि वरु, सफर मुईअ जा साबि पियां॥

शाह साहब फर्माते है कि प्रेमाग्नि ने ही ससुई को मरुभूमि मे भटकाया है, अन्यथा कोई सुखी (औरत) इस तरह भटकने की कैसे इच्छा करती? बड़ी कठिनाइयो का सामना कर उसने देवरो की खोज पर्वतों पर की, तब तो उसका प्रियतम वापस लौट आया और उसने आकर ससुई की यात्रा को सफल बनाया।

जिअं सो हरणु हुमाउ, सरगर्दान सन्सार में।
ही पशु न खोड़े पटई, हू धड सिरि धरे न साहु।
जेकुसि तन मुलाउ, ससुई सूर पिराइया॥

जिस तरह कस्तूरी-मृग अपनी नाभि से आने वाली महक पर विस्मित होकर चारो तरफ उसे पाने के लिए भटकता रहता है तथा हुमा पक्षी जमीन पर पैर न रखकर सदैव आकाश मे उड़ता रहता है, दोनो को अपने शरीर की भी सुध बुध नही रहती है, उसी तरह लगता है मानो ससुई ने भी उनसे भटकना सीख लिया है तभी तो वह मरुभूमि मे शीघ्रता से जा रही है।

तात्पर्य यह कि जिस तरह कस्तूरी-मृग नही जानता है कि महक उसके अन्तर से आ रही है और उसे बाहर ढूँढता रहता है उसी तरह साधक भी परमात्मा को अपने भीतर न ढूँढकर उसे पाने के लिए बाहर इधर-उधर भटकता रहता है।

समरु जिनीं न साणु, होतु हिमाती तिनि जो ।
करे छेड़ छप्पर में, पुन्हू ईन्दो पाण ।
थीदी रीझ रिहाणि, लहजे मंझि लतीफ़ु चए ॥

शाह लतीफ़ कहते हैं कि जिसके पास कोई (सांसारिक) साधन नही है, उसका सहायक परमात्मा स्वय है। पुन्हू-परमात्मा स्वयं ही नृत्य करता पर्वतो मे प्रकट होगा, फलत एक ही पल मे दोनो प्रेमियो के बीच प्रेम भरी बाते होने लगेगी ।

ससुई लधियो सो, मर्द जहिं मातु कया ।
जबलु वड़ो जो, नूणि मिडोई नीहं खे ॥

ससुई ने वह पहाड़ पार किया है, जो वीर पुरुषो को भी परास्त कर देता है अर्थात् ससुई प्रेम के उस कठिन रास्ते को पार कर गई है, जिस रास्ते पर वीर भी हार मानकर बैठ जाते हैं। वास्तव मे ऊँचा पहाड भी प्रेम के सामने सीधी, सरल जमीन की तरह ही है ।

आड़ितिराछा आहुडा, डूंगर खे डाका ।
कयमि आहि अजीब खे, सिक मन्झां सा का ।
पेई हथीकी होत खे, कूक वञी कनि का ।
मुहिंजो वसु वाका, ब्रुधणु कमु ब्ररोच जो ॥

पर्वत पर चढने के रास्ते बडे ही टेढे-मेढे और कठिन हैं। मैं प्रेम मे तड़प-तड़प कर प्रियतम के लिए आहे भर रही हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी पुकार मेरे महबूब के कान तक अवश्य पहुँची है। मेरा काम है पुकार तथा विनय करना और प्रियतम का काम है उन पुकारो को सुनना ।

करडा डूंगर कह घणी, जिति बरपट सुञ्जनि बीरानु ।
डाहनि डाहप विसिरी, थिया हरीफ ई हैरानु ।
ससुई लधियो, सैय्यदु चए, मुहबत सी मैदानु ।
जंहिजो आरियाणी अगिवानु, तहिंखे कान्हे बाक बहीर मे ॥

शाह साहब कहते हैं कि पर्वत कठिन तथा यात्रा लम्बी है, जहाँ पर केवल वीरानी और सन्नाटा ही छाया हुआ है। इस रास्ते पर विद्वान अपनी विद्वत्ता भी भूल जाते हैं तथा प्रवीण व अनुभवी भी उलझन मे पड जाते है। किन्तु ससुई ने प्रेम के कारण यह (कठिन) यात्रा पूरी की, क्योकि जिसका पथ-प्रदर्शक पुन्हू-परमात्मा होता है, उसे किसी भी तरह का भय और सन्देह नही रहता है ।

लगा। ऐ भारी सरदार, तू वहाँ प्रकट होना तथा मुझ अनाथ को अपने तेज से रास्ता पार कराना। ऐ पवित्र पुरुष, इस पृथ्वी पर जो (अज्ञान का) अन्धकार है, उसे (अपने ज्ञान द्वारा) प्रकाशित करना। ऐ पूर्ण पुरुष, इस भिक्षुणी की शिकायतें अपने कानों से सुनना।

"स्वर कोहयारी"

कोह शब्द का अर्थ है पर्वत। इस स्वर मे पहाडो की कठिनाइयो का वर्णन किया गया है। ससुई को नीद मे सो जाने के कारण ताने दिए गए हैं एव आशिको को जाग्रत रहने की चेतावनी दी गई है। शाह साहब कहते हैं कि जो पाँव पसार कर सो गए, उन्हे प्रियतम नीद मे ही छोड़कर चला जाता है।

इस स्वर मे शाह साहब ने साधको को चेतावनी दी है अज्ञान की नीद मे न खोकर, परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए सदैव ही जाग्रत रहना चाहिए। आध्यात्मिक पथ पर आने वाली विकट कठिनाइयो के सामने हिम्मत न हारकर, उनका नम्रता और साहस से सामना करके आगे की ओर बढते रहना चाहिए। सच्चे प्रेमियो से प्रेम की शिक्षा लेनी चाहिए, क्योंकि सच्चा प्रेम वह आग है, जिसकी एक चिनगारी ही रास्ते की समस्त कठिनाइयो को जलाकर खाक कर देती है।

पूर्ण सद्‌गुरु की पदवी बहुत ही ऊँची है और जिज्ञासु तब तक गिनती में नही है, जब तक वह अपने अह को तपाकर नष्ट नही कर देता। पुन्हू शाही खानदान का था और ससुई थी एक साधारण धोबिन। पुन्हू रूपी सद्‌गुरु ने ससुई का कुल नही देखा, बल्कि देखी उसकी अपूर्व सुन्दरता। शाह साहब ने बताया है कि सच्चे जिज्ञासु मे भी कुछ छिपा सौन्दर्य रहता है, जो पूर्ण सद्‌गुरु को ही दिखाई देता है; फिर चाहे वह कितने साधारण कुल का भी क्यों न हो। प्राय. सद्‌गुरु और जिज्ञासु का मिलन थोड़े समय के लिए ही होता है, किन्तु उस मिलन से जिज्ञासु इतना प्रभावित होता है कि अपने को जीवित ही मारकर (अर्थात् सांसारिक नाते तोडकर) जाकर अपने प्रियतम से मिलता है। सच्चा साधक नम्रता से भरा होता है और सदैव अपने प्रियतम के सामने अनुनय-विनय करता रहता है तथा अपनी अयोग्यता का बखान कर प्रियतम की अनुकम्पा प्राप्त करता है।

लील न जाणिएँ लख सीएँ, कुली नोमु कयाइ।
कुम थी, पहुचु क़रीब खे, इज्लसि तो न जुझाइ।
मुठी ! महमाननि सी, वेही राति विहाइ।
जेलाँ निन्ड कयाइ, ते रोजु रहीं थी राह मे॥

(ऐ ससुई) तू रात के समय थोड़ी सी भी सचेत न रही, तू केवल (अज्ञान की) नीद ही करती रही। अब भी उठ और जाकर प्रियतम तक पहुँच क्योकि इस तरह बैठना उचित नही। ऐ भाग्यहीन ! तू (परमात्मा-रूपी) अतिथि के साथ सारी रात रहकर गुजार। जिस हालत मे तू ने नीद ली है, उस हालत मे तू सदैव के लिए रास्ते पर ही रह जायगी अर्थात् कभी भी मंजिल तक नही पहुंच सकेगी।

गाफिलि गफिलत छोड़ ! तू कीअं अणासी ओंझिरी।
चुपाता चढ़ी विया, वञी पहुता तोड़ि।
नेणनि निन्ड ऊखोड़ि, जिम वरनि मे वाका करी॥

ऐ गाफिला ! गफिलत छोड़। ऐ निर्लज्जा! तू कैसे नीद की खुमारी मे अलसा रही है ? वे (पुन्हू और उसके भाई) चुपचाप ऊँट पर सवार होकर चले गये और अपनी मंजिल तक जा पहुँचे। अब भी आँखो से नीद निकाल दे, कही ऐसा न हो कि इस (नीद के) कारण तुझे पर्वतो के कठिन रास्तो पर रोना-चिल्लाना पडे।

सुतीअ पेर डिघा करे, वड्डी जाड कयाइ।
दर भर उभिईं दोस्त जे, त सुरि पुरिहून्द सुयाइ।
असलि आरीअ ज्ञाम जी, सञी तूँ न सियाइ।
पुन्हू सीं पियाइ, थी निभाञी ! निन्डूं करी !

(ऐ ससुई) तू ने महान भूल की है कि पाँव पसार कर सो गई। ऐ नादान ! तू क्यो नही अपने प्रियतम की खोज करती है ? इस नीद (अज्ञान) के कारण भाग्यहीनो पर (जीवन व्यर्थ गँवा देने के) आरोप लगते हैं। जो (जीवात्माएँ) सूर्यास्त होते ही सो जाती हैं, वे पुन्हू (परमात्मा) की माँग ही कैसे करती हैं ?

सुतीअ सन्झेई, मुंहूँ वेढे मुअनि जिअं।
ओजाञो अखियुनि खे, ज्ञातोइ न ड्रेई।
हथाँ तो पेई, थी कचो केचियुनि करी॥

(ऐ ससुई) तू सूर्यास्त होते ही मुर्दे की तरह मुख ढाँपकर सो गई। आँखो को जाग्रत रखना तो तू जानती तक नही। भूल तो तुझ से हुई है और दोष तू केचियो (केच के रहनेवालो) को दे रही है। अर्थात् साधक अपने अज्ञान के कारण भटकता है, फिर भी वह अपने को दोषी न मानकर दूसरों को दोषी मानता है।

करड़ा डूंगर कह घणी, जिति जबल गूनागूनि ।
लीडनि जूँ लतीफु चए, तन्ना तन्वारू पुनि ।
जिनि डि्ठो पेरु पुन्हूअ जो, से नकी रुवनि न चुवनि ।
हुन्दनि मथे हुवनि. लथापा हिन लोक जा ।।

शाह साहब कहते हैं कि पर्वत दुर्लंघ्य हैं तथा यात्रा अनन्त है, जहां तरह-तरह के पर्वत (कठिनाइयां) है, जिनके तग रास्तो से जाते हुए ऊँट भी डर के मारे चिल्लाते रहते हैं, परन्तु जिन्होने प्रियतम के पैरो के निशान ढूंढ लिए हैं, वे इस कठिन रास्ते से जाते हुए भी न तो आँसू बहाते हैं, न होंठ तक हिलाते हैं (अर्थात् न शिकायत करते हैं)। वास्तव में जिन्दा लोगो के लिए ही इस संसार के रिश्ते-नाते (बधन) हैं (पर जिन साधको ने अपने को जिन्दा ही मार दिया है, वे इन कठिनाइयों से बिल्कुल नही डरते हैं) ।

करड़ा डूंगर, कह घणी, जिति विया रोड्रा रिगाए ।
साडापे सेणनि जे, थी बिन्दुरि वाझाए ।
रहसु रसु, लतीफ चए, तंहि कमीणीअ काहे ।
आरियाणी आहे, मन्हिँ मैजूरिनि जी ।।

शाह लतीफ जी कहते हैं कि पर्वत कठिन है तथा यात्रा असह्य है। इस रास्ते पर ऊंट भी चिल्लाते रहते हैं, पर ससुई पुन्हू से नाता जोड देने के कारण ऐसे विकट पहाड़ मे से गुजर रही है। (वह पुन्हू से कहती है) "मैं पीछे रह गई हूं अत तू शीघ्रातिशीघ्र इस कमीनी के पास आ, क्योंकि तू ही कमजोरो का सहारा है" ।

माणिकु मिटु सन्दोमि, ऊन्दाहीअ मे सोझिरो ।
हशर वेल हिसाब में, छद्दे न वेन्दोमि ।
सारियो सदु कन्दोमि, कोह्यारो केचु धणी ।।

ससुई कहती है पुन्हू जैसे माणिक के साथ मेरा रिश्ता है, जो अन्धकार को भी प्रकाश मे बदल देता है। कयामत के दिन लेखा चुकाते समय, वह मुझे छोड न देगा । केच का मालिक वहां पर मुझे अवश्य याद कर पुकारेगा। (इस पद मे साधक की पूर्ण निष्ठा को अभिव्यक्त किया गया है।)

पुन्हू सी प्रीत जो, को जो पेचु पियोमि ।
भन्भे हिन भंभोर में, विहणु विहु थियोमि ।

मतियों मोटण सन्दियूँ, काकियूँ कीम द्रियोमि।
सरतियूँ, साहु सन्दोमि, थियो हवाले होत जे॥

(ससुई कहती है—) मेरी पुन्हू के साथ ऐसी स्नेह की गाँठ जुड गई है, कि मुझे इस भद्दे और कुरूप (ससार रूपी) भभोर मे बैठना ही ज़हर हो गया है। ऐ सहेलियो, तुम मुझे (प्रेम के रास्ते से) वापस लौट आने की सलाह न दो। ऐ सखियो, मेरा जीवन तो अब प्रियतम के ही भेंट है अर्थात् मेरा अपने जीवन पर अब कोई अधिकार नही है।

को मुंहँ कुठलि आइयो, वसि न वेचारी।
होत ! तुन्हिजे हथ रे, पहुचे न पारी।
अची जे आरी ! ता पान्दु पुज़ी, लकु लन्घियाँ॥

इस प्रेम की मारी को, ऐसी मुसीबतो का सामना करना पड़ रहा है कि वह बेचारी अपने ही वश मे नही रही है। ऐ प्राणधार, यह दासी तेरी सहायता के सिवा, केच तक न पहुंच सकेगी। ऐ आरी सरदार, यदि तू यहाँ आ जाय तो मै तेरा आँचल पकड इस रास्ते को पार कर लूं।

अदियूँ ! आऊँ न तीअ, जीअ पिरीतणो प्रियुनि सी।
ब्रधी सुतियसु न सधो, छलवरु छातीअ सी।
केची काहे करहा, मून्हाँ वञनि कीअ ?
ड्रोहु मुन्हिजे ड्रीन्हनि, पुन्हूअ खे का म चए॥

(ससुई कहती है) ऐ मेरी सखियो, मैंने वैसा नही किया जैसा कि प्रियतम के प्रेम मे मुझे करना चाहिए था। मैं घुँघराले बालो वाले पुन्हू को अपने हृदय से जकडकर सोई होती, तो केची, उसे ऊँट पर बिठाकर फरार न हो गये होते (भाग न गये होते।)। समस्त दोष मेरी तकदीर का है, अत· तुम मे कोई भी पुन्हू के विषय मे कुछ मत कहो।

वर ! म विसारीजि, आहियाँ तुहिंजे आसिरे।
ड्राढो डूंगर जो सुझे, सो लुत्फूँ लन्घाईजि।
उसिरी उन्ही वीर ! तूँ आरी ज़ाम अचीजि।
निमाणीअ खे नूर सी, लालन ! लड्राईजि।
जुल्मत जा जमीन जी, सा निर्मल ! नूर करीजि।
कामिल ! कनि करीजि, फर्यादूँ फकीर जूँ॥

ऐ भर्तार, मुझे मत भुला, मैं तेरे ही सहारे जी रही हूँ। जो पर्वत (पार करना) कठिन है, उस पर्वत से मुझे अपनी अनुकम्पा से पार

डूंगर तू डाढो, डाढा ! डाढायूं करी ।
मूं तन अन्दरि तीअ वही, जिअ वणु वढे वाढो ।
ईं कर्म जो काढो, ना त केर पन्धु करे ॥

(ससुई पर्वत को उलहना देती हुई कहती है) ऐ पहाड, तू बड़ा क्रूर और कठोर है। ऐ पत्थर दिल, तू मुझ पर बहुत ही ज़ुल्म-सितम कर रहा है। तू मेरे शरीर को ऐसे काट रहा है, जैसे सुतार पेड़ को काटता है। यह सब किस्मत का खेल है, नही तो कौन इस पर्वत पर भटकती ?

डूंगर ! डोरापो, पहिर्यो चवन्दियसि प्रियनि खे ।
पहण पेर पिथूं कया, तिरियूं छिनियूं तो ।
रहम न पियइ रूह मे, कदुरु मंहिजो को ।
वाको कन्दियसि 'वो ! मूंसी जबलु थो जाडूं करे' ॥

ऐ पर्वत, मैं सबसे पहले प्रियतम से तेरी शिकायत करूंगी। कहूंगी, "पत्थरो ने मेरे पैर बुरी तरह से घायल कर दिए हैं तथा मेरे तलवो मे छाले डाल दिए हैं। तेरे हृदय में मेरे लिए थोडी भी दया उत्पन्न न हुई और न ही तू ने मेरी कद्र की।" मैं विलाप करके कहूंगी, "ऐ अल्लाह, पर्वत मुझसे बडी कठोरता से पेश आ रहा है।"

डूंगर ! डुखोयुनि खे, दिलासा डिजनि ।
घणो पुछिजे तिनि खे, जिनि वटां होत वञनि ।
तूं कीअं सन्दा तिनि, पहण पेर डुखोइं ॥

ऐ पहाड़, दुःखो के सताये हुए लोगो को तो आश्वासन देना चाहिए। जिन्हे प्रियतम छोडकर चले जाते हैं, उनके प्रति तो सहानुभूति दिखानी चाहिए। ऐ पर्वत ! (सहानुभूति न दिखाकर) तू कैसे उनके (दुखी) पैरो को कष्ट दे रहा है ?

की जे कढिया पार, डुखीअ डूंगर पाण में ।
सुणी सा तन्वार, मिरूं पिया मामरी ॥

(विरह) दुःख से घायल ससुई तथा पर्वत ने आपस मे मिलकर कुछ ऐसे विलाप किए कि उनका स्वर सुनकर पशु भी मातम करने लगे। (तात्पर्य यह कि ससुई के विलापो की गूंज से जानवर तक दुखी हो गए।)

मूं खे छड्रि म छपरीनि, हिति, होताणी ! हाणि ।
ओड्री मुन्ध उठनि खे, अल्लाह कारण आणि ।
पोरिह्यो कन्दियसि पाणि, अगियाँ आरीचनि जे ॥

ऐ पुन्हू, मुझे यहाँ पहाडो मे अकेला मत छोड़ दे। परमात्मा के लिए इस अबला को अपने ऊँटो के समीप ला। मै तेरे लोगो की दासी बनकर सेवा करूँगी।

जेही जे तेही, त बि ब्रान्ही ब्रारोचनि जी।
हुजत होत पुन्हूअ सी, मूं कमीणीअ केही।
असुलि आरीअ ग्राम जी, पले आऊँ पेई।
होइ जा पाईनि पेर मे, तंहि जुतीअ न जेही।
विसारे वेही, तिनि केचियुनि खे कीअ रहाँ ?

(ससुई कहती है) मैं जैसी हूँ, वैसी ही पुन्हू की दासी हूँ, भला मुझ दुष्टा दासी का, मालिक पुन्हू पर कैसे अधिकार हो सकेगा ? वास्तव मे, मैं आरी सरदार (पुन्हु-परमात्मा) के दामन मे पड़ी हूँ अर्थात् उसकी ही मैंने शरण ली है। जो जूते वह अपने पैरो मे पहनते है, मैं उन जूतो जैसी भी नही हूँ। मैं केच के सरदार को कैसे भूलकर बैठ जाऊँ ? (इस पद मे शाह साहब ने जिज्ञासु की विनम्रता तथा विनय का वर्णन किया है। सच्चा साधक ससुई की तरह परमात्मा के सामने अपने को हर तरह से तुच्छ मानता है।)

हुई, जे न हुई, तबि ब्रान्ही ब्रारोचनि जी।
इन सङ मुकाबिलि ससुई, सन्दियनि थे सुई।
हुन ताँ लज्ज लुई, हिन जो हलण होत ड्रे॥

(ससुई कहती है) चाहे मैं रहूँ, या न रहूं, फिर भी मैं दासी अपने पुन्हू की ही हूँ। वास्तव मे ससुई का नाम पुन्हू से नाता जोड़ने के कारण ही सुनने मे आया है। (अर्थात् पुन्हू से नाता जोड़ने के कारण ही उसे ख्याति मिली है।) यद्यपि उन्होने अपनी लाज (पत्नी) से नाता तोड दिया है, पर मैं फिर भी पुन्हू-प्रियतम की ओर ही चलती रहूँगी।

हलणु सहाँ न होत जो, वञणु मूं न वसु।
अल्लाह ! आरीचनि जे, गोली मेड़िईं गसि।
प्री, पन्हवार ! तो पुछाँ, डूगरिया ! मूं ड्रसि।
अखियनि जे आरसि, मन्ध जीहाई जोड की॥

(ससुई कहती है) मैं पुन्हू का, यहाँ से चला जाना सहन नही कर सकती हूँ और उस तक पहुँचना मेरे वश से बाहर है। ऐ अल्लाह ! काश तू इस दासी को पुन्हू के रास्ते तक पहुँचा दे। ऐ पथिक, मैं तुझसे अपने प्रियतम की पूछताछ कर रही हूँ। ऐ पर्वत ! तू ही मुझे उसका कुछ पता बता दे। आँखो के आलस्य (नीद) ने इस औरत के साथ यह

ग़ज़ब किया है। अर्थात् यदि मेरे आँखो मे आलस्य न होता, तो आज मेरा यह हाल न होता।

पर्तपर्तो पुन्हुअ जो, सहाई, स्याहु।
मूँहुँ ड्रेई मूँ आइयो, रन्गारन्गी राहु।
पहरी ड्रीन्दा पाहु, पोइ रङीदा रङ में॥

पुन्हू (रूपी पूर्ण सद्गुरु) मे कभी चाँदनी का प्रकाश है तो कभी अन्धकार। यह तरीकत (आध्यात्मिकता) का रास्ता मेरे सामने आया है। (इस रास्ते पर) वह (सद्गुरु) पहले तो मुझे तेज़ाब मे डालेंगे अर्थात् मुझे कष्ट देकर मेरी कलुषता को साफ़ करेंगे; फिर अलौकिक रंग मे रंगकर लाल कर देंगे। (तात्पर्य यह कि सद्गुरु पहले कठोर बनकर साधक के मन की कालिमा को धोने के लिए कसौटी के तौर पर उसे नाना तरह की मुसीबतो मे डालता है पर बाद मे उसे अलौकिक रंग मे रंगकर निहाल कर देता है।)

हकीकत हिन हाल जी, जें ज़ाहिर करियाँ जरी।
लग्रे माठि मिरुअनि खे, डून्गर पवनि ड्ररी।
बॿनि वण ब्ररी, ओभरि उभिरे कीन की॥

(ससुई अपने विरह का वर्णन करती कहती है) यदि मैं अपनी विरहाग्नि को रत्तीमात्र भी प्रकट करती, तो पशु तक आश्चर्य मे पड़ जाते तथा पहाड़ो के हृदय फट जाते। वृक्ष जलकर खाक हो जाते तथा हरियाली कही भी दिखाई न देती।

ब्रियूँ ड्रेई ब्रन खे हलिजि पासे हेक।
वरु न सहे वेक, तूँ टेड्री ! टिआयूँ करी॥

(शाह साहब ससुई रूपी साधक से कहते हैं) दूसरा सब कुछ त्याग कर तू एक (परमात्मा) की ही ओर चल। प्रियतम को दूरी (द्वैत) सह्य नही और तू टेढी (अज्ञान मे फँसी हुई) तीन बाते कर रही है अर्थात् अज्ञानी जीव अज्ञान के कारण, अपने आप को, परमात्मा को तथा जगत को तीन अलग-अलग हस्तियाँ मान बैठता है, पर वास्तव मे तो सब कुछ एक परमात्मा ही है, और उसके सिवा कुछ भी नही है।

अञाँ तू अवाट, वाटाँ पासे वेसिरी।
सूँन्ही थी सुवाट, त मन्झाँ दिलि दगु लही॥

(ऐ ससुई) अब तक तू गुमराह तथा सत्य के रास्ते से अनभिज्ञ है। तू सीधे रास्ते से अवगत हो जा ताकि तू अपने हृदय मे ही प्रियतम का मार्ग ढूंढ सके।

"स्वर प्रभाती"

प्रभाती एक रागिनी का नाम है, जो प्रभात के समय गाई जाती है। इस स्वर मे कवि ने इन्सान को परमात्मा की बन्दगी करने के लिए सावधान किया है और परमात्मा की उदारता की प्रशसा की है। शाह-साहब ने उदार सपड राजा तथा मन्द-बुद्धि याचक की कहानी द्वारा बताया है कि यदि मन्द-बुद्धि मानव जो अनेक दोषो से भरा हुआ है, परमात्मा के समक्ष अनुनय-विनय करे तो दयानिधान उसके समस्त दोषो को क्षमा कर उसे समस्त इच्छित वस्तुएँ दे देता है। सपड़ लसबेले का राजा था, जिसकी उदारता की बरावरी कोई नही कर पाता था। अपनी उदारता के कारण उसने एक मन्द-बुद्धि चारण पर प्रसन्न होकर, उसे एक सौ ऊँचे नस्लवाले अश्व पुरस्कार के तौर पर दे दिए। सपड़ राजा की तरह ही उदार परमात्मा भोले भाले याचको को छप्पर फाड़ कर देता है।

ईय न भानिनि भीरु, जिअं केनरु कीरीअ टगियो।
सूर्हारी सुबूह सी, विझी वेठे वेरु।
तोखे चवदो केरु, कीरत धारां मङिणो?

(शाह साहब मानव को परमात्मा की बन्दगी करने के लिए परामर्श देते कहते हैं) ये याचको के लक्षण नही है कि वे अपने (शरीर-रूपी) साज को एक कोने मे रख दें तथा प्रभात से वैर कर बैठ जाएँ। (तात्पर्य यह कि मानव-शरीर पाकर मनुष्य को सदैव परमात्मा के गुण गाने चाहिए, न कि अज्ञान की नीद मे मस्त रहना चाहिए) भला बिना भजन करने के तुझे याचक कहकर कौन पुकारेगा (अर्थात् भगवद्भजन न करने वाला मनुष्य, मनुष्य कहलाने के योग्य नही है।)

सुतो कीअं निन्डूँ करी, रो विहाणीअ रोइ।
सुभाँ साजु सन्दोइ, प्यो हून्दो पट मे॥

(ऐ याचक) तू अज्ञान की नीद मे कैसे सोया है? प्रभात को उठकर तू (परमात्मा के सामने) रो (प्रार्थना कर) क्योकि कल तेरे मरने पर तेरा यह (शरीर रूपी) साज जमीन पर व्यर्थ ही पडा रहेगा। (तात्पर्य यह कि मानव-शरीर पाकर मनुष्य को परमात्मा की बन्दगी कर उसे सफल बनाना चाहिए और अज्ञान की नीद मे पडकर उसे नष्ट नही करना चाहिए।)

मूढो भणी मङिणा, केड्राहि हुएं काल?
लघा छड्रि लतीफु चए, उझण जा अफाल।
सपड़ दरि सुवाल, करि त कीमत आणिईं॥

ऐ याचक, तू उदास और चिन्तित होकर क्यों घूम रहा है ? कल तू कहाँ था ? ये अप्रशंसनीय कार्य छोड़ दे (सांसारिक लोगों के पीछे दौड़ना छोड़ दे।) तू उदार सपड़ (परमात्मा) के द्वार पर जाकर मांग तो तुझे मूल्यवान दान मिले।

जेंकी ड्ड्रनि ड्रे, गुझयाँई गुझ में।
से जे सुणनि कर्द्राहि, किरिति वारा के।
त साज मिड़ोई से, हून्द पिथूं कनि पलक मे॥

परमात्मा गुप्त रूप से मन्द बुद्धिवाले याचकों को जो कुछ देता है, उसका पता यदि (सांसारिक लोगों की) प्रशसा करनेवालों को जान पड़े तो वे क्षण मे ही अपने साज तोडकर चूर-चूर कर दे। (तात्पर्य यह कि परमात्मा के द्वार से मांगनेवाले भोले भाले याचकों को सांसारिक लोगों की प्रशसा करनेवाले चतुर याचक से भी ज्यादा मिलता है।)

ड्राति न आहे जाति ते, जो वहे सो लहे।
आरियूं अब्रोझनि जूँ, सपड़ ज्राम सहे।
जो राइ वटि राति रहे, तहिं जुखी ताँ न थिए॥

परमात्मा की अनुकम्पा किसी जाति विशेष पर नही होती है, जो साधना करता है, उसे ही वह प्राप्त होती है। भोले भाले मानवों के दोष दानी सपड़ (परमात्मा) ही सहन कर सकता है। जो सपड़ राजा (परमात्मा) के पास रात गुजार देता है (अर्थात् ससार को छोड़कर वन्दगी करता है) उसे किसी भी तरह का दुःख दर्द नही होता है।

ड्डु थी ड्रानु घुरीजि तूँ, छदि विज्रा विभाए।
सपड़ राति सन्वाह्या, ताज्री तो लाए।
जो ज्राणी न ग्राए, तिन्ही सी ब्रेलो धणीअ ब्राझ की॥

(ऐ मानव) तू अपनी झूठी विद्वत्ता भूल कर, अनजान (नम्र) बनकर दान मांगना। दानी सपड (परमात्मा) ने कल रात तेरे लिए ताजी-नस्ल के अश्व तैयार कर रखे हैं। जो बिल्कुल गा नही पाता है (अर्थात् जो हर तरह से दोषी और अयोग्य है) उस पर भी वह कृपा करता है।

पियो लेटी लुट, सज्रियूं रातियूं सुम्ही।
उथी आधीअ न करिए, सपड़ साणु सहट।
रून्झी रात उपिटया, पेटीन्ओ पाणीट।
मेड़े त्याँ मट, चून्डे भरिया चारणीन॥

(ऐ मानव) तू रात के समय दानी सपड़ (परमात्मा) से बातचीत न करके (माया में) मस्त होकर सारी रात अज्ञान की नींद में सोया रहता है। दयालु राजा ने अपनी (कृपा की) पेटी से अनेक रत्न निकाल कर रख दिए। सच्चे याचकों ने उन रत्नों से अपने हृदय-रूपी घड़े भर कर रख दिए।

ड्डातार ड्डुख कया, पाणा मथे मङणियन।
"मूँ दर छड्डियो मङणा, मङी कोह ड्डिया।
तड्डांहि तो पिया, विचाँ विल्हा ड्डीन्हड़ा॥

दाता ने याचकों को उपालम्भ देते हुए कहा 'ऐ याचको, मेरा द्वार छोड़कर तुम दूसरों के दरवाज़े पर माँगने क्यों जाते हो? इस (मेरे द्वार का त्याग करने के) कारण ही तुम्हें बीच के कुछ दिन कठिनाइयाँ देखनी पड़ी।

मङु तहिंखाँ मङिणा! जो ड्डीहाड़ी थो ड्डिए।
कूड़ा दर दुनिया जा, जाजिक मङी जे।
सुभाँ तन्ही खे, मोटी ड्डीन्दा मुँह में॥

ऐ याचक, तू उसी से दान माँग, जो प्रति दिन तुझे देता है। ऐ चारण, जिन सांसारिक दरवाज़ों पर तू हाथ फैलाता है, वे सब झूठे हैं, वे कल तेरे सामने ही तेरा मज़ाक उड़ायेंगे। (तात्पर्य यह कि परमात्मा ख़ामोश दान देता है, पर संसार के लोग अपने दान की चर्चा सभी से करते रहते हैं।)

खड़ह अग्गियाँ खपु, ड्डिहाणी ड्डातार जें।
लन्धा! लाइ म लिख सी, मथाँ चाँउठि चपु।
मङणहारनि मपु, कोन्हे ड्डियो कीरत रे॥

ऐ मँगता, तू दानी सरदार के आगे प्रतिदिन अपने आपको गला। ऐ याचक! तू रत्ती मात्र भी उसके द्वार की चौखट से यहाँ-वहाँ मत हो, क्योंकि याचकों के लिए प्रार्थना के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं है।

सपुड़ साहु पसाहि, जाजिक जिम विसारिईं।
रेही रुपे संदियूं, तन्दु तुम्बे खे पाइ।
लंघा तू लीलाइ, अग्गियाँ वञी उन जे॥

ऐ चारण तू एक पल भी उदार, दानी सपड़ (परमात्मा) को मत भूल। तू अपने (शरीर-रूपी) साज़ को ठीक कर उसमें चाँदी की तारें जोड़ दे (अर्थात् मानव-शरीर पाकर अच्छे कार्य कर तथा परमात्मा की

वन्दगी कर उसे सफल बना।) ऐ याचक, तू उसके समक्ष जाकर अनुनय-विनय कर।

तूं सपड़ु आऊँ सेकड़ू, तूं साहबु आऊँ सग़ु।
पुछी तुंहिंजो पग़ु, कुल्हे पातुमि कीनरो॥

(शाह साहब परमात्मा की दया व उदारता का बखान करते हैं) (ऐ मालिक) तू दानी सपड़ सरदार हो, मैं एक अकिंचन याचक हूँ। तू मालिक हो, मैं तेरा कुत्ता हूँ, तेरी राह पूछते-पूछते मैंने कन्धे पर अपना साज रखा है।

तूं सपड़ु, आऊँ सेकड़, तूं ड़ातरु आऊँ ड़ोह।
तूं पारसु, आऊँ लोहु, जे सञी, तूं सोनु थियाँ॥

(ऐ मालिक) तू सपड़ दानी है, मैं भिखारी हूं, तू दाता है, मैं पूर्ण दोषी हूँ। तू पारस है, मैं लोहा हूँ, पर यदि तू मुझे अपनी कृपा-दृष्टि से देखेगा तो मैं भी स्वर्ण बन जाऊंगा।

उभिरियो तारो, उथी वर विहाग़ु ड़े।
सपड़ु रीसारो, चिति परखे चारणीनि॥

(ऐ मानव) प्रभात का तारा निकल चुका है, तू उठकर अपने प्रियतम को रिझाने के लिए प्रभाती गा। सपड़ अपनी विरद का पालन करता है। वह याचको के (झूठे आडम्बर को न देख) हृदय को परखता है (अर्थात् तेरे हृदय में यदि सच्चे प्रेम के सिवा कुछ नही है तो वह तुझ पर अवश्य ही कृपा करेगा)।

"स्वर पूरब"

इस स्वर मे शाह साहब ने पूरब देश (परमात्मा के देश) का वर्णन किया है। वे जोगियो को पूरबिया कहते हैं क्योकि वे सदैव पूरब देश की ओर ही से चलते दिखते हैं। माना जाता है कि शाह साहब का हृदय किसी पूरबी जोगी से जुड़ा हुआ था पर वह सर्वस्व त्याग कर तथा उसे छोडकर चला गया। परिणामतः शाह की आत्मा विरह मे दीवानी सी बन जाती है और कौए द्वारा अपने प्रियतम को सदेश भेजती है, और लौट आने के लिए प्रार्थना करती है। वह कौए से कहती है—ऐ कागा, तू प्रियतम को मेरा नम्रता से प्रणाम करना और धीमी आवाज मे मेरा सदेश उसे देना। कहना कि तेरे विरह मे मेरी आँखो का पानी तक सूख गया है। ऐ कागा, यदि तू मेरे प्रियतम को यहाँ ले आयेगा तो मैं तेरे पख सोने से मढ़

दूंगी, यदि तू केवल प्रिययम का कुशल-मगल भी ले आयेगा, तो मैं अपना कलेजा अपने हाथ से निकालकर तुझे दूंगी। तू उसे ले जाकर प्रियतम के सामने खाना, ताकि उसे मेरे हाल का पता चले। इस प्रकार पूरे स्वर मे एक जीवात्मा की अपने प्रियतम से मिलने की तड़प दिखाई देती है।

करे कांग ! कुर्निशूं, पेरे प्रियिन पईजि।
आऊँ जो ड्रीन्ई स्नेहो, विच न विसारेजि।
अल्लाह लग्रि, लतीफु चए, ग्रुझो ग्राल्हाइजि।
चुवां तीअ चईजि, त खिन्याता खुशि हुएं॥

शाह साहब कौए को सम्बोधित करते कहते है ऐ कागा, तू प्रियतम को (मेरी ओर से) प्रणाम करना तथा नम्रता-पूर्वक उसके चरण स्पर्श करना। मैं जो तुझे सदेश दे रही हूँ, उसे राह मे ही भूल मत जाना।

परमात्मा के लिए, उससे गुप्त रूप से बातचीत करना। ऐ कौए, यदि जैसे मैं तुझे कहूँ, वैसे ही तू करेगा, तो सदैव ही प्रसन्न रहेगा।

आऊ उड्रामी कागड़ा ! पारान्भानि पचारि।
वेही हिति वंसाल जो, तां को तिरु तन्वारि।
जे ड्रिसण में ड्रेसारि, से उड्रामी आणि प्रियनि॥

ऐ कौए, तू वापस उड़कर आ और प्रियतम का सदेश मुझे सुना। तू यहाँ मेरे पास बैठकर, मिलन के विषय की कुछ बातें बता। जो प्रियतम, बाह्य रूप से किसी दूर देश मे है, उसे उड़ाकर मेरे पास ले आ।

कांगल, से ई कोठि, प्रियनि जे परड्रेहि विया।
जिनी रिइ जहान मे, अखडियुनि अरोठि।
अल्लाह लग्रि लतीफ चए, कजि ग्रारावो ग्रोठि॥

ऐ कागा, उस दिलेजान को बुला ला, जो परदेश गया, और जिसके सिवा रो-रोकर मेरी आँखो का पानी ही सूख गया है। परमात्मा के लिए यहाँ गाँव मे आकर खुशियाँ मना (अर्थात् प्रियतम के आने का शुभ समाचार ले आ ताकि हम उसके स्वागत मे खुशियाँ मनाएँ।) यदि प्रियतम, किसी कारण से नाराज है तो तू (उसे मनाकर) वापस उड़ा ला।

प्रियनि जी परदेस मे, तिनिजी कांगा ! कजि खबर।
त सभि मढ़ियां सोन सी, पखी ! तुंहि जा पर।
घुमी मयां घर, ड्रिज पारान्भा प्रियनि खे॥

ऐ कागा, मेरा प्रियतम जो दूर देश मे है, उसका समाचार यदि मुझे आकर सुनायेगा, तो ऐ परिन्दे, तेरे पखो को मैं स्वर्ण से जड़ दूंगी। प्रियतम के घर के ऊपर उड-उडकर, उसे मेरा सदेश देना।

कढी कॉगा ! तो ड्रियाँ हिन्ओ साणु हथनि।
वञी खाउ विलाति मे, अग्रियाँ अजीवनि।
प्रियनि मां चवनि, त हिअं कुर्बानु केरु थिई॥

ऐ कागा, मै अपना कलेजा अपने ही हाथो से काटकर तुझे दूं, तू उसे परदेश मे प्रियतम के सामने जाकर खा, ताकि प्रियतम तुझ से पूछे "इस प्रकार किसने अपने को कुर्बान कर दिया है ?"

कॉंगल करीबनि जा, अची वाई वणु।
तो में बोइ बहार जी, मुशिक खथोरीअ मणु।
अची अजीबन जो, ओराग्धिजि अडणु।
तोखे पसी तणु, सूरन्ऑं साफु थिए॥

ऐ प्रियतम के कागा, तू आकर कोई शुभ समाचार सुना। तेरे सदेश मे वसन्त का सौरभ तथा मन जितनी कस्तूरी की महक है। तू यदि महबूब के आँगन के ऊपर उड़ कर आयेगा तो मेरा शरीर दर्द और पीडा से मुक्त हो जायेगा।

काँगल नेई कांगि, मुन्हिजी ड्रे महबूब खे।
लालन लायई ड्रीन्हडा, कंहि सटाणे सांगि।
अवाँ रिइ अडान्गि, वेठी विरह वसाइयाँ॥

ऐ कागा तू मेरा यह पैगाम प्रियतम को पहुँचा (उससे कहना) "ऐ प्राणनाथ, तू ने किस कारण इतने दिन लगाए है। तेरे सिवा मै दुखिया विरह-अग्नि मे जलकर अपने दिन गुजार रही हूं।"

ज्राग ! तुहिजीअ ज्राति जो, थोरो मथे मूं।
अुड्रामिजि अब्दुल्लतीफ चए, सुबह सेणनि डूं।
कजि वेन्तियूं वितरियूं, ब्राझाइजि ब्रहूं।
त "लालन कोन लहूं, जिहो तो जहान मे"॥

ऐ कौए, तेरी जाति का मुझ पर बडा अहसान है। तू सुबह प्रियतम के पास उड़कर जाना और उससे मेरी ओर से अनुनय-विनय करके पूछना—"ऐ प्राणधार, इस ससार मे तुझ जैसा कोई भी दिखाई नही देता है।"

करीबनि जो कांगड़ो, मथे टार टिले।
खणियो खिन्यातो खबरूँ, खीरूँ द्रियो खिले।
लाई जहिं लालन सॉं, मन्हिजी बाति बिले।
सो वए चशिमनि ते चले, जो दरबारी दोस जो॥

प्रियतम का कागा, शाखा के ऊपर नाच-कूद रहा है। वह शुभ समाचार ले आने के कारण ही विहँस और किलक रहा है। चूँकि वह मेरे महबूब के दरबार से होकर आया है तथा मेरे जीवनाधार तक मेरी बात पहुचाई है अत: मेरी इच्छा है कि वह मेरी आँखो के ऊपर चले।

तिनि अख्युनि उतां सुख, खिलन्दे खणनि जे।
प्रियुनि पाब्रोहण साँ, दूर कया सभि दुख।
माड़हुनि लेखे बुख, सामी सूर सना कया॥

उन नेत्रो से सुख प्राप्त हुआ जिनसे प्रियतम ने मुस्करा कर मेरी ओर देखा। प्रियतम ने अपनी मुस्कान से आशिक के समस्त दुख-दर्द मिटा दिए। मनुष्य समझते हैं कि भूख तथा फाको ने योगियो को जर्जर बना दिया है, किन्तु वास्तव मे उन्हे विरह ने कमजोर बना दिया है।

सामी चवाइं, सुखु तल्बी, सिखिएँ न, सामी।
अबा ओरिए पन्ध में, वेठें विसामी।
गुर खे तूँ न गद्रिए, चवाइं इनामी।
दाइमु मुदामी, पूरो रहिजि प्रियनि सी॥

शाह साहब योगी को सबोधित करते कहते हैं—(ऐ योगी) तू अपने को स्वामी कहलाता है और सुख की कामना करता है? वास्तव में तू ने कुछ भी नही सीखा है। (तात्पर्य यह कि सच्चे योगी कभी सुख की तमन्ना तक नही रखते, अत जो तमन्ना रखते हैं वे योगी कहलाने के अधिकारी नही है।) तू (आध्यात्मिक) यात्रा के आरम्भ मे ही बेचैन होकर बैठ गया है। तू गुरु के सन्मुख तो हो नही पाता (अर्थात् गुरु के बताए हुए मार्ग पर तो चल नही पाता) और स्वय को पुरस्कृत कहलाता है। तुझे सदैव ही अपने गुरु से वचन तथा विचार मे सच्चा रहना चाहिए।

पूरबिया पूरे विया, आसण आधीअ राति।
सुयमि न सनासियुनिजूँ, पचारूँ प्रभाति।
का जा जोगी जाति, मिट न मैंजूरिनि जा॥

पूरब के पथिक, आधी रात को अपने (सांसारिक) स्थान बन्द कर चले गये। प्रभात के समय उन परदेशियो के स्वर सुनाई नही दिए।

इन योगियों की ज्ञाति ही ऐसी है कि वे सांसारिक दुखों के मारे हुए लोगो के सम्बन्धी नही होते है अर्थात् उन्हे किसी से किसी प्रकार का मोह नही होता है।

मये राइ रवान थिया, पूरब पूरियाऊँ।
ही घरु धोरियाऊँ, आशान्धियाऊँ अग्रियाँ ।।

सच्चे योगी पूरब देश की यात्रा के लिए अग्रसर हुए। उन्होंने सांसारिक आसन त्यागकर दूरस्थित देश मे जाकर अपनी कुटिया बनाई है।

पूरब पूरब तबि करूँ, जबि हिन्अड़े आव्रनि पूर।
सिकन्दे खे सज्ञणिन, निकूँ लायूँ नूर।
मारियसि तिन्हीनि सूर, जिअ साज्ञनु सुज्रे, न मिले ।।

(शाह साहब फर्माते हैं) मुझे जब (पूरबी योगी के) विचार हृदय मे आते हैं तब मैं पूरब-पूरब पुकार उठता हूँ। प्रियतम के लिए तड़पते हुए मेरे नेत्रों ने अश्रुओं की वर्षा की है। मुझे इसी दुःख ने बेचैन बना दिया है कि मुझे लगता है कि मेरा प्रियतम (योगी) मुझे अब नही मिलेगा।

"स्वर कारायलु"

'कारायलु' शब्द का अर्थ है हस। इस स्वर मे शाह साहब ने हस के गुणो की प्रशसा की है। उन्होने सच्चे आशिको को हंस माना है तथा ससार की माया मे फँसे हुए लोगो की तुलना बगुलो से की है। संसार को उन्होने मैले पानी की उपमा दी है।

वास्तव मे परमात्मा के प्रेमी, जिन्हे वास्तविक ज्ञान है, वे हंस की तरह सत्य व ज्ञान के मोती चुगते रहते हैं बल्कि ससार के विषय-वासनाओ मे फंसे हुए लोग बगुले की तरह कपटी एव धूर्त हैं तथा वे (विषय-वासना रूपी) दुर्गन्धमयी मछली की ओर ही आकर्षित रहते हैं। इन्सान की आत्मा तो हंस की तरह उज्जवल व पवित्र है, पर उसे चारो ओर से विषय-वासना रूपी व्याध घेरे हुए बैठे है।

इसी स्वर में शाह साहब यह भी कहते है कि यह संसार मरुभूमि की तरह है, जिसमे विषय-वासना रूपी अनेक छोटे बडे जहरीले सर्पों का निवास है, जिनसे मानव को हमेशा ही सतर्क रहना चाहिए। जो सच्चे आशिक़ हैं, वे इन सर्पों को भस्म कर अर्थात् अपनी इन्द्रियो को जीतकर परमानन्द मे डूबे रहते है।

'वहदह' वाई, चढ़न्दे चयाईं।
सो लुडु लन्धियाईं, जिते पारख पखियाँ॥

हस (सच्चे आशिक) उड़ते हुए यही रट लगाते हैं "केवल एक परमात्मा ही है" और इस तरह वे संसार रूपी बहाव मे परीक्षा-देकर पार हो जाते हैं।

ॿगहिन सीं ॿाणु हणी, उॾाणो आकासि।
जिते प्रियनि संदासि, सो सुर मणे हंजड़ो॥

सच्चे आशिक रूपी हस बगलो (सांसारिक लोगो) की सगत त्याग कर आकाश की ओर उड़ते है और जिस सरोवर मे उनका प्रियतम है, उसी की ओर उडकर जाते हैं।

अखिड़यूँ ओडाह में, उभो तके तारि।
पथूँ जे पातारि, हन्जु तिन्यनु जो हेरऊँ॥

हस की आँखे (ज्ञानरूपी) गहरे समुद्र पर लगी हुई है और वह खड़ा रहकर उस पानी को अच्छी तरह से जाँच-परख रहा है। हस उन मोतियो का आदी है जो समुद्र के बिल्कुल नीचे हैं। तात्पर्य यह कि सच्चे आशिक की आँखें गहन ज्ञान मे ही लगी रहती हैं।

वञी न पेही, पिथुनि लाइ पातार में?
कन्धीअ मे केही, हाज तुन्हिंजी हन्जड़ा॥

ऐ हस, तू मोतियो के लिए समुद्र के तल मे क्यो नही चला जाता? (अरे मूर्ख) किनारे पर तेरा क्या काम?

हँजनि सी हेकार, जे ॿण करे निहारिईं।
ॿगहिनि साणि ॿीहार, ॿेल्ह न ॿधी कड्ही॥

(ऐ इन्सान) यदि तू एक बार सोच-समझकर हसो का सग करेगा तो फिर तू भूलकर भी बगलो की सगत ग्रहण नही करेगा।

आउ अुॾामी हन्जड़ा! सर मे सारियन्ई।
मताँ मारियन्ई, पाड़ेहरी पहु करे॥

ऐ हस (सच्चा इन्सान) तू उडकर (ज्ञानरूपी) सरोवर मे आ, क्योकि वहाँ सभी तुझे यादकर रहे हैं। (सावधान रह) कही ऐसा न हो कि (विषय-वासना रूपी) व्याध तुझे किसी षडयन्त्र या युक्ति द्वारा मार दे।

कवंरि पाड़ूँ पातार में, भँवर भिरे आकासि ।
ब्रिन्ही सन्दी ग्राल्हड़ी, राज़िक आन्दी रासि ।
तंहि इश्क खे शाबासि, जंहि मुहब्ती मेड़िया ॥

कमल के फूल की जड पाताल में है और उसका आशिक भ्रमर आकाश में उड़ता है, फिर भी परमात्मा ने दोनो के प्रेम को पूरा किया, वह प्रेम धन्य है जो प्रेमियो को एक दूसरे से मिलाता है। (तात्पर्य यह कि प्रेम वह धन्य है जो हर तरह की दूरी को मिटाकर प्रेमियों को एक करता है।)

कंवरि पाड़ूँ पातार मे, भँवर भिरे मे सुञ ।
ब्रिन्ही सन्दी ग्राल्हड़ी, इश्क इय मे अहुञ ।
तोइ न लहेनि उञ, जे पियो पसी पाण मे ॥

कमल के फूल की जड पाताल मे है और भ्रमर शून्य आकाश मे घूमता है, फिर भी दोनो की कहानी प्रेम की निशानी है। वे आपस मे प्रेम के जाम पीते रहते है फिर भी उनकी प्यास नही बुझती) उसी तरह यदि जीवात्मा को परमात्मा से प्यार हो जाता है, तो दूरी नष्ट हो जाती है और जीवात्मा की प्रेम की प्यास दिन प्रति दिन बढती रहती है, बुझती नही।)

जेहर लोकु झप करे, ओहेर उड़ामनि ।
पिथूँ जे पातार जा, चेतारियो चुणनि ।
कोहु कन्दा खे तनि, पाड़िहेड़ी पहु करे ? ॥

जिस समय लोग (अज्ञान की) नीद मे डूबे हुए रहते है, उसी समय हंस रूपी स्नेही उड़ते हैं (बन्दगी करते हैं।) ज्ञान रूपी रत्न जो समुद्र के तल मे है, उन्हे वे परख-परख कर चुगते हैं। भला विषय-वासना रूपी शिकारी इन पर युक्तियाँ चलाकर क्या करेंगे ? अर्थात् सासारिक विषय-वासना रूपी शिकारियो का प्रभाव सच्चे आशिको पर नही पड़ता है।

विया मोर मरी, हन्जु न रह्यो हेकडो ।
वतनु थियो वरी, कूड़न कानेरनि जो ॥

(कलियुग का वर्णन करते शाह साहब कहते हैं कि) समस्त मोर (सच्चे मानव) मर चुके हैं और एक भी हस (सत्पुरुष) नही रहा है। यह ससार रूपी सरोवर फिर से झूठे कपटी कौवो का वन गया है अर्थात् कलियुग मे सच्चे मानव व सतपुरुष कही भी दिखाई नही देते हैं, केवल कपट, धोखेबाज ही दिखाई पड़ते है।

सो पखी सो पिंजिरो, सो सरु सोई हन्जु ।
पेही जाँ परुड़ियो, मूँ पान्हिजो मन्जु ।
ड्रील जहिं जो ड्रन्झु, सो मारी थो मन्झु फिरे ॥

शाह साहब फर्माते हैं) कि वास्तव मे पक्षी (अर्थात जीव), पिंजरा (अर्थात् शरीर), सरोवर (अर्थात् ससार) और हस अर्थात् परमात्मा) सब एक ही है। (तात्पर्य यह कि सब कुछ परमात्मा ही है। उसके सिवा और कुछ भी नही है)। मैंने आत्मावलोकन कर जबसे यह रहस्य जान लिया है, तब से ही मुझे मालूम हुआ है कि जिस मन रूपी व्याघ्र का डर व खतरा है, वह भी भीतर ही है।

सन्हा भाइ न सप, वियाइ वासीगनि जा ।
जिनीन जी झड़प, हाथी हन्धाँ ही न चुरे ॥

(ऐ मानव) विषय-वासना रूपी वासीग सर्प के बच्चो को छोटा मत जान, क्योंकि इनका भी यदि डक लग जाय तो हाथी भी वही ढेर हो जाए। तात्पर्य यह कि साधारण सी वासना भी हाथी जैसे शक्तिशाली व्यक्ति को अपने डंक द्वारा समाप्त कर देती है।

आसण जे आरीज मे, औ कछर विह खरी ।
तिनि जा मुंह मलकनि जहिडा, टिको ताँ न टरे ।
जे उन्हीनि साणु अडे, त कान्हे जाइ जरीअ जी ॥

जिन (विषय-वासना रूपी) सर्पों का निवास इस (ससार रूपी) मरु भूमि मे है, उनका जहर बडा ही कातिल है। उनके रूप तो फिरिश्तो की तरह सुन्दर हैं (अर्थात् सांसारिक भोग बाहर से सुन्दर है परन्तु परिणाम मे वे विष-सदृश हैं) यदि उनका मात्र स्पर्श हो जाए तो फिर उनसे बचना रत्ती मात्र भी सम्भव नही है।

कंहिं कहिं कारीअ जाति खे, मोर न मटाईनि ।
जे चतुरा चखिया करे, त वञ्ञ वराअे ड्रियनि ।
साथ समूरा नियनि, जे मठे भाई मोटिया ॥

(इस ससार रूपी मरु भूमि मे) सर्पों की कुछ जातियां ऐसी हैं जिनसे (सच्चे इन्सान रूपी) मोर भी दूर भागते हैं अर्थात् ससार की कुछ विषय-वासनाएं ऐसी हैं जिनसे सत्पुरुष भी दूर रहने के लिए विवश हैं। यदि वे नीच जाति के सर्प अपनी चतुराई से उन मोरो को डंक मार देते है तो बेचारे मोर अपना सब कुछ गंवाकर (अर्थात् मानव शरीर नष्ट कर) जाते हैं। किन्तु यदि वे उस नीच जाति के सर्पों को बुरा समझकर उससे

दूर रहते हैं तो फिर वे (न केवल खुद बच जाते हैं पर) अपने सभी साथियों को भी सुरक्षा से उस रास्ते से पार लगा देते हैं।

खपुर गोराड़ियुनि सी, वद्धो विधुइ वेरु।
नाँग न वीदे निकिरी, तो द्रर मथे पेरु।
ही तिनी जो ढेरु, जिनि झूनागढ़ जलाइयो ॥

(शाह साहब विषय-वासना रूपी सर्पों को सम्बोधित करते कहते हैं) ऐ वासीग सर्प, तू ने शिर मुडवाने वाले साधुओं के साथ शत्रुता मोल ली है। ऐ सर्प ! तुम अब बचकर नहीं जा सकते हो। तुम लोगों ने महान खतरे पर पैर रखा है। यहां उन सच्चे सन्तों का डेरा है, जिन्होंने अपने योग-बल से समस्त जूनागढ को जलाकर खाक कर दिया है।

"सुर सोरठ"

राइ द्रयाच की गाथा और उसका आध्यात्मिक अर्थ

किसी समय राइ दयाच नामक राजा जूनागढ़ पर राज्य करता था। उसके एक बहन थी, जिसके कोई सन्तान न थी। एक बार उसकी नि.सन्तान बहन ने किसी फकीर से सन्तान-प्राप्ति की दुआ मांगी। फ़कीर ने कहा "मेरी दुआ से तुझे पुत्र प्राप्त होगा, किन्तु वह तेरे भाई का काल होगा।" यह सुनकर वह अत्यन्त ही परेशान हुई, अतः नौ महीनों के बाद जब उसने पुत्र को जन्म दिया, तब उसने उसी समय बालक को एक पेटी मे बन्दकर उसे दरया मे वहा दिया। यह पेटी तैरते-तैरते राजा अनीराइ के राज्य मे जा निकली और एक चारण को हाथ लगी। उस चारण ने बालक को उठा लिया और उसे पाल-पोसकर बड़ा किया। बालक का नाम रखा बीजल।

बीजल जब बड़ा हुआ तब वह अपने पशुओं को जगल मे चराने के लिए ले जाने लगा। एक दिन जंगल मे पशुओ को चराते समय उसे एक मधुर सुरीली आवाज सुनाई दी। उस आवाज मे इतना माधुर्य था कि पशु-पक्षी तक मस्ती से झूमने लगे। बीजल वहां गया जहाँ से वह आवाज आ रही थी। उसने देखा कि किसी पशु की अन्तडियां वृक्ष पर टंगी हुई हैं और हवा के लगने से उनमें से मधुर आवाज आ रही है। बीजल ने शीघ्र ही सूखी हुई अंतडियां उठाई और घर जाकर उसने अपने तम्बूरे मे तार के रूप मे उन्हे बांध दिया। परिणामतः उस तम्बूरे की आवाज सुनकर मनुष्य तो क्या, जीव जन्तु तक मस्त हो जाते थे।

जिन दिनो बीजल का जन्म हुआ था उन्ही दिनो राजा अनीराइ के यहाँ एक पुत्री का जन्म हुआ, किन्तु उस पुत्री को किसी कारण अपने लिए दुखदायी समझकर उसने उसे पेटी मे बन्दकर समुद्र मे फेंक दिया। वह पेटी राजा राइ दयाच के राज्य मे रहनेवाले रत्ने नामक एक कुम्हार को मिली। रत्ने को अपनी सन्तान नही थी अत. वह पेटी मे सुन्दर बालिका को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बड़े लाड़ प्यार से उसका लालन-पालन करने लगा। बालिका का नाम रखा गया सोरठ। सोरठ बचपन से ही सुन्दर थी पर जवानी मे प्रवेश करते ही उसकी सुन्दरता मे मानो चार चाँद सा लग गये। चारो तरफ उसके लावण्य की प्रशसा होने लगी। राजा अनीराइ ने भी अपने लोगो के मुख से सोरठ की प्रशसा सुनी। उस दुष्ट को यह पता ही नही था कि वह उसकी ही पुत्री है, जिसे उसने पैदा होते ही समुद्र मे बहा दिया था। कामान्ध राजा अनीराइ ने शीघ्र ही रत्ने कुम्हार से सोरठ की माँग की। बिचारा कुम्हार राजा की बात कैसे टाल सकता था। अनीराइ ने विवाह की खूब तैयारियाँ की, किन्तु इसी बीच राइ दयाच को इस बात का पता चल गया। सोरठ का सौन्दर्य देख वह खुद भी उस पर मोहित हो चुका था अत. वह रत्ने कुम्हार को खूब डाँट-डपट कर सोरठ को अपने महल मे ले आया।

राजा अनीराइ को जब इस बात का पता चला तब वह आग बबूला हो उठा। उसी समय बडी भारी सेना लेकर जूनागढ पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा। बारह महीनो तक लडता रहा, पर उसे विजय नही मिली। अन्त मे हार कर वह अपने देश वापस चला गया। राजा अनीराइ के हृदय मे प्रतिहिंसा की अग्नि धधक रही थी। उसने अब युक्ति से राइ दयाच को मारने की ठानी। अत राज्य मे पहुँचते ही उसने एक थाल स्वर्ण मुद्राओ से भरकर यह ढिढोरा पिटवाया कि जो राइ दयाच का सिर काट कर ले आयेगा, उसे वह थाल दिया जायगा, इसके अतिरिक्त जो भी वह माँगेगा, वह भी दिया जाएगा।

बीजल की पत्नी अत्यन्त ही लालची स्वभाव की थी। उसने जब राजा का वह आदेश सुना तब पति की अनुपस्थिति मे ही उसने स्वर्ण मुद्राओ वाला थाल लेकर रख दिया और लोगो को वचन दिया कि उस का पति अवश्य ही राइ दयाच का सिर काटकर ले आयेगा। क्योकि उसे विश्वास था कि बीजल अपने तम्बूरे की तान द्वारा सब कुछ कर सकता है। बीजल को जब इस बात का पता चला तब वह अत्यन्त ही दुःखी हुआ। उसने पत्नी को भी खूब फटकारा, किन्तु पत्नी के दिये हुए वचन तथा वचन न निभाने के कारण राजा अनीराइ द्वारा दिये जानेवाले कष्टों

का ध्यान कर, विवश होकर अपना तम्बूरा लेकर जूनागढ की ओर चल पड़ा। राइ दयाच के महल के समीप पहुँचते ही उसने अपने अलौकिक तम्बूरे के तार झंकृत किये। फिर क्या था। स्वर सुनते ही राइ दयाच अपनी सुध-बुध खो बैठा। उसने शीघ्र ही चारण बीजल को अपने महल मे बुलाया और कहा माँग जो कुछ तुझे माँगना है। तेरा स्वर सुनकर मैं आनन्द-विभोर हो उठा हूँ। बीजल राजा की उदारता, निश्चलता एवं पवित्रता देखकर सकपका गया। उसे अपने आप से घृणा होने लगी, पर दूसरा कोई चारा न देखकर उसने कहा "राजन्! मुझे आप से कुछ रहस्यमयी बाते करनी है।" राजा ने शीघ्र ही उसे एकान्त मे अपने पास बुलाया। बीजल अपने तम्बूरे से नाना तरह के अद्वतीय स्वर झंकृत करता रहा, जिन्हें सुनकर राजा उसे नाना तरह की बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट की तौर पर देने लगा, किन्तु बीजल ने उन्हे लेने से साफ इन्कार कर दिया। अन्त मे बीजल ने हाथ जोडकर प्रार्थना की—"ऐ दानी! मुझे तेरे बहुमूल्य उपहार नही चाहिए बल्कि तुझ दाता का शीश चाहिए।" यह सुनकर राजा ने कहा "ऐ चारण! तूने मात्र मेरे मिट्टी के बने सिर की ही माँग की है, जिसका मूल्य कौड़ी-तुल्य भी नही। यदि मेरे पास सहस्र सिर होते तो उन्हे तेरे स्वर पर न्यौछावर करके भी मैं उसका मूल्य नही चुका पाता। तराजू के एक पलड़े मे यदि मेरे सहस्र सिर और दूसरे पलड़े मे तेरे इस मधुर आलाप को रख दिया जाता फिर भी तेरा पलड़ा ही भारी होता।" यो कहकर राइ दयाच ने खुशी खुशी अपने ही हाथो से अपना सिर काट कर बीजल के सामने रख दिया।

इच्छित वस्तु प्राप्त करने पर भी बीजल को खुशी नही बल्कि दुख हुआ। उसने शीघ्र ही राइ दयाच का सिर उठा लिया और जाकर राजा अनीराइ के सामने रखा। तत्पश्चात् स्वर्ण-मुद्राओ से भरा हुआ थाल पत्नी के सामने पटक दिया और स्वय जूनागढ की ओर चल पडा।

आध्यात्मिक अर्थ इस कहानी मे राइ दयाच जिज्ञासु भक्त का प्रतीक तथा बीजल पूर्ण सद्गुरु का प्रतीक है। जो जिज्ञासु सद्गुरु के एक सकेत पर अपना सिर काटकर दे देता है, सद्गुरु भी उसे रहस्यमय स्वर सुनाकर उसे सच्चे स्वरूप से परिचित कर देता है। तम्बूरा, हृदय का साज है, जिसके आलाप सासारिक साजो से बहुत ही मधुर एव मोहक है। हृदय के साज का आलाप सुनकर जिज्ञासु को एक ऐसा अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है, कि उस पर वह सासारिक सभी वस्तुओ को न्यौछावर कर देता है।

अल्लाह जी आस करे, हल्यो हिआईं।
चारण ब्रधा चंग खे, झूड़ा ऐं झाईं।

ड्रोली राइ द्रयाचे जी, ड्रूराँ ड्रिठाईं।
वेनती वाहिंद दरि, तंहिं वेर कयाईं।
"सब्राझा साईं ! राउ रीझाईं राग्र सी॥

(शाह-साहब कहते हैं) बीजल हृदय मे परमात्मा पर विश्वास रख कर वहाँ (राजा अनीराइ के राज्य) से निकला। चारण ने अपने तम्बूरे पर रेशम के धागे तथा घुंघरू बाँध दिये। दूर से ही राइ दयाच के महल को देखकर, उसने परमात्मा से प्रार्थना की "ऐ दयालु ! मेरी हार्दिक इच्छा है कि तू राजा को मेरे गीत पर मस्त बना दे।"

परदेसाँ पन्धु करे, हली आयो हूँ।
ऊँचो तूँ अर्श ते, आँ भोरो मथे भूँ।
कीअं तुसन्दे तूँ ? ही सिर सुवाली मंडणो॥

(बीजल राइ दयाच को सम्बोधित करते कहता है) "मैं परदेश से चलकर यहाँ आया हूँ। तू अर्श पर है और मैं अनजान फर्श पर हूँ (अर्थात् तू ऊँची पदवी पर और मैं साधारण इन्सान हूँ।) तू किस तरह से मुझ पर प्रसन्न होगा ? मैं तेरे सिर की ही याचना करने वाला याचक हूँ।"

परदेसाँ पन्धु करे, सुणी आयुसि शानु।
मडा कहिड़ीअ मति सी, निसूरो नादानु।
सो को ड्रियारिए ड्रानु, जो तमइ खे तर्कु करे॥

(ऐ राजन) तेरी प्रतिष्ठा सुनकर मैं परदेश से चलकर यहाँ आया हूँ। मैं बिल्कुल नादान हूँ, किस युक्ति से तुझ से माँगूं ? मुझे कुछ ऐसा दान दे जिससे मेरी आकांक्षा पूरी हो।

तो दरि आयुसि राज्रया : जाजिकु वठे जीउ।
कनाँ नारु हामाह, हाणि बचाइजि हीउ।
वाली ड्रियारेईं, बीउ, जिति आहे 'जनातु अदनि'॥

ऐ राजन् ! यह याचक तेरे प्राण लेने के लिए तेरे द्वार पर आया है। तू इसे (अनीराइ के दिये जाने वाले कष्ट रूपी) अग्नि से बचा। मेरी यही दुआ है कि परमात्मा तुझे स्वर्ग का बगीचा—अदन प्रदान करे।"

ब्रिया दर ड्रेई ब्रन खे, आयुसि तुहिंजे दरि।
सून्हारा सोरठवर ! का मूंहिंजी करि।
भला ! भेरी भरि, पाल्हो पांढु पीनार जो॥

"मैं दूसरे द्वार त्याग कर, तेरे ही द्वार पर आया हूँ। ऐ सोरठ के श्रेष्ठ पति, ज़रा मेरे विषय मे सोच। ऐ सज्जन! मुझ याचक की खाली झोली भर दे।"

जाजिकु झूनागढ़ मे, को अताई आयो।
तहिं कामिल कढी कीनरो, वेही वज़ायो।
शहरु सज़ोई सुर सी, तन्दुनि तपायो।
दायूँ दरि मान्दियूँ थियूँ, ब़ायुनि ब़ाड़ायो।
चारण थी चायो, त मारी आहे मडणो॥

जूनागढ मे आया हुआ याचक प्रतिभा-सम्पन्न था। उस प्रतिभाशाली ने वहाँ अपना साज़ निकालकर बजाया। उसने अपने साज़ के तारो मे से निकलने वाले स्वरो से शहर मे हाहाकार मचा दिया। दासियाँ विस्मय चकित थी तथा रानियाँ रो रही थी क्योकि चारण अपने तम्बूरे से यही ध्वनि निकाल रहा था—"यह याचक कातिल-व्याध है" (अर्थात् यह अपने वाद्य यन्त्र से हृदयो को घायल करनेवाला है।)

निरती तन्दु न्याज सी, ब़ुराई ब़ीजलु।
राजा रतोलनि मे, ऊनाई अमुलु।
राजु कयाईं राइ सी, कहिं मोचारीअ महलु।
"अन्ना अहमद बिलामीम" सेन हई साइल।
कहिं कहि पेई कल, ता हरि दोई हेकु थिया॥

बीजल ने नम्रता से तम्बूरे के तार को सावधानी से झकृत किया, जिसे सुनकर अमूल्य (व्यक्तित्व वाले) राजा ने उसे अपने रगमहल मे बुलाया। शुभ घड़ी मे बीजल ने राजा को एक गहन रहस्य बताकर कहा "अन्ना अहमद बिलामीम" (अर्थात् 'अह ब्रह्म अस्मि')। याचक ने राजा को यह तीर मारा (उसे अपने सच्चे स्वरूप से परिचित करा दिया)। किसी विरल व्यक्ति को ही पता चला कि दोनो (राजा और बीजल) आपस मे एक हो गये हैं।

नोट—सूफ़ियो के विश्वास अनुसार मुहम्मद ने अपने सबध मे कहा था "अन्ना अहमद बिलामीम" अर्थात् मैं हक (परमात्मा) से एक हो गया हूँ। अत. माना जाता है कि पूर्ण सद्गुरु अपने शिष्य को वास्तविक रहस्य बताकर उसे स्वरूप मे लय कर देता है।

सिर जी हुआईं हलियो, चारणु चिताए।
सो मूडा झले न माल जा, थो माणिक माटाए।
"तो दरि आयुसि ते, जिएं तो नाहि न सिखियो॥

याचक वहा से (अपने घर से) ही अपने हृदय मे (राजा के) मस्तक की तमन्ना लेकर चला था अत. वह (राजद्वार की दी हुई) धन की थैलियाँ नही स्वीकारता है, तथा हीरे जवाहर भी अस्वीकार कर देता है। वह यही कहता है "मैं तेरे द्वार पर इसी कारण आया हूँ क्योंकि तू ने कभी 'न' कहना नही सीखा है।"

"का जा ग्गाल्हि ग्गरी, ब्बीजल्या ! बुधाइ मूँ।
पेठे जिए गिरनार मे, तन्दुनि तानु करे।
कि तो पन्धु परे ? कि मङ झली दे ? मंङणा !"

राइ दयाच कहते हैं ऐ बीजल, मुझे कोई रहस्यमयी तान सुना। गिरनार मे प्रवेश करते समय तू ने जो तान छेड़ी थी, वही मुझे सुना। ऐ याचक, (तू इतनी दूर से चलकर आया है)' क्या तू फिर वापस चला जायगा ? बता तुझे क्या दान दूँ ?

मङ न झलियाँ मूरही, न मू पंधु परे।
ग्गिणी आयुसि ग्गाल्हडी, ग्गुझी तो ग्गरी।
सा समझिज सोरठ वर ! वेदुसि कीन वरी।
परियाँ पेर भरे, तो लाइ आयो आहियाँ॥

बीजल कहता है—ऐ सोरठ के पति मैं दान कदापि नही लूंगा और न ही मैं वापिस चला जाऊँगा। मैं एक रहस्यमयी बात तेरे लिए ले आया हूं। यह याद रख कि मैं वापिस तो हर्गिज़ नही जाऊँगा। मैं तेरा (सिर प्राप्त करने के) लिए ही इतनी दूर से चलकर आया हूँ। (माना जाता है कि खुदी मिटाने से ही खुदा मिलता है। पूर्ण सद्गुरु भी अपने शिष्य से हीरे-मोती न लेकर उसकी खुदी ही लेता है)।

आऊ मथाहूँ मंङणा ! चढी में चौंडोल।
तोखे धोट घुराइयो, राजा मंझि रतोल।
बीजल तो सी ब्बोल, विहाणीअ वढणजी॥

(बीजल को राजा का सदेश मिला) ऐ याचक, तू पालकी से ऊपर चढकर जा क्योंकि तुझे राजा ने अपने महल मे बुलाया है। ऐ बीजल, उसने सुबह होते ही अपना सिर काटकर देने का वचन भी दिया है।

महले आयो मङिणो, खणी साजु सिरी।
लग्गी तन्दु तुनीयर जी, पिया कोट किरी।
हन्धीनि माग्गियन होइ थी, तुहिजी ब्बीजल दाँहँ ब्बुरी।

सिसी तन्हि सुल्तान खाँ, अची धोट घुरी।
ॼूनागॾहु ॼुरी, पुन्दीअ जहाँ ॼरोक में॥

याचक ने अपने अनोखे साज को उठाकर महल मे प्रवेश किया। उसने उस पर ऐसी तान छेड़ी कि गढ भी धराशायी हो गये (अर्थात् सभी का अभिमान चूर-चूर हो गया।) चारो तरफ शोर मच गया और बीजल की प्रशंसा फैल गई। बीजल ने राजा से उसके सिर की माँग की। (इस माँग के कारण) जूनागढ दुःख मे डूब जायगा तथा महल मे रोना-पीटना मच जायगा।

ॾातारु ऐं मङिणो, को न वसीलो विचि।
साई ताल तन्दुनि जी, साई चारण चिति।
जे हिते जी हुति, त ग़ाल्ह मिड़ियाई हेकड़ी॥

दाता (राजा दयाच) और याचक (बीजल) के बीच किसी भी तरह का व्यवधान न रहा। जो कुछ चारण के चित्त मे था, वही वह अपने (साज के) तारो से आलाप रहा था। जब वह नीचे (जमीन पर) था या अब जब वह ऊपर (महल मे) आ गया है, वह सिर्फ एक ही राग आलाप रहा था (अर्थात् वह उसके सिर (ख़ुदी या अह) की ही माँग कर रहा था क्योकि ख़ुदी के नाश से ही ख़ुदा मिलता है।)

जाजिक तो जुहारु, ॾह भरो ॾयाचु चए।
जंहिं मे मालु न मिरीअ जेतिरो, तंहिं तूँ तलमैदारु।
जे अचेई कमु कपारु, त वीह भेरा वढे ॾियें॥

(राजा बीजल से कहता है) ऐ चारण, तुझे राजा दयाच के दस बार प्रणाम हैं। जिस सिर मे रत्ती जितना भी सार नही है, उस सिर की ही तू माँग कर रहा है। यदि तुझे मेरा सिर काम आता है तो वह मैं तुझे बीस बार काट कर दे दूँ।

ॿेली ॿई पार, जाँ मूँ नेण हणी निहारिया।
चोई रखियम चित में, ॾिसे जा ॾातार।
हीउ सिर तन्हाँ धार, ॿीजे कंहिं न ॿोलियो॥

बीजल कहता है मैंने अपनी आँखो से अच्छी तरह से आगे-पीछे देखा। सभी देशो के दाताओं को भी हृदय मे धारण किया, किन्तु तेरे सिवा किसी ने भी अपना सिर देने का वचन नही दिया है।

मथो मथाइँ घोरियाँ, मथो तो मथाइ।
हड्डो हीउ हथि करे, जाजिक वहिलो जाइ।
तू सी अनीराइ, जिम वाचा मे विल्हो वही॥

राजा कहता है—मैं अपना मस्तक तुझ पर न्योछावर करता हूँ। ऐ चारण, यह खोखला कपाल प्राप्त कर शीघ्र चला जा, कही ऐसा न हो कि तू मेरे कारण राजा अनीराइ को दिये हुए वचन न निभाने मे पीछे पड़ जाए।

मथो मूरि न पाड़ियाँ, तुहिंजीअ तन्दु तन्वार।
सिर में सजण नाहि की, मोटु म मङिणहार।
कीन्हे मझि कपार, लज्जीन्दो थो लाहियाँ॥

राजा कहता है "मैं यह सिर तेरे साज़ से निकलने वाले आलाप के बराबर कदापि नही मानता। यद्यपि सिर कोई उपहार देने की वस्तु नही है फिर भी ऐ याचक, तू निराश होकर मत लौट। वास्तव मे तो मेरे इस मस्तक मे कुछ भी नही है, इसलिए मैं इसे काटकर देने मे लज्जा से गड़ रहा हूँ।

सौ सिरनि पाए, जे तन्दु बराबरु तोरियाँ।
उटल ओड्डाहो थिए, जेड्डाहिं ब्रीजल ब्रुराई।
सखिणो हडु आहे, सिर में सबणु नाहि की॥

"यदि तराजू के एक पलड़े मे मेरे सौ मस्तक तथा दूसरे पलड़े मे बीजल के साज़ की एक तान डालकर तोली जाय, तो वही पलडा भारी होगा जिसमे बीजल की तान होगी। (अर्थात् पूर्ण सद्‌गुरु के एक आध्यात्मिक रहस्य के सामने शिष्य के सौ सिर भी तुच्छ हैं।) मेरे सिर मे तो केवल हड्डियाँ हैं, यह वास्तव मे उपहार देने की वस्तु ही नही है।

मथे उते मुंहिजे, जे कोड़े हुवनि कपार।
त वारियो वारियो वढियां, सिसीअ खे सौ वार।
त पिणु तन्दु तन्वार, मूहाँ मयाऊ मङिणा॥

"ऐ याचक, यदि मेरे पास कोटि सिर होते तो मैं सहस्रो वार उन्हे काट-काटकर तुझे देता, फिर भी (मुझे लगता कि) तेरे साज़ की तान अधिक मूल्यवान है।

पसी पाटु पुर थियो, सन्दो जादिम जूडु।
मङ विहाणीअ मङिणा, मथो हेर मौजूदु।
बलकि आहे बूडु, नाकसीअ, नाबूडु मे॥

गायक (बीजल) यादव-कुल के राजा की उदारता देख पूर्ण तृप्त हुआ। (राजा ने कहा) ऐ याचक मेरा सिर अभी हाजिर है परन्तु दान तुझे प्रभात के समय मिलेगा। वास्तव में सच्ची हस्ती तो त्याग और खुदी को नष्ट करने मे ही है।

रिड़ मस्लिहत मङिणा, कसरि कीन अचनि।
नूर तज्लो नूर सी, निम्यो नेण पसनि।
खेमे मे खन्गहार जे, चॉडूणा चिमिकनि।
लधाई लतीफ चए, सन्दा ड्राण ड्रिसिनि।
तेलाँ मुल्क धणीनि, मञियो मङणहार खे॥

शाह साहब फर्माते हैं कि (सद्गुरु रूपी) याचक विना कृपा के महल मे नही आते हैं (अर्थात् पूर्ण सद्गुरु विना परमात्मा की कृपा के नही मिलते हैं।) सद्गुरु की ज्ञान-ज्योति से अन्वेषक के नेत्र अलौकिक ज्योति देखते हैं। यही कारण है कि राजा दयाच के शरीर मे चन्द्रमा का प्रकाश चमक रहा था। लगता था मानो उसने समस्त देशो के दान प्राप्त कर लिए हैं (अर्थात् समस्त सृष्टि की कृपा मानो उस पर है)। इसी हेतु तो सांसारिक सम्राट भी ऐसे महान् याचको के सामने सिर झुकाते हैं।

तन्दु तुमारीअ तानु, कहियो सो कबूल पियो।
सिरु त आहे सिट में, पर ब्रियो की मङिजि दानु।
खाकि मिटी काबानु, कटिया पोइ कुझ नही॥

राजा बीजल से कहते हैं जो स्वर तू ने अपने साज से निकाला है, वह मुझे स्वीकृत है। मेरा यह मस्तक इस स्वर के लिए उपस्थित है, इसके अतिरिक्त तू कुछ और भी दान माँग। यह शरीर तो माटी का पुतला है, यदि इसे काट दिया जाय, तो इसमे कोई बडप्पन नही है।

चारण ब्रोलिजि की ब्रियो, घुरीइ सो घोरियाँ।
घरु, सोरठ न पड़े, जॉ तन्दुनि बराबर तोरियाँ।
गुझी आहिमि ग्राल्हडी, आऊ ओरे, ताँ ओरियाँ।
कि कुल्हन्ऊ कोरियाँ? कि जाजिक जुसे सी ड्रियै॥

ऐ याचक, जो तू ने माँगा, वह तो मैं सहर्ष तुझ पर न्यौछावर करता हूँ। यदि मैं अपना घर तथा अपनी पत्नी सोरठ को तेरे साज के स्वर से तोलूँ तो वे भी उसकी बराबरी नही कर सकते। ऐ चारण, मुझे तुझसे एक रहस्यमयी बात करनी है, तू समीप आ तो मैं तुझे बताऊँ। बता यह सिर कँधे पर से काटूँ, या धड़ सहित ही दे दूँ।

टेई परिचिया पाण में, तन्दु कटारो, कन्धु।
तंहि जिहोई नाहि की, जो तो, चारण कयो पन्धु।
ऐ शुकरु अल्हमदु, जिअं मथो धुरियोइ मङिणा!

बीजल के साज की तार, तलवार तथा राजा का मस्तक तीनो ही मानो एक बात (राजा की शहादत) का समझौता करके खडे हैं। (राजा कहता है) ऐ चारण, तू जो यहाँ चलकर आया है, वास्तव मे उस जैसी अमूल्य कृपा विश्व मे दूसरी नही है (अर्थात् पूर्ण सद्गुरु यदि स्वय शिष्य के पास चलकर आता है तो उसकी वह कृपा अमूल्य है।) ऐ याचक, परमात्मा की कृपा है तथा उसकी प्रशसा करनी चाहिए कि तू ने केवल मुझसे सिर माँगा है (तात्पर्य यह कि तू ने यदि और किसी वस्तु की माँग की होती जो मै तुझे कदाचित दे ही न पाता।)

कान्जहे कीरति कीनरो, वाजों विलाती।
हणई तन्दु हुजूर मे, तंहि पारस पीराती।
द्रिसन्देई द्रियाच खे, जाहिरु थियो जाती।
कढी तहिं काती, विधो करटु कपार मे॥

वह राग अलापने वाला विलायती (अलौकिक) साज बज उठा। उस पारस जैसे पुरुप (पूर्ण सद्गुरु) ने राजा (शिष्य) के सामने पूर्ण तान छेड दी (अर्थात् समस्त आध्यात्मिक रहस्य उसके सामने खोलकर रख दिये।) यह देखते हैं राजा दयाच के भीतर अलौकिक प्रकाश चमकने लगा (अर्थात् उसके अज्ञान के पर्दे फट गये और वे ज्ञान के अलौकिक ज्योति से जगमगाने लगे)। फिर उसने तलवार निकालकर अपना सिर (खुदी) काटकर गुरु के सामने उपहार के तौर पर रख दिया।

सोरठ मुई, सुखु थियो, खेमा हंया खन्गहार।
थियो रागु रूप सो, लग्गी तन्दु तन्वार।
सो ढटीनि पटीनि पार, पसों! राजा राज़ी थियो॥

राजा के मरने के बाद सोरठ सती हो गई। शाह साहब कहते हैं सोरठ मर गई अतः अब चारो तरफ शान्ति और आराम फैल गया। (क्योंकि सोरठ मन का प्रतीक है, मन के कारण ही बेचैनी होती है। किन्तु जब मन मर जाता है तब सब कुछ शान्त हो जाता है) राजा दयाच ने अपना तम्बू (इस ससार से) उठाकर उसे जाकर आकाश मे लगाया तथा आध्यात्मिक ससार मे वह राग स्वरूप होकर निवास करने लगा। यह राग यत्र-तत्र-सर्वत्र बज रहा है (पर जिन्हे ज्ञान के कान है, केवल वे ही उसे सुन पाते हैं।) देखो राजा दयाच कितने आराम से आकाश मे बैठा

है [तात्पर्य यह कि जो जिज्ञासु अन्वेषक, पूर्ण सद्गुरु को सिर (खुदी) देकर राजी करता है, वह सदैव आकाश मे प्रसन्न रहता है।]

"स्वर सरेराग"

इस स्वर मे शाह साहब ने समुद्र, मल्लाह जहाज आदि प्रतीको द्वारा आध्यात्मिक बाते समझाई है। शाह साहब के अनुसार समुद्र के दो अर्थ हैं १ ज्ञान रूपी समुद्र २ ससार रूपी समुद्र। शाह साहब के अनुसार इस ससार रूपी सागर मे मनुष्य रूपी मल्लाह अपने जीवन रूपी नौका को चाहे तो पार कर सकता है। जिस तरह से समुद्र की लहरे असख्य है तथा उसका पानी अथाह है, उसी तरह इस भव-सागर मे विषय-वासनाओ तथा विकारो का कोई अन्त ही नही है। यदि मनुष्य रूपी मल्लाह सदैव सावधान रहे तथा अपने आपको विषय-वासना रूपी भँवर मे न उलझाए तो वह अपनी जीवन-नौका को आसानी से पार उतार सकता है।

शाह साहब के अनुसार सच्चे ज्ञानी पनडुब्बे की तरह है, जो ज्ञान रूपी सागर मे डुबकी लगाकर अमूल्य रत्न इकट्ठे करते हैं, किन्तु अज्ञानी जीव झूठे सांसारिक प्रपचो रूपी कांच के पीछे पड अमूल्य रत्नो से सदैव वंचित रहते हैं, अत वे अन्त समय मे खून के आँसू बहाकर चले जाते हैं ज्ञानी व्यक्ति हँसते-हँसते जाते हैं और उनके जाने पर लोग आँसू बहाते हैं। ज्ञानी व्यक्तियो की मिट्टी का भी मूल्य होता है। लोग श्रद्धा से उसके सामने झुक जाते हैं।

मान पुछनिई सुप्रियनि, चिताँ लाहि म चरु।
उन्यिन जा अमुर, खणु त खाली न थिएं॥

(शाह साहब मानव को उपदेश देते कहते है) प्रियतम को हृदय से मत भुला ताकि वह भी तेरी याद करता रहे। तू उसकी सभी आज्ञाओ का पालन कर, ताकि उसकी कृपा-दृष्टि सदैव ही तुझ पर रहे।

मान पुछनिई सुप्रियनि, चित मे रखिजि चेतु।
सिड़हु धुआरे साफु कर, साबुण सांणि सुपीतु।
सामुन्डी ! सुचेतु, थीउ त पहुँची पार खे॥

शाह साहब उपदेश देते कहते है— ऐ नाविक, हृदय मे सदैव प्रियतम की याद रख, ताकि वह भी सदैव तेरी रक्षा करे। तू अपनी शरीर-नौका को (अच्छे कर्म रूपी) साबुन से साफ और उज्ज्वल रख तथा इस

बात का सदैव ध्यान रख कि तुझे सुरक्षा से प्रियतम से उस पार जाकर मिलना है।

ब्रेड़ी पुराणी, वखुर पाइ म वितरो।
तरे मे तुन पिया, पासंऊँ पाणी।
हीअ हद्रि विहाणी, कड़हु काल्हूणी द्रीह खे।।

शाह साहब कहते हैं कि शरीर रूपी नौका अब पुरानी हो चुकी है अत. इसमे ज्यादा सामान मत डाल (अर्थात् बुढापा आ चुका है, अब तक भी विषय-वासनाओ मे लीन मत रह।) इस नौका मे अनेक छेद हो चुके हैं, जिससे पानी भीतर आयगा अर्थात् विषय-वासनाओ मे ही जीवन नष्ट हो जायगा। इसलिए जो बीत चुकी है, उसे भूलकर आगे का ध्यान रख।

तरे तुन पियास, पासंऊं पाणी वहे।
खुहो झुरु झुनो थियो, लाज़ू सभि लडयासि।
जेलां सघरु सुखाणियासि, वहे ते वह साम्हूँ।।

(शाह साहब कहते हैं) शरीर रूपी नौका में छेद हो चुके हैं तथा उसमे पानी भर आया है (अर्थात् मानव जीवन रूपी नौका पर सासारिक प्रपच का प्रभाव पड रहा है तथा विषय-वासनाओ ने इसे जर्जर बना दिया है) इसका लगर भी पुराना हो गया है तथा (इन्द्रियो रूपी) रस्सियाँ भी ढीली हो गई है; फिर भी यदि मल्लाह दृढ है तो वह (ससार रूपी समुद्र के) तेज बहाव मे भी तैरती रहेगी। (तात्पर्य यह कि यदि मल्लाह सयमी है तो वह अपनी नाव को विषय-वासनाओ से बचाकर पार ले ही जाता है)

वेठो तुन तुनीसि, मखि द्रीहाणी मकुड़ी।
सन्बाहे सब्धुद चए, मथे नीडिवु नीसि।।
वटाए वद्रान्दरा, लाज़ू लभाइंस।
आखरि उहिराईंसि, त जोखो थिए न जहाज खे।।

(शाह साहब कहते हैं जिस तरह एक बुद्धिमान नाविक समय-ससय पर अपनी नाव की मरम्मत करता है तथा उसमे तेल आदि डालता है) उसी तरह मनुष्य को भी चाहिए कि अपने शरीर रूपी नाव के छेद बन्द करे (अर्थात् बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी बने) तथा (ज्ञान रूपी) तेल डालकर इसे ठीक रखे एव (साधना रूपी) बडे-बडे रस्से तैयार कर उसमे रख दे। फिर पूरी तैयारी से वह यदि इस भवसागर मे कूद पड़ेगा तो भी उसकी नाव को कोई खतरा न होगा।

दन्गो विच दरियाह, को बुड़े को उपिड़े।
हू जे वाडे वाणिया, से सून्हण सभि सढ़िया।
मुइलम माझि न अझिइं, फिरगे मझि फिरिया।
मल्लाह तुहिंजी मकुडीअ, अची चोर चढ़िया।
जिते ढीग ढरिया, तिते तारी तुहिंजी॥

(शाह साहव कहते हैं) कोई नही जानता इस भवसागर मे यह काया रूपी नाव डूबेगी या पार उतर जायगी। (गुरु रूपी) सुतार ने जो (उपदेश रूपी) कीले इस पर लगाये थे, वे सव सड़ गये हैं (अर्थात् सांसारिक प्रपञ्च में पडकर सद्गुरु के उपदेश का प्रभाव ही नष्ट हो गया है) सामुद्रिक चोर (अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकार) इस नाव पर टूट पड़े हैं। हे परमात्मा जहाँ वड़े-वड़े जहाज भी टूट पड़ते हैं, वहाँ अब मुझे केवल तेरा ही सहारा है।

ब्रेड़ियाता! ब्रेई, तो न फब्नन्दियूं ग्राल्हिंड़ियूं।
सञियूं रातियूं सुम्ही, भरु सुखाण ड्रेई।
सुबाह सभेई, पारि पुछन्दइ खबरूं॥

शाह साहव मनुष्य को सम्वोधित करते कहते हैं ऐ मल्लाह, दो कार्य १-अज्ञान की नींद मे सोना और २-भवसागर से पार होना एक साथ सम्पन्न नहीं होते हैं। तू अपनी पतवार को एक कोने मे रखकर अज्ञान की नींद मे पडा है, अतएव कल उस पार (मृत्यु के वाद) तुझ से ठीक-ठीक हिसाव लिया जायगा।

वह तिख वहिकरा, जित लँगर न ठहरनि।
वड्डान्दरियूं वह सामुड्यूं; झझे जोर जुम्बनि।
नीडों मे नातारियूं, वणजारा विझनि।
मुल्लाँ मुइलमन, मूँ थरी सुई ग्राल्हिड़ी॥

(शाह साहव भवसागर की भयानकता का वर्णन करते कहते हैं) मैंने वड़े-वड़े (महापुरुषों रूपी) नाविकों से आतंकित कर देने वाली वाते सुनी हैं। इस (संसार रूपी) समुद्र के तेज़ प्रवाह मे वडे-वडे जहाज (ज्ञानी) भी डगमगाते हैं। वडी-वड़ी नावें (महापुरुष) भी वडी कठिनाई से वहाव के सामने ठहर पाती हैं, पर (सच्चे आत्मज्ञानी रूपी) नाविक (ज्ञान रूपी) वडे भारी वजन डालकर नाव को एक जगह पर खडा रख देते हैं अर्थात् सांसारिक प्रपचों मे भी विचलित नहीं होते।

सभेई सुञ्हान जे, करि हवाले कम॥
थी तह्कीक़ु तस्लीम मे, लाहे गम वहम॥
कादरु साणु करम, हासलि करे हाज तो॥

(ऐ मानव) अपने सब कार्य परमात्मा को सौंप दे। तू चिन्ता और सन्देह मिटाकर, परमात्मा की इच्छा पर राजी रह तो वह शीघ्र ही अपनी अनुकम्पा से तेरे समस्त कार्य सम्पन्न कर देगा।

अमुल आछि म उन खे, जे न पच्ञडीनि मटि।
जिति गड्रिजेई जोहरी, माणिकु तितही मटि।
जिनी सोन सी सटि, तिनि हणी री रदि कयो॥

(ज्ञान रूपी) अमूल्य मोती उनको मत दे जो उन्हे पहचानते तक नही। किन्तु जहाँ तुझे कोई जोहरी (सच्चा जिज्ञासु) मिले वहाँ ही अपने (ज्ञान रूपी) रत्नो का सौदा कर। जिन्हे स्वर्ण की जानकारी है, उन्होने (ससार के) झूठे काँच को त्याग दिया है।

सोना! वाऊँ सराफ सीअनि, लड्रो लाहि म लड्रि।
सोदो सोई छड्रि, जहिं मे जवाहिरु नाँहि को॥

(शाह साहब मनुष्य को उपदेश देते कहते हैं) ऐ स्वर्ण (सच्चा इन्सान) तू किसी (सद्गुरु रूपी) जोहरी के पास चला जा। इस तरह बैठकर अपना समय मत गँवा। उस सौदे का ही त्याग कर दे जिसमे (ज्ञान रूपी) रत्नो का व्यवहार नही है। अर्थात् जहाँ ज्ञान की चर्चा होती है वही बैठ; पर जहाँ ज्ञान की चर्चा नही होती, वहाँ मत बैठ।

माणिकु मुन्ध हथाँ, पेतीअ मे पुर्जा थियो।
सज्रो ताँ सच्चदु चए, लहे लखु सवा॥
भञो पुर्जाणा, पद माँ परे थियो॥

शाह साहब कहते हैं कि (आत्मा रूपी) रत्न (जीवात्मा रूपी) नारी के (काया रूपी) पेटी मे चूर-चूर हो गया है। जब तक वह सपूर्ण था (अर्थात् जब तक सासारिक माया मे चूर-चूर नही हुआ था) तब तक उस का मूल्य सवा लाख था, पर टूटने के बाद अपनी पदवी से गिर गया है।

कुछ आलोचक इस पद का अलग अर्थ बतलाते हैं। उनके अनुसार यहाँ एक से अनेक (अर्थात् वहदत से कसरत की ओर इशारा है)। उनके अनुसार इस सृष्टि रूपी पेटी मे ब्रह्म शक्ति के सहारे परमात्मा रूपी एक रत्न से (प्राणी रूपी) अनेक रत्न हो गये है और उन रत्नो का मूल्य प्रभु से भी ज्यादा है।

लहिरियुन लेखो नाहि को, जिति कपर कुन कारा।
आछाड़ा अमीक जा, अचनि ओभारा।
ज़्यी असारा! वीर विढ़न्दीअ वेसिरा॥

(शाह साहब इस संसारसागर की भयानकता का वर्णन करते कहते हैं) ऐ वेसुध, इस भवसागर की लहरो का कोई अन्त ही नही है। यहाँ के किनारे भी बहुत ऊँचे है तथा इसमे अनेक तिमिरमय भँवर है। यहाँ की (विषयी रूपी) लहरें भी अत्यन्त ऊँची है। अतएव तू सचेत रह, नही तो ज्वार तुझे हर तरह से परेशान कर देगा।

मुलाहिजो महिराण जो, मूरि म लाहि मनाउ।
सामून्डी! सम्भाल की! सुम्हण आयुइ साउ।
जाग्री जर मथांउ, तारे वाँउ तराज खे॥

ऐ ससार-सागर के यात्री, तू इस भवसागर की भयानकता को कदापि मत भूल, वल्कि सदैव सचेत रह। लगता है तुझे (अज्ञान की) नीद मे मजा आ गया है। तू इस सागर पर जागृत रहकर अपनी नाव को पार लगा ले (अर्थात् परमात्मा की यादकर मुक्ति पा ले।)

तारे वाँऊ तराज़ खे, मन्झाँ मोज मल्लाह।
दान्हूँ कनि दरियाह जूँ, ऊन्हे जा आगाह।
सून्हनि जी सलाह, वहु त वीर लंघे वञी॥

ऐ मल्लाह, तू अपनी इस शरीर रूपी नौका को इस भवसागर से पार लगा ले। क्योकि इस गहरे समन्दर के अनुभवी इसकी भयानकता के सम्बन्ध में शिकायतें कर रहे हैं। किसी (सद्गुरु रूपी) पथप्रदर्शक की सहायता ले, ताकि तू इससे पार उतर जाय।

सून्हाँ सधियूँ द्रियनि, हिन दीवाने दरियाह जूँ।
कूड ओड्राई कीन को, रुञो सचु सोदीनि।
इज्ज़ जो अध रात खे, वखरु विहाईनि।
साथु निब्हायो नीनि, साबितु डन्हीअ सीर माँ॥

(शाह साहब सच्चे ज्ञानियो की विशेषताएँ बताते हुए कहते हैं) अनुभवी मल्लाह इस विषम (ससार रूपी) सागर के सम्बन्ध मे वडी चिन्ताजनक वातें सुनाते हैं। वे कभी भी झूठ के समीप नही जाते और केवल सत्य का ही व्यवहार करते है। वे आधी रात को नम्रता एव वन्दगी का सामान इकट्ठा करते रहते है (अर्थात् जब ससार सोया हुआ

रहता है, तब वे जगकर परमात्मा की बन्दगी करते हैं)। वे अपने साथियो को भी सुरक्षा से मँझदार से पार लगा देते है।

क़र फुल, फोटा, पारचा, पाणियठ पाताऊँ।
कोठियूँ कीमत सन्दियूँ, तर मे ताक्याऊँ।
लाज़ुनि मझि लतीफ़ चए, ब्रेडा ब्रधाऊँ।
नज़रु नबीअ ज़ाम जो, चढ़न्दे चयाऊँ।
जे छूही छोड़ियाऊँ, से ब्रेड़ियूँ रखीनि ब्राझ सी॥

(माना जाता है कि जब व्यापारी, व्यापार के लिए सर्वप्रथम अपना बेड़ा लेकर जाते थे, तब वे अपनी नाव को खूब फूलो से सजाते थे तथा शुभ शकुन के तौर पर उसमे इलायची, लवग तथा बताशे आदि डालते थे। व्यापार की मूल्यवान वस्तुएँ बडी सावधानी से नाव मे नीचे रखकर नबी की मनौती मनाकर यात्रा आरम्भ करते थे।) शाह साहब कहते है कि जिन्होने अपने शरीर-रूपी नाव मे लवग, इलायची, कीमती वस्त्र, मोती तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं सुरक्षित रख दी हैं (अर्थात् सत्कार्यों द्वारा जीवन सफल व सुन्दर बनाया है) तथा (इन्द्रियो-रूपी) रस्सियो को (सयम-रूपी) फूलो से सजा दिया है और नबी के उपहार की मनौती मानकर (ईश्वर की प्रार्थना कर) इस ससार-सागर के तेज़ प्रवाह मे अपनी नाव को डाल दिया है, परमात्मा अपनी अनुकम्पा से उनकी रक्षा करे।

ताँधे मे ताणे, ब्रधु पहिंजो तुरहो।
ऊन्हे मे आणे, को न ड्रीन्दअ को ब्रियो॥

(शाह साहब मानव को उपदेश देते कहते हैं—) जब तू इस ससार-सागर की कछार पर है तब ही अपना तुम्बा कस कर बाँध ले क्योकि बीच समुद्र मे कोई भी तुझे तुम्बा लाकर नही देगा। अर्थात् परमात्मा की बन्दगी जीवन के प्रभात मे ही कर ले, नही तो अन्त समय मे पछतायेगा।

ड्रोरे लहु ड्रातारु, जिम विही वेसिरो।
हक्यो होइजि होशियारु, खिवणि खिवंदइ ओचितो॥

(ऐ मानव) गाफिल होकर मत बैठ, बल्कि, परमात्मा को ढूंढ ले। हर पल सचेत रह क्योकि (मृत्यु-रूपी) बिजली अचानक ही आकर तुझ पर टूट पडेगी।

सामून्डी! थो सन्बही, साजो झलु सुखाणु।
लक्षो वाउ वड्रान्दरो, मुन्झाए महिराणु।
जिनी भान्यो पाणु, करे नवाई तिनि खे॥

ऐ (संसार-सागर के) यात्री, तू अब तक मात्र तैयारी कर रहा है, अब तो पतवार को मजबूत पकड़। इस सागर मे अचानक ही जब तूफ़ान आ जाता है तब हाहाकार मच जाता है। जिन्होने खुदी (अहं) दिखायी, उसे वह शीघ्र ही नष्ट कर देता है'

अहुखी राह अल्लाह जी, अहुखी, अहुखीअ भति।
होइ जे द्रीहाई द्रेह जा, तिनि पिण मूढ़ी मति।
आछाड़ानि उवति, धिड़िजि धाटे नीहँ सीं॥

शाह साहब कहते है कि परमात्मा को पाने का मार्ग अत्यन्त ही कठिन एवं विषम है। जो उस देश के वासी हैं, उनकी भी मति कभी-कभी उलझ जाती है। (अर्थात् ज्ञानी भी कभी-कभी भटक जाते हैं) अतएव (ऐ मानव) तू गहन प्रेम से इस सागर की लहरो मे कूद जा।

तन मे तराज तोह जी, घणो लहु घोरे।
अदबा ऐ इख़लास जा, सिड़ह ब्रधिजि सोरे।
वखर वेनातीनि जो, तहिं मे पाइज तोरे।
त आदनिऊँ ओरे, तुहिंजो तवाई न थिए॥

(ऐ मानव) तू अपनी काया-रूपी नाव मे परमात्मा की अनुकम्पा, प्रयत्न द्वारा खोज कर डाल दे, फिर उस (नाव) मे नम्रता एवं सच्चाई के रस्से कसकर तान दे, उसके भीतर सोच समझकर प्रार्थना तथा पश्चाताप का सामान डाल, ताकि तेरी नाव अदन बन्दरगाह पर (आध्यात्मिक मंज़िल पर) पहुँचने तक डाँवाडोल न होवे।

समुन्ड जे सेवियनि, तिनी माणिक मेड़िया।
छिलर जे चोईनि, तिनि साखोय ऐ सुतियूँ॥

जिन्होने (ज्ञान-रूपी) गहरे समुन्द्र की मन से पूजा की, उन्होने अनेक रत्न इकट्ठे किये। किन्तु जो केवल जाली तथा छोटी-छोटी नावो को ही ढूंढ़ते रहे (अर्थात् निडर होकर समुद्र मे स्वयं प्रवेश नही किया, केवल किनारे पर ही बैठे ज्ञान-रूपी रत्न पाने के प्रयत्न करते रहे) उन्हे केवल रिक्त सीपी और शंख ही मिले।

"स्वर बरवो सिन्धी"

इस स्वर में शाह साहब ने परमात्मा के ऐश्वर्य एवं अनुकम्पा का बखान कर, मानव को उसकी ही शरण लेने की सलाह दी है तथा सच्चे आशिको के हृदय की अभिलाषा का वर्णन किया है।

शाह साहब कहते हैं कि इन्सान को परमात्मा की ही ओट लेनी चाहिए क्योंकि वही सब का मालिक है। उसे सासारिक अमीरो की गुलामी न कर परमात्मा की ही चाकरी करनी चाहिए, क्योंकि वास्तव मे वही इन्सान सुखी है, जिसका प्रेम परमात्मा से है। परमात्मा का प्रेम विनम्रता से ही प्राप्त किया जा सकता है, यही कारण है कि कुछ नज़दीक रहकर भी दूर हैं तो कुछ दूर रहकर भी नज़दीक है। जिज्ञासु के ज्ञान के पर्दे कभी खुल जाते हैं तो कभी बन्द हो जाते हैं।

शाह साहब का कहना है कि प्रेम मे कठिनाइयो और दु खो का कोई अन्त ही नही होता, फिर भी सच्चे आशिको के हृदय मे प्रेम की हिलोरें लगती रहती हैं और वे प्रियतम के हाथो कत्ल होने पर भी अपने को भाग्यशाली मानते है, उनकी मात्र अभिलाषा होती है कि प्रियतम उनकी ओर देखते रहे।

छा खे वञियो छो, ब्रेली थिईं ब्रियनि जो।
वठु कन्जक करीम जी, जग्र जो वाली जो।
सौखो हून्दो सो, जंहि जो इश्कु अल्लाह सी॥

शाह साहब मानव को सासारिक अमीरो का गुलाम न बनकर परमात्मा का गुलाम बनने की सलाह देते कहते हैं—) ऐ मानव ! तू क्यो दूसरो का गुलाम बनता है ? तू कृपालु परमात्मा की सेवा कर, जो विश्व का मालिक है। वही मनुष्य सुखी है, जिसका प्रेम परमात्मा से है।

धर ते दूनह जिअं, सिर भरि सुप्रियुनि ड्रे।
लधो आहि लतीफु चए, तनु प्रियां ड्रे तिअ।
हासुलु थिए हिअ, करीनो करीब जो॥

जिस तरह हाथी की सुन्ड (सूंड) पृथ्वी पर झुकी रहती है, उसी तरह हमे भी झुककर परमात्मा की ओर जाना है। वास्तव मे हमारा अस्तित्व परमात्मा से जुडा हुआ है और नम्रता के द्वारा ही प्रियतम का स्नेह प्राप्त किया जा सकता है।

के ओड्राई दूरि, के दूरि बि ओड्रा सुप्रियुनि।
के सम्भिर्जनि न कड्हीं, के न विसरनि मूरि।
जिअं मेंह कुन्डीअ पूरि, तिअं दोस्त वराको दिली सी॥

कुछ लोग (प्रियतम के) समीप रहकर भी दूर है, तो कुछ दूर रह कर भी पास है। कुछ लोगो की याद कभी आती नही, तो कुछ कदापि नही भुलाए जाते हैं। (शाह साहब कहते हैं) मेरे हृदय मे प्रियतम के

प्रेम का पेच ऐसे पडा हुआ है जैसे गोलाकार सीगों वाली भैंस के सीगो का पेच पडा रहता है। (तात्पर्य यह कि जिस तरह गोलाकार सीगो वाली भैंस के सीगो को सीधा नही किया जा सकता है, उसका टेढापन नही निकाला जा सकता है, उसी तरह मेरे हृदय मे प्रियतम ऐसे अड़ गए हैं कि उसे किसी भी तरह से नही निकाला जा सकता है।

कोठे कुठाऊँ, अजु पिणु अखड़ियुनि सी।
मासु विराहे हल्या, करगलु छद्रियाऊँ।
"वतवांस्वाबाँलहक वतवास्वबालसवरु" इएं उताऊँ।
मुई मारियाऊँ, खिली घाइयो सज्रणिनि॥

आज भी प्रियतम ने मुझे बुलाकर अपने नयनो से घायल कर दिया। मेरे शरीर का मांस काट और उसे बाँट कर, मात्र हड्डियो के ढाँचे को छोडकर चले गये और कहा "धैर्य के साथ सत्य से, अपने आप से परामर्श करते रहो।" इस मरी हुई को प्रियतम ने हँसकर घायल बना दिया और मारकर नष्ट कर दिया।

माड़हू घुरनि मालु, आऊँ सभु ड्रीहाँ घुराँ सुप्री।
दुनिया तहि दोस्त ताँ, फ़िदा करियाँ फेअल्हालु।
कयसि नाम निहालु, पसणु ताँ परे थियो॥

(शाह साहव कहते हैं) लोग सासारिक वैभव की माँग करते हैं किन्तु मैं सदैव प्रियतम को पाने की तमन्ना रखता हूँ। अपने प्राण प्यारे को देखना तो दूर रहा, उसके नाम ने ही मुझे इतना मस्त बना दिया है कि मैं उस पर ससार का ऐश्वर्य भी न्योछावर कर दूँ।

जानिब ! तूँ जेड्रो, आही शान शऊर सी।
मूँ ते करि मुँहिजा प्री, तोहु तुसी तेड्रो।
ऐ कामिल ! कमु केड्रो ? जिअं नवाज़ीमि निगाह सी॥

ऐ प्राणाधार प्रियतम ! तुम जितने वैभवशाली और ऐश्वर्यवान हो, उतनी ही मुझ पर दया करना। ऐ पूर्ण प्रियतम, क्या मेरी ओर कृपा-दृष्टि से देखना, तेरे लिए कोई कठिन कार्य है ?

जानिब मुँहिजे जीअ में, तुंहिजी तमइ पोइ।
वठु कातो, वढि अँगुडा, अदबु करि म कोइ।
भाँया भालु सन्दोइ, जे साजन ! संओ निहारिईं॥

ऐ प्राणाधार, मेरे हृदय मे केवल तुझे पाने की तमन्ना है। मुझ से यह तलवार ले और किसी तरह का लिहाज़ न कर, नि सकोच होकर मेरे अग काट ले। ऐ प्रियतम, मैं तेरा आभार मानूँगा यदि तू सीधे मुख मेरी ओर करेगा।

कड़ो मंझि कडी, जीअं लुहार लपेटियो।
मुंहिजो जीउ जडी, सुप्रियाँ सोघो कयो॥

जिस तरह लुहार जँजीर की एक कड़ी, दूसरी कड़ी से जोड़ देता है, उसी तरह प्रियतम ने मेरे हृदय को अपने से जकड़ कर मज़बूत कर दिया है।

फानी नी फ़ानी, दुनिया दमु न हेकिड़ो।
लटे लोड़हु लतुनि सी, जोडीन्दअ जानी।
कोद्रुरि ऐ कानी, आहे सिरि सभ कन्ही॥

यह संसार नश्वर तथा क्षणभगुर है, उसमे ज़िन्दा रहना एक पल की तरह है। ऐ सज्जन पुरुष, लोग तेरी लाश पर पैरो से मिट्टी डालकर तेरी क़ब्र बनायेगे। सभी के सिर पर फावरा और काना है (तात्पर्य यह कि सभी लोगो के लिए मात्र दो ही चीजे आवश्यक है। फावरा १—क़ब्र खोदने के लिए और २ (काना) शव को नापने के लिए फीता।)

इश्कु अहिड़ी ज़ाति, जो मॉझी मुन्झाए मयनि खे।
ड्रीहाँ ड्रोरणु डून्गरे, रुअणु सज़ियाई राति।
उये बेठे ताति, मियाँ महबूबनि जी॥

(शाह साहब कहते हैं) ऐ बन्धु, प्रेम ऐसी विपत्ति है, जो वीरो और बलवानो को भी हैरान और परेशान कर देती है। प्रेमियो को दिन के समय पर्वतो में भटकना (कष्ट सहन करना) और रात को आँसू बहाना है। उन्हे उठते बैठते प्रियतम की ही रट लगी रहती है।

यारु सद्राए सभुको, जानी जिबानी।
आहे आसानी, कम पए थी कल पवे॥

मुख से अपने को जिगरी दोस्त कहलाना सरल है, पर जब काम पड़ता है, तब ही वास्तविकता का पता चलता है।

खोड़े. खणुम सुप्री, खंइए ताँ खोडि।
आदत जा अखियुनि जी, सा नेई निबाहिजि तोड़ि।
मूं में ऐबनि कोड़ि, तूं पाणु सुञाणिजि सुप्री॥

ऐ प्रियतम, एक वार अपनी दृष्टि मुझ पर डाल कर, उसे मत उठा ले; यदि तू ने उठा ली है तो फिर से उसे डाल (तात्पर्य यह कि सदैव ही तू मुझे अपनी कृपा-दृष्टि से देखता रह।) ऐ परमात्मा! आंखों की जो आदत है, उसे अन्त तक निभाना (आँखो की आदत है कि जिसे प्यार करती हैं, उसे निरन्तर देखती रहती हैं।) ऐ प्रियतम, मुझ मे तो करोड़ो त्रुटियाँ हैं, किन्तु तू अपने विरद को देखते रहना।

"स्वर आसा"

"आसा" एक मधुर रागिनी है, जो प्रभात के समय गाई जाती है। प्राय प्रभात के समय समस्त सृष्टि परमात्मा की यश-गाथा गाती है। शाह साहव ने इस स्वर में वताया है कि परमात्मा को इस विशाल संसार मे ढूंढने पर पता चलता है कि उस अनन्त का कोई अन्त ही नही है तथा उसके सौन्दर्य व सुषमा को कोई सीमा ही नहीं है। किन्तु जिन्होने अह की भावना को त्याग दिया है, वे उस असीम तक पहुँच सकते हैं, क्योकि वास्तव में पुरुष परमात्मा का रहस्य है और परमात्मा पुरुष का। परमात्मा की तरह पुरुष का भी न है आदि, और न है अन्त, क्योंकि उसकी आत्मा परमात्मा का ही अंश है। विद्वानो तथा मनीषियो का कहना है कि जव तक प्रार्थना करनेवाला अपने आप (खुदी) को देखता है, तव तक उसकी प्रार्थना व वन्दगी का कोई अर्थ ही नही है, पर जो अपने आपे को नष्ट कर देते हैं, वे ऊँची पदवी को प्राप्त होते हैं। वे सोते हुए भी जाग्रत हैं और उनकी नीद भी एक इबादत (उपासना) है।

लोचाँ थी लाहद मे, हादीअ लहाँ न हद।
सुप्रियाँ जे सून्हँ जो, न को कदु न मदु।
हिति सिकणु बे अदद, हुति प्रियनि परवा नाहि को॥

(जीवात्मा कहती है) मैं इस विशाल ससार मे पूर्ण परमात्मा को ढूंढती हूँ, पर उसके अन्त को नही जान पाती हूँ। परमात्मा के सौन्दर्य का भी न है अन्त, और न है सीमा। यहाँ प्रेमी के हृदय में अनन्त तड़प है, तो वहाँ प्रियतम परमात्मा को मानो कोई परवाह नही है।

'आऊँ' सी उन पारि, कद्रहि ताँ को न पियो।
'इन अल्लाह वितरुयहबु अल्वितर' नेई ब्रयाई ब्रारि।
हेकिड़ाईअ वटु हारि, हन्जूं जे हुअण जूं॥

(ऐ इन्सान) खुदी से उस तरफ़ (आध्यात्मिक देश में) कोई नही पहुँच पाया। परमात्मा एक है और उसे एकत्व पसन्द है। अतः तू द्वैत को जलाकर खाक कर दे और उस एकत्व के आगे खुदी के आंसू वहा।

हू पिणु कोन्हे हिन रे, ही न हुन्हाँ धार।
"अलान्सानु सिरी व अना सिरहु" परूड़जि पचार।
कन्दा विया तन्वार, आलम आरफ़ अहिड़ी॥

सच्चे ज्ञानी फकीर यही कह गये है कि वास्तव मे वह (परमात्मा) इस (इन्सान) से अलग नही है तथा यह (इन्सान) उस (परमात्मा) से अलग नही। (परमात्मा ने कहा है) "इन्सान मेरा रहस्य है और मैं इन्सान का रहस्य हूँ।" (ऐ साधक) परमात्मा के इस कथन को समझ।

जाँ जाँ पसी पाण खे, ताँ ताँ नाहि निमाज़।
सभि विञाए साज़, तिहाँ पोइ तक्बीरि चवु॥

(ऐ साधक) जब तक तू अपने आपको देख रहा है (अर्थात् जब तक तू आत्मा-परमात्मा को अलग-अलग समझ रहा है) तब तक तेरी नमाज़ स्वीकृत नही होगी। अतएव तू समस्त साधन छोडकर, (परमात्मा मे लीन हो जा) फिर परमात्मा की प्रशसा के लिए "अल्लाह अक्बर" (ईश्वर महान) का नारा लगा।

जिनि विञायो विजूद खे, से फानी थिया 'फ़ी अल्लाह' मे।
न तिनि क़ियामु, न क़ुऊदु मे, न को कनि सुजूदु।
जेलाँ थिया नाबूदु, तेलाँ गड्डिया बूदु खे॥

जिन्होने अपनी ख़ुदी (अहं) को नष्ट किया, वे ही परमात्मा से एक हो गये। उनके लिए नमाज़ के समय, न बैठना आवश्यक है, न खड़ा होना, और न ही नमन करना ही अनिवार्य है। जिस हालत मे उन्होने अपने अहं को नष्ट किया है, उस हालत मे वे सच्चे अस्तित्व को पहुँच गये हैं।

उभिरन्दे ई सिजि, प्रियुनि जे न पसन्दियूँ।
कढी ब्रेई ड्रिजि, अखड़ियूँ कॉगनि खे॥

सूर्य उदय होते ही, जो आँखे प्रियतम को नही देखती, वे आँखे निकाल कर कौवो को दे दे अर्थात् जीवन के प्रभात काल मे जो आँखें महबूब के दीदार करने के लिए प्रयत्न नही करती उनका न होना ही अच्छा है।

अखियूँ अलाई अल्सबाह, दोस्तु दीखण आइयूँ।
उभीन्दियूँ अरदास मे, ब्री न कन्दियूँ काइ।
रचन्दियूँ रिइ पाह, परिचन्दियूँ प्रियन सी॥

प्रभात के समय जब आँखे प्रियतम का सौन्दर्य देखने आयी तब वे दूसरा कार्य न कर प्रार्थना मे खड़ी हो जायेगी तथा बिना किसी रंग मे रग कर प्रियतम से बातें करने मे मस्त हो जायेगी। (तात्पर्य यह कि परमात्मा के अपार सौन्दर्य से प्रभावित होकर वे उसके प्रेम रग मे रंग जायेगी।)

वसनि और वहसनि, ड्रीहाड़ी ड्रिसण लइ।
ड्रिसी ड्रिसी आइयूँ, तोइ तलाशूँ कनि।
ढाप्यो न ढापनि, पसण मंझाँ प्रियन जे॥

आँखें प्रियतम को देखने के लिए नित्यप्रति आँसू बहाती रहती हैं और विहँसती रहती है। वे प्रियतम को बार-बार (प्रकृति मे) देखकर आती हैं, फिर भी उसको ढूंढती ही रहती हैं। वे दिलबर के दीदार से तृप्त ही नही होती हैं।

अखियुनि खे आऊँ, जाँ की झुलूँ पाइयाँ।
लोकु लताड़े निंड में, साजनु सोठाऊँ।
मूँ खे मारियाऊँ, पाण पर्ची आइयूँ॥

आँखो को मैं कितना भी रोकती हूँ, फिर भी वे नीद मे संसार को लाँघकर, प्रियतम को ढूंढ निकालती हैं। मुझे तो (इन आँखो ने) विरह मे मार डाला है, पर स्वय (नीद मे) मिलन सुख उठाकर प्रसन्न हो जाती हैं।

अखड़ियुनि आरो, मूँ हाँ पुछी न कयो।
उते वञी अड़ियूँ, जिते चवणु न चारो।
हिन्अड़ो वेचारो, वाटूँ झल्यो विझुले॥

मेरी इन आँखो ने मुझ से पूछ कर मुहब्बत नही की है। ये वहाँ जाकर कैद हुई हैं, जहाँ मुक्ति का कोई रास्ता ही नही है। विचारा हृदय प्रियतम की राह निहार-निहार कर चिन्तित एव जर्जर होता जाता है।

अखि उल्टी धारि, वञु उल्टो आम सी।
जे लहवारो लोकु वहे, तूँ ऊचो वहु ओभारि।
मन्झाँ नूच निहारि, पुरु पुठीरो प्रियनि ड्रे॥

(शाह साहब साधक को उपदेश देते कहते हैं) ऐ साधक, तू उल्टी नज़र ग्रहण कर तथा साधारण लोगो के प्रतिकूल चल (अर्थात् जैसे साधारण

सांसारिक जन विषय-वासनाओ मे लीन रहते है, वैसा तू मत कर। जिस तरह वे व्यवहार करते हैं उस तरह से तू मत कर।) यदि मनुष्य सांसारिक बहाव मे वह रहे है तो तू उस बहाव के प्रतिकूल तैर और दृढ दृष्टि से देख (अर्थात् मन को स्थिर कर) प्रियतम की ओर चल।

अखियूँ सेई धारि, जिनि साँ पसी प्रियनि खे।
बिए ड्राहिँ की म निहारि, घणो रीसारा सुप्री ॥

(ऐ साधक) तू वैसी आंखे ग्रहण कर, जिनसे केवल प्रियतम को ही देख सके। दूसरी ओर दृष्टि तक मत उठा, क्योंकि प्रियतम बड़े ही दयालु हैं।

देखु म तूँ सी तनि, ही जे मिजाज्रियाणियूँ मुँहँ मे।
कीन न सुञातो सुप्रियुनि, निहारे नेणनि।
प्रियनि से पसनि, ब्रई जिनियन बूटियूँ ॥

(ऐ साधक) तू अपनी इन बाहरी शारीरिक आँखो से मत देख, जो तेरे चेहरे पर हैं, क्योंकि इन बाहरी आँखो से किसी ने भी उस सत्यस्वरूप प्रियतम को नही पहचाना है। प्रियतम को वे ही देख पाते है, जिन्होने अपनी दोनो ही आँखें बन्द कर दी है।

अखियुनि मे थी वेहु, त आऊँ वारी ढकियाँ।
तोखे ड्रिसे न ड्रेहु, आऊँ न पसाँ की ब्रियो ॥

ऐ प्रियतम, तू मेरी आँखो मे आकर बैठ जा, फिर मैं उन्हे बन्द कर दूं, जिससे विश्व तुझे न देख पाये और मैं तेरे सिवा किसी और को न देख पाऊँ। प्रस्तुत दोहा कबीरदास जी के निम्नलिखित दोहे से साम्य रखता है।

नैना अन्दर आव रे, नैन ढांप तोहि लेहुँ,
ना मैं देखूं और को, ना तोहि देखन देऊँ।

मुए हाथीअ ते मामिरो, अची कयो अन्धनि।
मनाड़ियनि हथनि सी, अखिए कीन-पसनि।
'फ़ी अलहकीकत' फील खे, सञ्रा सुञाणनि।
सन्दी सरदारनि, बसीरत बीना करे ॥

मृतक हाथी पर अन्धो ने झगडा किया। वे हाथी को हाथ से छू रहे थे पर आँखो से देख नही पा रहे थे (उसी तरह अज्ञानी जीव भी अन्धो की तरह परमात्मा के सम्बन्ध मे व्यर्थ का वाद-विवाद करते हैं।)

वास्तव में हाथी को आँखो वाले (ज्ञानी) ही पहचान सकते है। आत्मज्ञान की दृष्टि ही हमे (सत्य को) देखने मे योग्य बनाती है। (तात्पर्य यह कि सत्य को अज्ञानी जीव उसी तरह से नही पहचान पाते हैं, जिस तरह से अन्धे, हाथी को नही पहचान पाते हैं और अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उसका गलत वर्णन करते जाते है।

मुँहँ मन्झि ख़लीलु, अन्दरु आज़रु आहिईं।
सध म करि सिहत जी, अञा तू अलीलु।
नालो नाहि निफाक जो, जिते रबु जलीलु।
मुँहँ में मुस्लमान तूँ, क़लबु ताँ क़लीलु।
वालीअ जे विसाल मे, दूई नाहि दलीलु।
अला, अब्दुल्लातीफ़ु चए, सचो रखाइजु सीलु॥

(ऐ साधक) बाहर से तो तू इब्राहीम ख़लील (परमात्मा का मित्र) दिखाई देता है, पर भीतर से तू मूर्ति-पूजक (सकीर्ण) है। अतः तू सच्चे स्वास्थ्य (सत्य को समझने) की इच्छा मत कर, क्योंकि अब तक तू बीमार (अज्ञानी) हो। जहाँ नूरानी प्रियतम है वहाँ बीमारी (अज्ञान) का नामोनिशान तक नही रहता। चेहरे से तो तू मुसलमान (ज्ञानी) दिखाई देता है पर तेरा हृदय बड़ा ही संकुचित है। प्रियतम से मिलने के पथ पर द्वैत कभी सहायक नही होता (दूसरे शब्दों मे कह सकते हैं कि यदि मिलन का आनन्द उठाना चाहते हो तो द्वैत को अपना पथ-प्रदर्शक मत बनाओ।) अन्त मे शाह लतीफ परमात्मा से निवेदन करते कहते है "ऐ अल्लाह, तू मुझसे सच्चा चरित्र ग्रहण करना।"

ड्रिसणु ड्रिसी जे, त हमह खे हकु चई।
शारिक, शकु म ने, अन्धा इग्हीअ ग्राल्हि में॥

ऐ मज़हबी अन्धे, यदि तुझे सच्ची दृष्टि (ज्ञान) प्राप्त होती, तो तू हरेक को सत्य (परमात्मा) ही कहता, तू इस बात मे ज़रा भी सन्देह मत ला।

इन परि न ईमानु, जिअं कल्मे गो कोठाईं।
दग़ा तुहिंजे दिलि में, शिरक ऐं शैतानु।
मुँहँ मे मुसलमानु, अन्दरि आज़रु आहिईं॥

ऐ मुसलमान, केवल अपने को नमाजी कहलाने मे ही मुसलमानीयत नही है। तेरे दिल मे तो कपट, सन्देह और शैतान का वास है। सूरत से तो तू मुसलमान दिखाई देता है, पर भीतर से तू मूर्तिपूजक तथा मन के विकारों का पूजक है।

मुँहँ त आहेरियाँई उजिरो, कल्ब मे कारो।
ब्रहराँ जेंबु ज़िबान सी, दिलि मे हचारो।
इन परि वेचारो, वेझो नाहि विसाल सी॥

तेरा चेहरा तो शीशे से भी ज्यादा साफ है, पर हृदय से तू काला है। ज़बान से तो तू मीठी बातें करता है, पर हृदय से हीन एव निष्ठुर है। ऐसा व्यवहार करनेवाला इन्सान परमात्मा से कदापि नही मिल पाता।

तू का कानी पाइ, वनिनि मे विसाल जी।
दू बीनाई दूर करे, मैरिफत मल्हाइ।
सुप्रियाँ जे सूम्हिँ मे, रुख्नो कोन रिहाइ।
अखि अशहद चाइ, त मुसलमानी माणिइँ॥

(ऐ साधक !) आँखो मे तू परमात्मा-मिलन का सुर्मा लगा, द्वैत को नष्ट कर सच्चे ज्ञान-पद का आनन्द उठा। परमात्मा के सौन्दर्य की गवाही देनेवाली आँख उठा ताकि सही अर्थों मे मुसलमानी का आनन्द उठा सके।

सुर्मो स्याहीअ जो, रननि खे रिहाइ।
कानी काराईअ जी, मुड़िसु थी म पाइ।
अखियुनि मे अटिकाइ, लालाई लालन जी॥

काला सुर्मा तो रगीली औरतो को ही शोभा देता है। तू मर्द बनकर, काला सुर्मा आँखो मे मत धारण कर, बल्कि अपनी आँखो मे प्रियतम की लाली लगा अर्थात् सच्चे प्रेम मे रग कर लाल हो जा।

सुर्मो सुर्खीअ जो, जडहिं पातो जिनि।
तडहिं डि्ठी तिनि, रौनक रेटे जहिडी॥

जिन्होंने (प्रेम का) लाल सुर्मा आँखो मे डाला, उन्होने हर जगह लालिमा की रौनक देखी।

मूँ ताँ लिकाई घणो, रूअण की रोशनु।
रसियो रेजालनि खे, मन्झाँ ज़र्दीअ ज़नु।
वेरी मू वरनु, ग़ाल्हि कयाइँ गुझ जी॥

(सच्चा प्रेमी कहता है) मैंने इश्क की बात बहुत छिपाई, पर मेरे रुदन ने उसे प्रकट कर दिया। मेरे चेहरे के पीलेपन से दुष्टो को सदेह हुआ। मेरा पीलापन मेरा वैरी हुआ, जिसने मेरे (प्रेम के) रहस्य को प्रकट कर दिया।

'पाणु' पर्दो पाण खे, सुणी करि सम्भाल।
विचाँ जो विसाल, सो ताँ हुअणु हिन जो॥

(ऐ साधक) अह की भावना ही तेरे आगे रुकावट है। यह बात सुनकर सावधान हो जा। परमात्मा से मिलन मे जो बाधा है, वह इसी अहं भावना के कारण है।

गन्दीअ नींहु न सपजे, तुह न पचे माहु।
कचीअ परि किआउ, थिए समा जोॾु सज्ञणें॥

जिस तरह इश्क खलिहान मे रखने की चीज नही है, मांस अन्न के छिलकों पर पकाना सम्भव नही, उसी तरह कच्चे स्नेह से मिलन सम्भव नही है।

मूँ खे मूँ प्रियनि, ॿधी विधो ॿारि में।
उभा ईअं चवनि, मछुणि पान्दु पुसाइईं॥

मेरे प्रियतम ने मुझे बाँधकर गहरे पानी में डाल दिया और स्वयं खड़े होकर कह रहे हैं "सावधान, अपना आँचल गीला मत करना।" तात्पर्य यह कि परमात्मा स्वय इन्सान को सांसारिक विषय-वासना-रूपी समुद्र मे भेज देता है, पर साथ ही साथ उसे इन विषय-वासनाओ मे डूबे रहने से सावधान भी करता है।

पियो जो पातारि, सो किअं पुसण खाँ पाल्हो रहे?।
सातिक, मू सेखारि, को पहु इन्हीअ पान्द जो॥

जो गहरे पानी मे पड़ा है, वह भला कैसे गीले होने से बच सकता है (अर्थात् जो सासारिक समुद्र मे पड़ा है, वह कैसे विषय-वासनाओ से अपने को बचा सकता है?) ऐ पूर्ण सद्गुरु! मुझे इस (मानव शरीर रूपी) आँचल को गीले होने से बचाने की कोई युक्ति सिखाइए।

करि तरीकत तकियो, शरीअत सुञाणु।
हिओं हकीकत हेरि तूँ, मागु मैरिफ़त ज्ञाणु।
होइ साबूतीअ साणु, त पुसणाँ पाल्हो रहीं॥

(पूर्ण सद्गुरु जिज्ञासु शिष्य से कहता है) तू तरीकत की राह को अपना अवलम्बन बना, शरीअत (धार्मिक कर्तव्य) पहचान, अपने हृदय को हक़ (सत्य) से परिचित करा और मारफत की मंज़िल की जानकारी रख। अपने पैरो पर दृढ रह, मन को स्थिर बना, तो गीले होने से (मानव-जीवन नष्ट करने से) मुक्त रह सकेगा।

नोट सूफी मत के अनुसार परमात्मा से मिलने की चार मजिलें हैं। तरीक़त, शरीअत, हक़ीकत, मारफ़त जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है।

सुतोई सेज घुरी, जफ़ा ड्रिए न जानि।
सुलह रिड़ सेणाँ, मताँ नून्धीनि न चढ़ही॥

(ऐ साधक !) तू अपने शरीर को ज़रा सा भी कष्ट न देकर सोते-सोते (आराम से) ही शय्या-सुख (मिलन-सुख) की इच्छा कर रहा है। पर सद्गुरु को राज़ी करने के बिना तू आध्यात्मिक दुल्हा न बन पाएगा अर्थात् तू प्रेमियो की गिनती मे नही आएगा।

तनु तसबीह, मनु मणियो, दिलि दम्बूरो जनि।
तन्दू जे तलब जूँ, वहदत सिरि वज़नि।
"वहदह ला शरीक लहु" इहो राग़ु रगुनि।
से सुताई जाग़नि, निन्ड इबादत उन जी॥

(शाह साहब कहते है) जिनका शरीर माला है, मन माला का मणिका है, तथा हृदय तम्बूरा है, जिसकी तारें परमात्मा के एकत्व के रहस्य से बज रही है, और जिनकी रग-रग यही गीत आलाप रही है—"वह (परमात्मा) एक है और उस जैसा दूसरा कोई नही है" वे लोग चाहे सोये हुए हैं, फिर भी जाग्रत हैं और उनकी नीद भी मानो बन्दगी है।

"स्वर रामकली"

इस स्वर मे शाह साहब ने योग एव वैराग सम्बन्धी विचारो का वर्णन किया है। माना जाता है कि शाह साहब ने तीन वर्ष हिन्दू-योगियो की सगत मे बिताए और उनके साथ पर्यटन करते रहे। अत इस स्वर मे उन्होंने उन्ही योगियो की प्रशसा की है तथा उनके गुणो एव आध्यात्मिक सौन्दर्य का बखान किया है। शाह साहब उन योगियो पर मुग्ध थे और उनके सिवा उन्होंने अपना जिन्दा रहना कठिन बताया है।

शाह साहब ने इन योगियो को अनेक नामो से सम्बोधित किया है, जैसे वैरागी, आशिक फकीर नांगा, संन्यासी, सामी (स्वामी का बिगड़ा हुआ रूप), कनचीर (कटे हुए कानो वाले), लँगोटिया (लँगोट धारण करने वाले), पूरबी (पूरब अर्थात् आध्यात्मिकता की ओर जानेवाले), गूंगा (मौन), बहरा, भभूतिया (भभूत या धूल मलनेवाले) आदि। उनका कहना है कि बाहर से ये योगी भद्दे और कुरूप दिखाई देते हैं, किन्तु भीतर से वे पूर्ण-प्रकाशित हैं। उनके पास लँगोट, कम्बल तथा कमण्डल के सिवा और कुछ नही है। वे सदैव वीरान मरुभूमि मे गूंगे और बहरे बनकर घूमते रहते हैं और सासारिक लोगो के द्वार से सदैव दूर रहते हैं। उनके हृदय आध्यात्मिक रहस्यो के खजाने से परिपूर्ण हैं तथा आँखे नित्य प्रियतम

के विरह मे आँसू बहाती रहती हैं। उनका मन राम से जुड़ा रहता है, दृष्टि परमात्मा पर टंगी रहती है। वे अंश को कुल मे विलीन कर देते हैं अर्थात् अपना अस्तित्व खोकर परमात्मा मे लीन हो जाते हैं। वे निर्लिप्त तथा निरपेक्ष रहते हैं एव सुख-दुःख, मान-अपमान, पाप-पुण्य, उन्नति-अवनति, अपने-पराये तथा भले-बुरे को समान दृष्टि से देखते हैं। विश्व मानो उनके लिए इबादतगाह (प्रार्थना-स्थल) है, जहाँ हरेक वस्तु मे उन्हे अपने प्रियतम के ही दर्शन होते हैं।

नूरी अें नारी, जोॻियड़ा जहान में।
ॿरी जिनि ॿारी, आऊँ न जिअदी उन रे॥

ससार मे जमाली (नूरानी) तथा जलाली (अग्नि की सी गरिमा वाले) योगी है, जिनके दरबार मे स्नेह-ज्योति चमकती रहती है। (शाह साहब कहते हैं) ऐसे योगियो के सिवा मैं न जी सकूंगा।

जोॻियड़ा जहान मे, हुआ मन्झि हमाम।
आरामाँ अरधु थिया, ओद्रा न आराम।
कयाऊँ क़याम, आऊँ न जिअदी उन रे॥

विश्व मे सच्चे योगी सदैव (प्रेम की) आग मे जल कर, अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वे आराम से दूर हैं और कभी भी विश्राम नही करते। वे मुझ पर कहर (जुल्म) कर गए। अब मैं उनके सिवा न जी सकूंगा।

सतुरु सिङड़ीन सी, लहज़े लाथाऊँ।
कीनर कुठी आहियाँ, उन्हनि जी आऊँ।
मूँ खे मारियाऊँ, आऊँ न जिअंदी उन रे॥

उन्होने (योगियो ने) एक पल मे मेरे भीतर के (अविद्या रूपी) पर्दे को अपनी मुरली की तान से हटाकर दूर कर दिया। मैं उनके वाद्ययन्त्रो की मारी हुई हूं। उन्होने मुझे मारकर नष्ट कर दिया; अब उनके सिवा मैं न जीऊँगी।

मेड़ियो भाणु भरियूँ कयो, जोॻी जलाईनि।
सामी सिङडियुनि सी, खुदीअ खे खाईनि।
हू जे तारि तॻाईनि, आऊँ न जिअदी उन रे॥

योगी समस्त खुदी इकट्ठी कर, उसे जलाकर भस्म कर देते हैं। वे अपनी मुरली की आवाज से अपने अहं को खत्म कर देते हैं। वे बीच मझधार से पार लगाते हैं, उनके सिवा मैं न जीऊँगा।

सदाईं सफ़र में, रमनि मथे राह।
पुरनि पूरब पन्ध ड्रे, मञ्झि मवाली माह।
जिनि अलख सी आगाह, हलो तकिया पसूं तिनि जा।।

शाह साहब योगियो की विशेषता बताते कहते हैं) सच्चे योगी सदैव ही पर्यटन करते रहते हैं और अपने ही मार्ग पर चलते रहते है, वे मस्ताने वैरागी देश-देशान्तर घूमते हुए पूरब देश (आध्यात्मिकता) की ओर ही चलते रहते हैं। जिन्हे परमात्मा की पहचान है; (शाह साहब कहते हैं) चलो तो चलकर उनके स्थान देखें।

सामी खामी प्रियनि लइ, कुसी थिया क़बाबु।
जहिड़ो ड्रिसनि ड्रोह खे, तहिड़ो तिनि सवाबु।
ओतीनि अरिती गाडुओं, मञ्झाँ अखियुनि आबु।
सन्दो ज़ाति जवाबु, तूं कीअं पुछी तिनि खे ?।।

योगी अपने प्रियतम के लिए (प्रेमाग्नि मे) जलकर कबाब हो जाते हैं। वे पाप और पुण्य को समान दृष्टि से देखते हैं। वे अपनी आंखो से आंसू बहाते रहते हैं। भला ऐसे योगियो से तू उनकी जाति-पाँति के विषय मे कैसे पूछ-ताछ कर रहा है ?

जे भाईं जोगी थियाँ, त सङ सभेई छिनु।
वञी दरि दोस्तनि जे, नाँगा ! कीम निनु।
पटि तनी जी पिनु, जिनि बुझी न बुझियो।।

(ऐ मानव !) यदि योगी बनना चाहते हो, तो सभी तरह के रिश्ते-नाते तोड़ दो। ऐ नागा ! तू मित्र के द्वार पर जाकर रुदन मत कर, बल्कि संन्यासियो के उस समूह से आत्मिक खजाने की याचना कर, जिन्होने वास्तव मे तो (परमात्मा-सम्बन्धी) रहस्य जान लिया है, पर दिखावा ऐसा देते हैं मानो वे कुछ नही जानते।

जे भाईं जोगी थियाँ, त सङ सभेई टोड़ि।
जे ज्ञावा न ज्ञापन्दा, जी तनी से जोड़ि।
त तू पहुँची तोड़ि, मुहबत जे मैदान में।।

यदि योगी बनना चाहते हो तो समस्त नाते तोड़ दो। जो न पैदा हुए हैं न पैदा होगे (अर्थात् जो जन्ममरण से मुक्त है) उनसे स्नेह कर तो तू प्रेम के मैदान मे अन्तिम मंज़िल तक पहुँच पाएगा।

जे भाई जोग़ी थियाँ, त मन पूरे, मन्झि मारि।
दाइम दून्ही दिलि में, मन सी माल्हा वारि।
सहु सभका आरि, आगे जी अदब सीं॥

यदि योगी बनना चाहते हो तो भीतर ही भीतर मन को वश मे कर उसे अपने अधीन बना लो। अपने हृदय मे ही सदैव धूनी रमा तथा मन से माला का जाप कर। परमात्मा की हर इच्छा को ससम्मान स्वीकार कर।

जे भाई जोग़ी थियाँ, त कीन प्यालो पीउ।
नाहि निहारे हथि करे, "आऊँ" से उति न वीउ।
त सन्दो वहदत वीउ, तालिब तोड़ाँ माणिईं॥

यदि तेरी योगी बनने की इच्छा है तो नेस्ती (अस्तित्वहीनता) के प्याले का पान कर। अपने अहं पर विजय प्राप्त कर तथा आपे या खुदी से मत खड़ा रह। ऐ जिज्ञासु! (यह सब कुछ करने के बाद ही) तू एकत्व-उद्यान का आनन्द लूट सकेगा अर्थात् परमात्मा से एक होकर परमानन्द प्राप्त कर पाएगा।

जोग़ियुनि जोग़ु जुग़ाइ, जोग़ु पिणु सून्हे जोगियनि।
जोगियुनि सन्दी जानि में, ग़ुझु ग़ुझान्दरु आहि।
हाइ! मून्ही खे वाइ, जा आऊँ जोग़ु न सिखी॥

[प्रस्तुत पद्यांश मे शाह साहब बताना चाहते हैं कि योग साधना कठिन है, अत: यह साधना योगियो द्वारा ही की जा सकती है।]

योगियो को ही योग-साधना करना योग्य है और योगियो को ही योग शोभा देता है, क्योंकि उनके हृदय मे गहन रहस्य समाये हुए हैं। (शाह साहब खेद प्रकट करते कहते हैं) हाय! मुझे अपनी हालत पर खेद है क्योकि मैं योग करना न सीख पाया।

जोग़ न जोग़ो तूँ, करी पचारूँ जोग़ जूँ।
हिकिड़ो पन्धु प्रियुनि जो, ब्री तुहिंजी भूँ।
सामी सेणनि डूँ, रुअन्दा ई रतु विया॥

(ऐ मानव!) तू बातें तो योग की कर रहा है पर वास्तव मे तू योग-साधना करने के योग्य नहीं है क्योंकि परमात्मा को पाने का रास्ता एक है और तू दूसरी ओर से ही जा रहा है। (अर्थात् वास्तविक रास्ते को न

अपना कर, दूसरा ही रास्ता अपना रहा है।) सच्चे वैरागी तो प्रियतम की ओर खून के आँसू बहाकर गये।

जाँ की जोग्री थी, ना त निर्ज्ञा ! वञ्ञूँ निकिरी।
कोहु थो कन कपाईं, जॉ न सही सीउ ?।
भजु, पराहूँ थी, मताँ ब्रिया लज्ञाईं॥

ऐ निर्लज्ज ! या तो सही अर्थो मे योगी बन या तो इस रास्ते को ही त्याग दे। तू अपने कानो मे छेद क्यो करवा रहा है, जब तुझ मे ठण्डी (योग की कठिनाइयां) सहने की क्षमता नही है ? तू यहाँ से भाग कर, दूर चला जा, क्योकि कही ऐसा न हो कि तू (अपनी करतूतो से) दूसरे सच्चे योगियो को बदनाम करे।

गोला जे ग्राह जा, जूठा से जोगी।
फिटल से फोग्री, जिनि शिकम साँढिया॥

जो योगी भोजन के गुलाम हैं, वे झूठे है। जिन्होने पेट पूजा ही की, वे सारहीन एव तुच्छ है।

निसूरोईं नीहं जो, दिलि मे दूद दुखाइ।
आणे आग्रि इश्क़ जी, ब्रारे जानि जलाइ।
ज़िन्दा ईएं जुग्राइ, जिअ आन्शाँ आबु थिए॥

शाह साहब उपदेश देते कहते हैं कि यदि योगी बनना चाहते हो तो अपने हृदय मे स्नेह की धूनी तथा प्रेम की आग जलाकर, उसमे अपने शरीर को जला। ऐ जीवित इन्सान, तुझे इस तरह का व्यवहार करना चाहिए कि जिससे आग बदल कर पानी हो जाए।

मूना तूरसीना, सन्दा सन्यासियुनि।
पूरब खंयो न पाण सी, बूदु बेराग्रियुनि।
रिदा आहे राज जी, ओछणु आदेसियुनि।
कुरबु कापड़ियुनि, नहँ चोटीअ सीअ ढकियो॥

योगियो के घुटने 'तूर सीना' पर्वत की तरह हैं। (तूरसीना पर्वत वह पर्वत है जहाँ पर हजरत मूसा ने खुदाई-नूर देखा था और खुदा से बातें की थी। योगी भी अपना सिर अपने घुटनो के बीच मे रखकर ईश्वरीय ज्योति देखते रहते हैं।) इन वैरागियो ने पूरब देश (आध्यात्मिक मजिल) की ओर जाते हुए अपने साथ अह की भावना नही रखी है। इन फकीरो ने आध्यात्मिक रहस्यमयी चद्दर ओढ़ ली

है। इन कनफटे फकीरो ने अपने को नख से चोटी तक सच्चे प्रेम से ढाँक लिया है।

मुँहुँ महराबु प्रियुनि जो, जामअ सभ जहानु।
फ़रहीअ ताँ फुरकान जे, काटियाऊँ कुरानु।
उड़ामी उति वियो, अकुलु ऐ अर्फानु।
सभोई सुबुहानु, काड़े वञी नियरतियाँ॥

योगियो के लिए प्रियतम का मुखड़ा ही मेहराब (वह जगह जहाँ नमाज के समय इमाम खड़ा रहता है) और पूर्ण विश्व ही महान मस्जिद है। इन पूर्ण पुरुषो ने सत्य और झूठ के बीच अन्तर दिखाने वाले विवेक-पट से पवित्र पुस्तक (कुरानशरीफ) के दौर को मिटा दिया है (क्योकि कुरानशरीफ खुदा को पाने का मात्र साधन है, साध्य नही। ये योगी साध्य को प्राप्त कर चुके है अत. इन्हे अब साधन की आवश्यकता नही है।) वे बुद्धि एव ज्ञान के पख लगाकर वहाँ (आध्यात्मिकता की ओर) उड़ गये हैं। (वे सोचते हैं कि) जब सारी सृष्टि ही परमात्मा का दीदार है तो फिर कहाँ जाकर नमाज मे सिर झुकाएँ।

मन्झि मुहबत मचु, ब्रहर धूधा धूड़ि सी।
छड़ियाऊँ चुर लही, कूड़, कुलखणु कचु।
अवग्रुण ओड़ा न थिया, ग्रुणु कयाऊँ ग्रचु।
जिअ सडनु तीअं सचु, जिअं सड़नु तीअं सनरा॥

योगियो के भीतर प्रेमाग्नि जलती रहती है और बाहर से धूल से सने हुए रहते हैं। उन्होने एकान्त स्थान प्राप्त कर झूठ, कपट तथा कुलक्षणों को त्याग दिया है। वे दोषो के समीप नही जाते और उन्होने असख्य गुण प्राप्त कर लिये हैं। (जैसे-जैसे वे प्रेमाग्नि मे) जल रहे हैं, वैसे-वैसे वे (स्वर्ण की भाँति) सत्य (शुद्ध) हो रहे हैं। जैसे-जैसे वे कष्ट सहन कर रहे हैं, वैसे-वैसे वे प्रफुल्लित दिखाई देते हैं।

केही काम कापड़ी, था अहिड़ी रवशि रवनि।
नका दिलि दोजख़ ड्रे, नकी बिहिश्तु घुरनि।
नको कमु कुफ़ार सीं, नका मुसलमानी मनि।
उभा ईअं चवनि, त प्री कजो पाहिंजो॥

(शाह साहब योगियो के व्यवहार पर आश्चर्य प्रकट करते कहते हैं) किस कारण ये सन्यासी इस तरह का व्यवहार कर रहे हैं? उनके हृदय में

न तो कभी नरक के विचार आते है और न कभी वे स्वर्ग की ही इच्छा करते है; न तो उनका वास्ता कुफ्र से है और न उनका मन इस्लाम की ओर झुका हुआ है। वे खड़े होकर यही कह रहे हैं "अपने प्रियतम को रिझाकर अपना कर लो"। (तात्पर्य यह कि वे किसी धर्म और मज़हब के न रहकर अलख के ही पुजारी हैं।)

ना उमेदी आजिको, ओछणु आदेसियुनि।
कद्हिं ताज़ीअ पुठि ते, कद्हिं हेठि हलनि।
सामियड़ा समूंड मे, तुम्बे जिअ तरनि।
जे वाग़ूअ वाति वञनि, त कुसनि, कुछनि कीन की॥

निराशा (समस्त इच्छाओ का त्याग) ही योगियो का ओढना है। वे कभी ताज़ी (ऊँचे नस्ल वाले) घोड़े पर सवार हैं तो कभी ज़मीन पर चल रहे है (अर्थात् सुख, दुख, उन्नति-अवनति उनके लिए समान है।) इस ससार रूपी समुद्र मे ये सच्चे फकीर तुम्बे की तरह तैर जाते हैं (अर्थात् इन्हे ससार रूपी सागर मे डूबने का कोई डर नही है।) यदि वे मगर के मुँह मे भी चले जाते हैं, (अर्थात् महान विपदा मे पड जाते हैं) फिर भी वे मुख से उफ् तक नही करते हैं।

लाल के लालु थिया, लालु लन्घियो जिनि।
अदम जे ओड़ाह ते, कया आसण आधोतियुनि।
गर्दान्यो गुन्गनि, ग्रदाब खे ज्ञान सी॥

बिरल हीरे जैसे सच्चे फकीर ही आध्यात्मिक रग मे रगकर आभायुक्त हो जाते हैं, और जिनके सामने से अमूल्य प्रियतम गुज़र जाते हैं (अर्थात् जिन्हे अलख का दर्शन होता है) उन अवधूतो ने नेस्ती (अस्तित्वहीनता) मे अपने निवास-स्थान बनाए हैं (तात्पर्य यह कि खुदी और अहं को मिटा कर नष्ट कर दिया है)। उन एकान्त-वासियो ने मन-रूपी भँवर को ज्ञान द्वारा मथ डाला है।

रूह में रहेनु रामु, बहरि ब्रोलीनि की ब्रियो।
प्यालो पुरु करे, जोप पीताऊँ जामु।
तिहाँ पोइ तमामु; तिनि तकिया ताके छद्रिया॥

योगियो की रूह मे तो राम का ही वास है, पर बाहर से वे कुछ और ही कहते रहते है। उन्होने प्रेम का प्याला लबालब भर कर, उसमे से खूब पी लिया है, उसके पश्चात् उन्होने अपने समस्त अवलम्बन त्याग दिए अर्थात् समस्त सांसारिक साधन और सहारे त्याग दिए हैं।

वेठे जन्ही वरिह थिया, मथे सें भेरे।
अखियूँ जहिं जूँ अलख डे, भुवन डेन भेरे।
काराणियाँ कका थिया, ग्राटिया ग्रेरे।
लुड़िक लाल, लतीफ चए, कम्बे ऐ केरे।
नोहुं न निबेरे, सूर चरन्दे सनरो॥

जिन्हे धूल भरे सिर से बैठकर वर्ष गुजर गए, जिनके नेत्र परमात्मा की ओर ही लगे रहते है और पृथ्वी की ओर नही मुड़ते हैं, जिनके काले बाल आग मे झुलसने के कारण कत्थई रंग के हो गए हैं, लतीफ साहब कहते हैं कि वे सच्चे आशिक अलख से डरते हैं और (उसके विरह मे) आंसू बहाते रहते हैं, पर अपना स्नेह नही तोड़ते और दु:खो मे जीवन बिताते हुए भी प्रसन्न दिखाई देते हैं।

पिननि कीनि पटु खणी, घुरनि कीनि घरॉं।
महेसी मखलूक़ जे, उभ्यनि दूरि दराँ।
पुछनि कोहु शरआँ, जु अन्दरि अदालत उनजी ?॥

सच्चे योगी भिक्षापात्र लेकर मनुष्य से भीख नही मांगते बल्कि वे महेश के पुजारी लोगो के द्वार से दूर खडे रहते हैं। वे मजहबी अथवा धार्मिक कानून-कायदे क्यो पूछे जब उनके भीतर ही (विवेक-रूपी) न्यायालय है ?

आदेसियुनि अदबु, आहे अखडियुनि मे।
तिनि जो हसबु-नसबु नाहि की, न अमा न अबु।
सामियुनि खे सभीनि परी, रूह मे रहियो रबु।
रिइ लॉंगोटीअ लबु, पाछो कनि न पाण सी॥

सच्चे योगियो की आँखो मे सयम है। (अर्थात् उनके नेत्रो मे सासारिक वस्तुओ के प्रति उपेक्षा तथा परमात्मा की आज्ञापालन के लक्षण दिखाई देते है)। उनका न कोई वश है, न माता है और न पिता है, बल्कि हर अवस्था मे उनके हृदय मे परमात्मा का निवास है। वे सिवा लँगोट के अपने साथ कुछ भी नही लेते हैं।

पूजा कारि म पाण खे, जोग़ी रखुजि जोग़ु।
खल्क खादिम जिअं करी, ऐ रावल ! वडो रोग़ु।
भग़नि कोन्हे भोग़ु, नाँगा वञनि निड़िया॥

ऐ योगी, तू अपनी पूजा मत करा, बल्कि अपने योग पर दृढ़ रह। ऐ बांवरे, तू लोगो को अपना सेवक बनाता है, वह तेरे लिए महान व्याधि है। दुनिया को त्यागनेवालो के लिए सासारिक ऐशोआराम नही होते। नगे फकीर (सच्चे वैरागी) तो माया के इस फन्दे से अपने को मुक्त कर आगे निकल जाते हैं।

बुख विधाऊँ बुगिरियनि, जोगी कन्दा, जञ।
तलब न रखनि तआम जी, ओतियो पियनि उञ।
लाहूतीनि लतीफ चए, मनु मारे कयो मुञ।
सामी झागे सुञ, वसउनि खे वेझा थिया॥

सच्चे योगी अपनी झोली मे भूख डाल, आनन्द मनाते हुए चलते रहते हैं (अर्थात् खान-पान की चिन्ता न कर खुशी-खुशी से चलते रहते हैं।) वे पकवानो की इच्छा तक नही करते और प्यास को पी जाते हैं। वे अपना मन मार कर अपने वश मे कर लेते है। तथा इस (ससार-रूपी) सुनसान भूमि को पार कर (परमात्मा की) बस्ती मे जा पहुँचते है।

वेठो पुछी परु, करि का हिन्आर हलण जी।
अजु आदेसी! मरु, सुबाह मरन्दो सभु को॥

(ऐ योगी) तू अब तक अतीत की चर्चा कर रहा है, अरे! अब तो (परमात्मा की ओर) चलने की बात कर। ऐ फकीर, आज ही अपने (मन) को मार क्योकि कल (अर्थात् कभी न कभी) तो हरेक को मरना होगा (तात्पर्य यह कि शारीरिक मौत से पहले ही अपने को मार दे, क्योकि दूसरो की तरह किसी न किसी दिन उसका शरीर मृत्यु को प्राप्त होगा)।

मरणु मुसल्लमु जिनि, वाहदु तिनि न विसरे।
मथे सथड़ कापड़ी, का नांगा निड न कनु।
नेण सदाईं तिनि, ओजागनि उजारिया॥

जो मरना स्वीकार करते हैं, वे परमात्मा को नही भूलते। वे सच्चे त्यागी आध्यात्मिक रास्ते पर चलते, नीद तक नही लेते हैं। उनकी आंखें (ज्ञान की) जागृति के कारण चमकती रहती हैं।

ड्रोरि म ड्रिआं धार, ड्रोरणु घणो ड्राखिडो।
कोडे लख हजार, इन उन्दाहीअ अन्धा कया॥

(सद्गुरु रूपी) दीपक के सिवा परमात्मा की तलाश करना, बड़ा कठिन काम है, क्योंकि (सासारिक अज्ञान रूपी) अन्धकार ने लाखो करोड़ों का अन्धा बना दिया है।

गुल गुल पसी गोदड़िया, घणा म भाईज।
सोई सुञाणीज, ही हू आहे हेकिड़ो ॥

ऐ योगी ! अनेक प्रकार के रूप रग वाले फूलो को देख, उन्हे अनेक मत समझ, बल्कि सब मे उसी एक को ही पहचान; क्योकि इसमे या उसमे अर्थात् सभी मे उस एक ही परमात्मा का रूप है। तात्पर्य यह कि वाह्य विभेद होते हुए भी आन्तरिक रूप से सभी एक हैं, सबमे उस एक परमात्मा की ही सत्ता है।

पट छद्रियाऊँ पट मे, ड्रन्ड छद्रियाऊँ ड्रिसु।
आलाइशाँ अञो थिया, मोटी थियनु न मिसु।
ही छद्रियाऊँ हिसु, वञी काल्ह कुलु थिया ॥

(शाह साहब सच्चे योगियो की प्रशसा करते कहते हैं) देखो, इन योगियो ने अपने भिक्षापात्र जमीन पर फेंक दिए हैं तथा अपने आसन एव साधना के अन्य साधन त्याग दिए हैं। वे झूठ तथा कलुषता से दूर हो (स्वर्ण बन) गए हैं और कभी भी ताम्बा नही बनते (ताम्बे से तात्पर्य है अज्ञानी इन्सान से और स्वर्ण से तात्पर्य है ज्ञानी व योगी से जिस तरह ताम्बे पर (जग) चढ जाता है पर स्वर्ण पर नही चढ़ता, उसी तरह अज्ञानी जीव पर तो माया का प्रभाव पड़ता है किन्तु सच्चे योगियो पर स्वर्ण की तरह माया का प्रभाव नही पडता है।) इन योगियो ने सासारिक विषय वासनाएँ त्याग दी हैं, अत पूर्ण परमात्मा से मिलकर पूर्ण बन गए है। (माना जाता है कि परमात्मा पूर्ण है, कुल है और जीवात्मा उसका अश; किन्तु जो अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेते हैं, वे परमात्मा से मिलकर पूर्ण बन जाते हैं।)

सचल सरमस्त

सिन्ध के प्रसिद्ध कवि सचल साहब का कलाम (काव्य) मस्ती तथा सूफियाने रंग मे रँगा हुआ है। सचल जी का वास्तविक नाम अब्दाल-वाहब था, पर उन्हे "सचेदिनो" (सत्य का दिया हुआ) भी कहा जाता था। उनका उपनाम 'सच्चू' और 'सचल' था। विद्वानो के अनुसार सचल का जन्म सन् १७३९ मे खैरपुर प्रान्त के दराज़न नामक गाँव मे हुआ था; तथा उनकी मृत्यु सन् १८२९ (लगभग ९० वर्ष की आयु) मे हुई। सचल साहब के पिता का नाम मियाँ सलाहुअल्दीन तथा दादा का नाम अब्दालवाहब था, पर उन्हे 'साहबदिनो के नाम से भी पुकारा जाता था। मुसलमानो मे यह प्रथा थी कि प्राय दादे का नाम ही पोते पर रखा जाता था, इसी प्रथा के अनुसार सचल का नाम भी अब्दालवाहब रखा गया। सचल के दादा मियाँ साहबदिनो (परमात्मा का दिया हुआ) एक योग्य विद्वान थे, इन्हे लोग महम्मद हाफिज़ कहकर पुकारते थे। मियाँ साहबदिनो के दो पुत्र थे सलाहुअल्दीन तथा अब्दालहक। सचल के पिता सलाहुअल्दीन ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण पिता की गद्दी के हकदार थे। पर अब्दालहक फकीरी की ओर ज्यादा आकर्षित थे अतएव योग्यता के अनुसार पिता के बाद फ़कीरी की गद्दी पर उन्हे बिठाया गया तथा उनकी मृत्यु के बाद सचल साहब को उनकी गद्दी पर बिठाया गया।

सचल साहब के पूर्वज फारुकी जाति के थे। यह जाति हज़रत उमर के खानदान मे से थी। माना जाता है कि हज़रत उमर, पैगम्बर साहब के चार मित्रो मे से एक थे। इन्हे फारुकी इसी कारण कहा जाता था क्योकि वे अच्छे-बुरे तथा सत्य-असत्य के फर्क (अन्तर) को जानते थे और बड़े ही न्यायप्रिय थे।

कहा जाता है कि सचल साहब के पूर्वजो ने अमीरी छोड़कर फकीरी कबूल की थी और वे जगल के कन्दमूल फल पर ही जीवन बिताते थे। सचल जी मे जो फकीरी का अग दिखाई देता था, वह मानो उन्हे विरासत मे ही मिला था। उनका जीवन अत्यन्त ही सादगी से भरा था। वे किसी तरह के नशे का सेवन नही करते थे, पर उनकी आँखे प्रेम के रग मे सदैव रँगी रहती थी। सचल साहब की वेश-भूषा भी अत्यन्त ही सादी थी। वे सिर पर टोपी तथा शरीर पर घुटनो तक कुर्ता पहनते थे। कवि वली के शब्दो मे कहा जा सकता है।

"हमन को खुश्क टोपी बस, कमर को यक लँगोटी बस,
सिरे पर एक टोपी बस, हमन को लज्जतां क्याड़ी ?"

स्पष्ट है कि कवि सचल उन सच्चे सूफियो मे से थे जिन्होने मन को मार कर आत्मा को जाग्रत किया था।

सचल साहब बचपन से ही एक असाधारण बालक थे। वे काफी पढे लिखे थे। उनके गुरु का नाम आखवन्द अब्दाल्लह था। सचल साहब ने चार भाषाओ मे कविता की सिन्धी, सराइकी, उर्दू और फारसी। फारसी भाषा मे वे "आशिकारी" उपनाम से कविता लिखते थे। वे न केवल एक सन्त, फकीर और कवि थे बलिक एक दार्शनिक और सगीतप्रेमी भी थे।

सचल साहब एकान्तप्रिय थे। वे बचपन से ही घण्टो जगल मे बैठकर सोचते-विचारते रहते थे। बचपन मे ही पिता का देहान्त हो गया, अतः वे अपने चाचा मियाँ अब्दालहक के पास रहते थे और उन्हे अपना गुरु भी मानते थे। सचल साहब ने अन्य अनेक फकीरो का भी सग किया और उनसे प्रभावित हुए। सचल जी के मतानुसार सच्चे सूफी न हिन्दू होते हैं, न मुसलमान। वे किसी भी धर्म के सच्चे साधको को ही महत्व देते हैं, यही कारण है कि उन्होने अपने काव्य मे भगवान कृष्ण, गुरु गोविन्द सिह तथा अन्य महापुरुषो की महिमा गाई है। वे जानते थे कि परमात्मा एक है, पर उन्हे पाने के रास्ते अनेक है। बचपन से ही धर्म-निरपेक्षी होने के कारण वे धर्म को महत्व न देकर इश्क को ही महत्व देते थे। उनकी दृष्टि मे हिन्दू-मुसलमान दोनो एक थे। वे कहते थे "दिसो इश्क जो हिसाब, सभेई मज़हब कयाँइ माफ" (तात्पर्य यह कि इश्क का अनोखा ढग है, वह सभी धर्मों को माफ कर देता है अर्थात् धर्म को महत्त्व नही देता) तथा "ओही काम करीजे, जस विच अल्लाह आप वणीजे, दीन कुफर इस्लाम मे आशिक कदहाँ न अड़ीजे।"

"ऐ आशिक वही कुछ कर जिससे तू स्वय ही खुदा बन जाए, हिन्दू-मुसलमान धर्म मे अपने आपको मत अड़ा।)"

सचल साहब ने अपनी युवा अवस्था भी फकीरी मे गुजारी। शादी करने की तमन्ना उन्हें नही थी, पर जब उनके चाचा मियाँ अब्दालहक ने अपनी बेटी के साथ उनका विवाह करना चाहा, तो उन्होने इन्कार नही किया; क्योकि वे विवाह को शरीअत (धार्मिक कर्तव्य) समझते थे। सचल जी को एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ पर बचपन मे ही वह बालक इस असार संसार को छोड कर चल बसा। सचल के पुत्र की मृत्यु के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि उन दिनो मीर रुस्तमखाँ खैरपुरी का बेटा मीर मुहमद हुसैन बीमार था और उन्होने सचल फकीर को दुआ के लिए

बुलाया। सचल ने बीमार बच्चे के लिए दुआ माँगकर कहा "मैं तेरे बेटे के बदले अपने बेटे को खुदा के हवाले करता हूँ", नतीजा यह हुआ कि मीर का बेटा स्वस्थ हो गया किन्तु सचल साहब का बेटा चल बसा। तब से खैरपुर के निवासी सचल साहब को सिद्ध पुरुष मानने लगे।

साहित्यिक दृष्टि से सचल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन जैसा गायक-कवि सिन्ध मे अब तक नही पैदा हुआ है। सचल जी के गीत उस ऊँचाई पर पहुँचे हुए है, जहाँ किसी सिन्धी कवि को कदम रखने की हिम्मत तक नही हुई। सचल फकीर को सगीत से बड़ा ही प्रेम था। कहा जाता है कि सारगी तथा तबले पर हाथ लगते ही वे मस्ती मे आ जाते थे, उनकी आँखो से अश्रु बरसने लगते थे और वे सुध-बुध खोकर मस्ती मे गाते जाते थे।

सचल साहब बाह्याडम्बर तथा कपट के कटु विरोधी थे, अपने नाम के अनुसार वे सत्य के ही पक्षपाती थे। जहाँ शाह साहब ने कहा कि वही कला धन्य है, जिससे प्रियतम को देखा जा सकता है, पर रोजा और नमाज भी बुरे नही है, सचल जी शाह साहब से एक कदम आगे बढ गए हैं और कहते हैं

कयडो मस्त प्रियनि जे नाज मूंखे,
विसिरियो रोजों, न आह याद नमाज मूंखे।

अर्थात् प्रियतम के नाज ने मुझे इतना मस्त बना दिया है कि मैं रोजा रखना ही भूल गया हूँ तथा नमाज की याद तक नही है।

शाह-सचल को तुलना करते प्रा० जेठमल परसराम गुलराजाणी कहते हैं "शाह समस्त कवियो के सिरताज थे, परन्तु सचल भी कम नही थे। यदि शाह साहब का काव्य गहनता से भरा है, तो सचल का काव्य ऊँचाई पर चढ़ा हुआ है। शाह पनडुब्बे की तरह ज्ञान-समुद्र में डुबकी लगाकर बहुमूल्य मोती ले आये हैं, तो सचल आकाश मे उड़कर सूर्य-सितारो के प्रकाश की जगमगाहट ले आये हैं।"

सचल साहब मन्सूर की तरह अपने को हक (सत्) ही मानते थे। शकराचार्य की तरह वे भी 'सोऽह' अर्थात् 'मैं वही हूँ' मे विश्वास करते थे। वे कहते थे कि लोग चाहे मुझे कुछ भी कहें किन्तु मैं जो हूँ वही हूँ अर्थात् मैं कोई नही बल्कि परमात्मा हूँ।

आऊँ जोई आहियाँ सोई आहियाँ।
को कीअं चवे, को कीअं चवे।
आऊँ जो ई आहियाँ सोई आहियाँ।
को मोमिन चवे, को काफ़िर चवे।

को जाहिल नालो जाहरु चवे।
को साहिर चवे, को शाइर चवे॥ आऊँ जोई०

को पन्थ चवे, को सन्त चवे।
को बाग़ बहार बसन्त चवे।
को मीरासी कुलवन्त चवे॥ आऊँ जोई०

को मुलाँ चवे, को काज़ी चवे।
को मुफ़्ती चवे, को गाजी चवे।
को रोजहदार नमाज़ी चवे॥ आऊँ जोई०

को रद चवे को बद चवे।
को बेदीनी बेहद चवे।
को मशरक भे मल्हद चवे॥ आऊँ जोई०

को सूरत में इन्सानु चवे।
को शिर भरियो शैतानु चवे।
को बुज़ुर्ग को मस्तानु चवे॥ आऊँ जोई०
को मस्त कोई सिरमस्त चवे।
को राह ते दीन दुरस्त चवे।
को आशिक रोज़ालस्त चवे॥ आऊँ जोई०

को जेर ज़बर जन्दीकु चवे।
को राह निमाउ रफीकु चवे।
को ग़ुर्क़ी मन्झि अमीकु चवे॥ आऊँ जोई०

को रंगु कोई बेरंगु चवे।
को मरणो मरणु मल्लंग चवे।
को नंगो को बेनंग चवे॥ आऊँ जोई०

को शकु चवे, ना हकु चवे।
को बात अहा बरहकु चवे।
मूँखे मुर्शिद अब्दालहक चवे॥ आऊँ जोई०

को खासु चवे, को आमु चवे।
को पुख़्तो चवे, को खाम चवे।
को सचू सचो नाम चवे॥ आऊँ जोई०

सचल-साहब कहते हैं कि मुझे कोई कुछ कहता है तो कोई कुछ; किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ। कोई मुझे मुसलमान कहता है, तो कोई हिन्दू कहता है, कोई स्पष्ट रूप से मुझे नादान कहता है। कोई जादूगर कहता है तो कोई शाइर (कवि) कहता है; किन्तु मैं जो हूँ वही हूँ।

कोई मुझे पथ कहता है, तो कोई सन्त मानता है; कोई बाग़, बहार बसन्त कहता है तो कोई गायक-फकीर कहता है, किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई मौलवी कहता है तो कोई काज़ी कहता है; कोई न्यायाधीश कहता है तो कोई गाज़ी कहता है; कोई रोज़ा रखनेवाला नमाज़ी कहता है; किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई मुझे बेकार मानता है, तो कोई बुरा कहता है; कोई अधर्मी तो कोई कट्टर धार्मिक कहता है, कोई आस्तिक कहता है, तो कोई नास्तिक कहता है, किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई मेरी सूरत के कारण मुझे इन्सान कहता है, तो कोई शरारती शैतान, कोई बुज़ुर्ग कहता है तो कोई मस्तान (उन्मत्त) कहता है; किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई मुझे दीवाना कहता है तो कोई मस्ताना कहता है, कोई धार्मिक राह पर ठीक तरह से चलनेवाला कहता है तो कोई प्रथम कोटि का आशिक कहता है, किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई ऊँच कहता है, कोई नीच कहता है, कोई काफिर (नास्तिक) कहता है, कोई पथप्रदर्शक दोस्त कहता है तो कोई प्रेम में डूबा हुआ प्रेमी कहता है; किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई मुझे रँगीला कहता है, कोई बेरंग कहता है, कोई मस्त मौला व मस्लग कहता है, कोई लजीला तो कोई निर्लज्ज कहता है, किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई मुझे सन्देह से देखता है तो कोई झूठा, कोई बड़े ही अधिकार से मुझे अब्दालहक का शिष्य कहता है, परन्तु मैं जो हूँ वही हूँ।

कोई मुझे विशिष्ट (व्यक्ति) कहता है तो कोई साधारण (व्यक्ति) कहता है, कोई स्थिर कहता है तो कोई अस्थिर कहता है। सचू कहते हैं कि कोई मुझे सतनाम (सच्चा नाम) कहता है। मैं जो हूँ, वही हूँ।

"ब्रान्हो भाँइ म पाण"

ब्रान्हो भाँइ म पाण, तू ही मालिक मुल्क जो।
लाखेरफी इबीदी, इहो अथेई अुहबाणु।

पाण पंहिंजो पाणहीं, सूरत मंझि सुञाणु ।
तूँ ई ञाणन्दड़ सभि की मियाँ, थिएं कीअं अञाणु ।
अल्लाह अल्लाह छो चवीं, पाण ई अल्लाह ञाणु ।
सचो साईं हिकिड़ो, नाहे शकु गुमानु ॥

(सचल साहब मानव को उपदेश देते कहते हैं कि वह अपने को शरीर न मानकर आत्मा माने, क्योकि अपने को शरीर मानने मे बन्धन है किन्तु आत्मा मानने मे मुक्ति है ।)

अर्थ ऐ मियाँ, तू इस मुल्क का मालिक है, अतएव अपने को गुलाम मत समझ । गुलामी मे किसी तरह का हित नही है । (तेरा) यही लक्षण है कि तू आत्मावलोकन कर, अपने सच्चे स्वरूप को पहचान । तू सब कुछ जाननेवाला है, फिर भी अनजान (अज्ञानी) बनकर क्यो बैठा है ? (ऐ मूर्ख) तू अल्लाह ! अल्लाह !! क्यो पुकार रहा है ? खुद को ही अल्लाह समझ । सचल साहब कहते हैं कि इसमे कोई सन्देह नही है कि सच्चा मालिक एक ही है ।

"पखी परदेही"

खाक मिट्टीअ दा बुतड़ा बनाइ, विचु पखी परदेही ।
पाणी पीदा, दाने चुगन्दा, ज़ाति न ञाणाँ केही ।
कल इन्हीअ दी कल न काई, समझ साँ कल पेई ।
ही जगु सारा ख्वाबु नीशानी, समझ सचू तूँ एही ॥

(सचल साहब कहते हैं कि) मिट्टी का शरीर बनाकर उसमे (आत्मारूपी) पक्षी को रखा गया है, वही पक्षी पानी पीता है, दाना चुगता है, किन्तु मैं नही जानता कि उसकी जाति क्या है । इस (शरीर रूपी) तिलस्मी बनावट का कुछ भी पता नही चलता है । सोच-विचार से पता लगता है कि यह सारा ससार स्वप्नवत् है, अतएव ऐ सचू, तू भी इसी बात को समझ ।

"कहिड़ी शै आहियाँ"

शै आहियाँ काकियों कहिड़ी, जा समझी न ञाणाँ ।
बैजे भाँयाँ पुतिली, या आहियाँ गुड़ीअ ड्रोर ।
या गोइ आहियाँ हथ यार जी; वाँगीअ वाँगुरु ज़ोर ।
या ता महल आहियाँ, जंहि मे शाहन्शाह ।

ब्रोलियूँ करे केतिरियूँ, थो दरवँऊँ दानाह।
या त घोड़ो आहियाँ, जो हलाए हुसवार।
या त मौज दरियाह जी, जो ब्रोड़े थी ब्राहार।
या मेंदीअ गुल ताँ आहियाँ, जंहिं अन्दरि लालाई।
या आहियाँ गुल गुलाब जो, जंहिं सूर में सुरहाई।
या त चश्मो आहियाँ, अबर भरियो आबु।
तंहिं मे सायो सिज जो, या पाछोई महताबु।
या त पाछो हक जो, आऊँ असुल खो आहियाँ।
जँहिं मे ग़ाल्हिनाहिता, सो भी ता नाहियाँ।
ग़ाल्हि सचूअ सा समझो, खूँ हादीअ इहाई।
ता ग़ैर ख़ुदा जो नाहीअं, आहे साहिब सदाईं॥

उमर खैयाम की तरह सचल साहब इन्सान को परमात्मा की कठपुतली मानते हैं। उनका कहना है कि मानव मे परमात्मा का ही नूर है, वह है तो मिट्टी का बना हुआ पुतला जिसकी अपनी तो कोई सत्ता ही नही है, बल्कि वह ईश्वरीय शक्ति से चल फिर सकता है। वास्तव मे मानव को परमात्मा ने ही बनाया है और वही उसे चलाता है। अत वह मेंहदी भी स्वय है तो उसमे समाई हुई लालिमा भी स्वय है, किन्तु कोई विरल व्यक्ति ही उसे जान पाता है। कवि सचल भी आश्चर्य मे पड़ा हुआ है और सोचता है कि आखिर वह कौन है ?

कवि कहते हैं कि मैं कौन हूँ, यह मेरी समझ मे ही नही आता। कभी लगता है कि मैं एक कठपुतली या धागे से बँधी पतग हूँ, जिसे कोई बाजीगर (मदारी) छिपी डोर से बाँधकर नचाता व चलाता रहता है; या कोई ऐसा गेंद या लट्टू हूँ जिसे हकीकी प्रियतम का हाथ घुमाता रहता है, या कोई ऐसा महल हूँ जिसमे एक विद्वान सम्राट विराजमान है, जो नाना प्रकार की बोलियाँ बोल रहा है, या एक अश्व हूँ, जिसकी लगाम किसी श्रेष्ठ घुड़सवार के हाथ मे है, या मेंहदी का फूल हूँ, जिसमे विचित्र लालिमा समाई हुई है, या गुलाब का पुष्प हूँ, जिसमे महक भरी है, या तो कोई सोता हूँ, जिसे किसी बादल के पानी ने भर दिया है और उसमे सूर्य का प्रतिबिम्ब पड रहा है, या तो चन्द्रमा की चाँदनी हूँ या स्वय आदि ईश्वर की परछाईं हूँ। सचल कहते हैं, वास्तव मे दूसरी सब बातें सारहीन व तत्वहीन हैं, क्योकि गुरु ने मुझे यह रहस्यमयी बात बताई है कि हक अर्थात् सत्य परमात्मा के सिवा दूसरी कोई वस्तु की सत्ता नही है। केवल वही (सत्य) है और उसके सिवा कोई वस्तु सत्य नही है।

"छा मंझां छा !"

इहो अथमि अरमान, छा मँझाँ हितु छा थी आयसु ।
चाकरु थियसु न ज्ञाणाँ छा खो, ना त हुवस सही सुल्तानु ।
हुवस दानाउ देस उन्हीअ मे, हितु नाँऊ थियसु नादानु ।
कोई ज्ञाणे कोई सुञाणे, इहो मर्दीअ जो मैदानु ।
बहर अथाध जो लहर लिकायो, थियो तरह नवीन तूफ़ानु ।
असिलू खूँ साणु वठी हितु आयसु, सूरनि जो सामानु ।
हिक घर खूँ थी ब्रे घरु आयसु, महज आयुसि महमानु ।
बहर उतूँ जा लहर उभी थी, मोटी थियो महिराणु ।
सचुअ खे कयो साइत साइत हैरत हिन हैरान ॥

(आत्मा परमात्मा का अश है किन्तु इस ससार मे आने के बाद, वह अपना वास्तविक स्वरूप भूल जाती है और अपने को शरीर मानकर भटकती रहती है; किन्तु जाग्रत होने पर वह परमात्मा से मिलकर एक हो जाती है।)

मुझे इसी बात का खेद है कि क्या था और यहाँ (ससार मे) क्या बनकर आया हूँ। वास्तव मे तो मैं सम्राट ही था किन्तु मुझे पता नही कि क्यो मैं यहाँ (विषय-वासनाओ का) गुलाम बन गया हूँ। उस देश मे तो मैं ज्ञानी था, किन्तु यहाँ आकर नादान (अज्ञानी) नाम पड़ गया है। वास्तव मे यह (आत्मतत्व का) मैदान पुरुषत्व का है, जिसे कोई-कोई ही समझ सकता है और जान सकता है। (तात्पर्य यह कि आत्मतत्व बड़ा गहन है और उसे जानना वीरो या ज्ञानी लोगो का ही काम है।) इस गहरे (मायारूपी) समुद्र ने मेरी (आत्मारूपी) लहर को छिपा दिया है, जिस कारण ही यह नया तूफान उठ खड़ा हुआ है। अर्थात् माया के कारण ही आत्मा अपने स्वरूप को भूल गयी और भटक रही है।) लगता है कि मैं यहाँ दु.खो और कष्टो का ही सामान लेकर आया हूँ। मैं एक घर से दूसरे घर (ससार) मे केवल मेहमान बनकर आया हूँ (किन्तु यह बात भूल गया हूँ।)

सचू कहते हैं कि पल-पल यह विचित्रता मुझे आश्चर्य मे डाल रही है कि जब (आत्मारूपी) लहर (मायारूपी) समुद्र मे उठ खड़ी होती है (अर्थात् जाग्रत होकर अपनी सत्ता पहचानती है) तब वह (परमात्मारूपी) सागर मे समाकर सागर ही बन जाती है (अर्थात् परमात्मा से मिलकर परमात्मा ही बन जाती है।)

असुल आहियाँ इसरारु, जाहिरु ग्राल्ह ज़बानूं नाही ।
पहिरियों पाण न ज़ातमु हीअ थे, शौक भरियमु शूकार ।
मुर्शद रम्ज़ ग़ुझी पुरझाई, आन्दमु हितू ऐतुबार ।
दीद कुफर इस्लाम मज़ाहब, अव्वलु छद्रुण दरिकार ।
ब्रोड़ियमु समु सभु इरादा आन्दमु, हिक इरादे आर ।
जाई ग्राल्हि सुञातमु साई, सामी आहियाँ सरदार ।
यसमै, यबसर, युन्तकु हिकिड़ो, नाहे आणणु इन्कारु ।
"खल्क़ इला इश्या वह वईन्हा" थी खासा खबरदार ।
सचू ग़ैरु खुदा जो नाहे, गोशु करणु गुफ़्तार ।।

(सचू अपने को ही हकु [सत्य] मानते हुए कहते हैं) मैं आरम्भ से ही एक रहस्य हूँ, जिसे ज़बान से प्रकट नहीं किया जा सकता है। पहले मैंने अपने को यों (सत्य) नहीं समझा था। अत. उस समय मैं शौक से ठण्डी आहे भर रहा था (अर्थात् जब तक मुझमे यह ज्ञान नहीं था, मैं ससार मे शौक से रहता था और दुःखो के कारण ठण्डी आहे भरता था) बाद मे मुझे सद्‌गुरु ने रहस्यमयी बात (आत्मतत्त्व) समझा दी, जिस पर मैंने पूर्ण विश्वास कर लिया। कुफर, इस्लाम अन्य दीन-धर्म तथा मज़हबो को त्याग देने की ज़रूरत सोचकर, मैंने अपने सभी सकल्प-विकल्प डूबो दिए और एक प्रेम को ही पकड़ लिया। मैंने जैसे ही रहस्यमयी बात पहचान ली, वैसे ही मुझे पता चला कि मैं ही सरदार (परमात्मा) हूँ। इस बात से अब इन्कार नहीं किया जा सकता है कि सब में एक ही आत्मा बोलने, सुनने और करने का काम करती है। परमात्मा ने सभी वस्तुओ का सृजन किया है, पर खुद सब के सार व तत्त्व हैं। सचू कहते है कि परमात्मा के सिवा दूसरी गुफ्तार (चर्चा) करना उचित नहीं।

जहिड़ो ही अजाइबु आहे, नाहि अजबु को ब्रियो अहिड़ो।
हेड्रे होड्रे न ड्रिसी, मूहु पाणईअ में पाइ ।
पव तसवरु हिन मे, ब्री बाज़ी काम बनाइ ।
अखियूं उपटे जे ड्रिसी, ता हादी आहे हर जाइ ।
सचू सारो सचु चयो, रम्ज़ दिलीअ साँ लाइ ।।

सचू कहते हैं कि जितना विचित्र यह (आत्मतत्त्व) है, उतनी विचित्र कोई दूसरी बात नहीं है। (ऐ मानव) तू (इस तत्त्व को समझने के लिए) यहाँ वहाँ मत देख, पर अपने ही भीतर निहार। फिर

उसी में एकाग्र हो जा तथा दूसरे किसी प्रकार के कार्य के सम्बन्ध मे मत सोच। यदि तू अपनी आँखे खोल कर देखेगा, तो तुझे सर्वत्र ही वह परमात्मा दिखाई देगा। सचू कहते हैं कि यही सच्चा सार है अत: इसी युक्ति को अपने मन मे रख।

जोई आहिआँ सोई आहियाँ, हिन्दु मोमिन नाहियाँ।
ना मैं मुल्ला, ना मैं काज़ी, ना मैं सबकु पढ़ायाँ।
ना मैं मस्जिद ना मै हुजरा, अन्दर पेर न पाइयाँ,
ना मैं काबा, ना मैं किबल:, मक्के मूल न जावाँ।
ना मैं सुन्नी, ना मैं शीआँ, सैयदु कीअं सडाइयाँ।
ना मैं नानकु, ना मैं लछमणु, गंगा मूल न जावाँ।
यार त मेड़ा दरस दराज़ी, सचलु नाँव सडाइयाँ॥

मैं न हिन्दू हूँ, न मुसलमान हूँ, बल्कि जो हूँ वही हूँ (अर्थात् मैं शरीर नही आत्मा हूँ)। मैं न मोलवी हूँ, न मैं काजी हूँ और न ही मैं दूसरों को शिक्षा देने वाला हूँ। मैं न मन्दिर मे न ही मस्जिद में अपना कदम रखता हूँ। मैं न काबे मे जाता हूँ, न कर्बला में और मक्के मे तो मैं कभी भी नही जाता। मैं न सुन्नी जाति का हूँ, न ही शीहा जाति का, तो फिर अपने को सैय्यद कैसे कहलाऊं। मैं न गुरु नानक हूँ, न लक्ष्मण हूँ, तथा गंगा मे तो मैं कभी भी नही जाता। मैं तो अपने प्रियतम का दराज़ो (सचल का निवास स्थान) मे ही दर्शन करता हूँ तथा अपने को सचल (सच्चा तत्व) कहलाता हूँ।

न माँ मुरीद, न माँ पीरु, सारे फक़र जो फ़क़ीरु।
न माँ हाकिमु, न माँ ज़ालिमु, आहियाँ अमन जो अमीरु।
न माँ ताइत न माँ तक्वाई, आहियाँ विरह जो वज़ीरु।
न माँ घुंमणु, न माँ घतणु, आहियाँ इश्क जो असीरु।
न माँ कुछण, न माँ पुछणु, आहियाँ दोसनि लाइ दिल्गीर।
सचूअ ब्रधो महकुम सिर ते, मुहबत जो मन्दीरु॥

(सचल अपने को कुछ न समझ कर, आत्मा को ही सर्वस्व समझ कर कहते हैं—) न मैं गुरु हूँ, न पीर-पैगम्बर हूँ। बल्कि मैं दरिद्रता का ही फकीर हूँ। मैं न हाकिम (राजा) हूँ, न मैं ज़ालिम हूँ बल्कि अमन का ही अमीर हूँ। न मैं बन्दगी हूँ, न मैं परहेज हूँ, बल्कि मैं विरह का वज़ीर हूँ (अर्थात् परमात्मा को पाने के लिए तड़पता रहता हूँ) न मैं घूमता हूँ, न फिरता हूँ पर मैं प्रेम का कैदी हूँ। न मैं कुछ कहता हूँ,

न कुछ पूछता हूँ, बल्कि सदैव ही प्रियतम के लिए बेकरार और बेचैन रहता हूँ। सचू कहते है कि मैंने अपने सिर पर प्रेम का फन्दा मज़बूती से बांध लिया है।

मन्दिर करे मन खे, पुज़ारी पूज़ाइ।
पारि न ब्रियो पुछाइ, सचू पुज़ारिया पुरबन्दर जा॥

सचू साहब कहते हैं ऐ पुजारी, पोरबन्दर के पुजारियो की तरह तू मन के मन्दिर की पूजा कर और दूसरे सब तरीके छोड दे तब ही तुझे रत्न प्राप्त होंगे।

इस दोहे का अर्थ ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। माना जाता है कि सोमनाथ के मन्दिर के बीचोबीच लात और मिनात नामक दो मूर्तियाँ थी जो बिना किसी अवलम्बन के खड़ी थी। जब महमूद ग़ज़नवी ने मन्दिर पर आक्रमण किया तब एक पुजारी ने उसे बताया कि इन मूर्तियो में बहुत से हीरे जवाहर समाये हुए हैं पर कोठरी के चारो तरफ की दीवारो, ज़मीन तथा छत मे बड़े-बड़े चकमक-पत्थर रखे हुए हैं, जिससे ये मूर्तियाँ बिना किसी सहारे के खड़ी है। यह बात सुनते ही ग़ज़नवी ने दीवारो, ज़मीन और छत को तोड देने का हुक्म दिया दीवारो तथा छत के टूटते ही मूर्तियाँ भी टूट कर ज़मीन पर आ पड़ी और वास्तव मे उन मे से बहुत हीरे जवाहर निकले। सचल शरीर को तुलना मन्दिर से करते हुए कहते हैं कि यदि मानव इस शरीररूपी दीवारों को तोड़ दे तो उसे भी हृदय मे छिपे हुए आत्मारूपी हीरे जवाहर मिल सकते हैं।

सचल साहब अद्वैतवादी थे। वे आत्मा-परमात्मा को एक समझते थे। उनका कहना था कि जिस तरह नवनीत तथा दूध मे कोई भेद नही है, नवनीत दूध का ही तत्त्व है उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में भी कोई अन्तर नही; जिस तरह दूध मे मक्खन प्रकट रूप से दिखाई नही देता है, पर मथन से वह जाहिर होता है उसी तरह मनुष्य भी साधना, अभ्यास तथा आत्मावलोकन द्वारा अपने ही भीतर अपने सच्चे स्वरूप को देख सकता है। यह सत्य स्वरूप हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी में समाया हुआ है अत मनुष्य को मनुष्य से घृणा न कर उससे प्रेम करना चाहिए और अपनी खुदी को मिटाकर खुदा बन जाना चाहिए।

पाण हिंजो पाणही, सूरत मंझि सुञाणु।
अल्लाह अल्लाह छो करी, पाण ईं अल्लाह ज्ञाणु।

तूं इं ब्रुधन्दड़, तूंईं ड्रिसन्दड़, शाहिदि आहि कुरानु ।
नाहे शकु गुमान, सचू साईं हेकड़ो ॥

(सचल मानव को उपदेश देते हुए कहते हैं) ऐ मानव ! तू आत्मावलोकन से अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान ! तू अल्लाह-अल्लाह की रट क्यो लगा रहे हो; (ऐ मूर्ख) तू खुद ही अपने को अल्लाह समझ । कुरान शरीफ साक्षी है कि तू ही श्रोता तथा तू ही दर्शक है । सचू साहब कहते हैं कि इस बात मे रत्तीमात्र भी संदेह नही है कि परमात्मा एक है ।

पाण विञाए पाण, गोल्हे लहजि पाण खे ।
पाण मंझां पाण खे, पवन्दी ज्ञाण सुञाणु
मखणु अखरु हिकिड़ो, सोई खीर संभाणु ।
इहो अथी अहुञाणु, सचू ग्रहीला इन्हीअ ग़ाल्हिजो ॥

(ऐ मानव) तू अपनी खुदी को नष्ट कर, अपने स्वरूप को ढूंढ क्योकि अपने भीतर खोजने से ही तुझे सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा । सचू साहब कहते हैं; ऐ मूर्ख, जिस तरह से मक्खन शब्द दूध से अलग हैं, किन्तु वास्तव में वह दूध का ही तत्त्व है, सार है, उसी प्रकार इस बात (आत्मा परमात्मा) को समझने का यही ठीक लक्षण है । (तात्पर्य यह कि जिस तरह से दूध और मक्खन मे कोई भेद नही है उसी तरह, आत्मा-परमात्मा मे भी कोई अन्तर नही है । जिस तरह दूध मे ही नवनीत छिपा रहता है, किन्तु जाहिरी तौर पर दिखाई नही देता है, बल्कि मंथन से ही प्रकट होता है, उसी प्रकार परमात्मा भी हमारे भीतर समाया हुआ है और आत्मावलोकन से ही दिखाई देता है ।)

जे तो ज्ञातो पाण, त आऊँ को ब्रियो आहियां ? ।
कन्दइ ग़र्क़ु गुमानु, सचू ग्रहीला इन्हीअ ग़ाल्हि में ॥

सचू साहब कहते हैं: ऐ मूढ ! यदि तू ने यह समझ लिया कि तू कोई दूसरा है (अर्थात् तू शाश्वत आत्मा नही, नश्वर शरीर है); तो यह ज्ञान तुझे अवश्य ही डूबो देगा ।

टोरि रवाज अं ररांूं सारियूं, मर्द थिएं मर्दानो ।
पाण बेगानो, मूल न ज्ञाणी, आही यारु युगानो ।
वहमु सचल कढु ब्रान्हप वारो, शामिलो ब्रघु शहानो ॥

सचल साहब मनुष्य को उपदेश देते हुए कहते है (ऐ मानव) तू समस्त रीति-रिवाज तोड दे, ताकि तू वीर पुरुष बन सके। तू मूल (सत्य) को न जानने के कारण ही अपने को बेगाना समझ रहा है, परन्तु वास्तव मे तो तूं सत्य का युगो का मित्र है, अब भी अपने हृदय से दासता के भ्रम को त्याग दे और (ज्ञान की) शानदार पगड़ी बाँध (अर्थात् अपने को गुलाम न समझ कर हक (सत्य) समझ।

पाण सुञाणजि पांहिंजो, अथी गिल अन्दरि ञोहर।
फिटो करु ब्रयाईअ जो, ब्रुहारे ब्रोहर।
जोति भरियो जोहर, सचल पाणही पसी पारखू ॥

सचल साहब कहते है ऐ मानव, तू स्वयं ही अपने स्वरूप को पहचान क्योकि मिट्टी (के शरीर) के भीतर ही (आत्मारूपी) प्रकाश छिपा हुआ है; अतएव तू द्वैत का कूड़ा करकट बुहारकर फेक दे। ऐ पारखी; तू (आत्मारूपी) ज्योति जगमगात जवाहर खुद ही देख सकता है।

पसी भुत भुल्योसि, ता आऊँ आदमी आहियाँ
विचाँ जो वियोसि, साञियो सचू आहियाँ ॥

सचू साहब कहते हैं कि मैं अपने शरीर को देख कर भ्रम मे पड़ गया और सोचा कि मैं आदमी हूँ किन्तु जब द्वैत मिट गया, तब मुझे पता चला कि मैं वही सत्य हूँ।

छा जो काबो, छा जो किबलो, ही भी सभ बहाना।
नाकस नियत काबे वारी, मर्द घुमनि मैखाना।
सचल सत्गुर ईंअ आखियो, हकु लहनि मस्ताना ॥

क्या काबा, क्या कर्बला, ये सब तो (परमात्मा को पाने के) बहाने हैं। काबे मे जाने की इच्छा ही तुच्छ है, यही कारण है कि सच्चे पुरुष (प्रेम की) मधुशाला मे ही घूमते रहते हैं। सचल साहब फर्माते हैं कि सदगुरु ने कहा है कि मस्ताने ही सत्य को ढूंढ पाते है।

जे मञनि था आदमी, से न मञाँ माँ।
सचू आहियाँ आऊँ, जो ब्रान्हे ब्रिए जो न थियाँ ॥

सचल साहब कहते हैं कि जो लोग मानते हैं, वह मैं नही मानता क्योकि मैं सत्य हूँ, हक हूँ, इसलिए मै दूसरो का गुलाम नही बनता।

जाति सिफ़ात हिकाई आहे, भूल न विझी भोले।
सोई अन्दरि, सोई ब्राहरि, सोई तुंहिजे चोले।
तो में, मूँ मे, हुन में, हर जा, सचु सचू यो ब्रोले॥

सचू साहब कहते है, ऐ भोले जीव, तू भ्रम मे मत उलझ क्योकि मैं सत्य कहता हूँ कि (आत्मा) वास्तव मे एक ही जाति और विशेषता वाली है। वही आत्मा भीतर है, वही बाहर है और वही तेरे शरीर मे है। वह तुझ में मुझ मे और हर जगह है।

राम रहीम हिको हिकु समझी, मौज मुहबत माणीं।
काफिर मोमिन गवर, नसारू, गैर गुमानु न आणीं।
माँ तूँ सूरत सागी सचा, जे तूँ पाण पछाणीं॥

सचल साहब कहते हैं (ऐ मानव) यदि राम-रहीम को एक समझेगा, यदि तू हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई धर्म मानने वालो मे परायेपन का सदेह न लाएगा, तो प्रेम का आनन्द लूटेगा। यदि तू अपने स्वरूप को पहचानेगा, तो तुझे ज्ञात होगा कि तू और मैं एक ही सूरत वाले हैं अर्थात् तुझ में और मुझ मे एक ही आत्मा है।

राम रहीम हेकडो, त रावण में वरी केरु।
कृष्ण थी छो कंस खाँ, वठी वेठो वेरु।
पाए प्रेम प्रह्लाद साँ, तूं हरनाकुश खे हेरु।
सचल वेर अवेर, पन्हिन्जो अथी पाण मे॥

(ऐ मूर्ख) यदि राम और रहीम एक हैं, तो रावण मे फिर कौन है? तू कृष्ण बनकर कस से वैर क्यो ले रहा है? प्रह्लाद से प्रेम प्राप्त कर, तू हिरण्यकश्यप को देख। सचल साहब कहते हैं कि शीघ्र ही या देर से तुझे यही पता चलेगा कि सब मे एक ही (सत्य) समाया हुआ है।

सचो साइं हेकड़ो, नाहे शकु गुमानु।
पंहिजो तमाशो पाण द्रिसे थो, सूरत मंझि सुल्तानु।
काथे पढ़े पोथियूं, काथे पढ़े क़ुरानु।
किथे ईसा, किथे अहमद, काथे हनुमानु।
हैरत मे हैरानु, पंहिजो विधाइं पाण खे॥

सचू साहब कहते है कि इस मे जरा भी सदेह नही है कि परमात्मा एक है। वह सुल्तान अपने ही रूप में अपना तमाशा देख रहा है। कही पर वह (हिन्दू बनकर) पोथियाँ पढ रहा है तो कही पर (मुसलमान बनकर) कुरान शरीफ। कही ईसा बन बैठा है, कही हजरत-मुहम्मद बन कर बैठा है तो कही पर हनुमान बन कर बैठा है, इस तरह से उसने अपने आप को ही आश्चर्य मे डाल दिया है।

समुझायो माँ तालिब तोखे, सचु इहोई सारो।
अर्ज़ समा में वाह वज़ाइजि, आशिक नीह नग़ारो।
नामु छद्दे बदनामु थी अचु तूँ, लोकु द्रिसी सभि सारो।
सटु सचलु सामान सुल्ह जो, मारि हकानी नारो॥

सचल साहब कहते है, ऐ जिज्ञासु प्रेमी, मैंने तुझे यह तत्वमय सत्य समझा दिया है कि पृथ्वी तथा आकाश मे तू प्रेम का नगारा बजाता रह। पूर्ण विश्व देख परखकर, अपना नाम छोड़कर बदनाम होकर आ तथा सभी तरह के नाते पटक कर सत्य का नारा लगाता रह।

गोल्हा करीं जहिं जी, सो तू आही पाण।
पाण कनाँ पासे कयो, तोखे तुहिंजीअ ज्ञाण।
पंहिजो पाण सुञाणु, सचू, तूँ ताँ नाही आदमी॥

(ऐ मानव) जिस (परमात्मा) की तू खोज कर रहा है, वह तो तू स्वय है। तेरी जानकारी (अज्ञान) ने ही तुझे अपने स्वरूप से दूर कर दिया है। सचू साहब कहते हैं, अब भी अपने आप को पहचान क्योंकि तू शरीर नही है (बल्कि आत्मा है।)

सचल सारो सच थियो, मन्झाँ कसरत कुलु।
अलफ़ माँ आदम थियो, करे हन्गामो हुलु।
हिन्दू मोमिन हिक थियो, भूल न ब्री कहिं भुल।
खल्क आलाश्याइ फहो ईंनुहा इहो आणि अमलु।
यिजि गुलाबी गुलु, मर मारनी मन्सूर जाँ॥

सचल साहब कहते हैं कि एक सत्य (परमात्मा) से अनेक (प्राणी) पैदा हुए हैं। एक अलफ (अल्लाह शब्द का पहला वर्ण) से ही सम्पूर्ण सृष्टि का शोरोगुल हुआ है। हिन्दू मुसलमान सब एक हैं अतएव तू अपने को भ्रम में मत उलझा। तू यही याद रख कि उसने ही सब वस्तुएँ पैदा की है अत: वे सब उसके ही स्वरूप हैं, उससे अलग उन

वस्तुओं का कोई अस्तित्व नही है। इस मान्यता के लिए यदि तुझे भी मन्सूर की तरह मार दें (तो वह मरना भी स्वीकार कर) और गुलाब का फूल बन (तात्पर्य यह कि जिस तरह गुलाब का फूल कांटों मे भी मुस्कराता रहता है उसी तरह इस मान्यता के कारण यदि तुझे मुसीवतें उठानी पड़े फिर भी तू उनके बीच गुलाव की तरह हँसता रह।)

फिकरि इन्हीअ में पियासूँ सचा, आहियूँ या सचु नाहियूँ।
नाहियूँ ज्ञाणि इहाई सारी, आहियूँ ता बी नाहियूँ।
फरऊनी मन्सूरी हिकिड़ी सचल, हर्फ केहो चऊ डाहियूँ।
सचा सचु तड्हिं आ थियणो, पोश पाणाँ ही लाहियूँ॥

सचल साहब कहते है कि हम इसी फिक्र में पड़े हुए हैं कि हम सत्य है या नही हैं। वास्तव में सत्य होते हुए भी हमे यही ज्ञान रखना चाहिए कि हम कुछ नहीं हैं। सचल कहते है कि फरऊनी तथा मन्सूर दोनों ने ही कहा था कि हम खुद खुदा हैं किन्तु किसका डींग मारना सच्चा था। किसका झूठा? (कहा जाता है कि फरऊनी तथा मन्सूर मे से मन्सूर ने जो दम भरा था कि मैं हक (सत्य) हूँ वह सच्चा था क्योकि शूली पर चढते समय भी वे अपनी वात पर डटे रहे और नश्वर शरीर के मरने पर किसी तरह का दु:ख प्रकट नही किया, किन्तु फरऊनी का दम झूठा था क्योकि वह मौत से डर गया।) सचू साहब फर्माते हैं कि हम तभी सत्य होगे जब हम शरीर के भ्रम का पोश उतार देंगे।

फर्कु कुफर इस्लाम न कोई, ज्ञाणि इहोई ज्ञाणी।
काफिर मोमिन हिको हिका, ग़ैर न गाज़ी आणी।
कुलु शै हू अल्लाह सचल, सभ सूरत हिक सुञाणी॥

(ऐ मानव) इस सच्चे ज्ञान की जानकारी रख कि कुफर तथा इस्लाम मे कोई अन्तर नही है। काफिर और मोमिन दोनो एक हैं तथा गाज़ी को भी ग़ैर मत समझ। सचल साहव कहते हैं कि समस्त वस्तुओं मे अल्लाह ही समाये हुए हैं, जिसकी सूरत सब मे पहचान।

शख्सु को जामों करे, जामो न नालो सो सड्राइ।
नाँव सो पंहिजो सड्राइंदो, सिर जंहिजो नाँव आहि।
केई ग़ाल्हियों कोड़े करे, महले में वेठा पातशाह।
इंअ न चड्वो आहे ही ता, माग्नि महले जो अलाइ।

आहे अजाइब जेहिड़ो, बाजीगरी हिन जो बनाउ।
पाण ता पंहिजो लहे, हिन सिर जो सारो समाउ।
रम्ज़ मुर्शिद खूँ सही कयमि, जो निदा सोई सदाइ।
उस सचू रे सिज खूँ, नाहे जरो कोई जुदाइ॥

सचल साहब कहते हैं कि जिस तरह अभिनेता अभिनय करते समय अपने निजी रूप को भूल कर, जिसका वह अभिनय कर रहा है, वही मान लेता है, पर अपने वास्तविक जीवन में अपने को उस नाम से नही बुलवाता पर अपने निजी नाम से ही बुलवायेगा, उसी तरह आत्मा को भी शरीररूपी पोशाक पहन कर अपने को शरीर नही बल्कि आत्मा ही कहलाना चाहिए।

एक बादशाह अनेक तरह के ठाट बनाकर यदि महल मे बैठा हुआ है तो यह नही कहा जा सकता है कि वह हमेशा से लेकर इसी महल का मालिक है। (उसी तरह आत्मा एक शरीर रूपी महल मे सदैव नही रहती।) वास्तव मे उस बाजीगर (परमात्मा) की बनायी हुई सृष्टि आश्चर्यमयी तथा रहस्यमयी है और उस रहस्य को हम स्वय अपने भीतर ही ढूंढ सकते हैं क्योंकि मैंने सद्‌गुरु से यह युक्ति सीखी है कि जो नही है वही सदैव है अर्थात् जो आत्मा हमे दिखाई नही देती उसका तो अस्तित्व है। किन्तु जो शरीर हमे प्रत्यक्ष दिखाई देता है वह नही है। सचू साहब कहते हैं जिस तरह धूप सूर्य से अलग नही है उसी तरह कोई भी वस्तु उस (परमात्मा) से अलग नही है।

ईअं लखियो मूँ ईअं लखियो मूँ,
पंहिजो पाण खे ईअ लखियो मूँ।
वरिद वजाइफ कढियमु मुराकबा,
परो प्रियनि जो कोन पियो मूँ।
पढ़ियमि निमाजाँ, रखियमि रोजा,
जरो बि हासिलु कोन थियो मूँ।
सवे कलाम जारी मूँ पढ़िया,
असरु कलामनि कोन कयो मूँ।
अव्वलु ज़ातमि पोइ सुबातमि,
आहे तो रीअ कोन बियो मूँ।
सचू सारो सरि हकानी,
कीअं चवाँ आहे केरु थियो मूँ॥

सचल साहब का कहना है कि परमात्मा रोज़ा रखने, नमाज़ पढने आदि से नही मिलता है। वह तो सृष्टि के कण-कण में समाया हुआ है, इस रहस्य को जानने के पश्चात् ही परमात्मा को पहचाना जाता है, पर पहचानने के बाद भी उसका वर्णन नही मात्र, अनुभव ही किया जा सकता है क्योकि परमात्मा वर्णनातीत है।

अर्थ. सचल साहब अपने हृदय की बात प्रकट करते हुए कहते हैं कि मैंने अपने स्वरूप को ऐसे पहचाना, ऐसे पहचाना। जब मैंने अनेक तरह के दान आदि दिए, उपवास किए, फिर भी मुझे प्रियतम की जानकारी प्राप्त नही हुई मैंने नमाज पढ़े, रोजे रखे पर मुझे परमात्मा के विषय मे थोड़ा सा भी ज्ञान प्राप्त न हुआ। मैंने सहस्रों कलामो का अध्ययन किया, किन्तु उन कलामो ने भी अपना कुछ प्रभाव नही दिखाया। सचल साहब कहते है कि मै पहले मात्र जानता था, किन्तु अब मैंने पहचान लिया है कि तेरे सिवा मुझमे कोई दूसरा नही है, यह सारी सृष्टि एक हक़ (सत्य) से ही परिपूर्ण है, इस बात का मात्र अनुभव ही किया जा सकता है, वर्णन नही।

इहो ॾाहियूँ ॾसु आहि, साँवल इते वसे थो।
फोले लहिजि पाण मूँ, परे न पेरा पाइ।
दाइम आहे दोस्त जी, तुंहिजे जीअ मे जाइ।
कंहिजे कारण थी करीं हारी री हाय हाय।
सोई ॾिसन्दड़, सोई सुणन्दड़, पाणही ग़ाल्हियूँ ग़ाइ।
सारा डूंगर ड़ोरईं, काको री कहि लाइ।
सचू ओड़ो साह खू, केरु चवे ता नाहि।

सचल साहब जीवात्मा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं ऐ बुद्धिमता ! यही लक्षण सही है कि साँवल (परमात्मा) का वास यही (हृदय मे) है अतः तू अपने भीतर ही उसे ढूंढ, दूर-दूर मत जा क्योकि तेरे हृदय मे ही परमात्मा का सदैव स्थिर वास है। ऐ मूर्खा, तू किस कारण हाय-हाय कर रही है। वास्तव मे वही दर्शक है, वही श्रोता है और वही वक्ता है (क्योकि देखने, सुनने और बोलने का कार्य आत्मा द्वारा ही संभव है।) अतएव तू क्यो पर्वतों पर उसे खोजने के लिए भटक रही है। सचू साहब कहते हैं कि परमात्मा तो हमे अपने प्राणो से भी ज्यादा समीप है; कोई भला कैसे कह सकता है कि वह वहाँ नही है।

उते कुफर न इस्लाम आहे सभिनी खे सलामु ।
कद्रिहं ड्रिए कीन की, इहो आरांभो आरामु ।
मज़हब मूर न मञियाँ, आऊं मशरब मञ्झि मुदामु ।
कैदु भञी ज़ाहिरु थियाँ, आऊँ जारी पियाँ जामु ।
हादी साईंअ पाण सचूअ खे, इश्कु कयो इनामु ॥

सचल साहब आध्यात्मिक देश का वर्णन करते कहते हैं कि वहाँ कुफर और इस्लाम में कोई भेद नही है, वहाँ तो सबको ही सलाम रहता है क्योंकि वास्तव मे यह द्वैत की आग कभी किसी को आराम नही लेने देती है। मैं मज़हब को कदापि नही मानता हूँ, बल्कि सदैव ही प्रेम की मधुशाला मे मस्त रहता हूँ। मैं (माया का) बन्धन तोड़कर प्रकट हुआ हूँ और निरन्तर ही प्रेम का जाम भर-भर कर पीता हूँ क्योंकि मुझे हादी (सद्गुरु) ने स्वयं इश्क का पुरस्कार दिया है।

छा खे डूंगर ड्रोरियाँ, मन वसे यारु मुंहिजो ।
प्रीं आहे पाण सॉ, तक ब्रिया छो तोरियाँ ।
रातों ड्रीहाँ रूह में, आरियाणी थी ओरियाँ ।
सभ कंहिं पारी पाड़े सुप्रियुनि, आऊँ घणोई घोरियाँ ।
होत हमेश हाज़िरी, विन्दुर कंहिं लइ वोड़ियाँ ।
सचू सची ग़ाल्हड़ी, चित इहाई चोरियाँ ॥

मैं क्यो व्यर्थ ही पर्वत ढूंढती फिरूँ, मेरा प्रियतम तो मेरे हृदय मे ही निवास करता है। जब मेरा प्रियतम मेरे साथ है, तब मैं दूसरे रास्ते क्यों ताकती रहूँ। (कवि अज्ञानी जीवात्मा को सबोधित करते कहते हैं)—ऐ ग़ाफिला, मैं तो दिन रात अपने हृदय मे प्रियतम को अपना हाल-चाल बताती रहती हूँ। मेरा प्रियतम सभी ओर है अतः मैं अपना सर्वस्व उस पर न्योछावर करती हूँ। मेरा भतार तो नित्य मेरे पास है, फिर मैं मन को बहलाने के लिए यहाँ वहाँ क्यों जाऊँ, सचू कहते हैं यही सच्ची बात (कि प्रियतम मेरे भीतर ही है, बाहर नही) मेरे चित मे रहती है।

सचू नॉव थो सडाई, चव त काथे तूं आहीं ।
ज़ाणी वाणी पाणखे, कीअं थो भोल भुलाईं ।
खूदीअ वारे खयाल खे, राह इन्हीअ थो रुलाईं ।
पेर मथो आङिरियूं नॉव बिया यो रखाईं ।

काथे पैदा न थिएं, काडुहूँ वरी तूँ आएँ।
नाँव इहो नापैद थियो जो, सूच असुल खाँ तू नाही॥

सचू अपने आपसे कहते हैं कि तू अपने को सचू (सत्य) के नाम से पुकारता तो है, पर बता कि तू कहाँ है ? तू जानबूझ कर अपने आपको भ्रम मे क्यो भुला रहा है। तू अहं के वश होकर यहाँ वहाँ भटक रहा है। इस नश्वर सिर पैर वाले शरीर पर भिन्न-भिन्न नाम रख रहा है। वास्तव में तो तू पैदा ही नही हुआ है और न ही कही से आया है (क्योकि माना जाता है कि आत्मा न कभी जन्मती है और न कही से आती है बल्कि सर्वत्र फैली हुई है।) सचू साहब कहते हैं कि तेरा नाम तो कभी पैदा ही नही हुआ है और तू भी आरम्भ से नही है तात्पर्य यह कि चोला सदैव ही बदलता रहता है और कोई भी शरीर आरम्भ से स्थिर नही है।

"इश्क़"

सचल साहब ईरान के कवि इतार की तरह इश्क के अवतार थे। उन्होंने इश्क को ही अपना मज़हब समझा। इश्क की स्तुति करते वे मस्ती मे आ जाते थे। उनका कहना था कि परमात्मा ने इश्क़ का उपहार मात्र मनुष्य को ही दिया है और इश्क के द्वारा ही इन्सान हक (सत्य) से एक हो सकता है। किन्तु इश्क करना आसान नही हैं, सभी ऐरे गैरे प्रेम नही कर सकते केवल वीर ही इस बोझ को सहन करने की क्षमता रखते हैं; तथा प्रेम के बन्धन को सहर्ष स्वीकार करते हैं, और इस रास्ते पर आये हुए दुःखों का सहर्ष सामना करते है।

एक दिन बज़ार में, मैं देखा अजब नज़ारा।
तिफ्लाँ के हाथ में, अरी बुलबुल हुवा बेचारा।
पर बाल रिश्तः सेती, उसने किया हुआ मुहकम।
धड़पन से ओई न छूटे, करता है लख पुकारा।
हम हाल उसका पूछा, कह बुलबुला हमन सूँ।
किस जाइ आ पड़ा है, छोड़ीओ चमन हज़ारा।
तिस हँस हमन से गोया, होया है तुझ खबर नही।
आशिक जो कोई हुवा है, जाने हाल ओई हमारा।
दम इश्क़ जिसने मारिया, उस गल पड़ी है गारी।
सर जान सदक सजन पर, सचू सरीर सारा॥

प्रस्तुत उर्दू कविता मे कवि सचलजी ने प्रेम के बन्धन का वर्णन किया है और बताया है कि इस बन्धन मे बँध जाने पर, स्नेही दुःख मे भी सुख का अनुभव करते हैं और तड़पने मे ही उसे राहत मिलती है।

अर्थ: एक दिन मैंने बाजार मे एक आश्चर्यमय दृश्य देखा: एक बालक के हाथ मे एक बुलबुल थी जिसे उसने (प्रेम रूपी) धागे से कसकर बाँध लिया था बिचारी बुलबुल तड़प रही थी और लाख पुकारें कर रही थी पर उस बन्धन से मुक्त नही हो पा रही थी। मैंने उस बुलबुल से जाकर उसका हाल-चाल पूछा और कहा कि हजारो चमन छोडकर यहाँ कैसे आ पड़ी हो? यह सुनकर वह हँसकर मुझसे कहने लगी कि तुझे मेरे हाल का अहसास नही होगा, पर जो सच्चा आशिक है, वही मेरा हाल समझ सकता है। जिसने इश्क़ करने का दम भरा है, उसके गले मे (प्रेम की) फाँसी पडी रहती है। सचू साहब कहते हैं कि मेरा तन, मन तथा सर्वस्व प्रियतम पर न्योछावर है।

बिरह जी बाज़ार, जेका ड्रिसण ईंदी।
जेका जो ड्रिसन्दी तिजिलो तुंहिंजो, रहन्दी मन्झि ख़ुमार।
सौदो जा कन्दी सिर जो, विहन्दी सा कीन करार।
जे कहिं चिमको ड्रिठो तुंहिंजो, सा सिर ड्रीन्दी सरदार।
सचू इन्हीअ सीर मे, आहे कुसण जी कार॥

सचल साहब प्रेम की आग का वर्णन करते कहते हैं कि जो (जीवात्मा) प्रेम का बाजार देखने आयेगी, वह उसका तेज देखकर मस्ती मे मस्त हो जायेगी। जो सिर का सौदा करती है वह आराम से नही बैठ सकती। ऐ प्रियतम, जिसने तेरी चमक देखी है, वह अपना सिर तक दे देगी। सचू साहब कहते हैं कि इस (प्रेम के) रास्ते मे अपने को कत्ल ही कर देना है।

ड्रिसो इश्क़ जो इन्साफ, सभेई मजहब कयाईं माफु।
मके वञणु मकसदु केहो, करि अन्दरि तनु तवाफ़ु।
वादीअ में वहदत जे, जुडी लाम काफु।
'इलान्सान सिरी वअना सिरहु' गाजनि आहे गलाफु।
जोई मजहब इश्क जो, सोई आहे साफ़ु।
सचू इन्हीअ ग़ाल्हि मे खसु न आहे खिलाफ़ु॥

(सचल साहब इश्क को ही सच्चा मजहब मानकर कहते हैं) कि इश्क का इन्साफ तो देखो, कि उसने सभी मजहबो को माफ कर दिया।

है अर्थात् सच्चा इश्क मजहबी भेद नही मानता है। (ऐ मानव) मक्के मे जाने से क्या प्रयोजन ? अपने हृदय के भीतर ही परिक्रमा कर (क्योंकि परमात्मा का निवास वास्तव में वही है।) तू उस एक परमात्मा मे अपना अस्तित्व जोड़कर एक हो जा। "इन्सान मेरा (खुदा का) रहस्य है और मैं इन्सान का रहस्य हूँ," यही सच्चे वीरो का पहनावा है (अर्थात् ज्ञानी अपने को परमात्मा से अलग नही मानते हैं।) सचू साहब कहते हैं कि इस बात मे रत्ती मात्र भी विरोध नही है कि प्रेम का मजहब ही हर तरह से साफ और पवित्र है।

आशिक मरन्दा कीन की, रहन्दा कीन मकान मे।
दीवाने दरियाह जो, पीतऊँ प्यालो पुर करे।
अजर मन्झि अमरु थिया, उहे गद्रिया कीन जहान में।
गैब में जे गर्कु थिया, तिनि घाव गर्दन मे लग्गा।
ब्रोली ब्रोलनि था ब्री न का, उहे रहनि अलामान मे।
केई पढ़न्दे साल थिया, रोज़ा नमाजूं नफल नी।
तन कुठन कल कानका, बात्तन जे बयान में।
चीन विलायत घर करे, थिड़ी घारिनि कीनकी।
पसन हादी हक खे, रहन था बयाबान में।
हर्दम आहे दमु दोस्त द्रे, उहे सुन्हनि थासर अन्जाम मे।
सचूअ खे सोई मिलियो, ही गुर अचीत ज्ञान में॥

(प्रेमियो की विशेषताएँ बताते हुए सचल साहब कहते हैं) आशिक कभी नही मरते और न ही वे इस (संसार रूपी) मकान मे ही रहते हैं। वे (प्रेमरूपी) मस्त समुद्र से (प्रेम का) प्याला लबालब भर कर पीते हैं। वे ससार मे लीन न होकर अजर-अमर हो जाते हैं। रहस्यमय प्रेम समुद्र मे डूब जाने से, उनके गर्दन पर घाव लगे रहते हैं, फिर भी वे (प्रेम के सिवा) दूसरी कोई बोली नही बोलते हैं और अपने स्वरूप मे ही लीन रहते हैं। उन्हे अपनी ही इच्छा से रोजा रखते और नमाज पढते हुए अनेक वर्ष हो गए हैं। वे प्रेम के मारे हैं और उन्हे अपनी कोई सुधि नही रहती, वे अपने आप मे ही खोए रहते हैं। वे ससार में अपना घर बनाकर नही रहते बल्कि मरु भूमि (एकान्त मे) रहकर हक (सत्य-परमात्मा) को निहारते रहते हैं। उनके प्राण सदैव ही प्रियतम से जुडे रहते हैं और वे अपने को प्रेम पर न्योछावर करते हैं। सचू साहब कहते हैं कि मुझे भी प्रेम-ज्ञान का यह रहस्य प्राप्त हुआ है।

कियड़ो मस्त प्रियनि, जे खणी नाज़ मूँखे।
विसिरियो रोज़ो नाहे, याद नमाज़ मूँखे।
शौक़ शराब पियाँ, पिड़ वटि रातो ड्रीहाँ।
कोन्हे वरी काज़ी मुल्लाँ, जो को लिहाज़ मूँखे।
नेणे निन्डड़ी हराम, आहे वत रोज अज़ल।
सुरन्दो सोज़ सज़णु, जो आहे साज़ मूँखे।
वाई वात कुहाई, मुईअ खे जेका प्रियी।
अचे वरी हू-हू प्रियनु, जो थो आवाज़ मूँखे।
सचल मकसदु सारो, तूही वतु तूही अल्लाह
ड्रस को राजु, पहिंजे, जो को न्याज़ मूँखे॥

सचल साहब कहते हैं कि प्रियतम के नाज-नखरो ने मुझे मस्त बना दिया है अतः मैं रोज़ा रखना भूल गया हूँ तथा नमाज़ की मुझे याद तक नही रहती। मैं तो चौराहे पर खड़ा होकर प्रेम रूपी शराब दिन-रात पी रहा हूँ, मैं अब किसी काज़ी और मुल्ला का भी लिहाज़ नही करता हूं। मेरी आँखों की नीद अब हराम हो गई है तथा प्रियतम का सोज़ (दु:ख) से भरा हुआ बाजा ही मेरे लिए साज़ (वाद्ययन्त्र) बन गया है (तात्पर्य यह कि प्रियतम के विरह से उत्पन्न दुःख मे भी मुझे आनन्द आ रहा है।) मुझ गाफिला से प्रियतम ने जो कुछ कहा हैं, उसी की प्रतिध्वनि ही मुझे सुनाई दे रही है। सचल परमात्मा से प्रार्थना करते कहते हैं ऐ अल्लाह! तू ही मेरी शक्ति हो, तू ही मेरे जीवन का लक्ष्य हो, मुझे अपने रहस्य बताने की कृपा करो।

मुहबत जो मै मारियो मूँखे, काकियूँ कँहि साँ विरह विराहियाँ।
अकुलु इल्मु सभु छोड़ ड्रिनासी, इश्क ड्रिनो ओलारो।
अखियाँ खोलु त ज़ाहिर ड्रेखी, सीर सज़ण जो सारो।
पुर्झो पेरु ऐंड्राही पायो, होतु अयव हाकारो।
मुहबत मूँ मन्सूर विझायो, ग्रिचीअ जे विचु ग्रारो।
सन्भरु सचेड्रिना छोड साबाहा, विरह कयो जान वारो॥

ऐ सखियों! मुझे प्रेम की शराब ने तो मार ही दिया है। मैं किससे अपने विरह का दुःख बांटू। जब से इश्क ने हम पर वार किया है तब से इक्ल और इल्म (बुद्धि और शिक्षा) ही छूट गया है। (ऐ सखियों) जरा आंखे खोलकर देखो तो तुम्हे प्रियतम का पूर्ण दृश्य दिखाई देगा। मेरे प्रियतम बड़े ही प्रसिद्ध हैं, अतः सोच समझकर उसके

प्रेम मे ही पैर रखना (तात्पर्य यह कि मात्र परमात्मा से ही प्रेम करना।) इस प्रेम ने ही मन्सूर के गले मे फांसी का फंदा लगाया था। सचल साहब जीवात्माओ को सावधान करते कहते हैं कि अब मिलन की तैयारियाँ करना छोड दो क्योंकि विरह ने ही हमे जानवाला बना दिया है दूसरे शब्दो मे कवि प्रेम मे मिलन से ज्यादा विरह को ही महत्त्व देते हैं।

चुको इन्हीअ चाश जो, चखी थिया चरिया।
चरियो-खरियो लोकु चवे, आहिनि कीन चरिया।
भाग्री से भरिया, सचा सिक वारा थिया॥

सचू कहते है कि जो (प्रेमरूपी) चाश को चख लेते हैं, वे मस्त हो जाते है। ससार उन्हे पागल और दीवाने कहता हैं पर वास्तव मे वे पागल और दीवाने नही बल्कि भाग्यशाली हैं क्योकि वे सच्चे प्रेमी बन जाते हैं।

दिल दिलीर करे अचु आशिक, सुस्त यकीन न थीउ तू।
टोड़े शक गुमान सभेई, प्रेमी प्यालो पीउ तू।
मूतू कबल अन्त मूतू, सचू जीवण मे मर जीउ तू।

ऐ प्रेमी, तू अपना हृदय मज़बूत कर (प्रेम के रास्ते) मे प्रवेश कर। तू सुस्त मत बन बल्कि अपनी निष्ठा पर अटल रह और समस्त भ्रम-भुलावा तोडकर, प्रेम-प्याले का पान कर। तू जीवित ही इस ससार को त्याग दे तथा सांसारिक सभी वस्तुओ से अपने को अलग रख, जिससे ऐसा प्रतीत हो मानो तू इस ससार से जिन्दा ही मरकर निकला है।

दमु नफसक जी सचल सची, राह न ज्ञाणनि मूढ़ा।
हस्ती वारा कोट बणाइनि, कन्गुरा रखनि कूड़ा।
सचा राह उहे ही लहन्दा, ग्राल्हाइदा जे गूढा॥

सचल साहब कहते हैं कि मूढ, मन को सच्चे ढंग से नियन्त्रित करने का सही रास्ता जानते नही हैं, अतएव वे बड़े-बड़े महल बनाते है (प्रयत्न करते हैं) पर उस महल के सब कगूरे झूठे ही होते हैं। (तात्पर्य यह कि वे परमात्मा को पाने का सही मार्ग नही जानते हैं और झूठे रास्ते ही अपनाते रहते हैं।) (परमात्मा को पाने का) सच्चा मार्ग वे लोग ही ढूंढ पायेंगे, जो गम्भीरता से ज्ञान-भरी बाते करेगे।

देवी रखी दिलि में, जहिं मनु कयो मन्दिरु।
अन्दरई अन्दर, सचू पुजारी सो पुरि थियो॥

सचू कहते हैं जिसने अपने मन को ही मन्दिर बनाकर उसमें परमात्मा की स्थापना की है, वह सच्चा पुजारी भीतर ही भीतर ज्ञान से परिपूर्ण होता जाता है।

रे सिक साहबड्निो चवे, तोरे कोड़ें पढ़ी किताबु।
भज्ञो गैर गुनाह खू, सवे करी सवाबु।
सुणी दहशत दोज़ख जी, अखियों भरे आबु।
अथेई सभु हिजाबु, रे सिक साहबड्निो चवे॥

सचल जी कहते हैं कि बिना स्नेह के चाहे तू करोड़ों पुस्तकें पढ़ ले, पाप से दूर भागकर चाहे अनेक पुण्य के काम कर दे, नरक के भयानक दुःखों को सुनकर, चाहे तू आँखों से आँसू बहा दे किन्तु प्रेम के सिवा यह सब मात्र दिखावा ही है।

इश्कु इहो आईअ खाँ, सिखियो सामीअड़नि।
आशिक मथाॅ आग जे ओलारा ड्रियनि।
भम्भर बाहि इश्क़ में, सम्पूरनि सड़नि।
अचियो पवनि आड़ाह मे, सिर जो साॅग न कनि।
लाइक़ लालु थियनु, सचल खामी, लहसी लूसिजी॥

सच्चे फकीरों ने प्रेम का रहस्य भट्ठी से ही सीखा है (जिस प्रकार भट्ठी की आग भीतर ही भीतर जलती रहती है) उसी प्रकार सच्चे आशिक भीतर ही भीतर प्रेमाग्नि मे जलते रहते हैं (मुख से उफ् तक नही करते) वे अपनी जान की परवाह न कर इस प्रेमाग्नि मे कूद पड़ते हैं और उसमे सम्पूर्ण जल जाते हैं। सचल साहब फर्माते है कि ऐसे ही लाल (आशिक) जलकर, भुनकर और दग्ध होकर (परमात्मा को पाने के) योग्य बनते हैं।

इश्क़ जनी साॅ गमज्ञो लातो, इल्मु न से ब्रियो पढ़दा।
मन्झि कुफर इस्लामु मजाहिब, आशिक मूर न अडन्दा।
मारे नारो हक़ जो सचा, सूली सिरड़ा धरंदा॥

जो प्रेम के नाज-नखरो के चक्कर मे पड गए हैं, वे कदापि दूसरी विद्या व कला का अध्ययन नही करेंगे। सचल जी कहते हैं कि सच्चे स्नेही, कुफर, इस्लाम तथा अन्य मजहबो मे कभी भी नही उलझते हैं बल्कि सत्य का नारा लगाकर शूली पर चढ जाते हैं।

मचु मचायो मन में ब्राफ न ब्रहरि विझनि।
वतनु वेग्राणा विरह मे, नेणे निन्ड न कनि।
मुद्रिका सेई सोज जा, भिनीअ रातु भरनि।
पंहिजे पिर मे पाण खे, था पिरतियों पचाईनि।
सिखियो सामीअड़नि, सचल इश्कु इहो सभु आईअ खाँ॥

सच्चे प्रेमी हृदय मे प्रेम की आग जलाकर उसकी भाप तक बाहर नही आने देते हैं (अर्थात् प्रेम को अपने हृदय में ही छिपाकर रखते हैं।) वे विरह में व्याकुल होकर, यहाँ वहाँ भटकते रहते हैं तथा उनकी आँखो मे नींद तक नही रहती है। वे आधी रात को विरह से व्याकुल होकर, दुःख भरी आहे भरते हैं और खुद ही अपने आपको सान्त्वना देते रहते हैं। सचेल साहब कहते हैं कि इन प्रेमियो ने ऐसा प्रेम भट्ठी से ही सीखा है (क्योंकि भट्ठी की आग भी भीतर होती है, बाहर बिल्कुल दिखाई नही देती है।)

मुल्ला जे मुहबत जी, वटी हिक पीएँ।
छदे मक्तब मारिका, हून्दि सूरीअ सिरु ड्रिए॥
कीअं थो हितु जिएं, रे सिक साहबड्रिनों चवे।

ऐ मौलवी, यदि तू प्रेम की एक प्याली पिएगा, तो फिर तू सब तरह के मक्तब और मार्के छोड़कर शूली पर सिर देने के लिए भी तैयार हो जाएगा। साहबदिनो कहते हैं, कि बिना स्नेह के तू (मौलवी) किस तरह जी रहा है?

मौतु त माणहूनि खे, आहि आशिकनि वड्डी ईद।
पी प्याल्रो प्रीति जो, थिया शौक वड्ड शोरीद।
तोरे थियनु शहीद, साहबड्रिनो त बि पुछनि वाट वसाल जी॥

साधारण मनुष्यो के लिए जो मौत है, वह प्रेमियो के लिए ईद है (तात्पर्य यह कि जिन मुसीबतो से साधारण लोग डरते हैं, उन्ही मुसीबतो में प्रेमियो को आनन्द मिलता है।) वे बड़े शौक से प्रेम का प्याला पीकर मस्त हो जाते हैं। यद्यपि (प्रेम मे) उन्हे शहीद भी होना पड़ता है, फिर भी वे प्रेम का ही रास्ता पूछते रहते हैं।

प्रार्थना

सचल साहब विनय तथा नम्रता की मूर्ति थे। वे जानते थे कि परमात्मा की दरबार मे अभिमान एवं घमण्ड की भावना से प्रवेश नही

मिलता है, अतः वे परमात्मा से अनुनय-विनय करते है। अपने दोषो का बखान कर, परमात्मा की अनुकम्पा की याचना करते है।

आऊँ ब्रान्हनि जी ब्रान्ही, आहियाँ ऐबदार सञ्रण।
उमर सज्रियाई कूड़ कमायमि, बख्श मूँखे इहो जानी।
रोज़ अज़ल खूँ अब्द ताईं, आहि गिचीअ मझि गानी।
द्रोह द्रिन्नायूं द्रिसु न मुंहिंजियूँ, मुहब करी महरबानी।
कीअं सचूअ जे दिल साँ दिल्बर, दोस्त कयव दीवानी॥

(जीवात्मा परमात्मा प्रियतम से कहती है) ऐ प्रियतम, मैं आपके सेवको की भी दासी हूँ एव दोषो से परिपूर्ण हूँ। ऐ प्राणाधार, मैंने जीवनपर्यन्त झूठ और कपट की ही कमाई की है, पर अब मेरे उन दोषों को क्षमा कर दे। आदि काल से अनन्त काल तक मेरे गले मे (जन्म-मरण की) फाँसी पड़ी हुई है। मेरे दोषो और बुराइयो को न देखकर मुझ पर अपनी कृपा और प्रेम कर। सचू कहते हैं ऐ प्रियतम, आपने मुझ जैसे मूर्ख से कैसे प्रेम किया है?

तुंहिंजी आहियाँ आऊँ, पंहिंजी करें ज्राणु।
जाड्रे ताड्रे तू ही दिल्बर, काड्रे काहियाँ आऊँ,
हून्दियसु आव्हाँ साणु।
आऊं कनीज़ क तूं ता साईं, सञ्जु न साहियाँ आऊँ
चेटक कयसु अञाणु।
सिकनि केई तो लइ साँवल, हिक ता छाहियाँ आऊँ
सदिके कयमु प्राण
तो हो ब्राहिरि सुन सचू रे, को दम नाहियाँ आऊँ,
मुंहिंजो झलिज ब्राणु।

(जीवात्मा परमात्मा से विनती करती हुई कहती है) हे प्रभो, मैं तेरी हूँ, अतः तू मुझे अपना ही समझ। ऐ प्राणाधार, तू तो सर्वत्र हो, फिर मैं कहाँ-कहाँ दौड़ूँ, मैं सदैव तेरे ही साथ हूँ। मैं दासी हूँ, आप मालिक हो, पर मैं अपना नाता नही निभा पाती हूँ क्योकि (माया रूपी) जादू ने मुझे अनजान और अज्ञानी बना दिया है। ऐ साँवल, एक मैं ही नही बल्कि अनेक (जीवात्माएँ-) आपके लिए तड़पती रहती हैं, अब तो मैंने अपने को आप पर न्योछावर कर दिया है। सचू कहते हैं, आपके सिवा मेरा हृदय सूना सा लगता है क्योकि आपके सिवा मेरा कोई अस्तित्व नही है अतएव आप मेरी रक्षा करें।

तूँ त पाणही थो साईं ञाणी, केहो हाल चवाँ तोखे हाणे ।
दिल दीवानी कई असाँजी, मुहब अन्हांजी माणे ।
ड्रोहनि ड्रे ड्रिसु कीन असांजे, साईं तूं पाण सुञाणे ।
दर्द मन्दीअ जी दिल तोईं साँ, अखिनि अड़ाई आणे ।
कड्हिं असाँ वटु ईन्दे दिल्बरु, वेठी विझाँ वेञाणे ।
सुवाल सचूअ जो आहे इहोई, तुंहिंजो इश्कु न शाल उकाणे ॥

ऐ मालिक, आप मेरा हाल जानते ही हैं, अतः मैं अपने हाल का क्या बखान करूँ । आपकी दया व अनुकम्पा का आनन्द लूट कर मेरा हृदय दीवाना हो गया है । ऐ प्रभो अपने (विरद को) पहचानकर, मेरे दोषों की ओर मत देखिए । इस दर्द की मारी ने आपसे ही आँखें लड़ाई हैं (प्रेम किया है।) ऐ प्राणाधार, मैं आपका ही रास्ता देखती रहती हूँ, आप कब यहाँ आयेंगे ? सचू की मात्र यही याचना है कि आपके प्रति उसका प्रेम कभी भी समाप्त न हो अर्थात् आपके प्रति प्रेम सदैव ही बना रहे ।

१ तोखे जानी न जुञाए थो, रुसणु निमाणनि साँ ।
जेही तेही ताँहिंजी, आऊँ असुलु खो आहियाँ ।
अन्हांजे ता अचण जो आसिरो हद्रि न लाहियाँ ।
सिर ते सोज़ फराक़ जा, ही मोन्हिड़ा वसाए थो ॥
२ परे करि न पाण खूँ, ड्रे दिल्बर दिलासो ।
तो रीअ सुझे को न को, मूखे प्री ब्रियो पासो ।
जेहो तेहो असुल खूं, ही सन्दवे सद्राए थो ।
३ सुखनि मथे दुखड़ा, थी मुहब मटायाँ ।
गमु खुशीअ खो अग्रिरो, आऊँ भलेरो भायाँ ।
मुंह मुक़ाबल ताँहिंजे, इहो गून्दरि गद्राए थो ॥
४ अङण निमाणी जे तूँ अचिजु अल्लाह काण ।
हेकर होत करीज तूँ यार भेरो मुंहिंजो भाण ।
सोज़ तंहिंजो सुप्रीं, हितु साँवल सिझाए थो ॥
५ वठी वेठी आहे, इहो वादो वेचारी ।
ग्रिचीअ पाए कपड़ो, होअ करे थी ज़ारी ।
सचू सगि अन्हांजो, हित पाँधी पुछाए थो ॥

ऐ प्राणाधार, तुझे मुझ गरीब से रूठना नहीं सुहाता । मैं जैसी

हूँ, वैसी सदैव से आपकी ही हूँ। आपके आने की आशा मैं कभी भी नही छोडती हूँ, और विरह के दुख से मै आँसू बहाती रहती हूँ।

ऐ दिलदार, मुझे अपने से दूर मत कीजिए तथा मुझे सहारा दीजिए क्योकि मुझे आपके सिवा कुछ भी नही सुझाई देता है। मै जैसी हूँ, वैसी सदैव ही आपकी कहलाती हूँ।

प्रेम के कारण मैं सुखो के बदले दुख ले रही हूँ। मैं दु:खो को सुखो से ज्यादा हितकारी मानती हूँ क्योकि दु:ख और गम ही मुझे आपसे मिलाते हैं।

ऐ भतार, परमात्मा के लिए इस याचिका के आँगन मे आना। एक बार अवश्य ही मेरे पास आना क्योकि आपके विरह का दुख मुझे बुरी तरह से जला रहा है।

यह बिचारी (जीवात्मा) तेरे वादे को लिए गले मे कपडा डालकर बैठी है और विनय कर रही है, कि सचू आपका ही कुत्ता है, जो आपके दूतो (ज्ञानी पुरुषो) से आपके विषय मे ही पूछता रहता है।

पाए ड्रोह पहिंजे पान्द मे, आऊँ दोस्त तो दरि आइयाँ।
रातो ड्रीहा पहिंजे रूह मे तुहिंजा सवे गुण गाइयाँ।
ड्रोठ ड्रोरापो बुधी, आऊ पलो तोखे पाइयाँ।
जारियूँ जैफीअ मूँ करे, प्री तोखे परिचाइयाँ।
जा तो पणी पीजार जी, साखहि लिङनि खे लाहियाँ।
सभि गाल्हि पहिंजें सिर जी, तोखे सचू समझाइयाँ।।

ऐ प्रियतम, मैं अपने दोषो को आँचल मे डालकर तेरे द्वार पर आई हूँ। मैं दिन-रात अपने हृदय मे तेरे सहस्त्र गुणो का गान करती रहती हूँ। लोगो के ताने सुनकर, मैं तेरे आगे अपना आँचल फैलाती हूँ। ऐ परमात्मा, अपनी कमजोरियो के कारण रो-रो कर अब मैं तुझे रिझाती हूँ। तेरे पैरो की जूती की मिट्टी मैं अब अपने शरीर पर लगाऊँगी। सचू कहते हैं कि मैं अपनी समस्त बाते अब तुझे ही समझाऊँगा।

दिल जूँ गाल्हियूँ, आऊँ ता तोसाँ ओरियाँ।
गुझियूँ गाल्हियूँ करियाँ किनि साँ, तक वेठी थी तोरियाँ।
सगो तुहिंजीअ सिक जो, साहु अन्दरि थी सोरियाँ।
सिक अव्हाँ जी सिर ते, ड्रेहु सारोई ड्रोरियाँ।
रातो ड्रीहां काणि अव्हाँजे, चित्त मे चर्खो चोरियाँ।
अङण सचूअ जे आउ तूँ प्यारा, पाण घणोई घोरियाँ।।

हे प्रियतम, मैं अपने मन की बातें तुझ से ही करूँगा; भला, गूढ व रहस्य भरी बातें मैं (तेरे सिवा और) किससे करूँ, इसलिए मैं तेरा ही इन्तज़ार कर रहा हूं तेरे प्रेम का धागा मैं अपने प्राणो मे संजोकर बैठा हूँ। इस स्नेह मे बेचैन होकर, मैं तुझे पूरे ससार मे ढूँढ़ रहा हूँ। मैं दिन-रात अपने चित्त मे तेरी चर्चा का चर्खा चलाता हूँ। सचू कहते हैं; ऐ प्यारे, यदि तू मेरे आंगन मे आएगा तो मैं अपने आपको तुझ पर न्योछावर कर दूंगा।

देसु छदे परदेसु वियो, हाणे होतु मूंखे हीअं मारे।
उन्हनि ब्राझूँ सरितियूँ, हो गून्दर ड्रीन्ह गुज़ारे।
रातो ड्रीहां रूहे मुन्हिंजो, साथ धणिनि खे सारे।
दुआ करीजो ज़ेद्रियूँ, शाल विहन्मि कीन विसारे।
सारियो सूरत सज्जणनि, हो ग्गाल्हि असॉ खे ग्गारे।
वियो वेसाही निकिरी, चार घडियूँ पँज घारे।
राहाँ अचणु उन जूँ, सचू नितु निहारे॥

पुन्हू (परमात्मा) के विरह मे व्याकुल होकर ससुईरूपी जीवात्मा कहती है) मेरा भतार, अपना देश छोड़कर, मुझे बेचैन बनाकर, परदेश चला गया है। ऐ मेरी हमवयस्क सखियो, उनके किये हुए उपकारो की याद कर मैं दुखिया दु ख के दिन बिता रही हूँ। मेरे प्राण दिन-रात प्रियतम के साथ बिताए हुए समय को याद कर रहे हैं। ऐ सखियो, मेरे लिए यही दुआ माँगों ताकि वह मुझे भूलाकर न बैठ जाए। प्रियतम की सूरत को याद कर, मैं (दु:ख मे) गलती जा रही हूँ। जिस प्रियतम पर मैंने विश्वास किया था, वही चार पाँच घड़ियाँ मेरे साथ बिताकर चला गया। सचू कहते हैं कि मैं सदैव ही उनके आने की प्रतीक्षा किया करता हूँ।

सारियो ड्रीह रूऑ रे, हुयसि जेके होत पुन्हूअ सां।
ब्रुधण वारो नाहि को, जंहि खे हालु चवाँ रे।
क़ासुदि अचे को ओड्हूँ, पेरे तंहि पवाँ रे।
डुखायो ना ड्रील खे, अदियूं अज़ु अव्हाँ रे।
उन्हनि ब्राझूँ सरितियूँ, नितु नितु सूर नवाँ रे।
मारियो महबूबन जे, तलबु नाहि तव्हाँ रे।
ग़र्ज़ न रखाँ लोक जो, हिकु साईं हुवनि सँवाॅ रे।
सचू ब्राझूँ सोज़ जे, बियूँ लातियूँ कीन लन्वाॅ रे॥

(ससुईरूपी जीवात्मा विरह मे व्याकुल होकर कहती है) जो दिन, मैंने अपने पुन्हू-प्रियतम के साथ बिताए उन दिनो की याद कर मैं रोती रहती हूँ। मेरी बात सुनने वाला कोई नही, जिससे मैं अपनी दशा का बखान करूँ। यदि प्रियतम का कोई सदेशवाहक ही मेरे पास आए, तो मैं उसके चरण स्पर्श करूँ। ऐ सखियो (मेरा मज़ाक कर) मेरा मन मत दुखाओ; क्योंकि मैं पहले ही उनकी कृपादृष्टि की याद कर सदैव ही नए नए दुःख सहन करती रहती हूँ। तुम लोगो को तो प्रियतम के प्रेम ने घायल किया ही नही है (अतएव तुम लोग मेरा दर्द क्या जानो।) यदि मेरे प्रियतम मेरे साथ सीधा व्यवहार करते, तो मैं ससार की परवाह तक न करती।

सचू कहते हैं कि मैं व्याकुल होकर भी प्रियतम की अनुकम्पा के बखान के सिवा दूसरी बातें नही करता।

कड्हिं क़ासुद वरी वीदे, देस ब्रारोचल जे मियाँ।
खबर खुशीअ जी वठी उताहूँ, सिधो असाँ ड्रे की ईंदे।
दर्द मन्दीअ जे दिल खे हाणे ड्राहा दिलासो ड्रीन्दें।
सुप्रियुनि जे ग़ाल्हि ग़ुझीअ जो वभी सो वाकुफ थीदे।
सोज़ु फ़राक़ु जो यार सचूअ जो, तूँ ही नियापो नीदे॥

(ससुईरूपी जीवात्मा प्रियतम के दूत को सम्बोधित करते हुए पूछती है) ऐ सदेशवाहक, तू बारोचल पुन्हू (परमात्मा) के देश से फिर कब वापस आओगे? कब वहाँ का सुखदायी-सदेश लेकर शीघ्र ही हमारे पास आओगे? ऐ भद्र पुरुष कब मुझ दर्द की मारी को आकर सान्त्वना दोगे तथा प्रियतम की गूढ़ रहस्यमयी बातो से भी अभिज्ञत होगे? सचू कहते हैं कब मेरे विरह से दु:खी मन का सदेश प्रियतम तक ले जाओगे?

मूँखे तुंहिन्जड़ो आहि, अचण जो वड्रो आसिरो।
जोड़े छड्रियुम जायूँ, लिवं लिव मे तो लाइ।
कीन जुड़े ब्रियो जीअ में, तुंहिजी सिक सिवाइ।
कड्हिं कड्हिं थो ड्रिसाँ, तोखे जाइ बजाइ।
हिति गुज़ारे ड्रीन्हडा, सचू तुंहिजे साइ॥

ऐ प्रियतम, मुझे तेरे आने का पूर्ण विश्वास है यही कारण है कि मैंने अपने रोम-रोम मे तेरे रहने की जगह बना ली है। मेरे हृदय में तेरे स्नेह के सिवा कुछ भी नही है। कभी-कभी तो मै तुम्हे सर्वत्र देखता हूँ। सचू कहते हैं कि मैं यहाँ तेरी याद का सहारा लेकर अपने दिन काट रहा हूँ।

हाणे मुँखे प्रियुनि पोइ, जेद्रियूँ जियणु जँजालु थियो।
वेठी वाटेड़ियुनि ते हीअ, रातो द्रीन्हाँ रोए।
विहणु हिन जो विहि थियो, हू सद्रे वियड़ा लोए।
दर्दमन्दी दान्हूँ करे, आहि होतनु रीअ होए होए।
काकियो मूँ द्रे केच खूँ, शाल क़ासुदि अचे कोए।
सचू कन्दे साल थिया, वरेतियो वोए वोए।

ऐ मेरी हमवयस्काओ, प्रियतम के चले जाने के वाद, मेरा जीना ही जजाल हो गया है। मैं दिन-रात उनके रास्ते पर बैठकर रोती रहती हूं। जब से प्रियतम देश छोड़कर चले गए है, तब से, मेरा उठना-बैठना ही जहर हो गया है। मैं दर्द की मारी प्रियतम के विरह मे हाय-हाय कर रही हूं। ऐ सखियो, काश केच (पुन्हू का निवास स्थान) से कोई सन्देशवाहक मेरे पास आए। सचू कहते हैं, ऐ सौभाग्यशाली सखियो, प्रियतम की प्रतीक्षा करते करते मुझे वर्ष बीत गए है।

हींअ ता ख़बर कहि साँ करियाँ, ही ही नी हैड़े हाल जी।
आहे मिड़ियाई महबूब खे, आगह मुँहिजे अहवाल जी।
मारियोमि फलक फ़ाक जे, कहि दरि द्रियाँ हीअ दान्हड़ी।
तालिब आहियाँ दीदार जो, नाहे तमै मिल्क ऐ मालजी।
आम इहे नितु था करीनि, ताना मथे मूँ तुहिमताँ।
आहे न ब्री कंहि खलिक खे, ख़ासी ख़बर हिन ख्याल जी।
आखिर खिजल से खर थीदा, द्रिसी युगानाई यार जी।
हिन तौ हिजर मुआफी कन्दा, वाई थीदी वसाल जी।
जेके ब्रियाईअ मे ब्रूद्रा, रहन्दी न नीशानी तिन्ही।
साहब मदद सिघड़ी कन्दा, सचूअ सन्देबि सुवाल जी॥

ऐ सखी, मैं अपने दुःख की चर्चा किससे करूँ? क्योकि मेरे प्रियतम तो मेरे दुःखी हालत से भली-भाँति परिचित है। मुझे विरह के दुःख ने मार दिया है, किन्तु यह शिकायत मैं किसके द्वार पर जाकर करूं। मैं तो उनके दीदार की इच्छुक हूँ, मुझे धन-धाम की बिल्कुल तमन्ना नही है।

साधारण लोग सदैव ही मुझ पर ताने कसते रहते हैं तथा आरोप लगाते रहते हैं, उन्हे मेरी भावनाओ की कोई चिन्ता और फिक्र नही है।

मेरी युगो की मित्रता देखकर आखिर ये गधे (अज्ञानी या मूर्ख जीव) लज्जित होगे क्योकि प्रियतम मेरे सभी अपराध क्षमा कर देगे और मेरे मिलन की चर्चा ही होती रहेगी। जो (अज्ञानी) द्वैत मे डूबे हुए हैं

उनका कोई चिह्न तक न रहेगा। सचू कहते है कि मेरी याचना को पूर्ण करने के लिए अवश्य ही मेरे मालिक मेरी पूरी तरह से सहायता करेगे।

यार पुन्हू करि पहिजे हवाले, हीअ न घुरिजे यार जुदाई।
आहियाँ इयाणी ऐबनु हाणी, दोस्त वठी वञु नाल निमाणी।
साहु सिके थो तो लाइ सदाई, अव्वलु मूसी नीहडो लायै।
गोलीअ सी पहिजो पाण गड्डायै, पोइ न जुग्राए बेपरवाही।
तोरे लाइकु तुहिंजे नाहियाँ, ता भी ओड़क तुहिंजी आहियाँ।
केचनु अग्रियाँ कन्दियसु कमाई, रोजु अञ्हाँ जी
राह निहारियाँ।
हर हर आबु हन्जूँ थी हारियाँ।
होत अचण जी करि का वाई, कोडे तो लाइ काँग उड्डायाँ।
पलु पलु पोथीदार पुछायाँ, ड्रियनु ड्रिहाडी वसुल वधाई।
जहिं ड्रीन्हु जानी मूँ वटु इंदे, 'साहबड्रिनो' करे सड्डीन्दे।
तहिं ड्रीन्हु थीन्दुस जानि फिदाइ॥

(ससुईरूपी जीवात्मा प्रार्थना करती हुई कहती है—) ऐ पुन्हू ! मुझे अपनी शरण मे ले। मुझे इस तरह की जुदाई देना, तुझे उचित नहीं है। मैं बुद्धिहीन हूँ, मूर्ख हूँ तथा दोषो से भरी हुई हूँ, फिर भी तू (अपना विरद देखकर) मुझे अपने साथ ले चल क्योकि मेरे प्राण तेरे लिए तड़प रहे है।

तू ने प्रथम मुझसे प्रीति की, मुझ दासी को अपना बनाया, फिर (मेरे प्रति) तेरी यह लापरवाही उचित नही है।

मैं यद्यपि तेरे योग्य नही हूँ, फिर भी मैं अन्त तक तेरी ही दासी रहूँगी तथा केचियो (केच के रहनेवाले पुन्हू के सम्बन्धी) के लिए हर तरह की सेवा करूंगी।

ऐ प्रियतम; मैं रोज तेरी ही राह देखती हूँ; और आँखो से निरन्तर आंसू बहाती रहती हूँ, अत अब तो आने की कुछ चर्चा कर।

मैंने तेरे लिए करोड़ो कौए उडाए हैं तथा पल-पल पडितो से पूछ-ताछ कर रही हूँ, वे रोज तेरे मिलन की बधाइयाँ देते हैं।

ऐ प्राणाधार जिस दिन तू मेरे पास आयेगा और मुझे "साहबड्रिनो" (सचल) कहकर पुकारेगा, उस दिन मैं अपने प्राण तुझ पर न्यौछावर कर दूंगा।

तूं आऊ असाँ वटु थारु ।
तुंहिंजे अचण काणु जीअड़ो जुखे थो ।
तुंहिंजे अचण काणु साहड़ो सिके थो ।
वसु न वहणु खूँ करनि, नेणनि सन्दा नार ।
माठु कन्दे ई चाढ़िया, बिरह असाँ ते वार ।
प्री पारिजि पाहिंजा, जे कयें कौल क़रार ।
चुमी चश्मनु ते खन्यमु, तुंहिंजो इश्क़ु अल्लाद तोहरि ।
वाह जेहूँ आऊ भाइया, जो दमु तो हूँ धारि ।
रातो ड्रीन्हां ताञ्हिजो, आहे सचूअ सारि सभारि ॥

ऐ प्रियतम, तू हमारे पास आ क्योकि तेरे कारण हृदय व्याकुल है तथा प्राण तड़प रहे हैं। हमारी आंखो से आँसुओं की धारा का बहना रुकता ही नही है। विरह ने चुपचाप हम पर दुःखो का बोझ लाद दिया है। ऐ प्रियतम, जो प्रतिज्ञाएँ और वादे किये थे, उन्हे पूरा करना। ऐ अल्लाह; मैंने तेरे प्रेमरूपी उपहार को सिर आंखो पर उठा लिया है अतः जो पल मैं तेरे सिवा बिताती हूँ, वह पल मुझे आग के समान (जलाने वाला) लगता है। सचू कहते हैं कि मुझे दिन-रात आपकी ही याद आती रहती है।

प्री आहिन पारि, आऊ ताहिति ड्रीह गुजारियाँ ।
वेही विसारण इतही, आहि कमीणनु कारि ।
इश्क वारनि खे जेड्रियूँ, ब्रोड़े हड्रि न ब्रारि ।
दड़िका ड्रियो न दरियाइ जा, तरी वीन्दसि तारि ।
ईन्दियूँ विरह वारियूँ, अदियूँ ड़ी हिन आरि ।
सचूं विधो सुप्री, जानी ड़ी कंहि जारि ।

मेरे प्रियतम तो उस पार हैं और मैं यहाँ (ससार मे) अपने दिन गुजार रही हूँ। वास्तव मे उन्हे भूलकर यहाँ बैठना कमीनो (दुष्टो) का ही काम है। ऐ सखियो, इश्क करनेवालो को पानी भी नही डुबो सकता है अत. मुझे समुद्र मे डूब जाने के भय से भयभीत मत करो मैं तो इस बहाव से तर जाऊँगी (पार उतर जाऊँगी, डूब नही जाऊँगी) ऐ बहनो, इस प्रेम के चक्कर मे केवल प्रेम की मतवाली (आत्माएँ) ही प्रवेश करेगी।

सचू कहते हैं, ऐ प्रियतम प्राणाधार, आपने मुझे किस आग मे डाल दिया है?

दिलि नाहे सा मुन्हिजे वसु, डी जेंढ़ियूं कीअं करियाँ।
इन्हनि अखिड़ियुनि खे, नाहि डि़सण खूं बसु।
असुल लाचो आहियाँ, पोडेचूं परवसु।
काकियूं आहि न आम सां रूह मुन्हिजड़ो रसु।
ब्राझूं वेढ़ दोस्त जे, ब्री गाल्हि न लगे कसु।
साहु सचूअ जो सरितियूं, दोस्त वठी कयो वसु।

ऐ सखियो, मेरा मन मेरे वश मे नही है, मैं क्या करूँ? मेरी ये आँखें प्रियतम को देखने से कभी भी सन्तुष्ट नही होती। ऐ पडोसिन, मैं हमेशा से परवश और लाचार हूँ। मेरा मन संसार मे नही लगता है। प्रियतम की बातो के सिवा मुझे कोई दूसरी बात सुहाती ही नही है। सचू कहते हैं, मेरे प्राणो को प्रियतम ने अपने वश मे कर लिया है।

करि याद याहू या अल्लाह, दिल मे, धरीनि सूरत अल्लाह।

१ दिल में तकियो दिलदार जो, ऊन्हो बहर इसरार जो।
सुध लहु समझ सिर यार जो, दिल में धरीनि०
२ आशिकु सदाईं जे अदा, जिन्द जानकर फानी फिदा।
ताँ तू पसी साजनु सदा, दिल मे धरीनि०
३ छो थो वञी ब्रीअ पार तूं, दिल जो दिलबर हिकु धार तूं।
नदु नफ्सु मुरितदु मारि तूं, दिल मे धरीनि०
४ वठु पार पिर जो पेचिरो, सुहबतु कन्दइ सिक सोझरो।
ववरिज अथेई वटि वेझिडो, दिल मे धरीनि०
५ दिल में दगाई दूरि करि, मन में जिकरु मशहूर करि।
मुहबनि सन्दो मजकूर कर, दिल मे धरीनि०
६ हथि दोस्त जे खूनी खन्जरु, आशिक ड्रीयनु रीअ साँग सिर।
पुरु या पियनु जोको जहरु, दिल मे धरीनि०
७ सूरीअ मथे सूरीह वञनि, मानंद परवाने पचनि।
खतिरो न सिर जो खौफु कनि, दिल मे धरीनि०
८ सन्दिरो जनी सच जो ब्रधो, तिनिखो कयो सूरनि सन्धो।
तहकीक तिनि वोड़े लधो, दिल मे धरीनि०
९ साहबड्निन जो सुवाल तूं, राहमु बुधिजु अहवालु तूं।
फज़लूं रसिजु फेअल्हालु तूं, दिल मे धरीनि०

(सचू मानव को उपदेश देते हुए कहते हैं) ऐ मानव, तू परमात्मा की याद कर तथा उसकी सूरत हृदय मे धारण कर। यह (ससाररूपी) रहस्यमय सागर बडा ही गहरा है, वहाँ सोच समझ कर प्रियतम का अवलम्बन हृदय मे लेकर, उस (प्रियतम) की जानकारी प्राप्त कर तथा उसे हृदय मे धारण कर।

ऐ मित्र, यदि तू अपने को आशिक कहलाने का इच्छुक है, तो अपने इस नश्वर जीवन को उस पर न्यौछावर कर दे, तब ही तुझे नित्य साजन का दीदार होगा।

(ऐ मानव) तू दूसरी ओर क्यो जा रहा है ? तूं एक ही परमात्मा को हृदय मे धारण कर। ऐ कपटी, तू अपने मन के विकारो को मार और मन मे प्रियतम की मूर्ति धारण कर।

ऐ मित्र, प्रियतम के रास्ते को ही अपना, क्योंकि स्नेह का सग ही (तेरे मार्ग को) प्रकाशित करेगा (जिससे तुझे पता लगेगा कि) तेरा भतार, तेरे बिल्कुल समीप ही है।

(ऐ आशिक) तू अपने मन से छल कपट दूर कर दे तथा हृदय मे उस प्रसिद्ध प्रियतम के गुणो का गान कर तथा प्रेमियो का सा आचरण कर और मन मे उसकी सूरत धारण कर।

सच्चे आशिको की विशेपता बताते हुए कवि सचल जी कहते हैं) यद्यपि प्रियतम के पास रक्त का प्यासा खन्जर भी रहता है, तो भी सच्चे प्रेमी बिना हिचक के अपना सिर दे देते है तथा जहर (दुःख) के लबालब प्याले भी बडे शौक से पी जाते हैं और हृदय मे उसकी मूर्ति धारण करते हैं।

सच्चे शूरवीर (ज्ञानी और प्रेमी) परवानो की तरह शूली पर चढ कर अपने को कुर्बान कर देते हैं वे अपने जान की परवाह रत्ती मात्र भी नही करते हैं और हृदय मे परमात्मा की सूरत धारण किये रहते हैं।

जो सत्य को पाने के लिए कटिबद्ध हैं दु.ख दर्द भी उनके सामने आने की हिम्मत नही करते परिणामत वे सत्य को ढूँढ ही निकालते हैं।

ऐ कृपालु, तू साहबड़िने (सचल) की याचना दयापूर्वक सुनना तथा उस पर अपनी अनुकम्पा करते ही रहना।

घोडिया छड्डि ऐश आलिम जा, बिना दीदार दोस्तन जे।
घोड़िया छड्डि बाग बिहशतनि जा, बिना दीदार
दोस्तन जे। (टेक)

१ पसी सूरत सुप्रियुनि जी, मल्क हूरॉ करनि हैरत
तोरे सिज चन्ड जी तिलोइत, निहारण मुन्ह सजन जी।

(ऐ मानव) प्रियतम के दीदार के सिवा, यदि तुझे संसार के ऐशोआराम मिलते है, तो उन्हे न्योछावर कर दे। प्रियतम के दीदार पर स्वर्ग के बाग-बगीचो तक को वार दे (तात्पर्य यह कि प्रियतम के दीदार के सिवा, सासारिक सुख और आराम अर्थहीन ही है।)

प्रियतम का रूप देखकर अप्सराएँ तथा फिरिश्ते भी आश्चर्य चकित हो जाते है। उन्हे सूर्य-चन्द्रमा के उदय की सुन्दरता मे प्रियतम का ही सौन्दर्य दिखाई देता है।

२ अजब लँव जा प्रियुनि लाई, सुती वेठी वणे साई।
अचे खुश कान ब्रो वाई, सिकम सिक साह साजन जी।

प्रियतम ने जो अनोखी प्रीति की है, उससे वह (प्रियसी जीवात्मा) प्रसन्न होकर अपनी सुध-बुध खो बैठी है। उसकी जबान पर, "मेरे प्राण प्रियतम के लिए तडप रहे है" इस वाई (बात) के सिवा दूसरी कोई बात नही आ रही है।

३ महल माडियूँ दुनिया दौलत, हूराँ हुजिरा जेवर ज़ीनतु।
ईन्दइ कम कोन मे कयामत, बिना सुहबत सुप्रियनु जे।

वास्तव मे ससार का वैभव, महल, ऊँचे-ऊँचे मकान, सुन्दर स्थान, आभूषण और सौन्दर्य प्रियतम के सग के सिवा, कयामत के दिन किसी भी काम नही आते हैं। (अर्थात् कयामत के दिन परमात्मा के सिवा, सांसारिक साधन किसी भी काम नही आते हैं।)

४ साहबडिनः दवा दारूँ, मन्झूँ मुहबनि सन्दो सूरनि।
ड्रिठे डुख दूर वहम वञनि, निहारण दे निमाणनि जे।

सचल साहब कहते हैं कि महबूब की मुहब्बत के कारण मिले हुए दुःख दर्द, दवा-दारू से दूर नही होते, बल्कि परमात्मा की कृपादृष्टि से ही सभी तरह के दुःख, वहम तथा भ्रम नष्ट होते हैं।

मूँखे यारु मिलियो, जीऊ जानि जिनी साँ जारि लगो।
लंघिया असाँ तिऊँ ड्रीह खिजाँ जा, सरितियूँ अज़ु
बहारु लगो।
हुवासी ग्रोलाऊ असी जहिंजा, सो ता अज़ु शिकारु लगो।
ग्रलीअ ग्रलीअ मे तालु तमाशा, चहचिटो चौधार लगो।
रगारगी बेरगीअ वारो, शहर बहर बाज़ारु लगो।
अङणु उहे ही पेही आयमि, बिरह जहिं साँ बे
अख्तियार लगो।

ब्राँहूँ ड्रिनियूँ ग्रल यार असाँखे, नीहु जहिसाँ निर्वारु लग्रो ।
मुर्शद हादी अब्दालहक जे, वतु पुठीअ पेजारु लग्रो ।
सचू हिजाब विया हिकु थियासी, दम वदम दीदारु लग्रो ॥

(प्रियतम के मिलन पर जीवात्माएँ अपनी प्रसन्नता प्रकट करती हुई कहती हैं ।) हमे अपना वह प्रियतम मिल गया, जिससे ही हमारा नेह (प्यार) लगा हुआ था । ऐ सखियो; प्रियतम के मिलने के कारण हमारे (जीवन के) पतझड़ के दिन बीत गए हैं और वहार का आगमन हुआ है । हम जिस महवूव की खोज मे थो, आज उसी का शिकार हमे लग गया है (अर्थात् हमे वह मिल गया है ।) अब तो गली-गली मे नृत्य-तमाशे हो रहे हैं तथा चारो ओर चहल-पहल मची हुई है (अर्थात् चारो ओर आनन्द ही आनन्द फैला हुआ है ।) अब तो वेरग देश तथा वाजार रग विरगे दिखाई दे रहे हैं (तात्पर्य यह कि प्रियतम के सिवा जीवन नीरस तथा आनन्दहीन था, पर अब तो आनन्द से परिपूर्ण हो गया है) जिस प्रियतम का विरह हमे वेचैन कर रहा था उसी ने ही हमारे (हृदयरूपी) आँगन में प्रवेश कर लिया है । जिस महवूव से हमारा नेह लगा था उसने ही आज हमें अपनी भुजाओ मे थाम लिया है । सचू साहव कहते हैं हम पूर्ण शक्ति से गुरु अब्दालहक के पैरो पर पड़े, जिससे हमारे (मन के) भ्रम और सदेह दूर हो गये हैं और हमे पल-पल प्रियतम का दीदार हो रहा है ।

यारो मुँहिजो यारु, कई कई सूरत सैरु करे थो ।
काथएँ बुढिड़ो पीरु थियो, काथएं ब्रोले ब्रारु ।
काथएँ बेराग्री फिरे, काथएं कयसु करारु ।
काथएं आहे बादशाह, काथएं चोवदार ।
काथएं पेरे पन्धु करे, काथएं घोड़े जो हसवारु ।
काथएं अहमदु थियो अली, काथएं अब्दालहक़ु इजिहारु ।
आहे दिलवर दोस्त जो, सचू सभु सींगार ।।

ऐ मित्रो, मेरा दिलदार प्रियतम अनेक रूप धारण करके घूम रहा है । कही पर वह वृद्ध पीर वन जाता है, तो कही पर वच्चे के रूप मे कुछ वोल रहा है । कही वैरागी वनकर भटक रहा है तो कही आराम कर रहा है । कही वादशाह वन कर वैठा है, तो कही चोवदार । कही पैरो से चल रहा है, तो कही अश्वारोही है । कही पर वह एक ही परमात्मा अली का रूप धारण करता है तो कही अब्दालहक (सचल के चाचा तथा गुरु) के रूप मे प्रकट होता है । सचू कहते हैं कि सव कही (पूरी सृष्टि मे) मेरे प्रियतम का

ही शृंगार फैला हुआ है। (तात्पर्य यह कि एक परमात्मा ने ही अनेक रूप धारण किए हैं और सृष्टि को अपने ही शृगार से सुसज्जित बना दिया है।)

मैखाने की मस्ती

सच्चे सूफी धार्मिक कर्मकाण्ड की अपेक्षा प्रेम को ही महत्त्व देते हैं अत. उनकी दृष्टि में नमाज तथा जियारत (तीर्थ यात्रा) केवल परमात्मा को पाने के बहाने हैं। उनका कहना है कि जब तक खुदी (अह) को जलाकर भस्म नही किया जाता है, जब तक प्रियतम के प्रेम मे सब कुछ भुलाया नही जाता है, तब तक मुहब्बत का जाम प्राप्त नही होता है। एक बार यदि यह मुहब्बत का जाम मिल जाय तो जिज्ञासु बेखुद होकर (अह से विहीन होकर) शाश्वत मस्ती व खुमारी मे ही रहता है।

मस्जिद छड्डे मैखाने अंदरि, हासुलु कैफ कयासी।
ही सभु हुस्नु जमालु असाजो, जहिं मे पाण पियासी।
ड्रोह सवाब खां आजा थी, पोइ सचल सचु थियासी॥

सचल साहब कहते हैं कि मस्जिद छोड़कर मैखाने के भीतर जाकर हमने वह मस्ती प्राप्त की है जिस कारण लगता है कि यह सब सौन्दर्य और तेज हमारा ही है अत. हम अपने आप मे ही लीन हो गए हैं। अब तो हम गुण तथा दोष से मुक्त होकर सच (परमात्मा) ही बन गए हैं।

साकी ड्रेजि सुठी, सुर्क सुराहीअ माॅ कढी।
पिक पियारिजि पारखू ! मुहबत जी मिठी।
पियण साॅ पुठी, पाण ड्रियां जिअं पाण खे॥

(सचल साहब अपने सद्गुरुरूपी साकी को प्रेम की हाला पिलाने के लिए प्रार्थना करते कहते हैं)

ऐ पारखी साकी, (ज्ञानरूपी) सुराही से ऐसा प्रेम का मधुर जाम पिला कि जिसके पीने से ही मैं अपनी खुदी (अह) से मुख मोड़ लूं।

नका मुहबत सुराहीअ साॅ, नकी मीना साँ मतिलबु।
साकी सभु सबबु, सचल सिक वारनि जो॥

सचल साहब सच्चे सूफी सन्तो की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि सच्चे आशिको को न सुराही से प्रेम होता है न मीना के पात्र से ही मतलब रहता है; उन्हे मतलब है तो केवल हाला (प्रेम) और साकीवाला (प्रियतम) से ही है।

मस्तु रही मैख़ाने अन्दरि, मंगि वतीसी मस्ती ।
मस्तीअ सां ना सिर्रु सुञाणे, तंहिंजोकमु कमबख़्ती ।
ब्रियूं सभु कूड़ियूं ग़ाल्हियूं, सचा सचो इश्कु अलस्ती ॥

सचू साहब कहते हैं कि मधुशाला के भीतर मस्त रहकर ही हमने मस्ती मांगकर ली है परन्तु जो मस्ती का रहस्य नहीं जानता है, वह वास्तव मे भाग्यहीन ही है क्योंकि मस्ती (प्रेम) के सिवा इस (ससार रूपी) मैखाने की सभी वाते झूठी ही हैं केवल प्रियतम का प्रेम ही सत्य है ।

छा जो काबो, छा जो किब्लो, ही भी सभु बहाना ।
नाकिस नियत काबे बारी, मर्द घुमनि मैख़ाना ।
सचल सत्गुरु इएं आखियो, हकु लहनि मस्ताना ॥

क्या काबा, क्या करबला ? ये सब तो परमात्मा को पाने के मात्र बहाने हैं । काबे आदि में घूमने के विचार बेकार हैं । सच्चे पुरुष तो (प्रेमरूपी) मैखाने मे ही मस्त रहते हैं । सचल जी कहते हैं कि सद्गुरु ने यही कहा है "प्रेम के मतवाले ही हक (सत्य) को ढूंढ लेते हैं ।

मुल्ला छड्रि किताबनि पचर, मै जी पीउ प्याली ।
पल मे मुल्ला साहिब ! थी तू मस्तु व मस्तु मवाली ।
छड्रि कुलाली काज़ी साहिब, क़ाइमु थिजि कलाली ।
माफ़ु कराए इश्क़ु इए थो, सचल काफु कशाली ॥

ऐ मुल्ला, पुस्तको का प्रपच छोड़ कुछ मै का प्याला पी जिससे ऐ मुल्ला साहब, तू एक ही क्षण मे मस्त मौल्ला हो जाए ! ऐ काजी साहब, तू भी अपनी टोपी (बाह्याडम्बर) छोडकर सदैव ही (प्रेमरूपी मदिरा का) रोगी बन जा । सचल साफ कहते हैं कि प्रेम सभी तरह के कष्टों को क्षमा कर देता है अर्थात् प्रेमी को दुःख मे भी सुख का अनुभव होता रहता है । उसे दुःख दुःख नहीं लगता ।

तालिब ! ज़ुहिदह न तकवा ताइत, मौज मंगा मू मस्ती ।
ड्रिनी आहि उस्ताद अजल जे, हथि तलब जी तख़्ती ।
सचा मस्ती मूलु न ईंदी, जां जां वञे न हस्ती ॥

ऐ तलबदार ! (परमात्मा को ढूंढनेवाला जिज्ञासु) तू शरीअत (धार्मिक कर्मकाण्ड) तथा कोरी बन्दगी मे ही खोया न रह बल्कि उस मस्ती की मांग कर तथा उस आध्यात्मिक शौक की तख़्ती (ज्ञान) को

प्राप्त कर जो अज़ल के उसताद (परमात्मा) ने दी है। सचल साहब फर्माते हैं कि जब तक यह हस्ती या खुदी नष्ट नही होती, तब तक यह मस्ती कदापि नही आती।

ससुई के दुःख एवं विलाप

शाह लतीफ जी की तरह सचल सरमस्त जी ने भी ससुई पुन्हू (आत्मा-परमात्मा) की एक दूसरे के लिए तडपन और दु.खो तथा कष्टो का वर्णन किया है। अत ससुई पुन्हू की कहानी फिर से न बताकर मात्र प्रतीक समझाकर सचल जी के उद्‌गारो का वर्णन करना उचित जान पडता है।

ससुई आत्मा का, पुन्हू परमात्मा का, भभोर ससार का तथा केच आध्यात्मिक मजिल का प्रतीक है।

सचल जी की मान्यता है कि यदि ससुई (जीवात्मा) पुन्हू (परमात्मा) को पाने के लिए कमर कस लेती है, तो उसे अवश्य ही वह मिल जाता है। यदि जिज्ञासु मे ससुई की सी दृढता, अचलता, उत्साह एव दर्द है, तो वह न केवल पुन्हू को प्राप्त करता है पर खुद ही पुन्हू बन जाता है। तात्पर्य यह कि आत्मा माया के कारण परमात्मा को अपने से अलग समझकर उसे पाने के लिए भटकती रहती है पर जब वह अपने सच्चे स्वरूप को पहचानती है तब वह अनुभव करती है कि वह खुद ही परमात्मा है। सचल जी का कहना है कि इस ससाररूपी मरुभूमि को पार करने तथा परमात्मा को पाने के लिए गम, दुख तथा यातनाएँ ही सच्चे मार्ग दर्शक है अत· जिज्ञासु को दुख तथा कष्टो से घबराना नही चाहिए बल्कि उन्हे सहर्ष स्वीकारना चाहिए।

उथी कमरि ब्रंधु, लोचि त लहीं सुपिरी।
हाड़े वारो हंधु, ड्रिसीं अखिड़ियुनि साँ॥

(ऐ ससुई) तू उठ, कमर कसकर प्रियतम को ढूँढ तो तुझे प्रियतम मिले और हाडा पर्वत को (आध्यात्मिक मजिल को) अपनी आँखो से देख सके।

ड्रेहु ड्रुखीअ जो दूरि, रहबर! रसु रुञमे।
मूँ वेचारीअ मूरि, हीं थरु थेलियो न थिए।

(ससुई इस ससाररूपी मरुभूमि से पार लगाने के लिए पुन्हू-परमात्मा से प्रार्थना करती हुई कहती है) ऐ मेरे पथ प्रदर्शक, मुझसे इस मरु भूमि (ससार) मे आकर मिल ताकि मुझ दुखिया का दुख दूर हो, क्योकि तेरे सिवा मुझ विचारी से यह मरुभूमि पार न हो सकेगी।

वेठी विरह वसायाँ, काध ! अची लहु कल ।
जीनी ! तुहिजें जल, मुहिंजो अदरु अध कयो ॥

ऐ प्रियतम, मैं विरह के आँसू वहा रही हूँ जरा आकर मेरी सुधि ले। ऐ प्राणाधार तेरी विरहाग्नि ने मेरे हृदय को जलाकर अधमरा सा कर दिया है।

गोलिनि गडु गुज़रानु काकियूँ ! कदियसि केच में ।
आरीअ थिए अरमानु, मन ड्रिसी हालु हकीरि जो ॥

ऐ बहनों; मैं केच (पुन्हू का निवास स्थान) मे वहाँ की दासियो के साथ गुज़ारा करूँगी ताकि कही इस कमीनी की दयनीय हालत को देखकर पुन्हू को कुछ दया आ जाए।

विदुर जे वणनि मे करे वाका वेचारी ।
जा महबूबनि मारी, तहिंजो मोटणु मस थिए ॥

(कवि सचल ससुई की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं) विचारी ससुई विदुर-वन के वृक्षो मे चिल्ला-चिल्ला कर भटक रही है। भला जो प्रियतम के प्रेम मे मरी हुई है, उसका वहाँ से लौटना कैसे सम्भव हो सकता है ?

काफ़ कशाला केतिरा, वारी बर बयबान ।
लाधा हिकु लकनि जा, ब्रियो कोहनि मे कहदान ।
अग्रियाँ ड्रियनि कोन की, हलणु ही हैवान ।
आउ आरियाणी अग्रवान ! मूँ खा डूंगरु ड्रोरियो न थिए ॥

(ससुई आध्यात्मिक मार्ग के कष्टो और दु खो का वर्णन करती हुई पुन्हू से सहायता के लिए प्रार्थना करती है) पर्वत पर चढते समय के अनेक कष्ट, कन्दराओ के बीच मे से थका देनेवाले रास्ते तथा मरुभूमि के ताप आदि, आगे बढ़ने की प्रेरणा ही नही देते। ऐसे रास्ते तो पशुओ के चलने के लिए हैं। हे मेरा नेतृत्व करनेवाले पुन्हू, तू शीघ्रातिशीघ्र आ क्योकि मुझसे अब इन पर्वतो पर चढ़ा नही जाता है।

काफ कशाला केतिरा, मारूगु मथाहूँ ।
छोरीअ खे हिति छपरे, छड्रेविएं छाहूँ ? ।
तोखे करे थी सुपिरी ! थी दर्दमन्दि दान्हूँ ।
तू अचिजि अग्राहूँ, ना त दोस्त ! थी दमु ड्रियाँ ॥

ससुई पुन्हू से कहती है "ऐ प्रियतम ! पर्वत के ऊबड खाबड़ मार्ग पर, अनेक कष्टो और दु:खो में तू मुझ अबला को कैसे छोड़ गया है ? दु:ख पीडा से यह दुखिया तुझसे शिकायत कर रही है। ऐ नाथ ! तू मेरे समीप आ, अन्यथा मैं अपने प्राण त्याग दूंगी।

बारी बिरहु बलोच जो, सारो सआदत।
काकियूँ आहे काफ मे, हीणनि हिदायत।
कदो किफायत, पाणूँ वाणी पंध मे॥

(ससुई कहती है) वह (जीवात्मा) खुशकिस्मत है, जो पुन्हू के विरहाग्नि मे जल रही है। ऐ बहनो काफ पर्वत (आध्यात्मिक रास्ते) पर चलने वाली शक्तिहीन (जीवात्माओ) को मेरी यही हिदायत है कि पुन्हू खुद ब खुद उनके राह मे किफायत कर देंगे अर्थात् सरल बना देगे।

काफ कशाला केतिरा, दिक्कत अऊ तस्दीअ।
अची पहुँच पीअ ! मूँ हिन निमाणीअ ते॥

ऐ प्रियतम ! पर्वत के अनेक दु:ख, कठिनाइयाँ एव यातनाओ को सहन करनेवाली इस विचारी आश्रयहीना के पास शीघ्र ही पहुँच जा।

शाल न विसिरी होत ! ब्रियो सभु मूँ विसरे।
मूँ खे ताईं मौत, हुए अखिडियुनि में॥

ससुई कहती है—चाहे मैं और सब कुछ भूल जाऊँ पर एक प्रियतम को न भूलूं। (मेरी अभिलाषा है कि) मरते दम तक वह मेरी आँखो मे ही रहे।

मुंहिजो अंदरु अध कयो, फना हिन फिराक।
मरे थी मुश्ताकि, का करि वर ! विल्हीअ जी॥

ऐ प्रियतम ! तेरे विरह के दर्द ने तो मुझे अधमारा सा कर दिया है। यह तेरी प्रेमिका मर रही है अतएव कुछ तो इस (गरीब) की सुधि ले।

आरीअ जे अचण जो, रोजु निहारियाँ राह।
आणीदुसि अल्लाहु, मूँ सिरु सदिके कयो॥

मैं रोज पुन्हू के आने की राह देखती रहती हूं, अवश्य ही मालिक उसे मेरे पास ले आएगा, मैंने तो अपने प्राण उस पर न्योछावर कर दिए हैं।

कोहु करियाँ भभोर खे, हारियूँ बिना होत।
मूँ ता ताईं मौत "वोइ वोइ" हद्रि न विसरे॥

ऐ सखियो ! मैं पुन्हू के सिवा भभोर (सांसारिक सुखों) का क्या करूँ ? (अर्थात पुन्हू के सिवा सासारिक सुख सब मेरे लिए व्यर्थ हैं ।) हाय हाय ! मैं तो मरते दम तक उसे नही भूल पाऊँगी ।

"पुन्हू ! पुन्हू !" थी करियां, आऊं पिण पुन्हू पाण ।
अदियूँ थियसि अज्ञाण, जो कोन परूड़ियुमि पाण खे ।।

ऐ सखियो ! मैं "पुन्हू पुन्हू" पुकार रही हूँ पर वास्तव मे तो मैं स्वयं ही पुन्हू हूँ । मैं भी कितनी अनजान थी कि मैंने अपने आपको नही पहचाना । (तात्पर्य यह कि जब तक द्वैत की भावना रहती है तब तक आत्मा अपने को परमात्मा से अलग मानती है, किन्तु द्वैत के नष्ट होते ही आत्मा अपने सच्चे स्वरूप को पहचानती है अत अब उसे अपने मे और परमात्मा मे कोई भेद दिखाई ही नही देता ।)

जां परूड़ियुमि पाण खे, तां पाण पुन्हू आहियां ।
केहि तरफ काहियां, जो तरफ मिडेई तम थिया ।।

जब मैंने अपने आपको पहचाना तब मुझे पता चला कि मैं खुद ही पुन्हू हूँ । अब मैं किस दिशा मे भटकूं जब सभी दिशाएँ ही गायब हो चुकी हैं ।

रातो द्रीहा रतु, अतणु आयुमि उनरे ।
आयलि, इश्क अलील मे, शाल न पवे कतु ।
जबल सभि झागे वञी, जेदियूँ द्रिसाँ जतु ।
हिन मुईअ जो मतु, पवे मजिकूरु पिरियुनि में ।।

ऐ जननी ! उस (प्रियतम) के सिवा दिन रात मेरी आँखो को खून के आँसू ही बहाने आते हैं । काश ! मुझ अबला के इश्क मे किसी तरह की कमी न पड़े । ऐ हमवयस्को (मेरी महत् अभिलाषा है कि) पर्वत लाँघकर जाकर अपने प्रियतम को देखू । काश ! इस दुखिया के इस इरादे की चर्चा प्रियतम और उसके लोगो के बीच हो ।

सुहिणी-मझधार में

सुहिणी मेहार की कहानी भी शाहलतीफ मे विस्तारपूर्वक दी गई है, अतः दुबारा देने की आवश्यकता नही है ।

सुहिणी (जीवात्मा) प्रेमरूपी सागर मे कूद पड़ी है बीच समुद्र मे जहाँ अनेक मगरमच्छ हैं तथा जहाँ बडे-बडे चतुर, साहसी तैराकों के हृदय मुँह को आते हैं, वहाँ वह मेहार (परमात्मा) को अपनी सहायता के लिए पुकारती है । जब तक वह थोड़ा सा भी सांसारिक सहारा लिए हुए है,

तब तक मेहार नही आता, किन्तु जब सब सहारे छूट जाते हैं तब वह अपने अस्तित्व तक को भूलकर मेहार पर अटल विश्वास रखती है तब उसी क्षण ही वह उसे मझधार में आकर मिलता है।

मेहर महिर का, पवदी मन मणी।
सुहिणीअ जा सुणी, सद्रिडा विचां सीर जे ॥

(सुहिणी के प्रेम की दृढता का वर्णन करते कवि कहते हैं) बीच समुद्र से सुहिणी की पुकार सुनकर अवश्य ही मेहार के हृदय मे दया उत्पन्न होगी।

कचो सचो कीन थिए, तोड़े अचनि रग।
सचे सदे सग, कचा सचा थी विया ॥

कच्चा (शरीररूपी) घडा कभी भी सच्चा (वफादार) नही होता, चाहे उसे कितने ही रगो से सजाया जाए, किन्तु सत्य की सगत कर कच्चे भी सच्चे हो जाते हैं तात्पर्य यह कि यह शरीररूपी घडा चाहे कितना भी सजाया जाय, पर रहता है नश्वर का नश्वर। किन्तु यदि इसी नश्वर शरीर का सत्य (परमात्मा) से सग हो जाय तो वह शाश्वत बन जाता है।

दिले साॅ हुई दिलि, दादुलीअ दिलेरि जी।
उन्हीअ द्रिनुसि ओचिते, जल अन्दरि अजलु।
कल न हुई कुभारि खे, त खकीअ मझि खललु।
मिटीअ जो महलु, पुर्जा पाणीअ मे थियो ॥

(सचल साहब मानव जीवन की नश्वरता का वर्णन करते कहते हैं) अभिमानिनी लाडली (जीवात्मा) की जिस (शरीर रूपी) घडे से वृथा प्रीति थी, उसी घडे ने उसे जल के भीतर मौत दी। बेचारे (मनुष्य रूपी) कुम्हार को यह पता ही नही था कि सब दोष इस घडे रूपी शरीर के ही हैं, यह मिट्टी का महल (शरीर) पानी मे पडते ही अस्त-व्यस्त हो जायगा।

न का कंधी, न को कपरु, न का विचू वाह।
मुंझिया मौजनि मे उते, सियाणा सेणाह।
सुहिणी घिड़ी सीर मे करे काहूँ काह।
पाणीअ मे पनाह, परवर द्रिनसि पाण खणी ॥

(सचल साहब सुहिणी के साहस एव दृढ़ता की प्रशसा करते कहते हैं) जिस (प्रेम रूपी) समुद्र का न कोई किनारा था, न तट था और न ही कही से कोई रास्ता था, जिसकी लहरो को देख साहसी, तुम्बे का सहारा

लेनेवाले, तैराक भी घबड़ा जाते है, परेशान हो जाते हैं, उसी समुद्र में सुहिणी विना हिचक के, शीघ्रता से कूद पड़ी; किन्तु परमात्मा ने खुद ही आकर उसे पानी मे सहारा दिया।

जेसी दिलि दिले सां, साहड़ु कीन सचो।
कचो थियसु कचो, ता साहड़ु पुग्रसि सीर में॥

जब तक (मनुष्य का) शरीर रूपी घड़े से मृषा प्रेम है तब तक मेहार (परमात्मा) उससे वफादार (सहायक) नही होता, किन्तु जैसे ही इस नश्वर (शरीर रूपी) घड़े ने धोखा दिया, वैसे ही मेहार बीच समुद्र में उसे आकर मिला।

हणी हणी हीच थी हणी थी हीणी।
वाहड़ ऐ वीरुनि में, थी वाग्रुनि वहीणी।
सीर अन्दरि सुहिणी, वेचारीअ वस कया॥

सुहिणी (प्रेम रूपी, ससार रूपी) सागर पार करने के लिए सघर्ष करते-करते तथा हाथ पटकते-पटकते शक्तिहीन बन गई है। वेचारी भवसागर मे (विषय-वासना रूपी) मगर-मच्छो के हवाले हो गई है। किन्तु मझधार मे पहुँचकर उसने सब (विकारो) को वश मे कर लिया।

हणी हणी हीच थी, हथ थियसु हीणा।
सिपारियाई सचू चवे, लाखे खे लीणा।
ब्रुडंदीअ ब्रीणा, साहड़ कया सीर में॥

वेचारी सुहिणी (संसार रूपी) सागर को पार करने के लिए हाथ पटकते-पटकते शक्तिहीन हो गई है। सचल जी कहते हैं कि अब उसने अपने को लाखे नामक पीर (सद्गुरु) के हवाले कर दिया है, अत. मझधार में डूबने वाली की उसने आकर सहायता की।

असां पिरियुनि विच मे, दौर वहे दरियाउ।
छोली छरां थी करे, पियो विछुटी वाउ।
सुणी आहां आउ, मियां! हिन मुश्ताकि जूं॥

सुहिणी प्रियतम से कहती है कि हमारे-तुम्हारे बीच मे यह अथाह सागर वह रहा है, लहरें जोर से छल-छल कर बह रही है, बीच मे जोरो का तूफ़ान लग रहा है, अतएव ऐ प्रियतम! इस प्रेमिका की आहे सुनकर शीघ्र ही आ जा।

असाँ पिरियुनि विच में, जरु वहे जारी ।
हिकु कड़िको कुननि जो पवे, बियो वीर द्रिए वारी ।
हुति साजन जा सारी, सा दहिली कीन दरियाह खूँ ॥

हमारी (जीवात्माएँ) और प्रियतम के बीच यह अथाह जल वह रहा है, एक तो इस सागर मे भँवर उठ रहे हैं जिनका भयानक शोर हो रहा है, दूसरे लहरो मे ज्वार और उफान आ रहा है। किन्तु प्रियतम जिस (जीवात्मा) को याद करता है वह इस भयानक सागर से नही घबराती है अर्थात् उसे पाने के लिए उसमे कूद ही पड़ती है।

घिडनि जे घेड़ाउ, ताँघो इश्कु तिनि जो ।
जिनि खे इश्कु अलील कयो, से इँदियूँ अवतड़ाऊ ।
जे सूर चखंदियूँ साउ, मेहरु से माणीदियूँ ॥

जो आशिक, (प्रेम रूपी सागर मे) सुरक्षावाले स्थान जहाँ गहरा पानी नही है, वहाँ से प्रवेश करते हैं, उनका प्रेम भी एक आडम्बर है, गहन नही है। किन्तु जिन्हे सच्चे इश्क की बीमारी लगी है, वे गहरे पानी मे ही कूद पड़ते हैं। जो (जीवात्माएँ) इश्क के दर्द का स्वाद चखेगी अर्थात् दुःखो का सामना करेगी, वे ही मेहार (परमात्मा) के मिलन-सुख का आनन्द लूटेंगी।

दुःख और प्रेम

आशिको की मान्यता है कि प्रेम रूपी कंचन (स्वर्ण) दु.ख रूपी अग्नि मे पडकर ही चमकता है अतः वे दु खो को सुखो का सौन्दर्य मानते हैं। वास्तव मे दु ख ही प्रियतम के समीप लाते हैं। सचल जी का कहना है कि सांसारिक क्षणभगुर सुख तो बहुत ही सस्ते हैं, पर प्रियतम के विरह के दु ख इतने महँगे है कि यदि किसी को सिर देने पर भी मिल जाते हैं तो उसे अपने को भाग्यशाली ही समझना चाहिए।

जे गूदर गोशु न कनि, खुहि पवनि से सरतियूँ ।
जिनि सगति साणु सुखनि, से पाणू होतु परे कयूँ ॥

(सचल जी दु ख व गम का महत्व बताते कहते हैं) ऐसी सहेलियाँ ही नही चाहिए जो दु खो और गमो को अभिशाप मानती हैं। वास्तव मे जिन्होने (सासारिक) सुखो से नाता जोडा है, उन्होने स्वय ही अपने प्रियतम को अपने से दूर किया है।

गूदर ड्रोह गुज़ारि, जा तू जिए जिंदड़ा।
सोई अहदु पारि, जो ई कयुइ पिरीअं सां॥

ऐ इन्सान, जब तक तू जिन्दा है, तब तक दुख और गम मे ही दिन गुज़ार। तू ने जो वादा प्रियतम से किया था, उस वादे का पालन कर।

गूदरि जिनि गुज़ारिया, आऊं पखे तिनि पेही।
वटाउनि वेही, वठां वासु विरह जो॥

जिन्होने (प्रियतम को पाने के लिए) दुख-कष्टो मे दिन गुज़ारे हैं, मैं उनकी कुटिया मे पैठकर, उनके समीप बैठकर विरह का वास (पाठ या शिक्षा) लेना चाहती हूँ।

गूंदरि जिनि गुज़ारियो, आऊ तिनी घोरी।
सदा मूं झोरी, आहे विरह वारिएं॥

मैं अपने को उन पर न्योछावर कर दूं, जिन्होने (प्रियतम के) गम मे दिन गुज़ारे हैं क्योकि मैं भी सदैव विरहनियो से ही मित्रता करना चाहती हूँ।

डुखनि सुख, मूं तां लधा जेद्रियूं।
ड्रोरीदे खे डुख, सूंहां थियड़ा सज्ज़णा॥

ऐ सखियो, मुझे दुखो से ही सुख प्राप्त हुए है, क्योकि दुखों को झेलते ही, मुझे प्रियतम प्राप्त हुए।

ही सहांगा सुख, जे सारे आलम आइया।
डूरि महाँगा डु.ख, जे वरिता विरद वारिएं॥

इस विश्व के समस्त सुख तो बहुत ही सस्ते हैं, किन्तु वे दु.ख बड़े ही महंगे हैं, जिन्हे (परमात्मा के विरह मे व्याकुल) विरहनियाँ ही ले सकती हैं।

गूंदर कीअ घोरियां, जहिं कयसि सेधी सज्ज़णे।
जा तुक पेई तोरियां, ताँ डुख मोचार सुख खूं॥

मैं उन दुखो को कैसे छोड दूं, जिन्होने ही प्रियतम को मेरे समीप ला दिया है। यदि मैं सुख-दुख को तराज़ू के पलड़ो मे तोलती हूँ, तो दु.ख सुख से भारी (मूल्यवान) दिखाई देते है।

जो सारो पुछा लोकु, ता गूदर वारो न लहां ।
हहिड़ो भलो थोकु, कही भाग्र पिरोइयो ।।

यदि मैं सारे विश्व मे ढूंढू, तो भी सच्चा गमवाला (परमात्मा के प्रेम मे डूबा) नही मिलता है। भला (दु ख रूपी) आभूषण तो कोई भाग्यशाली ही प्राप्त कर सकता है।

सेधियू जे सुखनि, तिनी गूदर घोरिया ।
डि्नमि काणि दुखनि, ही सिरु सारो सटि मे ।।

सचल साहब कहते है कि जो (सासारिक) सुखो से परिचित हैं (अर्थात् जो सासारिक सुख भोगते है) उन्होने दु'ख व गम को छोड दिया है, किन्तु मैंने तो दु:खो के लिए अपना सिर दे दिया है।

सारो लोकु सुखनि, पोइ रहायो पिरीअ खूँ ।
डि्सो वाह ! दुखनि, होतु विहारियो हज मे ।।

ससार के सुखो ने, लोगो को प्रियतम-परमात्मा से दूर कर दिया है, किन्तु दु खो की करामात देखो तो उन दु.खो ने प्रियतम को गोद मे बिठा दिया है।

परमात्मा की ओर जाने का मार्ग

परमात्मा की ओर जानेवाला मार्ग बड़ा ही कठिन है। जो इस मार्ग पर चलते-चलते फना (नष्ट) हो जाते है, वे भाग्यशाली माने जाते हैं। सचल साहब मानते है कि यद्यपि इस रास्ते पर पैरो के बल न चलकर सिर के बल चलना पड़ता है, फिर भी आशिको को इस रास्ते से पीछे नही हटना चाहिए, बल्कि अपने अह को त्याग कर आगे बढना चाहिए।

जे तूँ मार्ग ते मरी, वडा तालइ तो ।
सांवल साग्री से, मथा ते हथ मढे ।।

वे (जीव) भाग्यशाली हैं, जो परमात्मा की ओर बढते-बढते फना (नष्ट) हो जाते हैं क्योकि उनके सिर पर स्वय प्रियतम अपना हाथ रखता है।

मार्गु मरनि जे, वरु तिनी खे वेझिडो ।
हइ ! हइ ! होतनि खे, थिए अरमानु उन्हनि जो ।।

जो परमात्मा के रास्ते पर चढते-चढते मर जाते है, प्रियतम उनके

समीप रहते हैं, ऐसे आशिको के मरने का दुःख उसे (परमात्मा को) भी होता है।

मार्ग॒ु मरां शाल, दुआ करेॼो जेदि॒यूं।
होत हहिडे हाल, मान मथां मूं हथु थिए॥

(जीवात्मा कहती है) ऐ मेरी हमउम्र सखियो, मुझे यही आशीर्वाद दो कि मैं प्रियतम की राह पर चलते-चलते ही फना हो जाऊँ; ताकि प्रियतम मुझे उस स्थिति मे देखकर, अपना हाथ मेरे मस्तक पर रख दे।

मार्ग॒ु जे मुईअ, तां हुईअ होतियाणे हंज में।
वञी केचु सुईअं, तां "वेंचारीअ वसुकयो"॥

(ऐ जीवात्मा) यदि (आध्यात्मिक) राह पर चलते-चलते ही तू मर जाएगी, तो अवश्य ही जाकर प्रियतम की गोद मे बैठेगी। केच (परमात्मा का निवासस्थान) मे भी फिर यही बात सुनाई देगी "उस विचारी ने अर्थात् मार्ग पर फना होने वाली जीवात्मा ने अपनी नम्रता से प्रियतम को वश मे कर लिया है।

पिरियाँ सदे पार द॒े, पंधु अजाइबु आहे।
घोरे सिर घुमाइ, मथे दरि दोस जे॥

प्रियतम के देश का मार्ग बड़ा ही अनोखा व विचित्र है। (ऐ मानव) तू अपने प्रियतम पर अपने आपको न्योछावर ही कर दे।

पंधु अजाइबु पिरीअ जो, सिसी पेर करणु।
इन्हीअ ध्यानु धरणु, आहे कदमु केच द॒े॥

प्रियतम के देश का रास्ता बड़ा ही अनोखा है। वहाँ सिर को पैर बनाने पड़ते हैं अर्थात् वहाँ पैरो के बल नही, बल्कि सिर के बल चलना पड़ता है। इसी बात को ध्यान मे रखकर ही उस रास्ते पर कदम रखना चाहिए।

पंधु अजाइबु पिरीअ जो, "मां" सा कीन हले।
साई चाह चले, जंहि "मां" छदी॒ विच मे॥

परमात्मा की ओर जाने वाली राह अनोखी है, वहाँ पर "अहं" की भावना लेकर कोई नही चल सकता है। वही (जीवात्मा) बड़े शौक से इस मार्ग पर चलती है जिसने "मैं-मेरे" को छोड़ दिया है।

आयु गुजर गई

इन्सान का जीवन स्वप्न की तरह है, वह बालक से जवान और जवान से बूढा बनता है। बचपन खेल कूद मे और जवानी विषय-वासनाओ मे गुजर जाती है, किन्तु बुढापे के आने पर जब वह शक्तिहीन और जर्जर हो जाता है, जब उसके अपने भी पराये बन जाते हैं, तब उसे अपने परमात्मा की याद आती है और पश्चाताप की आग मे जलकर कहता है

उमिरि अजाई गुजिरी, वही आयमि हीअ।
आऊं सबाझा सुपिरी, पर वर काणि पीअ।
ससुईअ कोन्हे जीअ, का वर! वेचारिअ वरि कयो॥

ऐ कृपालु प्रियतम! मेरी आयु तो (ससार के प्रपचो मे) व्यर्थ ही गुजर गई, अब यह बुढापा आ गया है। ससुई (जीवात्मा) का तेरे सिवा और कोई नही, अत. परमात्मा के लिए, मेरी रक्षार्थ मेरे पास आ जा।

उमिरि अजाई गुजिरी, कारनि मटियो रंगु।
मू निहारणु न थिए, सांवल! सारो सगु।
हिन निमाणीअ जो नंगु, आहि अव्हा ते सुपिरी॥

ऐ प्रियतम, मेरी आयु तो व्यर्थ ही गुजर गई। अब तो काले बालो ने भी अपना रग बदल दिया है (सफेद हो गए हैं)। ऐ साँवले! मुझे अब अपने सम्बन्धियो तथा मित्रो मे भी कोई अपना नही दिखाई दे रहा है, अतएव इस अबला की लाज अब तेरे ही हाथ मे है।

उमिरि अजाई गुजिरी, हहिडो थियडुमि हालु।
कहि सुणाया सरतियू! अंदर जो अहवालु।
आरियाणी इलहालु, कंदो गोरु गरीब जो॥

मेरी आयु व्यर्थ ही गुजर गई। अब मेरी यह (दयनीय) हालत हुई है। ऐ सखियो, अब किसे अपने हृदय की बात बताऊँ? गरीबो की लाज रखनेवाला अवश्य ही मेरे बारे मे भी सोचेगा।

योगी

योगी दो प्रकार के पाये जाते हैं एक वे जिन्होने मन को रग दिया है, और दूसरे वे जिन्होने केवल कपडे ही रगे हैं। दोनो प्रकार के योगियो के व्यवहार मे ज़मीन आसमान का अन्तर है। किन्तु सचल साहब कुछ

ऐसे सच्चे योगियो के सम्पर्क मे आए थे, जिनसे वे काफी प्रभावित हुए थे। अत उन्होने सच्चे योगियो की विशेषताएँ बताई हैं और साथ ही साथ कहा है कि आजकल के युग मे भी कुछ महान योगी हैं, जिनकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं

धूणीय मंझि ध्यानु, आहे आधूतनि जो।
गुमु थी, गुर गम गोदिड़िया कनि गिरोड़ी ज्ञानु।
असुल खा इश्नानु, गगा जमुना तिनि जो॥

सच्चे योगी अपनी धूनी मे मस्त रहते है। वे गुदड़ी धारण करनेवाले गुरू के दिए हुए ज्ञान मे ही अपने को डुबो देते है, वे आरम्भ से (आत्मिक) गगा-यमुना मे स्नान करते है।

पूरब पध आइ कद्रहिं कापड़ियुनि खे।
जिति माण्हुनि मेडाको थिए, सा जूठी जोग्रियुनि जाइ।
सचा सच सवाइ, सौदो कनि न को ब्रियो॥

सच्चे कनकटे योगी, जिस जगह पर लोगो का समूह देखते हैं, उस जगह को झूठी मानकर पूर्व दिशा (जहाँ पर तीर्थ स्थान हैं) में चलते रहते है। सचल साहब कहते हैं कि वे सत्य के सिवा और किसी भी तरह का सौदा नही करते हैं। अर्थात् परमात्मा की याद के सिवा कोई काम नही करते हैं।

करे लघिया लोक मा, लाहूती लोडा।
घोडा ड़े घोडा, करे मनु मस्तानु विया॥

मच्चे योगी मधुर आलाप आलापते संसार से गुजरे। (सचल कुछ ऐसे ही योगियो के सम्पर्क मे आये थे और उनके चले जाने पर दुख प्रकट करते कहते हैं—हाय! हाय!! वे योगी मुझे मस्त बनाकर चले गये हैं।

जोग्री जाल डि्ठामि, पर को को लभे कापड़ी।
ही वही वस्तुनि मे विया हू न लोक लडियामि।
तिनी काणि थियामि हइ! हइ, हहिड़ा हालडा॥

(सचल जी कहते हैं) मैंने अनेक योगी देखे, पर उनमे से कोई विरला ही सच्चा कनकटा योगी होता है। झूठे योगी तो सासारिक वस्तुओ मे ही बह जाते हैं किन्तु वे सच्चे योगी जिनके चले जाने के कारण मेरा यह दयनीय हाल हुआ है वे संसार की ओर आकर्षित नही होते है।

जोगी आहिनि जाल, पर लाहूती लद्दे विया ।
हो मिणि मिणि कनि मणियनि सां, हू खडा मथे ख्याल ।
से लांगोटिया लाल, भेनरु, भाग्रि मिडनि मूँ ।।

योगी तो अनेक है किन्तु विरले सच्चे योगी तो यहाँ से चले गये है । ये झूठे योगी तो माला की मणियो पर केवल मिन-मिन करते हैं किन्तु वे (सच्चे) उस परमात्मा के विचारो मे ही खोये रहते हैं । ऐ बहनो, ऐसे लगोट धारण करनेवाले योगी तो मुझे भाग्य से ही मिल सकते हैं ।

लाहूती मां लोक, थोरा घणा लधिया ।
सचल सामीअड़नि ते, मुहबत वसे मोक ।
सो जाबिर मझा जौक, कंधु द्रियनि था कात ते ।।

इस ससार से कुछ ऐसे योगी गुजर जाते हैं जिनका हृदय प्रम से प्लावित है, वे बडे शौक और वीरता से अपना सिर खजर पर चढा देते हैं अर्थात् अपने को उत्सर्ग कर देते है ।

त्रिलो वेरागी, ज्ञानी द्रिठुमि गोदिडियो ।
भुलिया द्रिठमि भीर मे, भोगी ऐ भागी ।
तालिबु त्यागी, लखनि मे को हिकिडो ।।

सचल साहब कहते हैं—मैंने ससार के कोलाहल मे किसी विरल ज्ञानी, वैरागी, गुदडी धारण करनेवाले को देखा है, बाकी सब तो भोगी और आराम मे खोये हुए व्यक्ति ही मैंने देखे हैं । सचमुच परमात्मा के लिए सर्वस्व त्यागने वाला कोई लाखो मे एक ही होता है ।

पुजारी जे पारखू, महादेव तिनि मनि ।
गंगा गुम रहनि, बुधनि द्रिसनि कीन की ।।

जो पारखी (परखने वाले) पुजारी है, उनके हृदय मे सदैव महादेव का निवास है । वे (ज्ञान रूपी) गंगा मे डूबे रहते हैं तथा कुछ भी देखते और सुनते नही हैं ।

अञा आधूती, आहिनि अकीचार ।
अविद्या अहंकार, भञी जिनि भोरा कया ।।

अब तक भी ऐसे अनेक अवधूत पाए जाते है, जिन्होने अविद्या एव अहकार को तोडकर चूर-चूर कर दिया है ।

ज़ोगी आहिनि जे, गोशु गंगा ड्रे तिनि जो।
आहिनि कोढ़िया कात जा, कनकट कापड के।
सिरु संबाहिनि से, जिनी नातो नाथ साँ।

जो सच्चे योगी है, उनके कान (ज्ञान रूपी) गगा की ओर ही लगे रहते है, वे विरल कनकटे योगी तलवार की धार पर चलने के शौकीन हैं (अर्थात् दुखो का सामना करने से नही डरते है)। वास्तव मे उनका नाता नाथ (परमात्मा) से है, वे सिर देने को सदैव तैयार हैं।

मथे कात कदमु, काकियूँ! कापड़ियुनि जो।
ससो मिटे सरूप मे, सचल थिया से समु।
सदा सामियड़नि जो, दमामियुनि साँ दमु।
आदेसी अदमु, थिया नाले अदरि नाथ जे॥

ऐ बहनो! जिन योगियो ने सिर काट पैरो पर फेंक दिया है अर्थात् अहं से मुक्त हो गए है, उनका भ्रम मिट गया है। सचल कहते हैं; वे अपने स्वरूप मे लीन हो जाते हैं। ऐसे योगियो का सम्मान सदैव ही (अनहद रूपी) बाजे-गाजे के साथ होता रहता है और वे परमात्मा के नाम मे मस्त रहते हैं।

कापड़ी कंदील, खंयो घुमनि गोदिड़िया।
छब्रटु करे छब्रनि मे, वतन कारीहर कातील।
मुंडीनि मुरलियुनि साँ उहे, आधूती असील।
सचल सिक सबील, जीअ मे जोग़ीअड़नि जे॥

गुदड़ी धारण करनेवाले सच्चे कनकटे योगी (ज्ञान-रूपी) मशाल लेकर घूमते रहते है। वे (हृदय रूपी) टोकरी मे छिपे (विषय-विकारो-रूपी) जहरीले वासीग नाग को अपनी मुरली की धुन से (अर्थात् अपने उपदेशो से) वश मे कर देते हैं। सचल साहब कहते है, ऐसे योगियो के हृदय मे (परमात्मा के प्रति) प्रेम लबालब भरा रहता है।

आहीनि अकोचार, अन्तर्मुख आधूत।
पूरब से न पुरिया, नकी कनि प्रचार।
अठई पहर अछ में, रहनि से गुमुनार।
सचल संस्कार, ससा तिनि विञाइया॥

ऐसे अन्तर्मुखी अवधूत भी हैं, जो पूर्व दिशा की ओर नही चलते हैं

(अर्थात् तीर्थ यात्रा नही करते हैं) और न ही अपना प्रचार ही करते हैं; बल्कि वे आठो याम ज्ञान रूपी समुद्र मे ही डूबे रहते हैं। सचल साहब कहते हैं उन्होने अपने सस्कारो से मायावी भ्रम नष्ट कर दिए है।

जोगी भातों भाँति, पर मुंहिजो आधूतिनि साँ।
सफरि विया साझरे, रहिया रुगो राति।
तलब तिनी जी ताति, रातियाँ ड्रीहां रूहखे॥

(सचल साहब आपबीती बताते हैं) योगी तो अनेक प्रकार के होते हैं, पर मेरा सम्बन्ध तो उन अवधूतो से है, जो सिर्फ एक रात रहकर, सुबह होते ही चले गए। अब मेरी रूह को दिन रात उन्हे पाने की ही धुन लगी हुई है।

विया लाहूती लाल, लोडा करे लोइ मा।
ग्राल्हि न गरहण जहिड़ी, मगरि मुहु मशालु।
हइ हइ हहिडे हाल, सारियो से सध मराँ॥

इस देश से वे लासानी योगी मधुर आलाप आलापते चले गए। वास्तव मे उनकी बात दूसरो से कहने जैसी ही नही है। उनके मुख मशाल की तरह (ज्ञान से) चमक रहे थे। (सचल उनके जाने से दुखी होकर कहते हैं) हाय, वे मेरा यह दयनीय हाल कर गए है अब तो मैं उनकी याद मे मर रहा हूँ।

मचु मचायो मन मे, ब्राफ न बाहरि विझनि।
वतनि वेग्राण विरह मे, नेणे निन्ड न कनि।
सुद्रिका सेई सोज़ जा, भिनीअ राति भरिनि।
पंहिजीअ परि में पाण खे, था प्रितऊँ पचाइनि।
सिखियो सामियड़नि, इश्कु इहो सभु आईअ खाँ॥

सच्चे स्नेही भीतर ही भीतर (प्रेम रूपी) आग जलाते हैं पर उसकी थोडी सी भी भाप (ताप) बाहर नही निकलने देते (अर्थात् खामोश होकर प्रेमाग्नि मे जलते रहते हैं, दिखावा नही देते।) वे बेगानो की तरह घूमते रहते हैं। उनकी आँखो मे नींद नही रहती और आधी रात को उठकर प्रेम-विह्वल होकर हिचकियाँ भरते है। वे अपने ही प्रेमाग्नि मे अपने आप को पकाते हैं। सचल साहब कहते हैं कि इन आशिको ने इस तरह का प्रेम करना भट्ठी से ही सीखा है। (तात्पर्य यह

कि जिस तरह भट्ठी के ताप को वाहर नही आने दिया जाता है उसी तरह ये भी अपने प्रेम का रहस्य प्रकट होने नहीं देते है।)

इश्कु इहो आईअ खा, सिखियो सामियढनि।
आशिक़ मथा आग जे ओलारा द्रियनि।
भभड़ वाहि इश्क मे, सपूरनु सड़नि।
अचियो पवनि आड़ाह मे, सिर जो सांग न कीन।
लाइक लाल थियनि, लहिसी लूसजी॥

कवि कहते हैं कि आशिको ने यह प्रेम की रीति भट्ठी से सीखी है। ये प्रेमाग्नि के ऊपर चक्कर काटते हैं (अर्थात् सहर्ष मुसीवतें मोल लेते हैं) तथा इस आग मे सम्पूर्ण रीति से जल जाते हैं। ये अपने प्राणों की परवाह न कर इन लपटो मे कूद पड़ते हैं और ताप सहन, करते-करते योग्य लाल वनते हैं।

न मां कयडो खुडिको तस्बीह, न कयड़मि ज़ुहिद इवादत।
न की मस्जिद मंदरि वियडुस, न कयड़मि तकवा ताइत।
सचल जो थियो वख्तु सवायो, जो कयड़इ इश्कु इनायत॥

(सचल साहव कहते हैं—) न तो मैं ने माला का जाप किया और न मैं ने इवादत-वन्दगी की। न मैं मन्दिर मे गया, न मस्जिद मे, और न ही मैंने पूजा-पाठ किया। वास्तव मे मेरा भाग्य अच्छा वना है कि मुझ पर इश्क ने अपनी अनुकम्पा की है।

इश्कु जिनी सां अम्जो लाते, इल्मु न से ब्रियो पढन्दा।
मझि कुफ़ इस्लाम मज़ाहब, आशिक़ मूरु न अड़न्दा।
मारे नारो हक़ जो सचा, सूलीअ सिरड़ा धरदा।

जो इश्क के चक्कर मे पड़ जाते हैं वे दूसरी विद्या नही ग्रहण करते। सच्चे सूफी कुफ़, इस्लाम तथा अन्य मज़हवो मे नही उलझते। सचू साहव कहते हैं, वे सच्चे स्नेही तो केवल एक हक़ (सत्य) का नारा लगाकर शूली पर सिर रख देते हैं।

आशिक पियनि ज़क़ोमु, हथां हवीवनि जे।
हलाहल जे हेर ते, हातिक कनि हुजूमु।
इहा यनि रुसूमु, कड़े काणि न तनि खे॥

सच्चे आशिक, हबीब (परमात्मा) के हाथो से जहर पीते हैं। उन्हे जहर पीने की इतनी आदत पड गई है (दु ख सहने की इतनी आदत पड गई है) कि वे उसको पाने के लिए आकर इकट्ठे होते हैं, यही उनका दस्तूर और रिवाज सा हो गया है। उन्हें सुख की रत्ती भर भी परवाह नही है।

वक़्तु इहा थी वेल, दोई दूरि करण जी।
कढु मज़ाहब मन मा, साझुरु साणु सवेल।
हिन्दू मोमिन साँ मिली, मुहबत जा करि मेल।
मता थिए अवेल, ओलहि सिजु न उलहे॥

(सचल मानव को उपदेश देते कहते है) ऐ मानव! हृदय से द्वैत निकालने का यही समय है। तू मजहबो को हृदय से निकाल दे और शीघ्र ही अपने को सम्भाल ले। हिन्दू-मुसलमान से मिलकर प्रेम कर कही ऐसा न हो कि तुझे देर हो जाए और तेरा (जीवन रूपी) सूर्य अस्त हो जाए।

के था चवनि "सूफु", के था चवनि "सेबु"।
इन में कहिड़ो ऐबु फलु मिडियोई हेकिडो॥

सचल साहब कहते है कि एक ही फल को कुछ लोग सूफ (ऐपिल) कहते हैं तो कुछ सेब कहते हैं; तो इसमे किसी तरह भी बुराई नही मानी जाती है। (फिर क्या कारण है कि परमात्मा को अलग-अलग नामो से पुकारने पर लोग एक दूसरे से लड़ते-झगड़ते हैं? (तात्पर्य यह कि परमात्मा एक है, उसे ही कोई राम के नाम से पुकारते है तो कोई रहीम के नाम से पुकारता है। इसमे किसी तरह की बुराई नही है इसलिए इस पर लड़ना मूर्खता ही है।)

सिरु डिएं तू सिरु डिएं, जे इश्कु मे थो सिर डिएं।
थियनि वड़ा तालिअ तोई जा, जानि जिस्म खू जे डिएं।
यो उमिरि नाहक विञाईं, ग़ैर जे ख्यालात मे।
मुहब भी तोखे मञिनि, जे नीहं जी बाजी निए।
महवु करि ब्रो ग़ाल्हि कुली, मूड म चढ़ु मैदान ते।
जीअं चवा थो, सा मञिजि, ही इश्कु बुधु आहे इए।
ग़ाल्हि करण ऐ थियण में, आहे तफ़ावतु ता वड़ो।
हाल साँ हमेशगीअ जे, पुरि इहो प्यालो पिए।

मौतु मोटी ना पुछे, तुहिजे इहा घर जी गली।
"कळ्ळू मूतु" खूं पुजाणा, नी वरी जानी जिएं।
ब्रियो मुबदल करि सभोई, ख्याल पड़ तोहीद जे।
जीअ कयो मन्सूरशह, ता आखिरी तू करि तिए॥

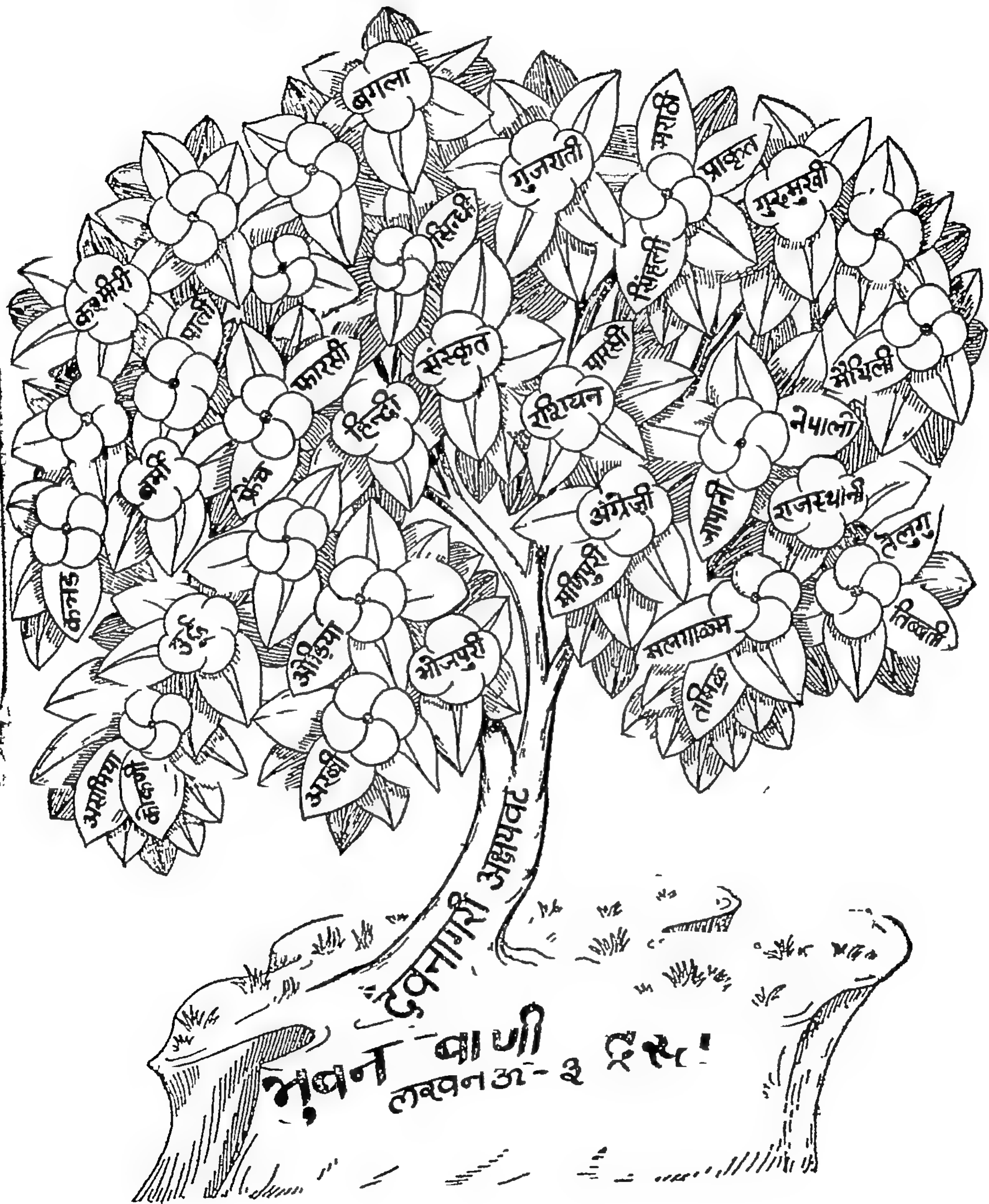
(ऐ मानव) यदि तू प्रेम मे अपना सिर उत्सर्ग कर देता है, यदि अपने को महबूब पर न्यौछावर कर देता है, तो विश्व मे भाग्यशाली माना जायेगा।

(ऐ मानव) तू व्यर्थ ही अपना जीवन गैर (पराये) के विचारो में खो रहा है। यदि तू स्नेह की बाज़ी जीत लेगा, तो प्रियतम (परमात्मा) भी तेरी दाद देगा अर्थात् प्रशंसा करेगा।

(ऐ आशिक) तू (संसार रूपी) मैदान पर चढ़ने की बात ही खत्म कर दे, क्योंकि यह इश्क ऐसा अनोखा है कि जैसे मैं तुझसे कहता हूँ वैसा ही कर (अन्यथा तू इसे प्राप्त नही कर सकेगा); बात करने और होने में बड़ा अन्तर है' यदि तू सदैव इस (प्रेम रूपी) मस्ती का प्याला लबालब भर कर पियेगा, तो मौत तेरे घर की गली मे आकर तेरे बारे मे फिर नही कुछ पूछेगी (अर्थात् तू मौत से मुक्त हो जायगा।) जब तू मौत के आने से पहले ही अपने को मार देगा (अपनी खुदी को मिटा देगा) तब ही सदैव जिन्दा रह सकेगा। तू तो सब कुछ भूल जा, केवल एक परमात्मा के ही विचारो मे डूब जा। जिस तरह से शाह मन्सूर ने किया था, तू भी आखिर मे वही कर।

मन्मूर मन्सूर एक सूफी सन्त थे, जिन्हें अनाअल्हक (अहं ब्रह्म अस्मि अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ) के नारे लगाने के कारण शूली पर चढ़ाया गया)। कहते हैं कि अन्त तक वे यही नारा लगाते रहे, उनके शरीर से जो खून निकला, उससे पृथ्वी पर "अनाअल्हक" शब्द का चित्र चित्रित होता रहा।

'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥'



ताज़ी विज्ञप्ति

प्रकाशित हो चुके हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण ग्रन्थ:

१ गुजराती गिरधर रामायण (रचनाकाल-१८३५ ई०) हिन्दी अनुवाद, नागरी लिप्यन्तरण पृष्ठ संख्या १४६० मूल्य ६०·००

२ ,, प्रेमानन्द रसामृत ना० लिप्य० हिन्दी अनुवाद पृ० संख्या ४९६ मूल्य ३५·००

३ मलयाळम अध्यात्म रामायण (एळुत्तच्छन् कृत) १५वीं शती हिन्दी अनुवाद, नागरी लिप्यन्तरण पृ०सं० ७५२ मू० ४०·००

४ ,, महाभारत-एळुत्तच्छन् (१५वीं शती) पृ० १२१६ मू० ६०·००

५ बंगला कृत्तिवास रामायण (पाँचकाण्ड) १५वीं शती। हिन्दी पद्या० सहित नागरी लिप्य० पृ० ६२४ मू० २५·००

६ ,, कृत्तिवास लंकाकाण्ड ,, गद्यानुवाद पृ० ४८८ मू० २५·००

७ ,, ,, उत्तरकाण्ड ,, ,, मूल्य २५·००

८ कश्मीरी रामावतारचरित-प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत पृ० ४८९ मू० २०·००

९ ,, ललद्यद (नागरी) हिन्दी गद्य संस्कृत पद्यानु० पृ० १२० ,, १०·००

१० राजस्थानी रुक्मिणी मंगल पदमभगत कृत। पृ० ३०० मू० १५·००

११ तमिळ तिरुक्कुरळ्-तिरुवळ्ळुवर कृत। २००० वर्ष से अधिक प्राचीन; नागरी लिप्यन्तरण, गद्य-पद्य हिन्दी अनुवाद, पृ० ३५२ मू० २०·००

१२ ,, कम्ब रामायण बालकाण्ड (९वीं शती) पृ० ६५२ मूल्य ४०·००

१३ ,, ,, अयोध्या-अरण्य पृष्ठ १०२४ मूल्य ७०·००

१४ ,, ,, किष्किन्धा-सुन्दर ,, १०१६ मूल्य ७०·००

१५ ,, ,, युद्धकाण्ड पूर्वार्ध ,, १०१६ मूल्य ७०·००

१६ ,, ,, ,, उत्तरार्ध ,, ८४० मूल्य ७०·००

१७ कन्नड— रामचन्द्रचरित पुराणं, अभिनव पम्प विरचित (जैन-मतानुसार रामचरित्र ११वीं शती) पृ० ६९० मूल्य ४०·००

१८ तेलुगु मोल्ल रामायण (१४वीं शती) पृ० ४०० मूल्य २०·००

१९ ,, रंगनाथ रामायण (१३वीं शती) अनु पृ १३३५ मू० ६०·००

२० ,, श्री पोतन्न महाभागवतमु १-४ स्कन्ध पृ० ८५६ मूल्य ७०·००

२१ ,, ,, ,, ५-९ ,, मूल्य ७०·००

२२ ,, ,, ,, १०-१२ स्कन्ध मूल्य ७०·००

२३ मराठी श्रीरामविजय-श्रीधरकृत (१७वीं शती) पृ० १२२८ मू० ६०·००

२४ ,, श्रीहरि-विजय (श्रीधर कृत) पृष्ठ १००४ मू० ७०·००

२५ फ़ारसी—सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत उपनिषद-व्या०) २८० मू० २०·००

२६ उर्दू— शरीफज़ाद. (मिर्जा रुस्वा कृत) पृ० १३६ मूल्य ८·००

२७ ,, गुज़श्तः लखनऊ (मौ० शरर) पृ० ३१६ मूल्य २०·००